अमरीका प्रवास की मेरी अद्भुत कहानी

[The wonderful story of experiences of the Author who went to the United States of America with fifteen rupees in his pocket, graduated there and walked 2,300 miles to study the conditions in that beautiful country.]

लेखक

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

रचयिता

"स्वतन्त्रता की खोज में", "विचार-स्वातन्त्र्य के प्रांगण में", "संजीवनी बूटी", "पाकिस्तान—एक मृगतृष्णा", "अनन्त की ओर", "ज्ञान के उद्यान में", इत्यादि।

●

मिलने का पता

नवीन संशोधित संस्करण

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक
सत्यज्ञान प्रकाशन
ज्वालापुर (उत्तर प्रदेश)

मूल्य
३॥)

प्रकाशक
स्वामी सत्यदेव परिव्राजक
सत्यज्ञान प्रकाशन
ज्वालापुर (उत्तर प्रदेश)

सितम्बर, १९५७

मुद्रक
न्यू इण्डिया प्रेस
कनॉट सर्कस
नई दिल्ली



स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

प्रस्तावना

जुलाई सन् १६११ में मैं अमरीका से आया था। तब से लेकर अब तक अमरीका सम्बन्धी मेरे अनुभव कई संस्करणों में पुस्तकाकार छप चुके हैं और उनकी हज़ारों प्रतियां देश के कोने-कोने में फैल चुकी हैं। दूसरी प्रान्तीय भाषाओं में भी मेरी इन पुस्तकों का अनुवाद हुआ है। मैं समझता था कि अब मुझे उनके छपवाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। अब जब देश स्वाधीन होगया है और हिन्दी भाषा सिंहासनारूढ़ हुई है तो मेरे देशवासियों में मेरी यात्रा सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने की अभिलाषा दिन प्रतिदिन बढ़ने लगी है और मेरे पास उनकी मांग के पत्र बराबर आते रहते हैं। विदेशों में भी राष्ट्र-भाषा हिन्दी का प्रचार बढ़ रहा है। इसीलिए मैंने यह उचित समझा है कि अपनी इन लोकप्रिय पुस्तकों के नवीन संशोधित संस्करण छपवा कर इस आवश्यकता को पूरा करूं।

अमरीका सम्बन्धी मेरे लेख पहले प्रयाग की मासिक पत्रिका "सरस्वती" म छपे थे। अब मैंने अमरीका-प्रवास की सारी कहानी को एक पुस्तक में छाप कर उसे जन-साधारण के लिए प्राप्ति के हेतु सुलभ कर दिया है। इस ग्रन्थ में पन्द्रह रुपये लेकर अमरीका जाने, वहाँ पाँच वर्ष रह कर विद्या पढ़ने और तत्पश्चात् दो हज़ार तीन सौ मील अमरीका में मेरे पैदल घूमने की अद्भुत और मनोरंजक कहानी सम्मिलित कर दी गई है।

इस मेरे एक ग्रन्थ को खरीदने से अमरीका सम्बन्धी मेरे सारे अनुभव पाठकों को प्राप्त हो जायेंगे, कोई नई पुस्तक इस सम्बन्ध में पढ़ने

की आवश्यकता नहीं रहेगी। इसी प्रकार मैं अपने योरुप के अनुभवों को भी एक ग्रन्थ में कर देना चाहता हूँ, जिससे अपनी-अपनी रुचि अनुसार मेरे प्रेमी उन्हें खरीद सकें और एक ही स्थान पर अभिलषित सामग्री इकट्ठी हो जाय।

मुझे आशा है कि हिन्दीप्रेमी जनता मेरे इस ग्रन्थ को अपने घरों में स्थान देगी और उन्हें पढ़ कर पूरा लाभ उठायेगी। हो सकता है, इस मेरे ग्रन्थ का अंग्रेज़ी अनुवाद हिन्दी जानने वाला कोई अमरीकन लेखक कर दे और अंग्रेज़ी जानने वाली जनता को भी मेरे शिक्षाप्रद अनुभवों का लाभ मिल जाय। मेरे प्रेमियों को चाहिए कि वे मेरे साहित्य का प्रचार अपनी पूरी शक्ति लगा कर करें, क्योंकि अब मैं स्वयं पहले की तरह व्याख्यान आदि देकर मातृ-भाषा की सेवा नहीं कर सकता। देशवासियों के सहयोग के बिना मेरे द्वारा नवीन साहित्य की रचना भी कठिन होगई है। मुझे पूरा विश्वास है कि हिन्दीप्रेमी इस ग्रन्थ का समुचित आदर करेंगे और आने वाली सन्तानें इसका यथेष्ट लाभ लेंगी।

सत्य ज्ञान निकेतन
ज्वालापुर, उत्तरप्रदेश
१८ सितम्बर, १९५७

निवेदक
स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

विषय-सूची

प्रभु-मिलन

१

आनन्द की है चाह जो, प्रभु के द्वारे जाओ तुम—
श्रद्धा के फूल साथ ले, द्वार को खटखटाओ तुम।

२

स्नेह से द्वार खोलेंगे, मीठे स्वर में बोलेंगे,
पूछेंगे प्रेम से तुम्हें, प्यारे कैसे आए तुम?

३

चरणों के पास जाय के, विनय से सीस झुकाय के,
परम-पिता के सामने, कष्ट-कथा सुनाओ तुम।

४

वे तो दयालु स्वामी हैं, घट-घट अन्तरयामी हैं,
दूर करेंगे क्लेश सब, उन से न कुछ छिपाओ तुम।

५

है "देव" की यह कामना, यह प्रभु-मिलन की भावना।
रम जाय सारे विश्व में, हृदय से सब मनाओ तुम।

●

यह भजन लेखक ने आधी रात के समय परमात्मा से प्रार्थना करने के बाद उनकी आज्ञा से बनाया था।

अमरीका प्रवास की मेरी अद्भुत कहानी

पहला अध्याय

मैं पन्द्रह रुपये लेकर अमरीका कैसे पहुंचा

मेरी आयु इस समय भरी जवानी की थी ! भारतवर्ष की राजनीतिक गुलामी ने मुझे बेचैन कर दिया था और मैं चाहता था अपने देश को स्वतन्त्र करना। महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती तथा इटली के निवासी, स्वाधीनता के पुजारी, जगद्विख्यात मेज़िनी की जीवनी ने मुझ पर जादू-सा काम किया था। मैं चाहता था स्वतंत्रता की खोज करना—किसी स्वतंत्र देश में जाकर उस पवित्र मूर्ति का दर्शन करना।

ईसा की बीसवीं शताब्दी अपना अमर संदेश लेकर इस पृथ्वी पर पदार्पण कर रही थी और मैं उसके सिंह-द्वार से उसका पावन संदेश सुनने के लिए लालायित हो रहा था। माता-पिता का घर तो मैंने छोड़ ही दिया था। सोचा यह था कि पहले ब्रह्मचारी मूलशंकर की तरह काशी में रहकर संस्कृत का अध्ययन किया जाय और बाद में किसी स्वतंत्र देश की यात्रा की जाय। स्वामी विवेकानन्द अमरीका से लौट कर अपना दिव्य संदेश देशवासियों को सुना रहे थे। युवा सन्यासी स्वामी रामतीर्थ भी उसी धुन में घर से निकल पड़े थे। शिकागो में होने वाला सर्व धर्म सम्मेलन अपनी उदारता का संदेश दुनिया को दे चुका था। बौद्ध भिक्षु अनागरिक धर्मपाल भी उसमें सम्मिलित हुए थे और वे भी भारतीयों का हित चिन्तन कर छात्रों को अध्ययनार्थ अमरीका भेजना चाहते थे।

ऐसा था भारतवर्ष का वातावरण, जब मैंने संस्कृत पढ़ने के लिए काशी नगरी में प्रवेश किया। यहाँ का मेरा जीवन पुराने काल के विद्यार्थियों जैसा

था। मैंने कभी अपने जीवन में कौलर, टाई, बूट, अंग्रेजी टोपी तथा विलायती कमीज आदि का उपयोग नहीं किया था और न कभी होटल में जाकर छुरी-काँटे से खाना ही खाया था। इस प्रकार का जीवन रखने वाला मैं, सत्यदेव विद्यार्थी, काशी में चार वर्ष तक संस्कृत पढ़ता रहा और यहीं पर मुझे स्वर्गीय बाबू दुर्गाप्रसाद बी० ए० का सत्संग मिला, जिन्होंने मुझे अमरीका जाने के लिए विशेष रूप से उत्साहित किया और पदार्थ विज्ञान के अद्भुत चमत्कारों की महिमा मुझे बतलाई। मैं यहाँ के सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में भी कुछ समय तक विद्याध्ययन करता रहा और थियोसिफिकल सोसाइटी के नेताओं से परिचय प्राप्त किया।

आखिर मैंने विदेश जाने का निश्चय कर ही डाला और पहली जनवरी सन् १९०५ की तिथि भी उसके लिए नियत कर दी। मगर मेरे पास थे केवल पन्द्रह रुपये! यही थी मेरी सारी पूंजी, जिसके सहारे मैं प्रशान्त महासागर पार करने की योजना बना रहा था।

पुरानी दुनिया का संस्कृत पढ़ने वाला विद्यार्थी अपनी २६वें वर्ष की आयु में बिना किसी साधन के नई दुनिया की ओर जाने के लिए काशी से चल पड़ा और जब रेलगाड़ी पहली जनवरी सन् १९०५ को डफरिन ब्रिज पर से श्री गंगाजी को पार कर रही थी तो खिड़की में बैठे हुए मैंने काशी नगरी का प्रभाती दृश्य देखा और उस समय मेरे मुँह से अनायास ही नीचे लिखे शब्द निकले :—

खुश रहो अहले वतन अब हम सफर करते हैं।
दरो दीवार पै हसरत से नजर करते हैं॥

इस प्रकार मानसिक भावों से ओत-प्रोत मैं बम्बई की ओर रवाना हुआ। यह सच है कि मैंने कालेज में शिक्षा पाई थी, किन्तु कालेज के पाश्चात्य-सभ्यतापूर्ण प्रभाव का मुझ पर कोई असर नहीं पड़ा था। भारतीय वेश-भूषा, प्राचीन संस्कृति और ऋषि-मुनियों के आदर्शों से मेरा मस्तिष्क बहुत अधिक प्रभावित था। ऐसे ही सिद्धान्तों में पला हुआ मैं भारतवर्ष

की प्रसिद्ध नगरी बम्बई में पहुँचा और वहाँ के आर्यसमाज में डेरा डाला। डाक्टर कल्याणदास देसाई उस समय वहाँ के प्रधानमंत्री थे। वे बड़े ईश्वर-भक्त, दयालु-स्वभाव और परोपकारी व्यक्ति थे। उन्होंने मुझे अपना लिया और ऐसा अपनाया जो अन्त तक निभने वाला सिद्ध हुआ।

सबसे पहले मैंने बम्बई बन्दरगाह में ठहरने वाले स्टीमरों पर जाकर नौकरी की खोज की। स्वर्गीय स्वामी सोमदेव भी अमरीका जाने की धुन में यहाँ आ पहुँचे और हम दोनों स्टीमरों पर खलासी का काम तलाश करने लगे। सोमदेव बेचारे तो पतले-दुबले मरियल से आदमी थे, इस कारण जहाजी मल्लाह उनकी मसखरी उड़ाया करते। इससे सोमदेव जी तो कुछ दिन बम्बई में रहकर हिम्मत छोड़ बैठे और काशी लौट गये, पर मैं अपने काम पर डटा रहा। आँखों की कमजोरी के कारण मैं खलासी होने लायक न था। नाविक की दृष्टि पैनी होनी चाहिये; स्टीमर पर वह बन्दर की तरह कूद-फाँद सके, आँधी-तूफानों में वह अपने आपको स्थिर रख सके——ये सब काम अच्छी आँखों वाला ही कर सकता है। मुझे तो माता के गर्भ से ही कमजोर आँखें मिली थीं, इस कारण बड़ी दौड़-धूप करने पर भी मैं कोई नौकरी न पा सका; लेकिन मुझे स्टीमरों की वाकफियत सब होगई और कल्पनाशक्ति के घोड़े दौड़ाने के लिए मैंने काफी मसाला इकट्ठा कर लिया।

जब डाक्टर कल्याणदास जी ने मेरा सब हाल-चाल सुना, निराशा भरे हुए परिणामों को जाना, तब उन्होंने हितैषी मित्र की तरह मुझे यह सलाह दी कि मैं गुजरात काठियावाड़ का भ्रमण कर आर्यसमाज का सन्देश प्रजा को सुनाऊँ।

उन्हीं के आदेशानुसार मैंने गुजरात काठियावाड़ का दौरा किया और अहमदाबाद में भोलानाथ लिटरेरी इन्स्टीच्यूट की ओर से "उन्नति का द्वार" शीर्षक विषय पर व्याख्यान दिया। इस प्रकार चार महीने आर्य-समाजों में व्याख्यान देने और भ्रमण करने में खर्च होगये। यात्रा के खर्च

का कुछ प्रबन्ध हो जाने के कारण मैंने बम्बई छोड़ने का निश्चय किया और यह सोचा कि कलकत्ते जाकर वहीं से नई दुनिया की ओर जाने वाले स्टीमर का प्रबन्ध किया जाय।

इस समय मेरे पास पौने तीन सौ के करीब रुपये थे। इतने रुपयों से मैं अमरीका नहीं पहुँच सकता था, क्योंकि अमरीका पहुँचने के लिए कम-से-कम पाँच सौ रुपयों की जरूरत थी। जब मैं कलकत्ता पहुँचा तो मैंने अपने मन में यह निश्चय कर लिया कि भारत से बाहर निकल कर किसी टापू में कुछ समय तक मेहनत-मजदूरी द्वारा धन उपार्जन करूँगा। कलकत्ते में मेरी भेंट भाई सोहनलाल रवि से हो गई। वे भी अमरीका जाने के लिए घर से निकले थे। उनके पास रुपया भी काफी था। उनकी इच्छा कृषि-विज्ञान सीखने की थी। अब हम दो जने होगये, इस लिए मेरा उत्साह और भी बढ़ गया। हम दोनों जने अपनी कठिन यात्रा की तैयारी करने लगे।

मेरे पास तीन ऊनी कम्बल थे। मैंने एक बड़ा लम्बा ओवरकोट सिलवाया, एक काली बनात का सूट भी तैयार करवा लिया। मेरे पास एक बड़ा संदूक पुस्तकों का था। उसे मैंने साथ ले जाना चाहा, किन्तु बाद में कुछ सोच विचार कर उसे अपने एक मित्र के पास रख दिया। बहुत अच्छा होता यदि मैं अपनी पुस्तकें बिलकुल ही साथ न ले जाता, क्योंकि मुझे बाद में पुस्तकों तथा दूसरे असबाब के कारण बड़ी असुविधा हुई। विदेश-यात्रा करने वाले लोगों के पास जितना कम समान हो उतना ही अच्छा होता है।

योरुप तथा अमरीका में भारतवर्ष से भिन्न फैशन होने के कारण वहीं पहुंच कर कपड़े बनवाना लाभदायक होता है। भारत के बने कपड़े वहाँ विशेष उपयोगी सिद्ध नहीं होते, इसलिए विदेश जाने वाले बन्धुओं को चाहिए कि वे फालतू कपड़े अपने साथ न ले जायें--अधिक बोझ बाँधना दुःखदायी हो जाता है। अत्यन्त आवश्यक वस्तुएँ ही साथ

ले जानी चाहियें। एक गहरा नीला गरम सूट और दूसरी खाकी जीन की पोशाक बनवा लेनी चाहिये। इससे यात्रा में सुख मिलता है।

अपनी आवश्यक चीजें खरीद कर मैं निश्चिन्त होगया और भारत से प्रस्थान करने की तैयारी कर ली। हमारा स्टीमर ८ मई को जाने वाला था। पहले हमने डेक का टिकट खरीदा, किन्तु जब पूछ-ताछ करने पर डेक के मुसाफिरों की तकलीफों का पता लगा तो मैंने और मेरे साथी ने दूसरे दर्जे का टिकट ले लिया। जब हम कलकत्ता बन्दरगाह पर जहाज के निकट पहुँचे तो वहाँ एक अजीब दृश्य देखने में आया। चार-पाँच सौ पंजाबी सिक्ख हुगली नदी के किनारे बैठे हुए ग्राम्य-गीत गा रहे थे और अपनी धुन में ऐसे मस्त थे मानो वे किसी विवाहोत्सव पर जा रहे हों।

जहाज पर चढ़ने से पहले मुसाफिरों की डाक्टरी परीक्षा होती थी। हम चूंकि दूसरे दर्जे के मुसाफिर थे, इसलिए डाक्टर ने केवल नब्ज देखकर हमारी परीक्षा कर ली और हमने अपना असबाब किश्तियों पर लदवा कर जहाज पर भेज दिया। मेरे मित्र रवि तो असबाब भेजने में व्यस्त थे, परन्तु मैं घाट पर खड़ा हुआ मन के घोड़े दौड़ा रहा था— "हा! अब भारत से जाना होगा; न जाने बाहर जाकर क्या दशा होगी!" एक बालक की तरह मेरा चित्त अधीर होगया और मैं कायरों की भाँति अश्रुपात करने लगा। जब मैंने उन ग्रामीण सिक्खों की ओर फिर दृष्टि डाली तो मुझे अपनी भीरुता पर बड़ी लज्जा आई और मैंने अपने आपको बहुत धिक्कारा। आँखों के आँसू पोंछ कर मैं चैतन्य होगया। मेरे मित्र असबाब लदवाने के काम से फ़ुर्सत पाकर मेरे पास आगये और हम दोनों किश्ती में बैठकर जहाज की ओर चले। यह जहाज अंग्रेज़ी 'आपकार' कम्पनी का था। उसके कप्तान ने हमारे साथ बड़ी दुष्टता का व्यवहार किया। हमें एक अन्धेरी कोठरी में जगह दी। दूसरे दरजे की ऐसी कोठरी जाड़े में तो बड़ी सुखदायी होती है, पर गर्मियों में तो यह नरकसम बन जाती है। ख़ैर, हम लोगों ने इसी में डेरा डाला। कप्तान ने हमसे यह कह दिया कि जहाज में इस केबिन के सिवाय दूसरी

कोठरी खाली नहीं, लेकिन तीसरे दरजे के यात्री अंग्रेज़ मुसाफ़िरों को उसने एक बड़ा अच्छा दूसरे दरजे का केबिन दे दिया था। अंग्रेज़ी जहाज़ वाले प्रायः इस प्रकार का दुर्व्यवहार उन दिनों हिन्दुस्तानी यात्रियों के साथ करते थे; इसीलिए इटेलियन और फ्रांसोसी कम्पनियाँ हमारे मुसाफ़िरों को अपनी ओर खींच लेती थीं।

अब यात्रा का हाल सुनिए। पहली रात तो हमारी बड़े ही कष्ट से गुज़री—सारी रात बैठकर काटी। उन दिनों गर्मी सख्त पड़ रही थी और अभी हम लोगों को एक दो दिन हुगली में रहना था। जब हुगली नदी से निकल कर बङ्गाल की खाड़ी में पहुँचे तो समुद्र देवता ने अपना भीषण रूप दिखाना आरम्भ किया। यह मौसम समुद्र के यौवन का होता है। जहाज़ ने डोलना शुरू किया। बड़ी-बड़ी लहरें उठकर यात्रियों से हाथ मिलाने दौड़ती थीं—केवल हाथ मिलाना ही नहीं, बल्कि उन्हें प्रेम-स्नान भी कराती थीं। हम लोग तो ऊपर दूसरे दरजे के डेक पर थे, परन्तु उन बेचारे सिक्खों पर तो आफ़त ही आगई। उनके सारे कपड़े भीग गये और उनकी सब खाने-पीने की चीज़ें पानी से भीग गईं। उन अभागों को न दिन को आराम और न रात को नींद! वे अधमुए-से पड़े थे। मेरे साथी ने भी चार दिन तक खाना नहीं खाया और मुर्दे के समान पड़ा रहा। मैं अपने साथ कुछ नमकीन चीज़ें तथा नींबू लाया था, इससे मुझे बहुत ही लाभ पहुँचा। जब समुद्र क्षुभित हो और जी मिचलाने लगे, तो नमकीन वस्तु खाने से अथवा नींबू चाट लेने से मिचलाई दूर हो जाती है। मैं बराबर काम करता था और अपने मित्र की सेवा शुश्रूषा में भी लगा रहता था। चार-पाँच दिन के बाद समुद्र देवता ने शान्त रूप धारण किया और हम लोग पीनाङ्ग की खाड़ी के निकट पहुँच गये। अब जहाज़ के सफ़र का आनन्द आने लगा। समुद्र की सतह पर यह छोटा सा स्टीमर ऐसे मज़े से जा रहा था, मानो बतख़ पानी पर तैर रही हो। संध्या के समय जब सूर्यदेव अस्ताचल पर पहुँचते तो दृश्य बड़ा ही मनोहर हो जाता था। सुनहरी किरणें पानी पर पड़कर रङ्गबिरङ्गे

वस्त्र पहिन लेती थीं। पीनाङ्ग की इस खाड़ी में यात्रा करते समय हमें ऐसा आनन्द आया कि पिछला सारा दुःख भूल गये। शांत समुद्र एक झील की तरह मालूम पड़ता था। निर्मल आकाश के नीचे जैसे सरोवर में हवा के झोंकों से हलकी-हलकी तरंगे उठती हैं, इसी प्रकार पीनाङ्ग की खाड़ी में समुद्र का दृश्य था। हम लोग सारा दिन डेक पर बैठे समुद्र की मनोहारिणी छवि का आनन्द लेते थे और ताश खेला करते थे।

एक दिन मैं अपने भारतीय बन्धुओं को देखने के लिए नीचे डेक पर गया। वे भी समुद्र के सुहावने दृश्यों से अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे। अपना पिछला दुःख उन्होंने भुला दिया था। अपने भीगे हुए कपड़ों को सुखा कर वे अब दिनभर ताश खेलने और ग्रामीण गीत गाने में मशगूल रहते थे। उनको एक कष्ट था--वे भेड़-बकरियों की तरह डेक पर खचाखच भरे हुए थे और साथ ही मल्लाह लोगों का बर्ताव भी उनके साथ भले मनुष्यों जैसा न था। एक दुःख और था--जहाज पर लदे पशुओं की लीद की दुर्गन्ध के मारे इन लोगों का नाक में दम था। ये पशु मांसाहारी सभ्य पुरुषों और स्त्रियों के भोजनार्थ भारतवर्ष से दूसरे बन्दरगाहों में भेजे जा रहे थे। डेक के यात्री स्टीमरों पर प्रायः ऐसे ही कष्ट भोगते हैं। भारतवर्ष के तीसरे दरजे के रेल-यात्रियों की तरह ये भी मुसीबतें सहते हैं। जिनके पास झुलई शय्या (Hammock) थी, वे बड़े सुखी रहे। बहुतों की चीजें समुद्र में बह गई थीं। जिनके खाद्य पदार्थ भीग गए थे, वे उनके सुखाने में लगे हुए थे। जहाज पर माँगने से कोई चीज आसानी से नहीं मिलती, अपनी चीज से ही सुख मिलता है। जिनके पास आरामकुरसी अथवा झुलई शय्या रहती है, वे अपनी इच्छानुसार सुखद स्थान देख कर शीतल समीर का उपभोग करते हैं।

आखिर, यात्रा की सब असुविधाओं को सहते हुए और साथ ही पीनांग की खाड़ी का नैसर्गिक दृश्य देखते हुए, हम लोग बन्दरगाह के पास पहुँचे। प्रातःकाल का समय था। आकाश निर्मल था, प्रभाती नजारे मनोहर थे। स्टीमर बन्दरगाह से कुछ फ़ासले पर खड़ा होगया। उससे

उतरनेवाले यात्रियों को लेने के लिए छोटी-छोटी डोंगियाँ आने लगीं। हम लोग तो आगे ही तैयार बैठे थे। नौकरों को कुछ दे-दिलाकर, अपने काम से फ़ारिग होकर, हमने भी एक डोंगी पर अपना असबाब लदवाया और किनारे की तरफ चले।

पीनाङ्ग, स्ट्रेट सेटलमेन्ट का, बड़ा ही खूबसूरत शहर है। अपने ढंग का यह नया ही शहर देखने में आया। हमने तो पहले कभी ऐसा शहर नहीं देखा था। सुन्दर साफ सड़कों पर दौड़ते हुए जिनरिक्शा बड़े ही विचित्र दीख पड़ते थे। हम लोगों ने पहले कभी जिनरिक्शा की सवारी नहीं देखी थी, इसलिए स्वाभाविक ही इसपर चढ़ने को दिल चाहता था। एक जिनरिक्शा मैंने पकड़ा और एक मेरे मित्र ने। अपना-अपना असबाब उनमें रखकर हम लोग चले। यह भी खूब सवारी थी। एक लम्बी चोन्दीवाले चीनी का रिक्शा को खींचते हुए भागना बड़ा ही अजीब मालूम होता था। अपने देश में तो ईसाई औरतों या मेमों की गाड़ियों को खींचने वाले अपने भारतीय बन्धु बहुधा देखने में आये थे, लेकिन उन्हें देखकर कभी भी उनके प्रति दया का भाव उत्पन्न नहीं हुआ था। हम लोग तो अपने देशबन्धुओं की दुर्दशा को एक साधारण बात समझते हैं और उनके प्रति सहानुभूति की भावना बहुत कम मन में लाते हैं। क्यों न हो, तभी तो हमारी ऐसी हीनावस्था है।

आइये पाठक, हम आपको पीनाङ्ग की गलियों में ले चलें और जिनरिक्शा की सैर करावें। बन्दरगाह से चलकर हम लोग पीनाङ्ग के सिक्ख गुरुद्वारे की तरफ रवाना हुए। नगर की साफ-सुन्दर गलियों की शोभा देखते हुए चले। रास्ते में जगह-जगह पर हमने सिक्ख सिपाहियों को खड़े हुए देखा। उनके लम्बे कद, बड़ी दाढ़ियाँ और सिरों पर पगड़ियाँ भारतीय वीरों की याद दिलाती थीं। उस समय यह प्रश्न भी मनमें उठता था कि भारतमाता के सपूतों का काम क्या दूसरों की गुलामी करना ही रह गया है? इस प्रकार के प्रश्न चित्त को दुःखी करते थे, परन्तु हो क्या सकता था! जिन प्रश्नों का सम्बन्ध सारे समाज के साथ

हो, वे तो समाज के संगठन द्वारा ही हल हो सकते हैं। एक व्यक्ति के हृदय में उत्पन्न हुए भाव जब तक सारे समाज मे न फैल जायँ, तब तक उन भावों से कुछ फल नहीं निकल सकता। समुदाय की समस्याओं का हल समुदाय के सुधार पर ही अवलम्बित है। ये सिक्ख सिपाही, जो पीनाङ्ग की गलियों में अंग्रेज़ी सरकार के हुक्म से पहरा दे रहे थे, अपने देश की दुर्दशा से बिलकुल अनभिज्ञ थे। जब तक सारे भारतवर्ष में राष्ट्रधर्म के भावों का प्रचार न हो, तब तक हमारे ऐसे वीर पुत्र दूसरों की गुलामी के सिवाय और कर ही क्या सकते हैं! मलाया के प्रायद्वीप मे इन दिनों सुदृढ़ अंग्रज़ी शासन था। ब्रिटिश सरकार पंजाबी सिक्खों की सहायता से यहाँ की जनता पर शासन करती थी। पीनाङ्ग इस प्रायद्वीप का प्रधान नगर है। यहाँ की गलियाँ और बाजार बड़े साफ-सुथरे, मार्ग प्रशस्त और मकान भव्य बने हुए हैं। घूमते-घामते हम सिक्खों के गुरुद्वारे में पहुँचे।

सिक्खों का यह मन्दिर सचमुच पंजाबी हिन्दुओं की श्रद्धा-भक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण है। अपनी जन्मभूमि से सैकड़ों मील दूर नौकरी-पेशा पंजाबी सिक्ख अपने प्यारे धर्म को नहीं भूलते। यहाँ भी उन्होंने बड़ा सुन्दर गुरुद्वारा हरि-कीर्त्तन के लिए बनाया है। जो भारतीय इधर आते हैं, जिनको नौकरी की तलाश होती है, जिनकी नौकरी छूट जाती है, वे सब यहीं आकर आश्रय लेते हैं। सीमेन्ट का बना हुआ पक्का स्थान, मजबूत फ़र्श, बड़े-बड़े दालान, मुसाफ़िरों के आराम करने के लिए अत्यन्त उपयोगी बने हैं। यहाँ के ग्रन्थी महाशय बड़े सज्जन पुरुष निकले। हम लोगों को उन्होंने बड़ी अच्छी तरह टिकाया और खाने-पीने का बन्दोबस्त कर दिया। तीन-चार रोज तक हम यहाँ रहे। मेरे मित्र के पास तो अमरीका जाने के लिए काफ़ी रुपया था, इसलिए उन्होंने तो सिंगापुर जाने वाले जहाज का टिकट खरीद लिया और मुझे छोड़ कर चलते बने। मैंने कहा—"अच्छा, आपने छोड़ दिया तो क्या हुआ, ईश्वर तो नहीं छोड़ेगा!" और अपनी धुन में लग गया। एक दूसरे पंजाबी मित्र के

अनुरोध पर मैं उसके साथ ईपू चला गया । उधर भी बहुत से भारतीय काम करते हैं । उनमें अधिक संख्या सिक्खों की थी, जो या तो फ़ौज में भरती थे या चौकीदारी का काम करते थे। उनके अतिरिक्त अन्य भारतीय मेहनत-मजदूरी कर पेट पालते हैं । यहाँ के असली निवासियों का नाम मलायी हैं । वे कट्टर मुसलमान हैं; किन्तु हैं बड़े आलसी । इसी कारण उनके देश का धन विदेशी लूट रहे थे । इन द्वीपों में चीनियों की कमी नहीं। दक्षिण भारत के कलिंग लोग भी यहाँ बसते थे । कलिंग शब्द अँग्रेज़ी "Killing" का अपभ्रंश है। दक्षिण भारत के जिन लोगों को हत्या के अपराध में देश निर्वासन होता था, वे यहीं पर भेजे जाते थे। दन्तकथा है कि जब किसी मलायी ने किसी गोरे से इन भारतीय अपराधियों के विषय में पूछा तो उसने जवाब दिया--"They killing men" अर्थात् ये हत्यारे हैं। इसीसे उनका नाम कलिंग पड़ गया। पर मेरा विचार यह है कि कलिंग प्रान्त के निवासी होने के कारण इनका यह नाम पड़ा होगा। ये लोग अधिकतर पीनाङ्ग में हैं और वहीं पर इनका एक मन्दिर भी है ।

अपने एक पंजाबी मित्र के साथ मैं ईपू की ओर गया तो, परन्तु वहाँ विशेष आर्थिक लाभ नहीं हुआ। हाँ, इधर-उधर घूम कर भारतीय बन्धुओं की दशा देखने का अच्छा अवसर मिला । उनमें बहुत से तो फ़ौज में भरती थे, जिनमें सिक्खों की संख्या अधिक थी। कुछ लोग गाय खरीद कर दूध का व्यापार करते थे और कइयों ने दूकानें खोल रक्खी थीं । सारांश यह कि भारतीय बन्धुओं का परिश्रम यहाँ पर उनके लिए अति फलदायक था ।

यहाँ का जलवायु अति उत्तम है। रेल में बैठे-बैठे जङ्गलों और पहाड़ों के दृश्य मैंने देखे । उनको देखकर चित्त अति प्रसन्न हुआ। ईपू से लौट कर जब मैं अपने मित्र के गांव की ओर आया तो वहाँ एक सिक्ख विद्यार्थी से मेरी भेंट हुई । वे भी अमरीका जाना चाहते थे । उनका नाम श्रीमान् पालसिंह था। अपने भाई से काफी रुपया लेकर वे भी मेरे

साथ पीनाङ्ग चले आये और हम फिर दो जने होगये । पीनाङ्ग से सिंगापुर तक जिस टिकट की कीमत स्टीमर कम्पनी वाले बारह डालर मांगते थे, वह हमको चीनी सौदागरों के हाथ साढ़े चार डालर पर ही मिल गया ।

खैर, हम लोग नियत तिथि पर सिंगापुर की ओर रवाना हुए । इस स्टीमर पर चीनियों की भरमार थी । इनकी लम्बी-लम्बी चोन्दियाँ, गन्दे कपड़े यात्रियों के दिलों में उनके प्रति घृणा उत्पन्न करते थे । उनके खाने के विषय में तो कहना ही क्या ! मालूम होता है कि ईश्वर-रचित कोई भी जीव ये लोग नहीं छोड़ते । कीड़े-मकौड़े, मेंढक, झींगुर, कुत्ते, बिल्ली सभी कुछ ये लोग चट कर जाते हैं और इन जानवरों को ऐसा सड़ा-सड़ा कर ये लोग खाते हैं कि देखने वाला हैरान रह जाता है ।

हम लोगों न चार दिन बड़ी विपत्ति से काटे, क्योंकि अब तो मैं भी 'डेक' मुसाफिर था और हमारे साथ जितने भारतीय यात्री थे उन बेचारों ने भी अति कष्ट सहन किया । सचमुच यह नरक की यात्रा है । मैं अपने पाठकों से सविनय निवेदन करूँगा कि वे, जहाँ तक हो सके, मजदूर जहाजों से बचें । जर्मन और जापानी स्टीमर इतने खराब नहीं होते । इनमें डेक के मुसाफ़िरों की भी अच्छी खबरदारी की जाती है ।

आखिर सिंगापुर आया । हम लोग गुरुद्वारे में पहुँचे । वहाँ पता लगा कि एक भारतीय सज्जन अपने कुटुम्बसहित पास ही के मकान में रहते हैं । हमने उन्हीं के यहाँ जाना उचित समझा । उनके यहाँ जाने से हमको बड़ा आराम मिला । उन्होंने बड़े प्रेम से अपने घर में जगह दी । एक सप्ताह तक हम उनके यहाँ रहे और इसके बाद हमने हाँगकाँग की तैयारी को ।

यहाँ पर यह बतलाना अनुचित न होगा कि इस पंजाबी सज्जन ने कई एक भारतीय बन्धुओं द्वारा मेरे साथ सहानुभूति करने का पूरा प्रयत्न किया और मैंने यहाँ दो-तीन व्याख्यान भी दिए, जो लोगों को बहुत

पसन्द आए। यहाँ से हमने अपनी लम्बी यात्रा के वास्ते कई एक छोटी-मोटी चीज़ें भी ख़रीदीं, जैसे बाल साफ़ करने की कंघी, ब्रश, टुथब्रश, उस्तरा, साबुन तथा और नित्य के काम की चीज़ें। जिस दिन हमें जाना था, उससे एक रोज़ पहले हम लोग सिंगापुर घाट पर गए, जहाँ बहुत से जहाज़ देखने में आए। सिंगापुर एक बड़ा भारी बन्दरगाह है। छोटा सा यह द्वीप—चीन, जापान एक ओर, भारत दूसरी ओर—इन देशों के बीच में नाका डाले हुए है। इसीलिए संसार की सब जातियों के स्टीमर यहाँ आकर ठहरते हैं और इसी कारण से सिंगापुर एक अच्छा सर्वमिश्रित (Cosmopolitan) शहर होगया है। हम लोगों ने इस बार जर्मन कम्पनी से टिकट खरीदा था, इसलिए सिंगापुर से हाँगकाँग जाने में हमें कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। हाँ, इतना अवश्य हुआ कि चीनी भूत इस जहाज पर भी थे और एक बार मेरी उनसे खटपट भी होने लगी थी। बात यह हुई कि जहाँ मैंने बिस्तरा किया हुआ था, वहाँ पर पांच-चार चीनी मजदूर आकर अपनी गुड़गुड़ियाँ लेकर अफ़ीम पीने लगे। उसकी दुर्गन्ध से मेरा सिर घूमने लगा। मैंने उनको समझाया कि वे वहाँ से उठकर दूसरी तरफ़ चले जायें। बजाय इसके कि वे मेरा कहा मानते, वे अपनी भाषा में "घाँ! घाँ!!" करने लगे और जैसे एक कौवे की काँए-काँए सुनकर बहुत से इर्द-गिर्द के कौवे इकट्ठे हो जाते हैं, इसी प्रकार इर्द-गिर्द के सारे चीनी मजदूर वहाँ आकर जमा होगए। मेरे दिल में तो यह आया कि पाँच-चार की चोन्दियाँ पकड़ कर इनको खूब पीटूँ, परन्तु मेरे मित्र पार्लसिंह ने इसका विरोध किया। फिर मैंने यही मुनासिब समझा कि कप्तान के पास जाकर इसका निपटारा करना चाहिए। उनमें से एक चीनी अंग्रेजी जानता था। जब उसे मेरे इरादे का पता लगा तो वे सब चीनी उठकर वहाँ से चले गए और मैंने अपने बिस्तरे को ठीक करके सोने की तैयारी की।

सिंगापुर से हाँगकाँग जाने में छः रोज़ लगते हैं और यह चीनी समुद्र बड़ा ही छलिया है। भारी-भारी तूफ़ान इस समुद्र में आते हैं। ईश्वर की

बड़ी कृपा हुई कि हम लोम बिना किसी डावाँडोल के हाँगकाँग पहुँच गए और रास्ते में किसी प्रकार का तूफ़ान नहीं आया।

आइये पाठक, अब हम आपको हाँगकाँग की खाड़ी का दृश्य दिखलायें। यह दृश्य सचमुच देखने योग्य है। एक पहाड़ी के ऊपर हाँगकाँग शहर बसा हुआ है और अर्धचन्द्राकार खाड़ी इसके सौन्दर्य को चौगुना कर देती है। छोटी-छोटी डोंगियाँ, बड़े-बड़े जहाज और चीनी डोंगे इधर-उधर घूमते-फिरते बड़े ही भले दीख पड़ते हैं। शहर से दूसरी ओर खाड़ी-पार जाने के लिए छोटे-छोटे स्टीमर सदा चलते रहते हैं, जिन पर मजदूर और नौकरीपेशा लोग आते जाते हैं।

जिस समय हमारा जहाज इस खाड़ी में जाकर पहुँचा और मैंने इधर-उधर निगाह दौड़ाई, हाँगकाँग के सुन्दर भवन देखे और अर्धचन्द्राकार मकानों का दृश्य देखने में आया तो मुझे पुनः काशी की याद आगई। पुण्यतोया जाह्नवी को दिल ही दिल में नमस्कार कर हम लोग उतरने के लिए तैयार होगये। जिस समय डोंगीवाले जहाज पर आए तो हमने भी एक ही साथ किराया ठीक किया और हाँगकाँग पहुँचे। स्मरण रहे कि यहाँ का सिक्का और ही तरह का होता है। सिंगापुर और मलायी डालर यहाँ नहीं चलते। डोंगीवाले बड़ा तङ्ग करते हैं। डोंगी से उतर कर, अपना असबाब एक गाड़ी में लदवा हम लोग सिक्ख-गुरुद्वारे की ओर चले। ये गुरुद्वारे निर्धन भारतीय यात्रियों के लिए सचमुच बड़े ही लाभदायक हैं, नहीं तो नावाकिफ आदमी यहाँ किसी के चंगुल में फंस कर यों ही लूटा जा सकता है। गुरुद्वारे में पहुँच कर हम लोगों ने अपने डेरे-डंडे जमा दिये। धर्मशाला के ग्रन्थी ने हमारे साथ बहुत अच्छा बर्ताव किया। यहाँ आकर मुझे पता लगा कि जो मित्र मेरे साथ कलकत्ते से आया था, वह अभी यहीं है--वह अभी अमरीका नहीं गया था, क्योंकि कई एक दैवी बाधाओं के कारण वह भी यहीं रुक गया था। पाँच-चार रोज हम लोग गुरुद्वारे में ठहरे और इसी बीच में कई एक और भारतीय अमरीका जाने की धुन में यहाँ पहुँच गये। अब तो

अमरीका जाने वालों की एक खासी टोली होगई। श्रीमान् पालासिंह और मेरे मित्र रवि तथा दूसरे भारतीय यात्री अमरीका जाने के लिए उद्यत होगये और उन्होंने अपना-अपना टिकट खरीद कर सब तैयारियाँ कर लीं। मैं गरीब फिर भी रह ही गया; क्योंकि मेरे पास जाने लायक रुपया नहीं था। जिस रोज ये सब मित्र स्टीमर में चढ़ कर हाँगकाँग से चले, उस दिन मैं अधीर-सा होकर अपने कमरे में पड़ा रहा। कभी कुछ सोचता था, कभी कुछ; कोई बात समझ में नहीं आती थी। पहले यह दिल में आया कि स्याम चलना चाहिए; वहाँ कुछ रुपया कमा कर फिर अमरीका जायेंगे। स्याम जाने के लिए टिकट खरीदने में टिकटघर में भी गया, किन्तु किसी कारणवश उस दिन उधर के टिकट नहीं बटते थे। इस प्रकार की उधेड़बुन में मेरे कई एक दिन यहाँ पर लग गये। आख़िर फैसला यह किया कि मनीला चलना चाहिये, क्योंकि मनीला जाने तक का किराया मेरे पास मौजूद था। यदि न भी होता तो भी हाँगकाँग के दो-एक मित्र इतनी सहायता करने को तैयार थे।

मनीला फिलीपाइन द्वीप की राजधानी है। यह द्वीपसमूह अमरीका वालों के आधीन है। कुछ थोड़े ही वर्षों से ये द्वीप-समूह अमरीकावालों के हाथ आये थे। पहले यहाँ स्पेनवालों का राज्य था, परन्तु स्पेनवालों ने फिलीपीनी लोगों पर बड़ा अत्याचार किया, इस कारण वे लोग उनसे बड़े असन्तुष्ट थे। परन्तु वे कर ही क्या सकते थे जब तक कि ईश्वर उनकी सहायता न करता। आख़िर दैव ने सहायता की। अमरीकावालों का जहाज "मेन" स्पेनवालों की गफ़लत से समुद्र में डूब गया। इसी पर स्पेन और अमरीका में घोर युद्ध मचा। परिणाम यह हुआ कि फ़िलीपाइन द्वीप अमरीकन राज्य के अधीन होगये। तब से इनका भी भाग्य जगा।

अब हम अपने पाठकों को मनीला ले चलते हैं। मनीला उतरने में मुझे कोई दिक्कत नहीं हुई। यद्यपि मेरी आँखें कमजोर हैं, परन्तु उनमें कोई बीमारी न होने से मुझे वहाँ उतरने में कोई रुकावट नहीं हुई, और

मेरे पास दिखलाने के लिए काफी रुपया था। मनीला पहुँच कर मैंने वैदिक धर्म प्रचार प्रारम्भ किया। मनीला के अखबारों में धार्मिक विषयों पर लेख लिखने शुरू किये और अपनी संस्कृति को फैलाने लगा। पहले पाँच-चार महीने मुझे बहुत कम सफलता प्राप्त हुई और मैंने इधर-उधर नौकरी कर अपने दिन काटे। जो कुछ रुपया मेरे पास था, वह सब खर्च होगया और मुझे निर्धनता ने आ घेरा। लेकिन किये हुए कर्मों का फल अवश्य मिलता है। एक अमरीकन सज्जन ने अखबार में मेरे लेख पढ़कर मुझको एक चिट्ठी लिखी और अपने घर पर आने की प्रार्थना की। मैं उन दिनों मनीला से "उलंगापो" काम की तलाश में गया हुआ था और वहाँ एक ठेकेदार के साथ साधारण मज़दूरी कर अपने दिन काट रहा था। जब अमरीकन सज्जन की चिट्ठी मेरे पास पहुँची तो मैंने मनीला जाने का निश्चय किया और वहाँ पहुँच कर उस अमरीकन सज्जन—मिस्टर स्काट—से भेंट की। मेरी मेहनत फल लाई और मिस्टर स्काट ने मुझे अपने पास संस्कृत पढ़ाने के लिए रख लिया। उन्होंने यह वचन दिया कि वे मुझे मनीला से शिकागो तक का टिकट ख़रीद देंगे। तीन महीने तक मैं इनके पास रहा और इनको कुछ व्याकरण तथा दो-तीन उपनिषदें पढ़ाईं। ये दिन मेरे बड़े ही आनन्द से कटे, क्योंकि नित्यप्रति स्वाध्याय और शास्त्रों पर विचार करने से मन को बहुत शान्ति रही।

जब तीन महीने बीत गये तो मिस्टर स्काट ने मेरे लिए शिकागो तक का टिकट खरीद दिया और मैं मनीला से हाँगकाँग रवाना हुआ। अब चूंकि मैं मनीला से अमरीका जा रहा था, इसलिए मुझे वही अधिकार प्राप्त थे जो एक फिलीपीनी को होते हैं। अब मुझे डाक्टरों आदि में कुछ तकलीफ़ नहीं हुई। जिस जहाज पर मैं बंक्कोवर जा रहा था, उस पर बहुत से पञ्जाबी भाई भी थे।

यह जहाज केनेडियन पैसेफ़िक कम्पनी का था। इस पर बहुत से यात्री नई दुनिया को जाने वाले थे। जिस दिन हम अपना असबाब लेकर जहाज पर चढ़ने के लिए हाँगकाँग वार्फ़ से चले, उस रोज बहुत से

जहाज़ वहाँ पर आये हुए थे, क्योंकि हाँगकाँग भी एक बड़ा भारी बन्दरगाह है और अँग्रेज़ों ने यहाँ पर बड़ी भारी छावनी डाली हुई है। संसार की क़रीब-करीब कुल जातियाँ यहाँ देखने में आती हैं और यह शहर भी वास्तव में देखने योग्य है। बिजली की गाड़ियाँ यहाँ पर चलती हैं और एक सबसे ऊँची पहाड़ी पर जाने के लिए बिजली की गाड़ी का भी इन्तज़ाम किया गया है। यह गाड़ी पहाड़ी पर सीधी जाती है। बैठने वाले मुसाफ़िर को इन गाड़ियों में आनन्द भी आता है और कुछ-कुछ डर भी लगता है। यह हक़ीकत में इंजिनीयरिंग कौशल का अद्भुत नमूना है।

जिस समय हमारी किश्ती स्टीमर के निकट पहुँची और हम लोगों ने सीढ़ी द्वारा चढ़ना शुरू किया तो मल्लाहों ने बदमाशी से हम लोगों पर जहाज़ की नाली द्वारा पानी छोड़ दिया। उसी खराब पानी में भीगते-भागते, लुढ़कते-पुढ़कते, हम लोग ऊपर जा पहुँचे और अपने-अपने सोने की जगह सम्भाली। हाँगकाँग से बैंकोवर जाने में २८ दिन के क़रीब लगते हैं, इसलिए जहाज़ वालों ने डेक मुसाफ़िरों के सोने के वास्ते नीचे के भाग में लकड़ी के छोटे-छोटे--एक आदमी के सोने लायक़--तख़्ते लगा दिये थे और ऐसा ही इन्तज़ाम क़रीब-क़रीब दूसरे जहाज़ों में भी रहता है।

आख़िर हमारा जहाज़ हाँगकाँग से चला। शंघाई तक तो मुसाफ़िरों की संख्या नहीं बढ़ी, परन्तु कोबे और योकोहामा में बहुत से जापानी मुसाफ़िर जहाज़ में आ गये। वे भी डेक-पैसन्जर थे, मगर उनके कपड़े बड़े साफ़-सुथरे थे। सिरों पर अमरीकन टोपियाँ पहिन कर ये लोग जेन्टलमेन बने हुए थे। अब ज़रा गौर कीजिये। एक तो हमारे यहाँ के यात्री, जो मैले-कुचैले कपड़े पहिने नई दुनिया को जा रहे थे, और दूसरी ओर ये जापानी मज़दूर अमरीकन फैशन में सजधज कर वहाँ धन कमाने चले थे। इस तुलना ने मेरे चित्त को बड़ा दुःखी किया, क्योंकि जापानी मज़दूरों के सारे चिन्ह एक उन्नत जाति के सदृश थे और ये

लोग अपने शत्रुओं के भी प्रशंसापात्र बनने योग्य थे। इसके विपरीत हमारे मजदूरों को देख कर घृणा उत्पन्न होती थी। क्यों न हो, इन्हीं कारणों से तो हमारा सब जगह अपमान हुआ है। हमारी तङ्गदिली ने हमारे सब कामों में विघ्न डाल रक्खे हैं। यहीं इसी स्टीमर पर एशिया के तीन देशों—भारत, चीन और जापान—के मजदूर उपस्थित थे। एक विचारशील पुरुष के लिए यहीं पर काफ़ी सामग्री इन देशों की अवस्था समझने के लिए मौजूद थी। भारतीय मजदूरों को देखकर पता लगता था कि हमारी जाति संसार की सभ्य जातियों से कितनी पीछे है। चालीस भारतीय मजदूर अपना समय लड़ाई-झगड़ों, शराब पीने तथा दूसरी अण्ड-बण्ड बातों में काटते थे। आपस में एक दूसरे के साथ मेल नहीं था। जब दो-तीन भारतीय मजदूरों का कुछ चीनी मजदूरों से झगड़ा होगया और चीनियों ने उन भारतीय मजदूरों को खूब पीटा तो दूसरे भारतीय मजदूरों ने उनकी कुछ मदद नहीं की; उलटा बैठे तमाशा देखते रहे। चीनी मजदूर अफ़ीम पीने में अधिक व्यस्त थे, परन्तु एक गुण उनमें बड़ा भारी यह था कि जब एक पर मुसीबत पड़ती तो झट सारे के सारे उसका साथ देने के लिए तैयार हो जाते थे। जापानी मजदूरों का तो कहना ही क्या था! इन लोगों के पास अंग्रेज़ी सीखने की पुस्तकें मौजूद थीं और वे दिन भर अंग्रेज़ी भाषा सीखने में अपना समय बिताते थे। इसके अतिरिक्त नित्यप्रति दो तीन घण्टे जिजित्सु आदि व्यायाम कर अपना दिल बहलाते थे। संख्या में जापानी मजदूर सबसे अधिक थे, परन्तु वे शान्तिपूर्वक प्रेम से रहते थे। किसी प्रकार का झगड़ा वे आपस में नहीं करते थे। जब कभी हमारे भारतीय मजदूर शराब पीकर ऊधम मचाते तो ये सब लोग उनको देखकर बड़े हैरान होते थे। कई एक हमारे दुष्ट भाइयों ने कुछ जापानी महिलाओं को लज्जाजनक बातें भी कहीं, जिनको सुनकर मुझे अत्यन्त खेद हुआ और मैंने उन लोगों को खूब फटकारा।

इस प्रकार हमारे दिन एक-एक करके बीत गये। पेसेफिक महा-

सागर इन दिनों बड़ा शान्त रहता है, इसलिए किसी प्रकार की आँधी या तूफ़ान नहीं आया। सारा महीना हमारा अच्छी तरह से बीत गया। जहाज भी बहुत ही बड़ा था, अतएव यदि किसी दिन हवा का वेग हुआ भी होगा तो उसका असर हम लोगों पर कुछ भी नहीं पड़ा। सन् १९०६ की २८ मई को जहाज़ बैंकोवर पहुँच गया और डाक्टरी में बहुत से आदमी घेरे गये, क्योंकि यहाँ पर अनपढ़ आदमियों को लूटने के कई ढंग बनाये हुए थे। मुझे तो किसी ने कुछ नहीं कहा और मैं बिना किसी रुकावट के जहाज़ से उतर कर शहर को चला गया।

बैंकोवर कैनेडा का बड़ा प्रसिद्ध बन्दरगाह है। यह व्यापार की बड़ी भारी मण्डी है। यहाँ से संयुक्त राज्य अमरीका को ट्रेनें और स्टीमर जाते हैं। यहाँ पर बहुत से सिक्ख मजदूर लकड़ी के कारखानों में काम करते थे। मेरे पास शिकागो का सीधा टिकट था, इसलिए मैंने यहाँ ठहरना उचित नहीं समझा। कैनेडियन पैसेफ़िक कम्पनी की रेलें उत्तर कैनेडा में से होती हुई शिकागो की तरफ जाती हैं। ऐसी ही एक रेलगाड़ी में मैं बैठ गया और कैनेडा के बर्फानी पहाड़ों के दृश्यों को देखता हुआ "सेंट पाल" की तरफ़ चला। इन दिनों भी यहाँ खासी सर्दी थी। हांगकांग से मैं अपने साथ डेढ़ सेर के करीब घी में तली हुई चने की दाल लाया था, बस उसी ने मुझे पूरा सहारा दिया। बैंकोवर से शिकागो के लम्बे सफर में मैं उसी दाल को खाकर अपनी क्षुधा-निवृत्ति करता रहा और दूसरी कोई चीज़ रास्ते में नहीं खाई। सेंट पाल के रेलवे स्टेशन पर जब गाड़ी भोर के समय पहुँची तो मैंने जाना कि मेरा प्रवेश अमरीका में होगया है। यहाँ से गाड़ी बदलती थी। जब एक भीमकाय अमरीकन रेलवे कर्मचारी ने शिकागो की ओर जानेवाली गाड़ी की घोषणा की तो मैं फौरन बेंच से उठकर सामनेवाले प्लेटफार्म पर चला गया। कुछ मिनटों के बाद गाड़ी आगई और उसमें चढ़कर मैंने शिकागो की ओर प्रस्थान किया।

दूसरा अध्याय

शिकागो में मेरी प्रथम रात्रि

दूसरी जून सन् १९०६ का दिन मेरे जीवन में एक बहुत बड़ा परिवर्तन डालने वाला था। भारतवर्ष की प्राचीन नगरी काशी में साधारण वृत्ति पर विद्याभ्यास करते हुए, सांसारिक व्यवहारों से अनभिज्ञ, मेरे जैसे पुरुष का अमरीका के प्रसिद्ध शिकागो नगर में बिना किसी प्रकार की जान-पहिचान के प्रवेश करना वास्तव में एक आश्चर्यजनक बात थी। मेरे पास किसी मित्र के नाम का कोई परिचयदायक पत्र भी न था, यहाँ तक कि मैं इसके पूर्व कभी अपने जीवन में किसी होटल में नहीं गया था। काँटे और छुरी से किस प्रकार लोग खाना खाते हैं, कैसे किसी के साथ यहाँ बात-चीत करते हैं, इत्यादि बातों से मैं बिलकुल ही अनजान था।

प्रातःकाल १० बजे मैं बैंकोवर से शिकागो पहुंचा। बैंकोवर से शिकागो २८०० मील के करीब दूर है। जब गाड़ी स्टेशन पर पहुँची और "शिकागो" यह ध्वनि मेरे कानों में आई, तब मैंने जाना कि स्टेशन आ गया। सब लोग, जो गाड़ियों में थे, बाहर निकले और चल दिये। मैंने कहा—"मैं कहां जाऊँ?" सबसे पीछे मैं अपना ट्रंक सँभाल गाड़ी से नीचे उतरा। जब टिकट देकर बाहर आ खड़ा हुआ, तब एक गाड़ी वाले ने मुझसे पूछा—"कहां जाना होगा?" कहां बतलाता! किसी जगह का नाम भी नहीं जानता था, जहां जाकर ठहर सकता। सोचते सोचते Y.M.C.A. (यंगमेन्स-क्रिश्चियन-एसोसिएशन) का नाम स्मरण हो आया। अहा! ईसाई-संस्थाओं की कदर बाहर आकर मालूम होती है। ये सभायें क्या ही अच्छी हैं! यहां पर नवयुवक अपने देश-जाति की सेवा करना सीखते हैं; कोई परदेशी आवे तो

उसकी सहायता करते हैं। और एक हमारे देश की धार्मिक सभायें हैं जिनका समय आपस के शास्त्रार्थों और एक दूसरे की मानहानि में व्यतीत होता है। तभी तो यह दुर्दशा है।

गाड़ी में बैठा हुआ मैं इधर-उधर के लोगों को देखता था। सब साफ सुथरे थे। नये बूट, नये सूट, बाल सँवारे हुए। क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी इधर-उधर जा रहे थे। चार दिनों के लगातार सफर से मेरे कपड़े काले होगये थे। खासकर पतलून तो बहुत ही मैली होगई थी। बाकी मेरे सारे वस्त्र थे उस बड़े ट्रंक में, जो मालगाड़ी में रक्खा गया था। नया सूट पास न होने के कारण मैं कपड़े बदल नहीं सकता था। मैं बार-बार अपने कपड़ों की ओर देखता आर अपनी तुलना सड़क पर जाते हुए लोगों से करता था। इतने में गाड़ी Y.M.C.A. के पास आगई। गाड़ीवान ने दरवाजा खोला। एक लड़का फ़ौरन अस-बाब उठाने के लिए आगे बढ़ा; परन्तु जब उसने मेरे मैले कपड़े और चार दिनों की दाढ़ी देखी, तब वह ठिठक गया। उसके चेहरे पर मुस्कराहट थी। मैंने अपना ट्रंक उठाया और उस बड़ी अट्टालिका में घुसा। दूसरी मञ्जिल पर एसोसिएशन का दफ्तर था। जब मैं अन्दर गया तो एक नवयुवक मुझे मंत्री महाशय के पास ले गया। वे बड़ी नम्रता से मेरे साथ पेश आये। उन्होंने मुझे किसी होटल में जाने की सम्मति दी, लेकिन मैं चाहता था कि किसी जापानी विद्यार्थी का पता लग जाय तो अति उत्तम हो। एसोसिएशन के मंत्री ने कई जगह टेलीफ़ोन किया, परन्तु कुछ पता न मिला। मुझे महाबोधी सोसाइटी का पता मालूम था, सो मैंने वहां जाकर किसी जापानी विद्यार्थी का स्थान जानने का निश्चय किया। अपना ट्रंक Y.M.C.A. में रखकर मैं इस सोसाइटी की तलाश में निकला।

सड़क पर अजीब दृश्य था। स्त्रियाँ और पुरुष इधर-उधर भागे-से जा रहे थे। साफ़-सुथरे प्रसन्नवदन वे मधुमक्खियों की तरह अपने कार्य्यों में लगे हुए थे। किसी को भी आलसियों की भाँति जाते हुए न

देखा। सभी फुर्तीले थे--क्या बुड्ढे, क्या युवा, क्या बालक, क्या बालि.ायें, सभी काल-चक्र की भाँति घूम रहे थे। एक ओर छोटे-छोटे बालक 'डेली न्यूज', 'रेकार्ड हेरल्ड' नामक दैनिक पत्र बेचते फिरते थे। बिजली की गाड़ियां खचाखच भरी हुई इधर से उधर, उधर से इधर चल रही थीं। घोड़े-गाड़ियां, छकड़े माल-असबाब से लदे हुए दिखाई देते थे। दूसरी ओर बड़े-बड़े लोहे के खम्भों पर, सड़क से ४० गज ऊँचे आकाश में एक और सड़क थी जिस पर दूसरी बिजली की गाड़ियां (Elevator Cars) गड़गड़ शब्द करती हुई इधर-उधर दौड़ रही थीं।

मार्ग में मुझे सबसे पहले मेसोनिक टेम्पल (Masonic Temple) की ऊँची इमारत मिली। यह बाईस-मंजिला मकान था और आकाश से बातें करता था। मैंने सोचा--"विज्ञान क्या नहीं कर सकता!"

सोसाइटी के मकान का पता मैंने पुलिस के एक सिपाही से दरयाफ्त किया और शीघ्रता से उस ओर रवाना हुआ। परन्तु शिकागो संसार के बड़े शहरों में तीसरे दरजे पर है। इसकी गलियां २० मील लम्बी हैं; एक तो २७ मील है, इसलिए मुझे उस मकान पर पहुँचनें में २ घन्टे के क़रीब लग गए। रास्ते का दृश्य मेरे लिए बहुत ही मनमोहक था। जब मैं मारशल फ़ील्ड (Marshall Field) की आलीशान दुकान के सामने पहुँचा, तब उसे देखकर मैं विस्मित होगया। कितनी विस्तृत दुकान थी यह! करोड़ों रुपये का सामान इसमें भरा था। सब प्रकार की चीजें बिक्री के लिए मौजूद थीं। चित्त चाहता था कि अन्दर जाकर इसे अच्छी तरह से देखा जाये, परन्तु समय नहीं था, और मुझे चिन्ता लगी थी रात के बसेरे की।

डीयरबॉर्न गली में महाबोधी सोसाइटी का आफ़िस था। जब मैं उस अट्टालिका के पास पहुँचा तो मालूम हुआ कि आफ़िस १०वीं मंजिल पर है। मकानों के ऊपर जाने के लिए क्या ही अच्छा प्रबन्ध किया हुआ है! एक जंगलेदार कोठरी रहती है। उसमें कोई दस आदमी खड़े हो

सकते हैं। वह बड़े-बड़े रस्सों में बंधी रहती है। कोठरी क्या, इसे एक प्रकार का खटोला कहना चाहिए। उसका सम्बन्ध प्रत्येक मंज़िल के साथ होता है। इसके भीतर खड़े होकर, जिस मंज़िल पर जाना हो नौकर से कह दीजिए, वह उसी मंज़िल पर पहुँचकर दरवाज़ा खोल देता है। आप अपने कमरे में चले जाइये। प्रत्येक बड़ी इमारत में इस प्रकार की तीन चार "लिफ्ट्स" ऊपर-नीचे जाने-आने के लिए लगी रहती हैं। थोड़ा समय लगे और अधिक लाभ हो, यह नियम व्यापक देखा जाता है।

मकान के ऊपर पहुँच कर दरयाफ्त करने पर मालूम हुआ कि महाबोधी सोसाइटी ने अपना दफ्तर बदल लिया है। एक लेडी ने बड़े प्रेम से मुझे नए आफ़िस का पता लिख कर दिया और मैंने उसे तलाश करने का निश्चय किया। ११ बजे से ३ बजे तक लगातार घूमने से मैं थक गया था। यही नहीं बल्कि बैंकोवर से शिकागो तक चार दिन मैंने केवल मुट्ठी भर चनों से ही निर्वाह किया था। यद्यपि यहां प्रत्येक रेलगाड़ी के साथ भोजन का डिब्बा (Dining Car) लगा रहता है, जहां मुसाफ़िर समयानुकूल भोजन पा सकते हैं, परन्तु मेरे लिए यह प्रबन्ध न होने के तुल्य था। जन्म से मांस-मदिरा से घृणा होने के कारण मुझे चार दिन तक लगातार चनों की दाल पर ही सन्तोष करना पड़ा। शिकागो में पहुँच कर भी अनजानवश कहीं कुछ प्रबंध न कर सका; तिस पर भी चार घण्टे तक शहर में लगातार घूमना पड़ा। इससे शरीररूपी गाड़ी धीमी चलने लगी, तो भी महाबोधी सोसाइटी को तलाश करना ज़रूरी था। मैं रवाना हुआ।

रास्ते में जाते हुए कई एक स्थानों पर मैंने छोटे-छोटे होटलों के नोटिस और नाम के बोर्ड देखे। दिल में आया कि क्यों न इनमें से किसी एक में जाकर रात बिता दूं और दूसरे दिन शिकागो विश्वविद्यालय में पहुँच कर किसी जापानी विद्यार्थी का पता मालूम करूँ। एक ऐसे ही निवासगृह की सीढ़ियों पर मैं चढ़ गया। ऊपर जाकर प्रबन्धकर्त्ता से सब हाल पूछा। उसने मेरा नाम-धाम लिख लिया और मुझे एक कमरे में जाने का इशारा

किया। न जाने उस समय मेरे मन में क्या आ गया। मैंने समझा कि शायद दाल में कुछ काला है। मैं शीघ्रता से सीढ़ियाँ उतर कर नीचे गली में आ गया। बाद में मालूम हुआ कि वह धूर्तों का एक अड्डा था, जहाँ होटलवाले सोते हुए मुसाफिरों की जेबों में से सब कुछ निकाल कर उनकी पूरी हजामत कर लिया करते थे। सवेरे प्रबन्धकर्त्ता अपना किराया वसूल करता और बेचारा शामत का मारा मुसाफ़िर लाचारी से चुपचाप सब सहन कर लेता।

खैर, मैं एक घण्टे के बाद महाबोधी सोसाइटी में पहुँचा। वहाँ जो महाशय कार्यालय में काम करते थे, उन्होंने बड़े प्रेम से मेरी दुःख-कहानी सुनी। मेरे साथ चलकर किसी अच्छे होटल में मेरे लिए प्रबन्ध करन को वे उद्यत होगये। उनके साथ बिजली की गाड़ी पर बैठकर मैं थामसन होटल में गया। रास्ते में डाकखाने की विशाल इमारत देखने मे आई।

थामसन होटल के प्रबन्धकर्त्ता ने मेरे मैले कपड़े देख और मुझे परदेसी जान कमरा देने से इन्कार कर दिया। इसलिए वहाँ से निराश होकर हम दोनों दूसरे होटल में गये। वहाँ किसी प्रकार रहने का प्रबन्ध हो गया; केवल दो रात ठहरने के ६) रुपये देने पड़े। वह महाशय जो महाबोधी सोसाइटी से मेरे साथ आये थे, मेरा प्रबन्ध कर चले गये और मैं एक नौकर के साथ खटोले में बैठकर चौथी छत पर पहुँचा। नौकर ने मुझे एक अच्छे सजे हुए कमरे में ले जाकर कहा—"लीजिये महाशय, यह कमरा आपके लिए है।" यह कहकर वह चला गया।

नौकर के जाने के बाद मैंने दरवाज़े को अन्दर से बन्द कर लिया। मैंने परमात्मा का धन्यवाद किया कि रात को रहने के लिए स्थान तो मिला, परन्तु चिन्ता यह लग रही थी कि दूसरे दिन के लिए कपड़ों का प्रबन्ध कैसे होगा। कपड़े सब काले हो रहे थे। साबुन पास था। विचार किया कि शायद कल असबाब न मिल सके, इससे कपड़े अवश्य धोने चाहियें। कमरे के अन्दर गरम और ठण्डे पानी के दो नल थे। वहीं

मैंने सब कपड़े धोये; फिर हजामत बनाई । अब बाजार में मैले कपड़ों से जाने की चिन्ता तो दूर होगई । अन्त में थका-हारा भूखा ही लेट रहा। सुन्दर स्वच्छ बिछौने पर पड़ते ही निद्रादेवी ने मुझे अपना लिया।

सच्चरित्र-महिमा

"ओहो! चरित्र में कितनी महान् शक्ति है! जातियाँ तोपों और बन्दूकों से बलशाली नहीं होतीं, बड़ी-बड़ी फौजें उन्हें प्रभावशाली नहीं बनातीं और नाही साइन्स के आविष्कार उनकी कीर्ति को फैलाते हैं; अपितु जो जाति चरित्रवान् नर-नारी उत्पन्न करती है, जिसमें धीमान्, दृढ़व्रती, सत्यवक्ता और न्यायशील सदस्य उत्पन्न होते हैं, वही जाति—वही राष्ट्र—उन्नत मुख किये साभिमान अपनी संस्कृति का प्रसार करती है।"

—"ज्ञान के उद्यान में" से

तीसरा अध्याय

शिकागो विश्वविद्यालय

जिस शिकागो विश्वविद्यालय में भरती होने के स्वप्न मैं बनारस में देखा करता था, जहाँ पहुँचने के लिए मैंने इतने कष्ट सहन किये, जिसके दर्शनार्थ मैंने रातों ईश्वर से प्रार्थनायें की थीं, उस परम-प्यारे विश्व-विद्यालय में मैं कैसे प्रविष्ट हुआ ? शिकागा नगरी में अपनी प्रथम रात्रि का वर्णन करने के बाद, 'मैं कैसे विश्वविद्यालय में पहुँचा' इसकी कथा लिखने से पहले, उस सुविख्यात यूनीवर्सिटी ऑफ शिकागो का परिचय अपने प्रेमी पाठकों को कराना अनुचित न होगा। इसलिए सबसे पहले मैं अपने विश्वविद्यालय के विषय में उपयोगी सूचनायें लिखता हूँ, इसके बाद अपनी आगे की कथा कहूँगा।

यह अध्याय केवल शिकागो-विश्वविद्यालय की बड़ी-बड़ी इमारतों का वर्णन करने के लिए नहीं लिखा गया बलिक भारतवर्ष के विद्या-प्रचार सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर प्रकाश डालने के लिए भी है। मुझे अमरीका के शिकागो विश्वविद्यालय के उदाहरण द्वारा यह दिखलाना है कि किस प्रकार भारतवर्ष के कालेज और पाठशालायें विश्वविद्यालय के रूप में होकर देश के लिए लाभकारी हो सकती हैं, किस प्रकार अमरीका में नवयुवकों को आत्मसाहाय्य की शिक्षा दी जाती है, किस प्रकार अमरीका के धनाढ्य पुरुष अपनी सम्पत्ति को देश के उपकारार्थ अनेक प्रकार के विज्ञान सम्बन्धी कालेज और स्कूल खोलकर खर्च करते हैं। इस अध्याय के पढ़ने से यह भी ज्ञात होगा कि अमरीका के बच्चों की शिक्षा का सारा प्रबन्ध उनके माँ-बाप के ही हाथों में है। क्या ईसाई, क्या मुसलमान, क्या यहूदी, क्या मारमन, क्या थियासोफ़िस्ट---सभी विद्यार्थियों के पठन-पाठन का एक सा प्रबन्ध है। यह नहीं कि लोग अपनी अढ़ाई चावल की खिचड़ी अलग

ही पकाते हों; सब कहीं प्रेम और एकता का अखण्ड राज्य है । एक दूसरे के अधिकारों के लिए एक-सा ध्यान है। यही कारण है कि प्रशान्त महासागर से लेकर एटलांटिक महासागर तक सब अमरीका निवासी अपनी जाति की उन्नति में दत्तचित्त हैं और संसार की समृद्धि उनके सामने हाथ बांधे खड़ी है ।

सबसे पहले मैं उस धर्मात्मा, सदाचारी, विद्वान्-शिरोमणि पुरुष का परिचय आपसे कराता हूँ जिसके पुरुषार्थ से शिकागो विश्वविद्यालय इस प्रसिद्धि को पहुंचा है । उस महापुरुष का नाम विलियम रेने हारपर है । आपने शहर न्यू कनकार्ड, ओहायो (New Concord, Ohio) के हाई स्कूल में विद्याध्ययन प्रारम्भ किया और मस्किंघम नामी कालेज से १४ वर्ष की उम्र में बी० ए० की पदवी प्राप्त की । इसके बाद आप तीन वर्ष तक भाषाओं का अध्ययन करते रहे। १८७३ में आपने अमरीका की प्रसिद्ध यूनिवर्सिटी येल (Yale) में विद्याध्ययन कर Ph.D. (दर्शन-शास्त्र के आचार्य) की पदवी पाई। इसके उपरान्त कई विश्वविद्यालयों में आप अध्यापक तथा अधिष्ठाता रहे । १८९१ में आप शिकागो के पुराने विश्वविद्यालय के प्रेज़ीडेण्ट नियत हुए और १८९१ से लेकर १९०६ के जनवरी मास तक तन-मन से उसकी सेवा करते हुए परलोकगामी हुये।

यह इन्हीं महाशय के परिश्रम, निःस्वार्थ भाव और विशाल बुद्धि का प्रभाव था जिससे शिकागो विश्वविद्यालय का नाम एक साधारण कालेज से १४ वर्ष के अन्दर संसार के बड़े-बड़े विश्वविद्यालयों की गणना में आने लगा । इन्हीं के प्रभाव से अमरीका के प्रसिद्ध धनी जान डी० राकफेलर ने इनके विद्यालय के लिए ३ करोड़ ३० लाख रुपया दिया । इनके आदेश को कोई नहीं टालता था। जिससे जाकर कहते कि विश्वविद्यालय के लिए अमुक वस्तु की आवश्यकता है, वह इनका वचन ज़रूर पूरा करता था ।

एक बार इन्हें अपने ज्योतिष-विद्यालय के लिए एक दूरबीन की दरकार हुई। आपने शिकागो के धनाढ्य पुरुष यरकस साहब से कहा।

उन्होंने तत्काल इनकी बात मान ली और एक मूल्यवान दूरबीन मंगा दी, जो दुनियाँ भर में सबसे बड़ी थी।

यद्यपि हमारे देश में भी ऐसे धनी-मानी हैं, जिनकी इच्छामात्र से विद्यालय खुल सकते है, परन्तु उन्होंने दान का उचित प्रयोग अभी तक करना नहीं सीखा। जिस दिन हमारे देश के सत्पुरुष जाति की उन्नति के मर्म को समझेंगे, उसी दिन कला-कौशल और विज्ञान-शिक्षा का प्रबन्ध होने में देर न लगेगी।

सन् १८८६ में शिकागो नगरी के बेपटिस्ट सम्प्रदाय के धनाढ्य पुरुषों ने एक साधारण कालेज की स्थापना की। १८९१ ई० में प्रेज़ीडेण्ट हारपर कालेज के प्रधान नियत हुए। तब उन्होंने उसे ऐसे विद्यालय का रूप देना चाहा जिसका सम्बन्ध किसी खास सम्प्रदाय या जन-समुदाय के साथ न हो; जिसमें सब तरह के स्वतन्त्र विचार वाले प्रोफ़ेसर शिक्षा दे सकें। मतलब यह कि किसी के विचार-स्वातन्त्र्य में बाधा न आवे। प्रेज़ीडेण्ट हारपर स्वयं बड़े स्वतन्त्र प्रकृति के मनुष्य थे। वे जानते थे कि जिस स्कूल या कालेज में विचार-स्वतन्त्रता नहीं, जहाँ के प्रबन्धकर्ताओं के विचार सङ्कीर्ण हैं, वहाँ के विद्यार्थी कभी उदाराशय नहीं हो सकते। वे जानते थे कि साम्प्रदायिक कालेजों के विद्यार्थियों के विचार अवश्य ही सङ्कीर्ण होते हैं, इससे वे अपने भावी जीवन में जन-समाज को पूर्ण लाभ नहीं पहुंचा सकते। उनके इस विचार की यथार्थता हम अपने देश में देखते हैं। भारतवर्ष म पृथक्-पृथक् मतों और सम्प्रदायों के कई कालेज और पाठशालायें हैं। भारतवासियों की चेष्टा सदा अपनी-अपनी झोंपड़ी अलग बनाने की रहती है। यही कारण है कि एक कालेज वाले दूसरे से द्वेष रखते हैं; एक मत दूसरे को देख नहीं सकता। यदि यहाँ भी ऐसी पाठशालायें और कालेज बनाने की चेष्टा की जाय जहाँ क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या सिक्ख, क्या बौद्ध, क्या जैनी, क्या ईसाई---सभी विद्यार्थियों के लिए एक-सा प्रबन्ध हो और हरएक विद्यार्थी को एक दूसरे के साथ उठने, बैठने, मिलने और बातचीत करने का अवसर मिलता रहे,

तो उनमें सहनशीलता जरूर आजाये। वे दूसरों के विचार प्रेम से सुनने के आदी हो जायं और विचारों की भिन्नता होने पर भी द्वेष करना छोड़ दें, क्योंकि विभिन्ता ही उन्नति का मूल है। इस बात का विस्तृत विचार मिल साहब ने अपनी "स्वाधीनता" नामक पुस्तक में किया है।

प्रेज़ीडेण्ट हारपर अपने विचार और उद्योग में सफलमनोरथ हुए। १० एकड़ भूमि सेठ मारशल फ़ील्ड ने दी। विश्वविद्यालय की इमारतें बननी प्रारंभ हुई। सन् १८९२ में कामचलाऊ इमारतें तैयार होगईं। उस समय केवल ६०० विद्यार्थी थे, जिनके लिए ४ इमारतें काफी थीं। अब तक २८ इमारतें और बन चुकी हैं और दस एकड़ भूमि से १४० एकड़ भूमि यूनीवर्सिटी के अधिकार में आ गई है। इस समय शिकागो विश्वविद्यालय की जायदाद ५ करोड़ ४० लाख रुपये की है।

विश्वविद्यालय के नियमानुसार कालेज के विद्यार्थी दो विभागों में विभक्त हैं—Senior College Student (ऊँचे दरजे के विद्यार्थी) और Junior College Student (नीचे दरजे के विद्यार्थी)। नीचे *दरजे के विद्यार्थियों के भी दो विभाग हैं—Freshmen (नवीन) और Associates (सहचर या पुराने)। नवीन विद्यार्थी वे कहलाते हैं जो हाई स्कूल में परीक्षोत्तीर्ण होकर कालेज में भरती होते हैं। उनको कालेज में भरती होने के लिए १५ "यूनिट" (एक यूनिट १५० घण्टे का होता है) का काम दिखलाना पड़ता है। उसमें तीन "यूनिट" अंगरेज़ी, २॥ "यूनिट" गणित (जिसमें रेखागणित और बीजगणित भी शामिल हैं), तीन "यूनिट" यूनानी, लातिनी या जर्मन भाषायें, दो "यूनिट" अमरीका

---

* "दरजा" शब्द जहाँ श्रेणी के अर्थ में आता है वहाँ इसका रूप यही है, अर्थात् "दरजा"। "दर्ज़ा" शब्द जहाँ तापमान की डिग्री के अर्थ में आता है वहाँ ज़ के ऊपर रहना चाहिये। इस प्रकार ये दो अलग-अलग शब्द हैं, जिनका रूप अपने अर्थों के अनुसार लिखा जाना चाहिये।

और योरुप का इतिहास, बाकी ४।। "यूनिट" भिन्न-भिन्न विषय, यथा—Botany (वनस्पति-विद्या), Zoology (प्राणिधर्म-विद्या), Physiology (दैहिकधर्म-विद्या), Chemistry (रसायन-विद्या), Physics (भौतिक-विद्या), Astronomy (ज्योतिष-शास्त्र), Mechanics (यन्त्र-विद्या), Political Economy (संपत्ति-शास्त्र), Drawing (नकशानवीसी), आदि।

जिस विद्यार्थी ने किसी अच्छे हाई स्कूल में १५ "यूनिट" का काम न किया हो, वह कालेज में भरती नहीं हो सकता। कालेज में दाखिल होने के उपरान्त नौ "यूनिट" का काम पूरा करने पर उसे एसोशिएट की पदवी मिलती है। फिर वह Senior College (ऊँचे दरजे के कालेज) में प्रवेश पाने का अधिकारी होता है।

विश्वविद्यालय में ए. बी., पी-एच. बी., बी. एल. टी., बी. एस., ईडी. बी., ए. एम., पी-एच. डी., डी. डी. और एल-एल. डी. आदि की पदवियां दी जाती हैं।

विश्वविद्यालय का वर्ष जाड़ा, गरमी वसन्त और पतझड़ के नाम से तीन-तीन महीने के चार भागों या क्वार्टरों में बाँटा हुआ है। प्रत्येक भाग या क्वार्टर १२ हफ्ते का होता है। प्रत्येक हफ्ते में ४ या ५ दिन पढ़ाई होती है। प्रत्येक विद्यार्थी तीन या चार विषयों से अधिक नहीं ले सकता। उदाहरण के तौर पर, मैंने एक जाड़े के क्वार्टर, में अंगरेजी, सोशियालोजी (समाजशास्त्र) और पोलिटिकल साइन्स (राजनीतिविज्ञान) लिए थे। तीन घंटे रोज की पढ़ाई है, जिसके लिए ४०) रुपये महीना फीस है। यदि एक विषय और अधिक लिया जाय तो २०) रुपये और देने पड़ते हैं, अर्थात् चार विषय लेने वाला विद्यार्थी ६०) रुपये महीना फ़ीस देता है।

एक क्वार्टर की पढ़ाई का नाम एक "मेजर" है। जिस विद्यार्थी को बी० ए० की पदवी लेनी है, उसको ऐसे-ऐसे ३६ मेजर पूरे करने पड़ते हैं। दूसरी पदवियों के लिए अन्तर केवल विषयों में है। साइन्स (विज्ञान)

की पदवी के लिए कुछ विषय जुदा हैं और साहित्य के लिए भी—बाकी ३६ मेजर सबके लिए एक से हैं। विद्यार्थियों को व्यायाम और वक्तृता का भी अभ्यास करना पड़ता है, जिसके लिए जुदा प्रोफ़ेसर हैं।

यह आवश्यक नहीं कि विद्यार्थी लगातार पढ़ने पर ही पदवी पा सकता है। कई वर्षों का अन्तर देकर विद्यार्थी अपनी पढ़ाई को पूरा करते हैं और पदवियाँ पाते हैं; क्योंकि धन का अभाव होने से कोई-कोई विद्यार्थी एक साल रुपया कमाते हैं, दूसरे साल पढ़ते हैं। वहाँ की परीक्षाएँ हमारे देश की भाँति नहीं हैं। आवश्यकता केवल नियमानुकूल विद्यार्थी होने की है। जो विद्यार्थी कालेज में प्रोफेसर के बतलाये कार्य को लगातार करता रहता है, उसको अवश्य ही पदवी मिल जाती है। यहाँ विद्या का अभिप्राय किताबी कीड़े बनाना नहीं, अपितु उसका उद्देश्य व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कराना है।

यूनीवर्सिटी में विद्यार्थियों के रहने के लिए बड़े-बड़े तीन हाल हैं। उनमें से 'हिचकाक हाल' सबसे अच्छा है; दूसरा 'स्नेल हाल', तीसरा 'डिविनिटी हाल'। 'हिचकाक हाल' में ४०-५० रुपये मासिक तक के कमरे हैं, जहाँ प्रायः धनाढ्य विद्यार्थी रहते हैं। 'स्नेल हाल' में २२ रुपये महीने के कमरे हैं। 'डिविनिटी हाल' उन विद्यार्थियों के लिए है जो इञ्जील और अन्य धर्म विषयक ग्रन्थ पढ़ते हैं, अर्थात् जिनका उद्देश्य अपने जीवन में धर्मसम्बन्धी प्रचार करना है। वहाँ १५ रुपये मासिक तक के कमरे हैं। यह नहीं समझना चाहिए कि कमरों की बनावट या सफाई आदि में न्यूनता होने से किराये में भेद है; भेद है सामान और लम्बाई-चौड़ाई के कारण।

'काब लेक्चर हाल' में एक सूचनादायक विभाग है, जिसमें आप किसी विद्यार्थी, अध्यापक तथा विश्वविद्यालय सम्बन्धी सभी सूचनाएँ पा सकते हैं। यहीं पर डाकखाना और अन्यान्य दफ्तर हैं। यहाँ पर पत्रव्यवहार महकमे (Correspondence Bureau) का दफ्तर भी है, जहाँ से विदेशी विद्यार्थी शिकागो विश्वविद्यालय से पत्र-व्यवहार द्वारा

पदवियाँ प्राप्त करते हैं। जिनको इस विषय में अधिक जानना हो वे इस दफ्तर से सब बातें पूछ सकते हैं।

'काब हाल' में भाषा-शास्त्र सम्बन्धी अंगरेजी पुस्तकालय भी है। शिकागो विश्वविद्यालय के सभी विभागों के साथ अपना-अपना पुस्तकालय है। इतिहास-विभाग का पुस्तकालय पृथक् है। विज्ञान सम्बन्धी पुस्तकालय भी जुदा-जुदा हैं। यहाँ विद्यार्थियों के लिए एक बैङ्क भी है। यदि कहीं से कोई चेक, रसीद या हुण्डी किसी विद्यार्थी के नाम आती है तो उसे उसका रुपया यहीं मिल जाता है—किसी और बैङ्क में जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

'एजुकेशन स्कूल' में वे विद्यार्थी शिक्षा पाते हैं जिन्हें अपने भावी जीवन में अध्यापक बनना है। सब प्रकार की सामग्री उनके लिए यहाँ एकत्रित है। किण्डरगार्टन से लेकर पी-एच. डी. तक की शिक्षा यहाँ पर दी जाती है। इसके साथ एक हाई स्कूल भी है, जहाँ ऐसे विद्यार्थी पढ़ते हैं जिन्हें किसी खास विषय की पूर्ति करके पदवी प्राप्त करनी है। फर्ज करो, कोई विद्यार्थी भारतवर्ष से वहां पढ़ने जाता है और उसको ए. बी. की पदवी प्राप्त करनी है, परन्तु हाई स्कूल में उसने यूनानी, लातिनी या जर्मन—किसी भाषा की शिक्षा १५ "यूनिट" तक नहीं पाई, तो वह एक मुस्तसना विद्यार्थी (Unclassified Student) के तौर पर विश्वविद्यालय में दाखिल होकर ए. बी. की पाठ्यपुस्तकादि पढ़ता रहेगा, वह अपनी कमी को उस हाई स्कूल में पूरा करेगा। जब उसके तीन "यूनिट" किसी भाषा में पूरे हो जायेंगे, तब ए. बी. का कोर्स पूरा करने पर उसे वह पदवी मिल जायगी।

हैस्कल ओरियण्टल म्यूजियम (अजायबघर) में प्रेजीडेण्ट हेनरी प्रेट जड़सन का दफ्तर था, जो उन दिनों विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता थे। इनका दफ्तर पहली मंजिल पर है। दूसरी मंजिल पर बाईं तरफ पुस्तकालय है, जहां धर्मसम्बन्धी पुस्तकें रहती हैं। दाहिनी तरफ देश-देशान्तरों के अद्भुत पदार्थ रक्खे हुए हैं। तीसरी मंज़िल पर बाईं तरफ़ भारत के देवी-

देवता विराजमान हैं। जैनी और बौद्ध महात्माओं की पीतल की मूर्तियां भी विराजमान हैं। इनके सिवाय अन्य मतावलम्बियों के देवता भी यहाँ पर हैं। दाहिनी तरफ़ एशिया के अन्यान्य देशों के चित्र आदि हैं। यहाँ धर्मप्रचारक पादरी तैयार किये जाते हैं, जो संसार में ईसाई धर्म का प्रचार करते हैं।

यहाँ पर ऊँचे दरजे की वनस्पति-विद्या की शिक्षा दी जाती है। इसके लिए एक आलीशान इमारत अलग है। इसकी सबसे ऊँची छत पर २१०० वर्गफ़ीट का एक सब्ज़घर (Green House) बना हुआ है। उसके साथ "एलीवेटर" (खटोला) है, जो ऊपर-नीचे जाने-आने का साधन है। प्रत्येक श्रेणी के विद्यार्थियों को इस सब्ज़घर में भाँति-भाँति के पौधों और वनस्पतियों की प्रत्यक्ष पहिचान कराई जाती है और उनकी बनावट तथा वृद्धि आदि के नियम समझाये जाते हैं। इस इमारत में एक सबसे बड़ी प्रयोगशाला नये विद्यार्थियों के लिए है। अन्य विद्यार्थियों के लिए कई एक छोटी-छोटी प्रयोगशालायें और भी हैं। उनमें भिन्न-भिन्न प्रकार की खोज और परीक्षा के काम होते हैं।

यहाँ की रासायनिक प्रयोगशाला व्याख्यानदाताओं और रसायन-विद्या के छात्रों के लिए है। यह इमारत सन् १८९२ ई० में महाशय सिडनी ए. केन ने यूनीवर्सिटी को दान दी थी। उन्हीं के नाम से यह मशहूर है। सन् १८९४ की प्रथम जनवरी को, ७ लाख ११ हज़ार रुपया इसको इस अवस्था में लाने के लिए खर्च हो जाने पर, यह भवन छात्रों के उपयोग के लिए खोला गया था। इसमें तीन छतें हैं, जिनमें रसायन सम्बन्धी सब काम करने के लिए जुदा-जुदा कमरे हैं। जो विद्यार्थी अपनी सारी उम्र रसायन-विद्या ही में लगाना चाहते हैं, उनके लिए सब तरह का उपयोगी सामान इसमें है। इस 'केन-भवन' में एक नाट्यशाला (थियेटर) भी है, जहाँ पर व्याख्यान, नाटक तथा रङ्गभूमि पर आने वालों को पूरी तरह से शिक्षा दी जाती है। व्याख्यानदाता प्रायः इसी भवन की नाट्यशाला में व्याख्यान देते हैं। समर क्वार्टर (Summer

Quarter) में जो व्याख्यान, बिना टिकट के, कालेज के छात्रों के लाभ के लिए दिलवाये जाते हैं वे यहीं पर होते हैं। अमरीका के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों के योग्य अध्यापक, शिकागो में आकर, यहाँ के विश्व-विद्यालय की ओर से व्याख्यान देते हैं।

यहाँ पर जो 'क्लब' है उसका नाम 'रेनल्ड क्लब' है। यह 'क्लब' विश्वविद्यालय के छात्रों के उठने-बैठने, मिलने और वार्त्तालाप आदि के लिए है। यहाँ दो-तीन बड़े कमरों में 'पियानो' बाजे रखे हैं, जहाँ छात्र लोग फ़ुरसत के वक्त हँसते-खेलते और गाते-बजाते हैं। यहाँ सब प्रकार की सामयिक पुस्तकें और दैनिक, साप्ताहिक आदि पत्र आते हैं। खेलने के लिए जुदा-जुदा कमरे हैं। यह 'क्लब' विद्यार्थियों में प्रेमभाव और मित्रता उत्पन्न करने का अच्छा साधन है। इस 'क्लब' की दाहिनी तरफ़ विश्व-विद्यालय का सबसे बड़ा 'हाल' है, जिसे 'मेंडल हाल' कहते हैं। यहाँ रवि-वार तथा अन्य अवसरों पर भी व्याख्यान और धार्मिक शिक्षा होती है। यह 'हाल' अति विशाल और दर्शनीय है।

बाईं ओर भोजनालय और रसोईघर हैं। सवेरे, दोपहर और रात को विद्यार्थी यहाँ भोजन करते हैं। विद्यार्थी ही परोसने और पकाने वाले हैं। भोजन के समय यहाँ बड़ी चहलपहल रहती है। सब लोग प्रेम से एक दूसरे से वार्त्तालाप करते हुए भोजन करते हैं—किसी से घृणा नहीं। जो विद्यार्थी परोसते या पानी देते हैं, उनके विषय में किसी के मन में ऊँच-नीच का भाव नहीं होता। जो छात्र निर्धन होने के कारण अपने श्रम से धन कमाकर, विद्याभ्यास करते हैं, उन्हे यहाँ कोई नीची दृष्टि से नहीं देखता; जन-समाज में बल्कि उनकी अधिक प्रतिष्ठा होती है। यही कारण है कि अमरीका में निर्धन माता-पिता का पुत्र भी संयुक्तराज्य का प्रेज़ी-डेण्ट बन सकता है। इसके विपरीत भारतवर्ष के धनसम्पन्न लोग अपने निर्धन देशभाइयों से घृणा करते हैं। उनके उपकार के लिए वे बहुत कम दत्तचित्त होते हैं। भला जब अपने ही देशवासियों से लोग प्रेम नहीं रखते,

जब उन्हीं के विषय में वे अस्पृश्यता का भाव रखते हैं, तब भला कैसे उन्नति हो सकती है।

रीयरसन साहब का बनवाया हुआ भौतिक परीक्षागृह (Physical Laboratory) भी यहाँ देखने योग्य है। इसे देख कर मालूम होता है कि विद्या के प्रेमी किस प्रकार वैज्ञानिक उन्नति के लिए धन व्यय करते हैं। इसकी बनावट ऐसी है कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्रयोग करने में भी कोई विघ्न नहीं पड़ सकता। दीवारों और छतों में आवश्यकतानुसार नलियों के ले जाने के लिए सूराख हैं। दूसरी छत पर परीक्षा और प्रयोग करने वालों के लिए सब तरह का सामान है। यहाँ पर विद्यार्थियों का एक कारख़ाना भी है। जिस यन्त्र की आवश्यकता होती है वह यहाँ तत्काल बना लिया जाता है। सबसे नीचे तहख़ाने में तीन डाइनामोज़ (Dynamos) और एक इञ्जिन गरमी पहुँचाने के लिए हैं।

क़ानूनी शिक्षा के स्कूल की बनावट केम्ब्रिज (इङ्गलेंड) के प्रसिद्ध किंग्ज़ कालेज (King's College) जैसी है। जिसने उस कालिज को देखा है, वही समझ सकता है कि यह स्कूल कितना रमणीक और विशाल होगा। इसके साथ एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है। एक बड़ा 'हाल' विद्यार्थियों के अभ्यास के लिए भी है। जुदा-जुदा मेज़ों पर प्रायः चुपचाप बैठे हुए छात्र अपने-अपने पाठ में मग्न दीख पड़ते हैं। पुस्तकें सामने की भीतों से सटी हुई अल्मारियों में रक्खी रहती हैं। जिस पुस्तक की आवश्यकता हो, फ़ौरन वहाँ से मिल सकती है। यहाँ ऐसा सुप्रबन्ध है कि पठन-पाठन में ज़रा भी विघ्न नहीं होता।

अमरीका और योरुप में स्त्रियों का बड़ा आदर है। उनके विद्याभ्यास और शारीरिक तथा मानसिक उन्नति का वैसा ही अच्छा प्रबन्ध है जैसा कि पुरुषों के लिए। स्त्री पुरुष का आधा अङ्ग है, यह बात विशेष करके इन्हीं देशों में देखने में आती है। शिकागो विश्वविद्यालय में क्या स्त्री, क्या पुरुष, सभी विद्याभ्यास करते हैं। कालेज में स्त्री अध्यापिकायें भी हैं। पुरुषों के रहने के लिए कई बड़े-बड़े घर तो हैं ही, स्त्रियों के लिए

भी एक विशाल भवन है। स्त्रियों के क्लब भी जुदा हैं, भोजनशालायें तथा व्यायामशालायें भी जुदा हैं। व्यायामशालाओं में उन्हें सब प्रकार के खेल सिखलाये जाते हैं। उनके तैरने के लिए सुन्दर स्वच्छ जल का एक तालाब है। समाज की शारीरिक, मानसिक और आत्मिक उन्नति तभी हो सकती है जब हमारी मातायें, हमारी बहिनें और हमारी कन्यायें भी सब कामों में उन्नति करें। भारतवर्ष में स्त्री-शिक्षा के अभाव को देखकर दुःख होता है। क्या वह जाति कभी उन्नति के शिखर पर पहुँच सकती है जहाँ स्त्रियों की अधोगति हो? अकेले पुरुषों के किये देशोद्धार नहीं हो सकता।

इसके सिवा यहाँ के विश्वविद्यालय की बहुत सी और भी इमारतें हैं। खेल-कूद कसरत के लिए एक बहुत बड़ा "जिमनेजियम" (व्यायामशाला) है। फुटबाल खेलने के लिए एक चौड़ा मैदान है, जहाँ प्रत्येक शनिवार को हजारों स्त्री-पुरुषों की भीड़ खेल देखने के लिए एकत्रित होती है। एक सर्वसाधारण पुस्तकालय है, जो सवेरे ८॥ बजे से शाम के ५॥ बजे तक खुला रहता है। तीन लाख रुपया खर्च करके विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने एक बहुत बड़ा पुस्तकालय बनवाया है। पुस्तकालय के पास एक भौतिक शक्ति-गृह (Power House) है, जहाँ से भाप बड़े-बड़े नलों में होती हुई विश्वविद्यालय की सब इमारतों में पहुँचती है। यहाँ पर एक बिजलीघर भी है, जिससे सब कमरों में बिजली का प्रकाश पहुँचता है। पौष-माघ के महीनों में गलियों और मकानों पर कई फुट बर्फ़ जम जाती है, मगर कमरे में बैठे हुए लोगों को जाड़ा नहीं लगता; उष्ण भाप के यन्त्र कमरे को गरम रखते हैं। बाहर १० या १५ दर्जे शून्य से नीचे तापमान (Temperature) हो, परन्तु कमरे में ७० दर्जे की गरमी होती है। विश्वविद्यालय की सड़कों के नीचे भाप के बड़े-बड़े नल लगे हैं, जो सड़कों की बर्फ़ को पिघला देते हैं; सससे विद्यार्थियों को आराम रहता है।

अब, अन्त में, मुझे इस बात का विचार करना है कि शिकागो विश्व-

विद्यालय विद्यार्थियों के लिए क्यों अधिक लाभकारी है। शिकागो व्यापार की बहुत बड़ी मण्डी है। हज़ारों कारखाने, गोदाम और बड़े-बड़े व्यापारियों के कारोबार यहाँ हैं। यहाँ ऐसे-ऐसे कारखाने हैं जहाँ मजदूरों की सदैव आवश्यकता रहती है। इसलिए बहुत से विद्यार्थी, जो धन के अभाव से और किसी कालेज में नहीं पढ़ सकते, यहाँ चले आते हैं। विश्वविद्यालय में नौकरी दिलाने का जो महकमा है, उसका सम्बन्ध सभी बड़े-बड़े कारखानों से है। विद्यार्थी जैसा काम कर सकता हो, वही काम तीन-चार घण्टे करके वह अपने खर्च के लिए रुपया पैदा कर सकता है। सैकड़ों विद्यार्थी इसी ढंग से यहाँ पढ़ते हैं। विश्वविद्यालय ने एक कम्पनी भी ऐसी बना रक्खी है जो होनहार निर्धन विद्यार्थियों को १००० रुपये वार्षिक तक कर्ज़ देती है—पर सुविधा उन्हीं छात्रों के लिए है जो तीन-चार वर्षों के अन्दर मूलधन अदा करने का प्रण करते हैं। यहाँ एक और भी महकमा है, जहाँ १७५ के करीब विद्यार्थी विश्वविद्यालय के प्रबन्धसम्बन्धी काम करके अपनी फ़ीस का रुपया कमा लेते हैं। ४० या ५० छात्र भोजनशाला में दो घण्टे रोज़ काम करके अपने भोजन का ख़र्च पूरा कर लेते हैं। इस विश्वविद्यालय के अध्यापक बहुत योग्य, उदार और सुशील हैं। इसलिए अमरीका के प्रत्येक प्रान्त के विद्यार्थी यहाँ पढ़ने आते हैं।

यहां के विश्वविद्यालय की इमारतें शहर से बाहर, मिशेगन नाम की झील के दूसरी ओर हैं। उनके इर्द-गिर्द सुन्दर-सुन्दर बाग़ और पुष्पवाटिकायें हैं, जिनसे इमारतों की शोभा दूनी होगई है। यही कारण है जो शिकागो विश्वविद्यालय दूर-दूर के विद्यार्थियों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। यहाँ विद्यार्थियों को सब तरह की स्वतन्त्रता है। जहाँ चाहें जायें, वहाँ चाहें घूमें—किसी प्रकार की रोक-टोक नहीं।

प्यारे पाठक, मैंने आपको संक्षेप में अमरीका के एक जगत्प्रसिद्ध विश्वविद्यालय का वृत्तान्त सुनाया और उसकी शिक्षा-प्रणाली का भी कुछ वर्णन किया। अब आप सोचिये कि क्या भारतवर्ष के जुदा-जुदा कालेज

एक यूनीवर्सिटी--एक विश्वविद्यालय--के रूप में नहीं लाये जा सकते ? मैं तो कोई रुकावट इसमें नहीं देखता। यदि हिन्दू कालेज, मुस्लिम कालेज, खालसा कालेज, डी० ए० वी० कालेज अमरीका की यूनिवर्सिटियों की भाँति हो जाएँ और अपने विद्यार्थियों को सरकारी परीक्षाओं के पचड़े से निकाल कर नियमानुकूल विद्याभ्यास करने पर उन्हें पदवियाँ दें तो विद्यार्थियों को इस बात का अनुभव हो जायगा कि हम भी स्वतन्त्रता से अपना प्रबन्ध करने योग्य हैं। यह आवश्यक नहीं है कि दूसरों पर अवलम्बन करके ही हम उन विद्याओं को प्राप्त करें। इसके सिवाय विद्यार्थियों को किताबी कीड़े न बना कर उपयोगी और उपकारी विद्या तथा कला-कौशल की शिक्षा देनी चाहिये। यह भी स्मरण रहे कि जिस प्रकार अमरीका के धनाढ्य पुरुष अपनी सम्पत्ति को जाति के उपकार के लिए अर्पण करते हैं, उसी प्रकार हमें भी अपने धन का सदुपयोग करना चाहिए। बिना इसके भारत का कल्याण नहीं हो सकता।

एक बड़ी भारी शिक्षा जो हमको अमरीका से मिलती है, वह आपस का प्रेम है। जैसे अमरीका में भिन्न-भिन्न मतों के विद्यार्थी एक ही कालेज में लिखते-पढ़ते, उठते-बैठते और मिलते-जुलते हैं, वैसे ही हमारे देश में भी होना चाहिये। प्रत्येक के हृदय में दूसरे के विचारों के लिए सम्मान होना उचित है। यदि कोई किसी सिद्धान्त में हम से भिन्न मत रखता है तो उससे घृणा नहीं करनी चाहिये। जिन बातों में हम आपस में सहमत हैं, उनमें मिल कर काम करना चाहिए, तभी हमारे मतभेद दूर हो सकते हैं और हम एक-दूसरे का सहानुभूतिपूर्वक अध्ययन कर सकते हैं। शिक्षित समाज के उत्थान और सङ्गठन का यही मार्ग है और यही जन-साधारण को विकास की ओर ले जा सकता है।

चौथा अध्याय

मेरा विश्वविद्यालय में प्रवेश

'सिद्धान्तकौमुदी' अपनी काँख में दबाये हुए काशी की टेढ़ी-मेढ़ी गलियों में घूमनेवाला यह विद्यार्थी जब शिकागो विश्वविद्यालय के भव्य भवनों के सामने जाकर खड़ा हुआ तो उसके हर्ष का वारापार न रहा। शिकागो की पहली रात्रि बड़ी कठिनाइयों से बिताने के बाद विद्या के उस महान् केन्द्र में प्रवेश करने की घड़ी मेरे जीवन की एक अत्यन्त मधुर स्मृति है। गुलाम देश से निकल कर मैं आजाद अमरीका में आ गया और वह भी उसके एक ज्ञान-स्रोत के पास--इससे बढ़कर सौभाग्य की बात और क्या हो सकती थी! मैं विद्यालय की सड़कों पर मस्त होकर टहलने लगा।

सब विद्यार्थी मेरी ओर विस्मित होकर देख रहे थे। मैं पुरानी दुनिया का अजनबी, नई दुनिया के सभ्य स्त्री-पुरुषों से बिलकुल निराला, भला कहीं छिप सकता था! सबसे पहले मैंने अपने घोंसले का प्रबन्ध किया। सस्ते कमरे सब भर गये थे, इस कारण 'हिचकाक हाल' में मैंने कमरा किराये पर लिया। पहली भेंट करनी थी प्रेजीडेण्ट जड़सन के साथ, क्योंकि उनसे फ़ीस माफ़ करानी थी। शिकागो विश्वविद्यालय फ़ीस के लिहाज से बड़ा महँगा विद्याकेन्द्र है, जहाँ केवल धनी माँ-बाप के लड़के-लड़कियाँ ही विद्याभ्यास कर सकते हैं; लेकिन निर्धनों के लिए भी वहाँ एक सिलसिला बनाया हुआ था। बौद्ध भिक्षु श्री अनागरिक धर्मपाल जी ने मुझे शिकागो विश्वविद्यालय के स्वर्गीय प्रेजीडेण्ट हारपर महोदय के नाम फ़ीस माफ़ कराने वाला जो पत्र दिया था, मैं उसे लेकर जडसन साहिब के पास पहुँचा। वे मेरे साथ बड़ी अच्छी तरह से पेश आये। मेरी कहानी सुनकर और उस पत्र को पढ़कर वे बोले--

"यह पत्र स्वर्गीय प्रेजीडेण्ट हारपर महोदय के नाम है। वे बड़े उदार पुरुष थे। जब श्री अनागरिक धर्मपाल जी शिकागो सर्वधर्मसम्मेलन में आये होंगे तो उस समय उन्होंने कुछ भारतीय छात्रों के लिये निःशुल्क विद्यादान की बात अवश्य कही होगी। वे स्वर्गलोक को चले गये, परन्तु मैं उनका प्रतिनिधि उनके वचन का पालन अवश्य करूँगा।"

बस, चार सौ पचास रुपये सलाना की फ़ीस माफ़ होगई और मेरे लिए ज्ञान का द्वार खुल गया। उनका आज्ञापत्र जेब में रख कर मैं अपने कमरे में लौटा और प्रभु की इस कृपा के लिए उन्हें बारबार धन्यवाद दिया।

मैं सन् १९०६ के जून मास में शिकागो पहुँचा था। इस तिमाही का सत्र जून में ख़त्म होने वाला था और पहली जुलाई से ग्रीष्म ऋतु की तिमाही (Summer Quarter) प्रारम्भ होनेवाली थी। मैंने इसी में प्रवेश करना था।

नियत तिथि को प्रातःकाल में रजिस्ट्रार के दफ़्तर के पास पहुँचा। विद्यार्थियों के झुण्ड इधर-उधर चक्कर लगा रहे थे। जिनके पास मैं खड़ा था, वे सब मुझे देखकर हँस रहे थे। ऐसा क्यों? मै स्लीपर पहिन कर ही वहाँ आ गया था और स्लीपर हैं रात के पहिनने की चीज—बस, इसी पर लड़कियाँ-लड़के मेरी खिल्ली उड़ा रहे थे। जब मुझे अपनी अज्ञानता का पता लगा तो मैं अपने कमरे की ओर भागा और अपने नये बूट से लैस होकर इस सभ्य समाज में आकर सम्मिलित हुआ। मेरा भी नाम लिख लिया गया और मैं संस्कृत पढ़ने वाला विद्यार्थी इस जगत्-प्रसिद्ध शिकागो विश्वविद्यालय में राजनीति-विज्ञान के मुख्य विषय को लेकर भरती हुआ। मेरी हार्दिक इच्छा थी कि मैं राजनीति का पण्डित बनूँ, क्योंकि मुझे अपने देश की राजनीतिक समस्याओं को हल करना था। इसी कारण मैंने राजनीति के मुख्य विषयों को लेकर बाकी उसके अंगी-संगी मज़मूनों का अध्ययन करना प्रारम्भ किया।

विश्वविद्यालय का था नया अद्भुत जीवन—मेरे लिए बिलकुल नया। मैं था बड़ा लजीला, सभ्य समाज से अलग रहने वाला, महा-संकोची, आर्यसमाज के कठोर आदर्शों में पला हुआ, स्त्री-जाति से विरक्त और पाश्चात्य संस्कृति का विरोधी। ऐसा छात्र सन् १९०६ के जुलाई मास में शौकीन अमरीकन विद्यार्थियों के वर्ग में जाकर बैठा। मेरी श्रेणी में लड़कियाँ भी थीं। पहली बार अपने जीवन में मुझे लड़कियों के पास बैठना पड़ा। थी तो मेरी आयु २७ वर्ष की, किन्तु मैं सदा कठिन धार्मिक नियमों का अभ्यासी था। अपने वर्ग में मैं लड़कियों के सामने जब नीचे मुंह किये बैठा रहता तो वे सब मेरी मसखरी उड़ातीं और मुझे अजायब-घर का प्राणी मानकर मेरा अध्ययन करती थीं। पुरानी दुनिया के जल-वायु से निकलकर मैं नई दुनिया के अप-टू-डेट वातावरण में साँस लेने लगा। एक लेडी अध्यापिका मुझे लेखन-कला पढ़ाती थी। उसकी मुझ पर बड़ी कृपा थी। उसकी पोशाक से ऐसा मालूम होता था कि शायद उसने जीवनभर अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा की हो। इस प्रकार मेरा विद्यार्थी-जीवन प्रारम्भ हुआ।

शिक्षित मनुष्य की पहिचान

हमारे नीतिकार कहते हैं—"विद्याविहीनः पशुः" अर्थात् विद्या के बिना मनुष्य पशु के समान है। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि हमारे लाखों वर्षों के पशुपन के संस्कारों का नाश करने वाली जो शक्ति है उसी का नाम यथार्थ शिक्षा है। पशुपन का मुख्यतम चिह्न हमारे अन्दर छिपा हुआ स्वार्थ है। पशु केवल स्वार्थ के लिए जीता है और शिक्षित पुरुष परमार्थ के लिए; पशु साधता है अपना मतलब, मनुष्य जीता है दूसरों के उत्थान के लिए। हमारा जीवन तभी सार्थक है जब हम नीरोग बीज बन कर सैकड़ों दूसरे उन्नत बीजों को पैदा कर सकें। शिक्षित मनुष्य का यही सच्चा स्वरूप है। **—देवदूत**

पांचवां अध्याय

मज़दूरी की महत्ता

शिकागो नगर मिशेगन झील के किनारे पर स्थित है। यह व्यापार की बड़ी मण्डी है और कल-कारखानों का बड़ा केन्द्र है। जो निर्धन विद्यार्थी विश्वविद्यालय में पढ़ने के लिए आते हैं, उन्हें यहाँ नौकरी मिलने की बहुत सी सुविधायें हैं, इसी कारण काफ़ी संख्या में ग़रीब माँ-बाप के बच्चे यहाँ आसानी से विद्याभ्यास कर लेते हैं। यद्यपि मैं था तो निर्धन विद्यार्थी, किन्तु मजदूरी की महत्ता से परिचित न था। हमारे देश में संस्कृत पढ़ने वाले विद्यार्थी अन्न-क्षेत्रों में मुफ्त में भोजन पा जाते हैं, दानी सज्जन उन्हें कपड़ा-लत्ता दान में दे देते हैं और दूसरे मामूली ख़र्च भी उनके इसी प्रकार माँग-ताँग कर निकल जाते हैं; इसी वजह से हमारे छात्र जीवन-संग्राम की तैयारी करने में असमर्थ रहते हैं। जातपाँत का झूठा अभिमान उन्हें मजदूरी से घृणा सिखाता है और वे हाथों से काम करने वालों को नीच समझते हैं। मैं भी था उनमें से एक। यद्यपि घर से निकले हुए कई वर्ष हो चुके थे, किन्तु मजदूरी के महत्त्व को मैंने अभी तक नहीं समझा था। मैंने भी क्षेत्रों का अन्न खाया था, दानियों से दान लिया था और छात्रवृत्ति लेकर अपने दिन काटे थे। धन पैदा करने वाली जो महान् शक्ति है उसके दर्शन करने का मुझे अवसर प्राप्त नहीं हुआ था। अब जब अमरीका में आकर मैं विद्यार्थी बना तो मुझे पता लगा कि जीवन में मजदूरी का क्या स्थान है। वह कैसे? सुनिये।

जब मैं विश्वविद्यालय में भरती हुआ था तो उस समय मेरे पास तिमाही का किराया देकर डेढ़ सौ रुपये रह गये थे। इतना रुपया एक तिमाही के लिये काफ़ी था, इस कारण मैं निश्चिन्त होकर

विद्याभ्यास में लग गया। जब यह रुपया खत्म होने पर आया तो मुझे पेट की चिन्ता लगी। मुझे पड़े हुए थे भारतीय संस्कार, इस कारण सोचा कि ईश्वर कुछ न कुछ प्रबन्ध आप ही कर देगा, क्योंकि कवि मलूकदास की निम्नलिखित उक्ति हमारे यहाँ आम प्रचलित है—

"अजगर करे न चाकरी, पक्षी करे न काम।
दास मलूका यूं कहे, सबके दाता राम॥"

ऐसे संस्कारों में पला हुआ मैं भला मजदूरी की महत्ता क्या समझ सकता था! लेकिन जब राक्षसी भूख ने मुझे सताना प्रारम्भ किया तो मैंने विश्वविद्यालय के नौकरी दिलाने वाले महकमे की शरण ली और वहाँ के अध्यक्ष के पास पहुँचा। उसका नाम था मिस्टर बर्लिन और वह था जर्मन यहूदी। आज भी ३२ वर्षों के बाद उसके चेहरे के हावभाव मेरे हृदयपट पर खिंचे हैं। मुझे देखकर वह बोला—

"कहिये, क्या चाहिये?"

मैंने विनयपूर्वक कहा—"मुझे काम की जरूरत है।"

वह मुस्कराकर बोला—"एक होटल में बरतन माँजनेवाले की जरूरत है। संध्या के समय आपको वहाँ जाना होगा और दिनभर अपने विद्याध्ययन में संलग्न रहिये। क्या आपको मंजूर है?"

मैं सिर खुजलाने लगा। माँस खानेवाले गोरों के जूठे बरतन माँजना! ऐसा घृणित कार्य मुझसे न हो सकेगा। यह सोचकर मैंने इन्कार कर दिया। मेरा इन्कार सुनकर मिस्टर बर्लिन ने मुंह फेर लिया और मैं खिन्न होकर अपने कमरे में लौटा।

काशी से तो मैं संकल्प कर निकला था कि मैं सब प्रकार की मजदूरी कर लूँगा, लेकिन अब जब परीक्षा का समय आया तो मैं कायर

बन गया। मैं कोई अच्छा काम करना चाहता था—ऐसा काम जो मेरे वर्णाभिमान को ठेस न पहुँचाये। मैं इस सिद्धान्त से अपरिचित था कि मज़दूरी समाज में समता का दरजा देती है और किसी भी प्रकार का परिश्रम बुरा नहीं कहला सकता। इस कारण कमरे में लौटकर मैं विचार-सागर में डूब गया। मुझे क्या करना चाहिये? बड़ी जद्दोजहद के बाद मैंने अपने आपको समझाया-बुझाया और होटल के बरतन साफ़ करने के लिए तैयार होगया। उच्चवर्णाभिमानी हिन्दू की थी यह अग्नि-परीक्षा।

दुबारा जब मैं मिस्टर बर्लिन के पास पहुँचा तो उसने बड़ी सहानुभूति प्रदर्शित कर मुझसे कहा—

"देखो मिस्टर देवा, मै जानता हूँ कि यह काम तुम्हारे लिए बड़ा मुश्किल है, क्योंकि तुम माँस नहीं खाते। लेकिन अगर तुमने मुश्किलात को हल करना सीख लिया तो तुम आज़ाद हो जाओगे और संयुक्त राज्य अमरीका में विद्याध्ययन करना तुम्हारे लिए बड़ा आसान हो जायेगा।"

मैंने धन्यवादसहित उसके सत्परामर्श को मान लिया और बड़े होटल में बरतन धोने के लिए पहुँचा। वह संध्या मुझे कभी भूलेगी नहीं। बरतन धोनेवाले मज़दूरों के कपड़े पहनकर मैं गरम पानी के चहबच्चे के पास खड़ा था। होटल के नौकर जूठे बरतन लाकर चहबच्चे में डालते जाते थे और मैं उन्हें धो-धोकर दूसरे साफ़ पानी के टब में डालता जाता था। बाद में एक साफ़ तौलिये से उन्हें खुश्क कर आल्मारी में रखता जाता था। इस प्रकार मैंने मज़दूरी की महत्ता का पहला सबक सीखा। उस रोज़ मुझे पता लगा कि यह संसार कर्मवीरों के वास्ते है। जो विजेता बनना चाहते हैं उन्हें कभी भी शारीरिक परिश्रम से नहीं डरना चाहिए। मज़दूरी किसी व्यक्ति को नीच नहीं बनाती। नीच वह है जो झूठा, बेईमान, दग़ाबाज़ और व्यभिचारी है। ईमानदारी से रोटी

कमानेवाला मजदूर सम्मानित नागरिक है। उसे नीच कहनेवाले स्वयं नीच हैं। संसार में जितना धन पैदा होता है वह सब शारीरिक परिश्रम से ही होता है। उसे भोगने का अधिकार उन्हीं को है जो मजदूरी का आदर करते हैं और मजदूरों को मान की दृष्टि से देखते हैं।

दो-चार दिन के बाद जब मैं फिर मिस्टर बर्लिन से मिलने गया तो वह मुझे देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने लगा—

"अपनी पहली परीक्षा में तुम पास होगये। जातपात का झूठा अभिमान तुमने छोड़ दिया। अब तुम अच्छे अमरीकन नागरिक बन सकते हो। मैं अब तुम्हारा ख्याल रखूँगा और तुम्हें दूसरा काम दिलाऊँगा।"

कितना खुश था मैं उस समय! इस विजय ने मेरा माथा ऊँचा कर दिया और मैं उस रात निश्चिन्त होकर सोया।

विश्वविद्यालय में जो भोजनालय था वहाँ भी निर्धन विद्यार्थी काम कर अपना भोजन-खर्च निकालते थे। मेरा मित्र डोरान भी उनमें से एक था। डोरान निहायत खूबसूरत लड़का था और मेरी उससे बड़ी मुहब्बत थी। वह था खेतिहर का बेटा और मजदूरी से बिलकुल न घबराने वाला। उसके आग्रह पर मैंने विद्यालय के भोजनालय में भोजन करना प्रारम्भ किया। डोरान ने मुझे विश्वास दिलाया कि वह मेरे लिए शाक-तरकारी का प्रबन्ध करेगा। उसके कहने पर जब मैं उस बड़े हाल में पहुँचा तो सैंकड़ों विद्यार्थियों को भोजन करते पाया। वाह! वह था दृश्य देखने योग्य! विद्यार्थी रसोइये, विद्यार्थी परोसनेवाले, विद्यार्थी बरतन उठानेवाले और विद्यार्थी ही जूठे बरतन साफ़ करनेवाले। बाहर का एक भी नौकर वहाँ दिखाई न देता था। यह था सच्चा भाईचारा; इसे कहते हैं विद्यार्थी-बिरादरी। यहाँ ऊँच-नीच के भाव की गुञ्जायश कहाँ थी! अपनी श्रेणियों के होशियार विद्यार्थी, श्रेणियों में

अव्वल रहनेवाले विद्यार्थी खाना परोसते और बरतन धोते दिखाई देते थे। उन्हें शौक से काम करते हुए देखकर अमीर माँ-बाप के लड़के उनका कितना आदर करते थे ! यहाँ था मजदूरी की महत्ता का साम्राज्य। दूर-दूर से देश-देशान्तरों के विद्यार्थी अपनी ज्ञान-पिपासा बुझाने के लिए शिकागो नगरी के इस तीर्थ पर आते हैं और साधनरहित होने पर भी साधनसम्पन्न छात्रों की तरह इस ज्ञान-स्रोत से पूरा लाभ उठाते हैं। क्या यहाँ नौजवान छात्र ही थे ? नहीं। साठ-साठ वर्षों के बूढ़े स्त्री-पुरुष, जिनके चेहरों पर झुरियाँ पड़ी हुई थीं, मुंह में बनावटी दाँत थे, विद्यार्थी बनकर नौजवानों की तरह हँसते-खेलते हुए अपने-अपने वर्गों में उपस्थित होते थे। ऐसे कईएक दक्षिणी रियासतों के अध्यापक इस विद्यालय में डाक्टर की डिग्री लेने आये हुए थे जिनके साथ मेरी बड़ी घनिष्ठता थी। वे भारतवर्ष की राजनीति में बड़ी रुचि रखते थे और मेरे धार्मिक विचार जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे।

इस प्रकार सन् १९०६ के उस वर्ष में मेरे जीवन का एक नया पृष्ठ खुला। एक सत्र जब बीत गया तो मैं अमरीकन जीवन से भली प्रकार परिचित होगया। किस तरह भविष्य में मैं अपनी बाधाओं से लड़ सकूँगा, इसकी वाकफ़ियत मुझे होने लगी। मित्रों की संख्या बढ़ जाने के कारण मुझे इस देश से प्रेम होने लगा और मैं लगा विद्यालय के इर्द-गिर्द के पदार्थों का निरीक्षण करने। मिशेगन झील की सैर करने की मेरी बड़ी अभिलाषा थी।

आइये, पाठक, अब हम आपको शिकागो के एक रविवार की सैर का हाल सुनावें, वहाँ के मनोहर दृश्य दिखलावें और इस झील की अठखेलियाँ बतलावें। इसके बाद शिकागो विश्वविद्यालय के अपने विद्यार्थी-जीवन का मनोरंजक वर्णन सुनाऊँगा।

छठा अध्याय

शिकागो का रविवार

शिकागो संसार के प्रसिद्ध नगरों में से एक है। यहाँ पर कई एक प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र हैं, जहाँ सब विषयों के धुरन्धर विद्वान् ज्ञान-दीक्षा देते हैं। अमरीका के बड़े-बड़े कारखाने, पुतलीघर यहीं पर हैं। इन कारखानों में हरएक कौम के लोग काम करते हैं। इतने प्रसिद्ध नगर के लोग अपने अवकाश का समय कैसे काटते हैं? वे अपना दिल कैसे बहलाते हैं? उस नगरी में देखने लायक़ क्या कुछ है? पाठकों के विनोदार्थ इन प्रश्नों का उत्तर हम इस अध्याय में देते हैं। आइये, आपको शिकागो की सैर करावें, इसके अजीब-अजीब दृश्य दिखावें और आपको बतलावें कि इस प्रसिद्ध नगरी में कौन-कौन से स्थान दर्शनीय हैं। साथ ही हम इस नगर के निवासियों के रहन-सहन का व्योरा भी देते जायेंगे, जिससे आपको यहाँ वालों की जीवनचर्य्या के विषय में भी कुछ ज्ञान हो जाए। इस काम के लिए हमने रविवार का दिन चुना है। उसी की महिमा हम यहां वर्णन करेंगे। इससे हमारा अभीष्ट भी सिद्ध हो जायगा और आपको भी मालूम हो जायेगा कि शिकागो के निवासी रविवार की छुट्टी किस तरह मनाते हैं।

रविवार छुट्टी का दिन है। भारतवर्ष में छोटे-छोटे बच्चे, जो स्कूलों में पढ़ते हैं, वे भी यह बात जानते हैं। एशिया और अफ्रीका में जहाँ-जहाँ ईसाई लोगों का राज्य है, सब कहीं स्कूलों और दफ़्तरों में रविवार को छुट्टी रहती है। परन्तु रविवार को छुट्टी किस तरह मनानी चाहिये, यह बात ईसाई धर्मावलम्बियों के बीच रहे बिना अच्छी तरह नहीं अनुभव की जा सकती। रविवार की छुट्टी मनाने के लिए शिकागो में कैसे-

कैसे स्थान बनाये गये हैं और किस प्रकार यहाँ वाले जीवन का आनन्द लूटते हैं, इसका संक्षिप्त हाल सुनिये।

ईसाई धर्म में रविवार को काम करना मना है। इसलिए सब दुकानें, पुस्तकालय, कारखाने आदि इस दिन बन्द रहते हैं। क्या निर्धन क्या धनवान्, क्या नौकर क्या स्वामी, क्या बालक क्या वृद्ध, क्या स्त्री क्या पुरुष, सबके लिए आज छुट्टी है। १०$\frac{१}{२}$ या ११ बजे, प्रातःकाल नियत समय पर, प्रायः सब लोग अपने-अपने गिर्जाघरों में जाते हुए दिखाई देते हैं। वहां ईश्वराराधना के बाद घर लौट कर भोजन करते हैं। फिर कुछ देर आराम करके सैर को निकलते हैं।

शिकागो बहुत बड़ा शहर है। संसार के बड़े शहरों में इसका तीसरा नम्बर है। यहाँ एक "फ़ील्ड म्यूज़ियम" अर्थात् फ़ील्ड साहिब द्वारा बनवाया हुआ अजायबघर है। यह मिशेगन झील के किनारे, शिकागो विश्वविद्यालय से थोड़ी ही दूर स्थित है। रविवार को सवेरे नौ बजे से शाम के पाँच बजे तक, सबको यहाँ मुफ़्त सैर करने की आज्ञा है। इसलिए इस दिन यहाँ बड़ी भीड़ रहती है। आठ-नौ वर्ष की बालक-बालिकायें ऐसे ही स्थानों से अपनी विद्या आरम्भ करते हैं, क्योंकि यहाँ पर संसार की उन सब अद्भुत वस्तुओं का संग्रह है जो शिकागो के प्रसिद्ध सांसारिक मेले (World's Fair) में इकट्ठी की गई थीं। यहाँ यह बात यथाक्रम दिखलाई गई है कि पृथ्वी के ऊपर प्राणियों का जीवन, प्राकृतिक नियमों के अनुसार, किस प्रकार वर्तमान अवस्था को पहुँचा है। भूगर्भविद्या सम्बन्धी पदार्थों को भिन्न-भिन्न कमरों में दरजे-बदरजे रखकर उनका क्रमविकास अच्छी तरह बतलाया गया है। यहाँ यह स्पष्ट मालूम हो जाता है कि उत्तरीय अमरीका के हिरण किस प्रकार भिन्न-भिन्न चारों ऋतुओं में अपना रङ्ग बदलते हैं; किस प्रकार प्रकृति माता बर्फ़ के दिनों में उनको भोजन देती है। उत्तरीय ध्रुव में रहने वाले रीछों के बर्फ़ के भीतर बने हुए घर क्या ही अच्छी तरह दिखलाये गये हैं! यह बात प्रत्यक्ष मालूम हो जाती है

कि अमरीका के प्राचीन निवासी (Red Indians) किन देवी-देवताओं की पूजा करते थे, कैसे घरों में रहा करते थे, किस प्रकार किन-किन चीज़ों की मदद से पहनने के वस्त्र बनाते थे, उनकी नौकायें, उनके खाने-पीने का सामान, उनके देवालय, उनके युद्ध के शस्त्र--सब चीजें बहुत ही अच्छी तरह दिखाई गई हैं। सबसे अधिक सक्षम प्राणी ही संसार में ज़िन्दा रहते हैं, इस सिद्धान्त की पुष्टि इन दृश्यों को देखते ही हो जाती है। जब हमने इन चीज़ों को देखा तब तत्काल हमें यह ख्याल हो आया कि क्या भारतवासियों का नाम, उन की चीजें, उनका इतिहास आदि सब कुछ नष्ट होकर किसी दिन लन्दन के अंग्रेज़ी अजायबघर (British Museum) में ही तो न रह जायगा!

इस अजायबघर के मध्य में साहसी कोलम्बस की दीर्घकाय मूर्त्ति (Statue) विराजमान है। इस जिनेवानिवासी को देखकर दर्शक के मन में भांति-भांति के विचार उत्पन्न होने लगते हैं और एक अद्भुत दृश्य आँखों के सामने घूम जाता है। उस समय के अमरीका और आज के अमरीका में कितना अन्तर है! वे यहां के प्राचीन निवासी कहाँ गये? पिछली तीन शताब्दियों में यहाँ की भूमि का कैसा रूप बदला है? कहाँ योरुप, कहाँ अमरीका—हज़ारों कोसों का अन्तर! भारतवर्ष की तलाश में एक पुरुष भूल से इधर आ निकलता है। उसका आना क्या है, यमराज के आने का संदेशा है। हज़ारों वर्षों से रहनेवाले, स्वतन्त्रता से विचरने वाले, क्या पशु क्या पक्षी, क्या मनुष्य, सभी तीन ही शताब्दियों के अन्दर स्वाहा हो जाते हैं। करोड़ों भैंसे अमरीका के जङ्गलों में न जाने कबसे आनन्दपूर्वक विचरते थे, पर आज उनका नामोनिशान तक नहीं मिलता। उन सब जीवों ने क्या अपराध किया था? क्यों एक दूर देश में बसने वाली जाति, जिसका कोई अधिकार इस देश पर नहीं था, आकर यहाँ के असली रहनेवालों को नष्ट करने का कारण हुई? क्या यही ईश्वरीय न्याय है? नास्तिकता से भरे हुए ऐसे ही प्रश्न यहाँ दर्शक के मन में उठने लगते हैं। तत्काल एक आवाज़ कान

में आती है--"प्रकृति का यह अटल सिद्धान्त है कि सबसे अधिक सक्षम--सबसे अधिक योग्य--ही का दुनिया में गुज़ारा है । यदि तुम अपना अस्तित्व चाहते हो तो अपने पासपड़ोस वालों की बराबरी के बन जाओ । वही जाति अपना नाम संसार में स्थिर रख सकती है जो इस नियम के अनुकूल चलती है ।"

इस अजायबघर में वनस्पतिविद्या, रसायनविद्या, जन्तुविद्या, नर-शरीरविद्या आदि भिन्न-भिन्न विद्याओं सम्बन्धी सामग्री भी विद्यमान है । "एक पन्थ दो काज"--छुट्टी का दिन है, सैर भी कीजिये और कुछ सीखिये भी । उन्नति के कैसे अच्छे मौक़े यहाँ के निवासियों को दिये जाते हैं ! बालकपन से ही खेल के बहाने यहाँवाले इतनी वाकफ़ियत हासिल कर लेते है, जो हमारे देश में दस बरस स्कूल में पढ़ने से भी नहीं होती ।

अजायबघर से बाहर निकल कर देखिये--झील के किनारे-किनारे सड़क बनी हुई है; बेंचें रखी हुई हैं । वहाँ स्त्री-पुरुष, बालक-बालिकाये आनन्द से बैठे हुए हँस-खेल रहे हैं । उनके चेहरों को देखिये, "स्वतन्त्रता" उनके माथे पर जगमगा रही है । नवयुवक अपनी प्रियतमाओं के साथ इधर-से-उधर उधर-से-इधर घूमते और वार्तालाप करते हुए क्या ही भले मालूम होते हैं ! मिशेगन झील भी उनके इस प्रेम के भावों को देख कर प्रसन्न मालूम होती है ! वह अपने स्वच्छ शीतल पवन के झोंकों से उन्हें आशीर्वाद सा दे रही है । जल की तरंगें छोटे-छोटे बालकों को देखकर, उनसे मिलने के लिए, बड़े आह्लाद से आगे बढ़ती हैं, परन्तु तत्काल ही यह सोचकर कि शायद कुछ बेअदबी न हुई हो, पीछे हट जाती हैं । इस समय भगवान् सूर्य अपने दिन के कार्य को पूर्ण कर पश्चिम की ओर गमन करते हैं ।

इस अजायबघर के सिवाय और भी बहुत से स्थान शिकागो निवासियों के लिए रविवार मनाने के हेतु हैं । कितने ही उद्यान (Parks) ऐसे हैं जहाँ पियानो बाजे तथा मनबहलाव के और अनेक सामान रखे रहते

हैं। वहाँ जाकर लोग बैठते है, संगीत सुनते है और आनन्दमग्न होकर घर जाते है।

यहाँ एक उद्यान है, जिसका नाम हम्बोल्ड पार्क है। इस में नहर के ढंग के जल के बड़े-बड़े लम्बे कुण्ड है। उनमें जल भरा रहता है। छोटी-छोटी नावें पानी पर तैरा करती हैं। ये नावें खेल के लिए हैं। ग्रीष्मकाल में यहाँ नावों की दौड़ होती है। रविवार के दिन इन उद्यानों का दृश्य बहुत ही मनोहर हो जाता है। नवयुवक नौकायें खेते हुए हँसते-खेलते, गाते और जीवन का आनन्द लेते है। एक-एक नौका परप्रायः एक नवयुवक और एक युवती स्त्री होती है। वे सहाध्यायी मित्र, अथवा पति-पत्नी होते है। इस तरह की संगति इस देश में बुरी नहीं मानी जाती और न हम लोगों के देश की तरह ऐसे बुरे भाव ही इन लोगों में उत्पन्न होते हे। स्त्रियों की यहाँ पर बड़ी प्रतिष्ठा है। कोई बहुत ही पतित पुरुष होगा जो उनके साथ नीच व्यवहार करेगा। ऐसे पुरुष के लिए कानून में बड़े भारी दण्ड का विधान है। प्रायः सभी उद्यानों में ऐसे जलकुण्ड हैं। जो स्थान जिसके निकट हो, वह वहीं जाकर रविवार को आनन्द मनाता है।

कोई शायद पूछे कि क्या और रोज वहाँ जाना मना है? ऐसा नहीं है। परन्तु कारण यह है कि अधिकांश लोगों को सिवाय रविवार के और रोज छुट्टी ही नहीं मिलती, इसलिए रविवार को ही इन उद्यानों में लोग एकत्रित होते हैं। रोज सिर्फ़ कहीं-कहीं टेनिस खेलते हुए स्त्री-पुरुष दिखाई देते हैं। यह बात ग्रीष्म-ऋतु की है। जाड़ों में जब इन कुण्डों का पानी जम जाता है, तब वहाँ पर लोग "स्केटिंग" (Skating) करते हैं। स्केटिंग एक प्रकार का खेल है। जूते के साथ धातु का बना हुआ एक ऐसा ढांचा लगा दिया जाता है जो एड़ी में अच्छी तरह से अटक जाये ताकि बर्फ़ पर दौड़ने-मुड़ने में आसानी हो। यह खेल हॉकी के खेल के मानिन्द है, इसीलिए उसे बर्फ़ीली हॉकी कहते हैं। हर साल दिसम्बर में स्केटिंग का समय होता है। जब बेहद जाड़ा पड़ता है तब बालक-बालिकायें जमी हुई जलस्थलियों में नाचती हुई दिखाई देती हैं।

यहाँ का लिङ्कन उद्यान भी बहुत प्रसिद्ध है। इसमें अमरीका के विख्यात योद्धा वीरवर ग्राण्ट की मूर्ति है। अश्वारूढ़ ग्राण्ट की मूर्ति इस देश के इतिहास के ज्ञाता को उस भयङ्कर युद्ध का स्मरण कराती है जो युद्ध गुलामों के व्यापार को बन्द कराने के लिए आपस में हुआ था। अमरीका के उत्तर के लोग चाहते थे कि गुलामों का व्यापार बन्द हो जाय। उनका सिद्धान्त था—स्वतन्त्रता की दृष्टि में सब आदमी बराबर है; जीवन और स्वतन्त्रता के स्वाभाविक नियमों में सबका हक़ एक-सा है। वे नहीं चाहते थे कि अमरीका जैसे स्वतन्त्र देश में मनुष्य भेड़-बकरियों की तरह बिकें। इस सत्य सिद्धान्त की रक्षा के लिए एक लोमहर्षण युद्ध उत्तर और दक्षिण निवासियों में हुआ और परिणामस्वरूप सत्य की जय हुई। शूरवीर ग्राण्ट इस युद्ध में उत्तरवालों की ओर से सेनापति थे। वे काले हब्शियों को वैसा ही चाहते थे जैसा कि गोरे चमड़े वाले अमरीकनों को। इस महात्मा का स्मारक चिन्ह दर्शक को एक नया जीवन प्रदान करता है। वह उसे सूचना देता है—"किसी मनुष्य को दूसरे पर शासन करने का अधिकार नहीं है। सब मनुष्य इस विषय में बराबर हैं। समाज एक यन्त्र है और मनुष्य-समुदाय उसके पुर्जे। अपनी योग्यतानुसार सब समाज के सेवक हैं। किसी से घृणा मत करो; क्या काला, क्या गोरा, सब एक ही पिता के पुत्र हैं।"

इस उद्यान के एक भाग में भिन्न-भिन्न प्रकार के पौधे रक्खे हुए हैं। जो वृक्ष जिस तापमान में जी सकता है उसी के अनुसार वहाँ उसे उष्णता पहुँचाई गई है और उसकी रक्षा की गई है। उष्ण देशों के अनेक वृक्ष यहाँ देखने में आते हैं। दर्शक को वनस्पतिविद्या सम्बन्धी बहुत सी बातें यहाँ मालूम हो जाती हैं।

उद्यानों के सिवाय बहुत से और भी स्थान लोगों के बैठने-उठने और हँसने-खेलने के लिए हैं। शिकागो बहुत बड़ा नगर है। इससे नगरवासियों के आराम और शुद्ध पवन की प्राप्ति के लिए बीच-बीच गलियों में "बुलावार्ड्ज" (Boulevards) नामक विहारस्थल हैं। यहाँ की गलियाँ हमारे

शहरों जैसी नहीं हैं। गलियाँ क्या है, बाजार हैं। पत्थर के मकानों के आगे, दोनों किनारों पर, दस फ़ीट के क़रीब रास्ता, सड़क से ऊँचा, लोगों के चलने के लिए बना रहता है। बीच की सड़क गाड़ी, घोड़े, मोटर आदि के लिए है। खुले मकानों और चौड़ी सड़कों के कोने पर भी, हवा साफ़ रखने और ग़रीब आदमियों के मनोरञ्जन तथा लाभ के लिए, थोड़ी-थोड़ी दूर पर विहार-वाटिकायें है, जहाँ बैठने के लिए बेंचें रक्खी रहती है। काम से थके हुए स्त्री-पुरुष रोज सायंकाल यहाँ दिखाई देते हैं, क्योंकि और स्थानों में गाने, बजाने और जलविहार आदि के लिए थोड़ा बहुत खर्च करना पड़ता है, जो थोड़ी आमदनी के लोग नहीं कर सकते। उनके लिए ऐसे स्थानों, उद्यानों और अजायबघरों में घूमने की स्वतन्त्रता है। यत्न यह किया गया है कि सबको इस स्वतन्त्र देश में आनन्द प्राप्त करने का अवसर मिले। यहाँ जो धन व्यय किया जाता है, वह शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की उन्नतियों के लिए है।

यह तो हुई दिन की बात, अब रात की सुनिए। यहाँ बहुत से नाटक-घर, प्रदर्शनियाँ और समाज है, जहाँ अपनी-अपनी रुचि के अनुसार लोग रात को जाते हैं। शिकागो में लोग अक्सर रात को भी गिर्जों मे जाते है। रात को भी वहाँ उपदेश, गायन और हरिकीर्तन होता है। यहाँ एक जगह "श्वेत नगर" (White City) है। बहुत से लोग वहाँ जाते हैं। इस जगह को "श्वेत नगर" इसलिए कहते हैं कि यहाँ बिजली की शुभ्र रोशनी होती है, जिससे रात को भी दिन ही सा रहता है। इसके विशाल द्वार पर बड़े मोटे-मोटे बिजली के प्रकाश के अक्षरों में "दी व्हाइट सिटी" (The White City) लिखा हुआ है। बिजली की महिमा यहाँ खूब ही देखने को मिलती है। स्थान-स्थान पर प्रकाशमय रङ्ग-बिरङ्गे अक्षर-चित्र बने हुए हैं, जो मिनट-मिनट में रङ्ग बदलते है। इस श्वेत-नगर के भीतर अनेक मनोरञ्जन-स्थान हैं; कहीं पर गाना हो रहा है, कहीं बड़े-बड़े "हालों" में नाच हो रहा है, कहीं "सरकस" का तमाशा। दुनियाँ भर के खिलाड़ी यहाँ लाये जाते हैं। गरमी के दिनों में वे

तीन-चार मास में ही हजारों रुपये कमा लेते हैं। यह स्थान एक कम्पनी का है। उसके नौकर सारी दुनिया में तमाशा करने वालों को लाने के लिए घूमा करते हैं। भारतवर्ष के यदि दो-तीन अच्छे-अच्छे पहलवान, किसी देशी कम्पनी के साथ, अमरीका में आव तो हजारों रुपये कमा कर ले जायँ। हमारे देश में अभी लोगों ने रुपया पैदा करने का ढङ्ग नहीं सीखा। एक साधारण मनुष्य इङ्गलिस्तान से आकर, हिन्दुस्तान में विज्ञापनों द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करके, लाखों बटोर कर ले जाता है, परन्तु हमारे स्वदेशी कारीगर, पहलवान, बाज़ीगर आदि कभी इस ओर आने का साहस नहीं करते। अमरीका में कुश्ती का शौक़ बढ़ रहा है। यदि इस समय कोई पहलवान थोड़ा सा रुपया ख़र्च कर इधर आये और किसी अच्छी कम्पनी की मार्फ़त कुश्ती हो तो लाखों रुपयों के वारे-न्यारे हो सकते हैं।

इस श्वेतनगर में रविवार को बड़ा भारी मेला होता है। गाड़ियाँ स्त्री-पुरुषों से लदी हुई जाती हैं। हजारों दर्शक इकट्ठे होते हैं। रात के ८ बजे से ११ बजे या १२ बजे तक मेला रहता है। यह स्थान केवल गर्मियों में खुलता है, क्योंकि जाड़ों में शीत के कारण यहाँ कोई नहीं आता। शीत ऋतु के लिए नगर के भीतर और अनेक स्थान है, जहाँ दूसरी तरह के मनोरञ्जक खेल होते हैं।

रविवार का दिन इस नगरी में लोग इसी तरह व्यतीत करते हैं। अब यहाँवालों की जीवनचर्य्या का मिलान यदि हम भारतवर्ष से करते हैं तो कितना बड़ा अन्तर पाते हैं। उन तमाशों या नाटकों की बात जाने दीजिये जिनको हमारे बहुत से पाठक शायद अच्छा न समझें, पर और ऐसे कितने मनोरञ्जक या शिक्षाप्रद खेल-तमाशे हैं जिनका हमारे भारतीय भाइयों को शौक है? वे अपने अवकाश को, अपनी छुट्टियों को, किस तरह बिताते हैं? भङ्ग पीकर, ताश खेलकर, पतङ्ग उड़ाकर, और व्यर्थ की बकवाद में लिप्त रह कर—समय की कीमत हम जानते ही नहीं। यद्यपि कुछ पढ़े-लिखे लोग ऐसे हैं जो इन बुराइयों से बचे हुए

है, परन्तु वे इतनी महान् जनसंख्या में दाल में नमक के बराबर भी नहीं। आधी संख्या हमारे देश में मूर्खा स्त्रियों की है, जिनको कई प्रान्तों में बाहर निकलने की आज्ञा तक नहीं; भारतीय मुसलमान तो ख़ासकर अपनी बेग़मों को ज़रा भी आज़ादी देना नहीं चाहते। जहाँ इतनी अधिक निरक्षरता है, वहाँ के लोग भला बुराइयों में क्यों न डूबें! जहाँ के निवासी सौ पीछे आठ से भी कम साक्षर है, उन्हें दुर्व्यसनों मे डूबने से भगवान् बचावे।

शिकागो का रविवार संयुक्त राज्य अमरीका के सामाजिक जीवन की एक झाँकी दिखलाता है। मन बड़ा चञ्चल है, इसे तो काम चाहिये। यदि आप इसे उन्नत विचारों, बलवर्द्धक खेलों और नीरोग हँसी-मज़ाकों में लगायेंगे, तो यह आपको बुराइयों से सदा दूर रखेगा। भिन्न-भिन्न प्रकार के विकसित मनबहलाव के पदार्थ, कलाकौशल के साधन और वैज्ञानिक आविष्कार हमें सदा दुष्ट वासनाओं से अलग रखने में सहायक बन सकते हैं। हमारा जीवन मन के इस प्रकार काम में लगा रहने के कारण आनन्दमय बन जाता है। भारतीय संस्कृति सात्विक भावों से ओतप्रोत है, इसलिए हमें चाहिये कि भिन्न-भिन्न ढंग के सात्विक खेलों, दिल बहलाने वाली बातों और विचारधाराओं का आविष्कार करें; अपने सामाजिक जीवन में माधुर्य्य लाएँ और जीवन को कला-पूर्ण बनाकर अपने इर्द-गिर्द सौन्दर्य-सुख की वृद्धि करें। जब तक हम ऐसा न करेंगे, तब तक हम कभी भी काम, क्रोध, मोह, लोभ और अहङ्कार—इन पाँच शत्रुओं को वशीभूत करने में सफल नहीं हो सकते। हमारी ये शक्तियाँ संहारक होने की बजाय रचनात्मक बन सकती हैं, यदि हम इनके सरदार मन को नये-नये ज्ञानोत्पादक कार्यों में लगाये रखें। नई दुनिया के लोग इस रहस्य को समझने का पूरा उद्योग कर रहे हैं। हमें चाहिये कि हम उनके अन्वेषणों से कुछ शिक्षा ग्रहण करें और प्राचीन ऋषियों की अनुभूति का सहारा लेकर जीवन को आनन्द-मार्ग पर चलावें।

सातवां अध्याय

प्रोफ़ेसर ब्लूमफ़ील्ड का व्याख्यान

जॉन हॉपकिन्स विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के प्रोफ़ेसर ब्लूमफ़ील्ड एक व्याख्यानमाला के सिलसिले में हमारे विश्वविद्यालय में पधारे। शिकागो यूनिवर्सिटी के व्याख्यान-हाल में विद्यार्थियों और अध्यापकों के सामने आपका सारगर्भित भाषण हुआ। विषय था—'वेदों का धर्म'। मैं इस समय अपनी स्मृतियों को चैतन्य कर पिछली बत्तीस वर्षों की घटनाओं को लिख रहा हूँ, इसलिये सम्भव है कि किसी नाम में उलट-फेर हो जाय, किन्तु घटना-वर्णन बिलकुल सत्य लिखा गया है।

जिस हाल में मैं रहता था, उसका नाम था 'स्नेल हाल'। 'हिचकाक हाल' मैंने एक तिमाही के बाद छोड़ दिया। 'स्नेल हाल' में मिस्टर जार्ज स्वान नामक एक नवयुवक भी रहता था, वह था Y. M. C. A. का सेक्रेटरी। विश्वविद्यालय में यंगमैन्स क्रिश्चियन एसोसियेशन की एक शाखा थी, उसी के आप मन्त्री थे। जिस मञ्जिल पर मैं रहता था, वहाँ हेमल नाम के दो जर्मन बन्धु—सगे भाई—भी रहते थे। उनका विचार चीन जाकर ईसाई धर्म का प्रचार करना था। मैं आया था नया हिन्दुस्तान से और था कट्टर आर्यसमाजी, इस कारण हेमल बन्धुओं तथा मिस्टर स्वान के साथ धार्मिक विषयों पर बराबर चर्चा चला करती थी। लेकिन वे थे बड़े सहनशील। गर्मागर्म वाद-विवाद हो जाने पर भी मैंने सदा इन्हें मुस्कराते पाया—कभी चित्त क्षुब्ध नहीं हुआ। ये लोग प्रायः मेरी युक्तियों के सामने निरुतर हो जाते और मैं इनके हृदय पर अपने धार्मिक आदर्शों की छाप डालने का प्रयत्न करता था।

इसलिए जब प्रोफ़ेसर ब्लूमफ़ील्ड का आगमन विश्वविद्यालय में हुआ तो मेरे ये 'स्नेल हाल' के पड़ोसी हँस कर मुझ से कहने लगे—

"लो मिस्टर देवा, हमारे यहाँ के वेदों के पण्डित विश्वविद्यालय में व्याख्यान देने के लिए आये हैं; अब ज़रा उनसे शास्त्रार्थ करना। हम लोग तो वेदों की बाबत कुछ जानते ही नहीं, इस कारण तुम्हारी बातों का कुछ उत्तर नहीं दे सकते थे। प्रोफ़ेसर ब्लूमफ़ील्ड वेदों के ज्ञाता हैं, उनसे डटकर बातें करना।"

मुस्कराते हुए मैंने उत्तर दिया—"बहुत अच्छा।"

नियत समय पर मैं भी व्याख्यान-हाल में पहुँचा। व्याख्यानों का प्रबन्ध 'डिविनिटी कालेज' की ओर से किया गया था। हाल श्रोताओं से खचाखच भरा पड़ा था—लड़के-लड़कियाँ सभी आये। जब प्रोफ़ेसर महोदय ने बोलना प्रारम्भ किया और वेदों के मन्त्र पढ़े तो मैंने समझ लिया कि वेदों के विषय में इनकी योग्यता अधिकतर आधुनिक डिक्शनरियों तक ही अवलम्बित है; उच्चारण भी उनका अशुद्ध था। योरुपियन विद्वान् जिस शैली से वेदों का अनुवाद करते हैं, वही ढर्रा उनका भी था। व्याख्यान हो रहा था और मेरा चित्त उद्विग्न होता जाता था। भाषण के बाद मैं फ़ौरन खड़ा होगया और श्रोताओं को सम्बोधित कर कहने लगा—

"भद्रपुरुषो और सन्नारियो! प्रोफ़ेसर ब्लूमफ़ील्ड निस्सन्देह अपने विश्वविद्यालय के संस्कृत-विभाग के प्रधानाध्यापक हैं, किन्तु वेदों के विषय में इनका ज्ञान बहुत सीमित है। वैदिक काल के व्याकरण से आप परिचित नहीं हैं और न उस समय की भाषा के आप मर्मज्ञ ही हैं। मैं अपने देश के प्रतिनिधि के तौर पर इनके भाषण का विरोध करता हूँ और आपके सामने उन वेदमन्त्रों के अर्थों को बतलाता हूँ ताकि आप मेरी बात स्पष्टतया समझ सकें—"

मैंने इतना ही कहा था कि हाल में हुल्लड़-सा मच गया। शिकागो विश्वविद्यालय में मैं अकेला ही भारतीय विद्यार्थी था। किसी को यह आशा नहीं थी कि ऐसे प्रसिद्ध प्रोफ़ेसर के व्याख्यान का खण्डन करने

के लिए कोई विद्यार्थी इस प्रकार खड़ा हो जायगा। जो भीड़ व्याख्यान के बाद जाने लगी थी, वह विस्मित होकर मेरी ओर देखने लगी। मेरी आवाज़ थी बड़ी बुलन्द, दृढ़ और गम्भीर। श्रोता पहले तो सन्नाटे में आगए। जब मैं खण्डन करने पर उतारू हुआ तो—"हैलो, यह कौन है?"—की पूछताछ चारों ओर से होने लगी। इतने में किसी ने मेरे कान में आकर कह दिया—"व्याख्यान बन्द करो, नहीं तो तुम को पुलिस के हवाले कर दिया जावेगा।" मैं था अजनबी, संयुक्त राज्य अमरीका के कानूनों से सर्वथा अनभिज्ञ। भारत मे तो पुलिस बिना कारण ही पकड़ लेती है और वारण्ट दिखाये बिना ही हिरासत में ले लेती है, वह बुरा संस्कार मुझ पर था ही, सो मैं चुप होगया। भीड़ जाने लगी और मैं भी शीघ्र हाल से बाहर निकला। बाहर मेरे मित्रों ने मुझे घेर लिया और चुप होने का कारण पूछने लगे। जब मैंने उन्हें कारण बतलाया तो वह हँसने और किलकारियाँ मारने लगे—"यह भी क्या इण्डिया है जो इस तरह पुलिस पकड़ सकती है? वाह जी वाह, तुम तो खूब छकाये गये!!"

बाद में मुझे पता लगा कि जिस व्यक्ति ने मेरे कान में वह बात कही थी वह भारत में प्रचार करनेवाला एक अमरीकन पादरी था। उसने जब यह देखा कि यह नौजवान व्याख्यान के प्रभाव को मिट्टी कर देगा तो उसने ऐसी चाल चलकर मेरा मुंह बन्द कर दिया। मेरे मित्रों को उसकी यह करतूत अच्छी न लगी। हमारे विश्वविद्यालय से एक दैनिक पत्रनिकलता था—नाम था डेली मेरून (Daily Maroon)—मेरे एक विद्यार्थी मित्र ने उसमें लेख लिखा, जिसमें उस मिशनरी को आड़े हाथों लिया गया और मेरा पक्ष लेकर पाठकों को बतलाया गया—"मिस्टर देवा को पूरा अधिकार अपने विचार प्रकट करने का था; उसका मुंह इस प्रकार बन्द करना घृणास्पद कार्य था; संयुक्त राज्य अमरीका में सब नागरिकों को बराबर के अधिकार हैं; यहाँ विचारों की स्वतन्त्रता है। हिन्दुस्तानी होने के नाते मिस्टर देवा का पक्ष श्रोताओं

को जानना चाहिये था ताकि दोनों पक्षों को सुनकर वे सही नतीजा निकाल सकते।"

मैंने जब उस दैनिक में ये सब बातें पढ़ीं तो अमरीकन लोगों की उदारता की गहरी छाप मेरे हृदय पर पड़ गई। विश्वविद्यालय के छात्र खुले तौर पर मेरा पक्ष ले लेंगे, इसकी मुझे स्वप्न में भी आशा न थी। भारतवर्ष में तो साम्प्रदायिकता का विष इतना अधिक रहा है कि सत्य का पक्ष लेना लोग जानते ही नहीं। अनपढ़ लोगों का तो यह हाल है कि यदि दो दुकानदार अथवा ताँगेवाले आपस में लड़ पड़ें—हों वे हिन्दू और मुसलमान—तो इर्द-गिर्द के दर्शक अपनी बुद्धि को ताक पर रखकर, साम्प्रदायिक नाते से एक दूसरे का पक्ष लेकर खड़े हो जायेंगे।

स्वतंत्रता-प्राप्ति और शिक्षा के विस्तार से अब यह साम्प्रदायिक बुद्धि कम होकर राष्ट्रीय भावना जागृत हो रही है। परन्तु अभी भी कुछ स्वार्थी लोग नेता बन कर जनता को गुमराह करने की चेष्टा करते हैं। अमरीका में यदि पति एक मजहब रखता है तो स्त्री दूसरा धर्म मानती है। पति स्वयं उसे उसके गिर्जे में छोड़ आता है और खुद अपने मन्दिर में चला जाता है। भिन्न मतावलम्बी होते हुए भी वे सद्-गृहस्थ प्रेम से रह सकते हैं। किन्तु हम पढ़े-लिखे एक-दूसरे के पड़ोस में भी रहना पसन्द नहीं करते, सदा अपना जानमाल खतरे में समझते हैं।

साम्प्रदायिकता की इस महामारी को शीघ्रातिशीघ्र दूर करने के उपाय हमें ढूँढ निकालने होंगे; अन्यथा यह देश कभी भी सुख-शान्ति को प्राप्त नहीं कर सकेगा।

आठवाँ अध्याय

जनवा भील की सैर

प्रातःकालीन कामों से फ़ारिग हो, कपड़े पहिन मैं तैयार ही हुआ था कि मेरे साथी ने दरवाज़ा खटखटाया। "आप आगये!" यह कह मैंने झट से दरवाज़ा खोल दिया।

मेरे साथी ने मुस्कराकर पूछा—"कहिये, आप तैयार हैं?"

मैं—"बस तैयार ही हुआ था कि आप आगये।"

साथी—"अच्छा, अब चलिये।"

मेरे साथी का नाम मार्कस था। था वह बहुत ही हँसमुख, खुश-मिज़ाज नौजवान। लम्बा-चौड़ा, हाथ-पैर गठीले, चेहरा साफ़, दाढ़ी-मूँछ सफ़ाचट, उम्र कोई चौबीस बरस। आप जब उसे देखेंगे तभी उसके चेहरे पर मुस्कराहट पायेंगे। यों तो अमरीका-निवासी स्वभाव ही से हँस-मुख होते हैं और हँसी-दिल्लगी बहुत पसंद करते हैं, परन्तु मार्कस में यह विशेष गुण था कि उससे मिलते ही आपका चेहरा खिल उठेगा। आप कैसे ही उदास क्यों न हों, सब उदासी भूल जायेंगे। मार्कस के पूर्वज स्वीडन से अमरीका आये थे। इसीलिए वह शरीर से बलिष्ठ था।

शिकागो विश्वविद्यालय से आध मील दूर, जेक्सन बाग की दूसरी ओर, "एलीवेटर" नामक गाड़ियों की सड़क है। बातचीत करते हुए हम उसके स्टेशन पर पहुँचे। इन गाड़ियों पर चढ़ने वाले चाहे आध मील जायँ, चाहे बीस मील, किराया ढाई आने ही देना पड़ता है। अपना किराया देकर हम ऊपर प्लेटफ़ार्म पर चले गये। प्लेटफ़ार्म पर कई तरह की छोटी-छोटी कलें रखी हुई थीं, जो सौदा बेच रही थीं। यदि आपको तम्बाकू की ज़रूरत है तो एक पैसा कल के मुंह में डाल दीजिये

और नीचेवाले लोहे के डण्डे को दबा दीजिये, आपको तम्बाकू मिल जायगा। इसी तरह बहुत-सी चीजों के लिए जुदा-जुदा छेद थे, जहाँ पैसा डालने से वह चीज मिलती थी; बिना पैसा डाले नहीं मिल सकती थी। भारतवासियों के लिये यह एक अचम्भे की बात थी।

गड़-गड़ करती हुई गाड़ी आ पहुँची। हम लोगों को, जगह न मिलने के कारण, खड़े रहना पड़ा। इस समय भीड़ होने का कारण यह था कि लोग सवेरे आठ बजे दुकानों पर जाते हैं और गाड़ियाँ केवल दो ही होती हैं। एक में तम्बाकू पीने वाले, दूसरी में हमारे जैसे मस्त बैठते हैं। मगर यह दिक्क़त कुछ ही मिनटों के लिए होती है। ज्यों-ज्यों शहर निकट आता जाता है, डिब्बा खाली होता जाता है।

मैं (मार्कस से)—"आप तो गरम कोट लेते आये, मैं तो लाया नहीं, पर आज कुछ ऐसी सर्दी भी तो नहीं है।"

मार्कस—"सर्द हवा चलते देर नहीं लगती, और फिर हम लोगों को झील के उस पार जाना है। वापिस आने तक ठण्ड पड़ने लगेगी।"

मैं—"तो क्या सर्दी में ठिठुरना होगा?"

मार्कस—"ठिठुरना क्यों होगा? इसी कोट में गटपट हो रहेंगे।"

"क्लार्क गली" में पहुँच कर हमने जनवा झील को जाने वाली रेलगाड़ी का स्टेशन तलाश किया। पता लगा कि गाड़ी के जाने में अभी एक घण्टे की देरी है। फैशन के मुताबिक यहाँ पर दूसरे-तीसरे दिन हजामत जरूरी है और यदि नाई से हजामत कराएँ तो १२॥ आने के पैसे लगते हैं, इसलिए रोज के और जरूरी कामों में हजामत भी शामिल है। मार्कस आज सुबह शीघ्रता के कारण हजामत नहीं कर सके थे।

मार्कस--"मैं तो नाई की दूकान पर जाता हूँ; आप यहाँ पर तमाशा देखें।"

मैं--"बहुत अच्छा।"

तमाशा क्या था, वही जो बड़े-बड़े शहरों में स्टेशनों पर होता है। मुसाफ़िरखाने में बहुत-सी बेंचे रक्खी हुई थीं, जिन पर स्त्री-पुरुष बैठे हुए भांति-भांति की बातें कर रहे थे। कोई अखबार पढ़ रहा था।

एक बेंच पर चार-पाँच आदमी खूब हँस-हँस कर गपशप लगा रहे थे। मैं उनके पीछेवाली बेंच पर बैठकर उनकी बातें सुनने लगा। एक ने कहा--

"हम रास्ते में बिजली की गाड़ी से आ रहे थे, एक आयरिश (Irish) हमारे कमरे में जगह न मिलने के कारण दरवाज़े ही पर खड़ा रहा। थोड़ी देर बाद किराया लेनेवाला कंडक्टर (Conductor) आया। उसने कहा--'आगे बढ़िये, साहिब।' आयरिश बोला--'ग़ज़ब ख़ुदा का! ढाई आने के पैसे भी दिये और घर तक पैदल भी चले!' इस आगे बढ़ने में उसका पैर दूसरे आदमी के पैर पर पड़ गया। वह आदमी बोला--'तुम्हारी आँखें कहाँ है?' आयरिश बोला--'सिर में।' उस आदमी ने कहा--'तो क्या मेरा पैर नहीं दीख पड़ता?' आयरिश बोला--'नहीं, तुम बूट पहिने हुए हो।"

दूसरा आदमी बोला--"हम तुमको एक दिल्लगी सुनावें। रात को हम तमाशा देखने थियेटर में गये। एक यहूदी अपने लड़के को साथ लेकर तमाशा देखने आया। सिर्फ़ अपने लिए टिकट ख़रीद कर लड़के के साथ वह झट अन्दर घुसने लगा। दरवाज़े पर जो टिकट देखने वाला था, उसने रोका और कहा कि एक टिकट इस लड़के के लिए भी ख़रीदना होगा। यहूदी बोला--"आप यक़ीन कीजिये, लड़का आँखें बन्द किये बैठा रहेगा!" यह सुनकर सब लोग खिलखिला कर हँस दिये।"

फिर तीसरा कहने लगा—"मैं कल दोपहर को एक गली से जा रहा था। एक बड़ा-सा कुत्ता भौंकता हुआ मेरे पीछे लगा। मैंने पहले तो समझा कि शायद हाथ मिलाना चाहता है; मगर जब वह उछलकर काटने को बढ़ा, तब मैं भागा। कुत्ता भी मेरे पीछे-पीछे चला। मैं एक अस्तबल में घुस गया। वहाँ मेरी नजर एक लम्बी लकड़ी पर पड़ी, जिसके एक तरफ़ लोहे की एक नोकदार कील थी। मैंने आव देखा न ताव, झट लकड़ी उठा ली और नोकदार छोर कुत्ते के चुभो दिया। इतने में कुत्ते का मालिक भागता हुआ आया और कुत्ते को ज़ख्मी देखकर झल्लाकर बोला—'किस लिए तुमने कुत्ते को ज़ख्मी किया?' मैंने कहा—'यह मेरे पीछे भागता हुआ आया था।' वह बोला—'क्यों तुमने लकड़ी के दूसरे सिरे से नहीं हटाया?' मैंने कहा—'क्यों नहीं वह मेरी तरफ़ पूँछ की ओर से आया?"

इस टोली का एक-एक आदमी इसी तरह हँसी-दिल्लगी की बात सुनाता और सब लोग खिलखिला कर हँसते। रेल का समय आगया। मुसाफ़िर अपना-अपना बैग लेकर तैयार हुए। मेरे साथी मार्कस भी आ पहुँचे।

रेल के प्लेटफ़ार्म पर जाकर पता लगा कि विश्वविद्यालय के २०० से अधिक विद्यार्थी आज जनवा की सैर को निकले हैं। इनमें से आधे के क़रीब लड़कियाँ थीं। हरएक के पास ब्यालू करने के लिए सामान था; मगर हम लोगों ने कुछ भी नहीं लिया था। सोचा था कि जनवा झील के पास जो गाँव है वहाँ से कुछ ले लेंगे।

टिकट काटनेवाले से मालूम हुआ कि यह स्पेशल ट्रेन (खास गाड़ी) है, जो विश्वविद्यालय के छात्रों ही के लिए रेलवे कर्मचारियों ने चलाई है। इसलिए केवल तीन बड़े-बड़े डिब्बे हम लोगों के लिए काफ़ी थे। एक डिब्बे में सौ के क़रीब आदमी बैठ सकते थे। यहाँ हिन्दुस्तान की तरह स्त्री-पुरुषों के लिए जुदा-जुदा डिब्बों का रिवाज नहीं था; मिलजुलकर साथ ही बैठ गये।

साढ़े नौ बजे के क़रीब गाड़ी खुली। शिकागो शहर की धूआँमिश्रित वायु तथा शोरगुल से बाहर हुए। मैदान की शुद्ध पवन का संचार हुआ। गाड़ी के दोनों ओर हरियाली ही हरियाली थी। सब्ज पत्तों से सुसज्जित वृक्ष अपने पूरे सौन्दर्य में दिखलाई पड़ते थे। प्रकृति माता की शोभा अनुपम थी। मार्च में जहाँ हिम ही हिम दृष्टि पड़ती थी, वहाँ उस समय मई में हरी मखमल का बिछौना बिछा हुआ था। गाड़ी में बैठे हुए हम लोग उस सुन्दर दृश्य को देख-देखकर आनन्दित हो रहे थे। प्रसन्नचित्त विद्यार्थियों ने शिकागो का राग अलापना आरम्भ किया--

शिका--गो--गो !
गो--शिका--गो, गो--शिका--गो;
गो--शिका--गो, गो--शिका--गो;
शिकागो--गो !

ऊँचे स्वर से एक ध्वनि में जब सब लोगों ने "शिकागो--गो" कहा, तब मुझे बड़ा ही आनन्द आया। कहाँ यह जीवन और कहाँ हमारे देश के लोगों का ! स्वतन्त्र और स्वच्छन्द; एक ही प्रकार के अधिकार; सब लड़के-लड़कियों का इकट्ठे विद्याध्ययन; इकट्ठे ही खेल-कूद।

मार्कस के पास उसका एक और साथी आ बैठा; इससे हम लोग तीन आदमी होगये। कुछ देर तक हम लोग भिन्न-भिन्न विषयों पर बात-चीत करते रहे। फिर मैंने मार्कस से कहा कि मै जरा गाड़ियों में घूमकर देख आऊँ कि और सब लोग क्या कर रहे हैं।

रेलगाड़ियों के डिब्बे यहाँ हिन्दुस्तान की तरह कबूतरखानों जैसे नहीं होते। बहुत लम्बे-चौड़े होते हैं, जिनमें पचास-साठ आदमी आसानी से बैठ सकें। उनके बीच में आने-जाने का रास्ता रहता है और एक गाड़ी दूसरी से इस प्रकार जुड़ी रहती है कि एक आदमी सब गाड़ियों में आ जा सकता है।

अधिकांश विद्यार्थियों को मैंने ताश खेलते हुए पाया। चार-चार

आदमी बीच में मेज रख कर तुरब (whist) खेल रहे थे। कोई-कोई मासिक पुस्तकें पढ़ रहे थे। एक जगह तीन लड़कियाँ बैठी बातचीत कर रही थीं। उनमें से एक, जिसका नाम 'मिस स्काट' था, मुझसे परिचित थी। जिस समय उसने मुझे देखा, बड़े प्रेम से हाथ मिलाया और अपनी एक सहेली से कहा—

मिस नैना, मिस्टर देवा से परिचित हो लीजिए।"

मिस नैना ने मेरे साथ हाथ मिलाया। मैंने कहा—"आपका परिचय पाकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ।" इस प्रकार दूसरी मिस एडम्स के साथ मिस स्काट ने मेरा परिचय करवाया। फिर मिस स्काट ने अपनी सहेलियों से कहा—"मिस्टर देवा हिन्दुस्तान से यहाँ विद्याभ्यास के लिये आए हैं। आप और मैं दोनों पिछली गरमियों में एक ही प्रोफ़ेसर से वक्तृता का अभ्यास करते थे। मिस्टर देवा ने बहुधा अच्छे-अच्छे विषयों पर व्याख्यान देकर हम लोगों को अनुगृहीत किया था। इनकी और मेरी पहिचान तभी से है।"

नैना—"अच्छा, तो आप हिन्दुस्तान के रहनेवाले हैं! मैंने समझा था कि आप इटली के निवासी हैं।"

मैं (मुस्कराकर)—"बहुधा लोगों ने यहाँ मुझे इटली ही का निवासी समझा है।"

मिस स्काट—"मिस्टर देवा, मैंने आपको अपनी सहेली नैना के विषय में कुछ नहीं कहा। आप जानकर प्रसन्न होंगे कि यह रूस की रहनेवाली है और रूस में स्वतन्त्रता के लिए जो संग्राम हो रहा है, उसमें ये भी शामिल रही हैं। अभी एक ही महीना इनको यहाँ आये हुआ है।"

भला ऐसा कौन मनुष्य होगा जिसे ऐसी देवी के दर्शन कर आह्लाद न हो! स्वतन्त्रता—देश की स्वतन्त्रता—जैसे पुण्य के काम में जिसने अपने आपको बलिदान कर दिया हो, मातृभूमि की दुःख-निवृत्ति के लिए जिन्होंने अपने आपको ख़तरे में डाला हो, हम ऐसी आत्माओं को नमस्कार

करते हैं। मिस स्काट के इस कथन पर उस देवी में मेरी श्रद्धा और भक्ति बढ़ गई। मैंने ध्यानपूर्वक उसकी ओर देखा। बीस वर्ष की यह युवा लड़की, हाथ पैर से मजबूत, गोल चेहरा, बड़ी-बड़ी आँखें, कद कोई साढ़े पाँच फ़ीट से कुछ अधिक, साधारण वस्त्र पहने हुए, मुझे मानो देश-भक्ति का उपदेश दे रही थी।

मैं—"आपने अंग्रेजी भाषा का अभ्यास कहाँ किया था ?"

नैना (जरा लजाकर)—"मुझे अंग्रेजी बोलने का अभ्यास बहुत कम है। स्कूल में थोड़ा सा अभ्यास किया है।"

मिस एडम्स ने, जो अभी तक चुप थीं, मुझसे कहा—

"मिस्टर देवा, हम लोग यहाँ हिन्दुस्तान के हालात जानने को बहुत उत्सुक हैं। प्रायः पादरियों से ही समाचार मिलते हैं। आज हमें बहुत अच्छा अवसर मिला है कि आपसे ठीक-ठीक हालात दरियाफ़्त करें। आप बतलाइए कि क्या सचमुच आप लोग स्त्रियों को क़ैदियों की तरह रखते हैं ?"

मैं—"आप अपने प्रश्न को जरा स्पष्ट कर दीजिए तो मैं उत्तर दूं।"

एडम्स—"मैंने व्याख्यानों में सुना है और किताबों में पढ़ा है कि हिन्दू लोग अपनी औरतों को घरों में कैदियों की तरह रखते हैं। यदि बाहर जायँ तो मुँह पर परदा डाल कर; यदि किसी के यहाँ लड़की पैदा हो तो घर में मातम सा छा जाता है; पुरुष स्त्री से बातचीत करना छोड़ देता है और कहता है कि क्यों इसने लड़की पैदा की ? बहुतेरे तो लड़कियों को मार भी डालते हैं।"

यह विषय रोचक था और मिस एडम्स ने जरा ऊँची आवाज से बातचीत की थी, इससे इधर-उधर की लड़कियाँ और लड़के पास आकर बैठ गये और उत्तर की आकांक्षा में मेरे मुँह की ओर देखने लगे।

मैं—"इसमें सन्देह नहीं कि हमारे देश में स्त्रियों को ऐसी स्वतन्त्रता नहीं जैसी इस देश में है। हम लोग इन अबलाओं के अधिकारों की तरफ़

बहुत कम ध्यान देते हैं। तिस पर भी हम स्त्रियों को कैदियों की तरह नहीं रखते। हम उनकी इज्जत करते हैं और घरों में हमारी मातायें पूरे अधिकार रखती हैं। यह सच है कि बहुत से अनपढ़ मूर्ख लोग स्त्रियों को कष्ट देते हैं और लड़की का पैदा होना बुरा समझते हैं, मगर यह दशा उच्च और शिक्षित लोगों में नहीं है। परदे के कारण भी कई हैं। परदे का रिवाज हिन्दुस्तान में विदेशियों के आने से पहले प्रचलित न था और अब भी कई प्रान्तों में नहीं है।"

एक लड़की—"हिन्दुओं का धर्म ही ऐसा है जिसमें मर्दों की अपेक्षा स्त्रियाँ नीच समझी जाती हैं। स्त्रियाँ पति के जूठे टुकड़े खाकर रहती हैं; मातायें लड़कियों को गंगा में फेंक देती हैं और यहाँ तक कि पति के मर जाने पर स्त्री का सिर मूँड उसे सारी उम्र मातमी लिबास पहिनाये रखते हैं।"

ऐसी बातें सुनकर एक लड़की ने धीरे से कहा—"परमात्मा का शुक्र है कि मैं ऐसे मुल्क में पैदा नहीं हुई।"

मैं—"असल में बात यह है कि हिन्दुओं के धर्म के अनुसार स्त्री पुरुष की अर्द्धाङ्गिनी है। जो धर्म और शास्त्र की मर्य्यादा समझते हैं, वे स्त्रियों को वैसे ही अधिकार देते हैं, परन्तु हमारे देश में मूर्खता अधिक है। इसलिए ऐसी-ऐसी बातें आप लोगों के सुनने और पढ़ने में आती हैं। हम लोग ऐसी स्वतन्त्रता भी देना नहीं चाहते जैसी इस देश में है। आप लोग एक सीमान्त पर हैं और अधिकांश लोग हिन्दुस्तान में दूसरे सीमान्त पर। हम उस रास्ते जाना चाहते हैं जिस पर हमारे पूर्वज चलते थे।"

एडम्स—"वह कौन सा ?"

मैं—"स्त्री और पुरुष के अधिकार बराबर हैं। स्त्री घर की स्वामिनी है; मनुष्य का अधिकार-स्वातन्त्र्य घर से बाहर है। स्त्रियों को विद्याध्ययन वैसा ही आवश्यक है, जैसा कि पुरुषों को। स्त्री का मान, सत्कार, पूजा करना पुरुष का धर्म है।"

इतने में टिकट काटनेवाले ने आकर कहा—"यहाँ गाड़ी बदलेगी।" सब लोग उठ खड़े हुए। मैंने मिस स्काट से कहा कि स्टीमर में आप लोगों से फिर भेंट होगी। शीघ्र उनसे जुदा होकर में अपने मित्र के पास आया।

दूसरी गाड़ी में बैठकर दो तीन स्टेशन ही गये थे कि जनवा झील दिखाई पड़ने लगी। इस झील का नाम जनवा झील, जो स्विटजरलैंड में है इसलिए रक्खा गया है कि यह उसी की तरह रमणीक है। दृश्य भी इसके वैसे ही हैं। शिकागो से उत्तर-पश्चिम, ७० मील की दूरी पर, यह झील है। इसकी लम्बाई ९ मील और चौड़ाई सवा मील से तीन मील तक है।

रेलगाड़ी ठीक झील के किनारे जाकर खड़ी हुई। गाड़ी से उतर कर हम लोग हारवर्ड नामी अग्निबोट में जा बैठे। पवन मन्द-मन्द गति से चल रहा था। अग्निबोट में एक आदमी, जिसका काम यही था कि यात्रियों को झील के इर्द-गिर्द के घरों, फुलवाड़ियों और दृश्यों का हाल बयान करे, सब लोगों को वहाँ का वृत्तान्त बताता जाता था। झील के चारों ओर बहुत अच्छे-अच्छे घर बने हुए थे, जहाँ शिकागो के धनाढ्य आदमी गर्मियों में आकर रहते थे। छोटी-छोटी पहाड़ियाँ वृक्षों और घास से लदी हुई झील की शोभा को दुगना करती थीं।

हँसते-खेलते विद्यार्थी लोग विश्वविद्यालय की प्रशंसा के गीत गा रहे थे और अपनी इस यात्रा का पूरा आनन्द उठा रहे थे। आज ज़रा बदली थी। जब पवन ज़ोर से चलने लगता तब शीत मालूम होता था। मैंने मार्कस का कोट ओढ़ लिया ओर अच्छी तरह आराम से बैठ गया। एक विद्यार्थी अपने साथ फ़ोटोग्राफी का केमरा लाया था। उसने उसी समय सबकी तसवीर ले ली।

बारह बजे के बाद हम लोग झील के उस पार, झील जनवा नामी गाँव में, पहुँचे। अधिकांश लोग वहाँ होटल में खाना खाने चले गये। मैं, मार्कस और तीसरा साथी गाँव के बाहर एक वृक्ष के तले बैठ गये। जो

खाने का सामान हमारा तीसरा साथी लाया था, वह हम तीनों के लिए काफ़ी था। सो हम लोगों ने आनन्द से भोजन किया। लौटते समय रात को खाने के लिए फल और रोटी मोल ले ली।

हमारे देश के गाँवों की तरह यहाँ के गाँव नहीं हैं। यहाँ के ग्रामीण मकान फ़ासले-फ़ासले पर सुन्दर और हवादार होते हैं। मकानों के बनाने में अधिकतर लकड़ी से काम लेते हैं। ओलतीनुमा छतें रहती हैं। मकान एक दो छतों के बनाते हैं। यहाँ चाहे गरमी हो चाहे जाड़ा, अन्दर कमरों में लोग सोते हैं। प्रत्येक गाँव में स्कूल है, टेलीफ़ोन है, बिजली की रोशनी का प्रबन्ध भी बहुत जगह है, परन्तु ग़रीब लोग प्रायः मिट्टी का तेल जलाते हैं। मकान की कुर्सी ज़मीन से अक्सर पाँच-सात फ़ीट ऊँची होती है। मकानों में मच्छर, मक्खी न घुसें, इसलिए हरएक खिड़की और दरवाज़े के आगे बारीक जालियाँ लगी रहती हैं। खिड़कियों के दरवाज़ों में शीशे लगे रहते हैं।

अग्निबोट की सीटी बजी। हम लोगों ने समझा कि वापस जाने का समय होगया। क्योंकि रास्ते में झील के एक किनारे शिकागो विश्वविद्यालय की प्रकाण्ड यन्त्रशाला (Observatory), जो यर्कस साहब के नाम से मशहूर है, देखनी थी। असल मतलब इस यात्रा का यही था, इसलिए सब लोग झटपट अग्निबोट में आ गये।

अढ़ाई बजे के करीब अग्निबोट यर्कस यन्त्राशाला के सामने पहुँच गया। विश्वविद्यालय के अधिकारियों ने लाखों रुपये इमारत तथा दूसरे सामान के लिए इसलिए ख़र्च किये हैं जिससे ज्योतिषविद्या के प्रेमी छात्र और आचार्य अपनी रुचि के अनुसार इस विद्या से लाभ उठा सकें। एक ऊँची पहाड़ी के ऊपर इस शाला की बहुत विशाल इमारत बनाई गई है। उसके तीन ओर गुम्बद हैं। एक ओर के बड़े गुम्बद में संसार में शायद सबसे बड़ी दूरबीन रक्खी है। दूसरे दो गुम्बदों पर छोटी-छोटी दूरबीनें हैं।

जब और विद्यार्थियों के साथ मैं उस बड़े गुम्बद में पहुँचा जहाँ वह दीर्घकाय दूरबीन रखी थी, तो मैं आश्चर्य से आखें फाड़-फाड़ कर उसे

देखने लगा। उसके बड़े-बड़े चक्र और भाप के बल से उस गुम्बद का घूमना और दूरबीन का भी तारों की गति के अनुसार साथ-साथ घूमते जाना हैरानी में डालता था। जब सब विद्यार्थी गुम्बद में इकट्ठे होगये तब एक आचार्य ने हम लोगों को सब घुमा-फिरा कर दिखाया। हमें समझाया कि किस तरह तारों की गति तथा अन्यान्य ज्योतिष सम्बन्धी बातें इस यन्त्र से जानी जा सकती हैं। सूर्य के ऊपर जो धब्बे दिखाई देते हैं, उनके कई फ़ोटो हमें दिखाये। पाठक समझ सकते हैं कि ४० इञ्च के शीशे (Lens) से कैसी अच्छी तरह आचार्य लोग यहाँ आकाश बेधते होंगे और जो फ़ोटो उस शीशे के द्वारा ली गई होंगी, वे कैसी होंगी। फ़ोटोग्राफ़ी और ज्योतिष विद्या का जो आपस का सम्बन्ध है, उसका महत्व आचार्य ने हम लोगों को बहुत ही अच्छी तरह बतलाया।

इसी प्रकार चारों गुम्बदों में विद्यार्थी गये और आचार्यों ने सबके यथायोग्य प्रयोगों का वृत्तान्त संक्षेप से समझा दिया।

पाठक, हम आपसे क्या कहें। जब-जब इस देश में हमको ऐसे-ऐसे उपयोगी और लाभदायक वैज्ञानिक यन्त्रों के देखने का अवसर मिलता था, तब-तब हमारे मुंह से बेइख़्तयार यही निकलता—"स्वतन्त्र देश क्या नहीं कर सकता!" यहाँ अमरीका में लोगों को अपनी मानसिक शक्तियों की उन्नति करने का कैसा अच्छा अवसर मिलता है! इस विद्यालय में करोड़ों रुपये लगाकर ज्योतिष का सामान केवल अमरीकन बच्चों के उपकारार्थ रखा गया है। जिस किसी को ज्योतिष में रुचि है वह यहाँ आकर सारी आयु व्यतीत कर सकता है। उसको वज़ीफ़े और हर तरह की सहायता मिलती है, जिससे वह विज्ञान में वृद्धि करे। एक हमारा देश है, जहाँ करोड़ों आदमी पशुओं की तरह पैदा होते हैं और जन्म भर अविद्यान्धकार में पड़े-पड़े मर जाते हैं। उनको मनुष्य-जीवन मिलना और न मिलना बराबर है। जो चाहते हैं कि उन्नति करें, विद्या पढ़ें, उनको कोई उत्साह देने वाला नहीं। सामान नहीं; कोई

स्थान ऐसा नहीं जहाँ वे अपनी शक्तियों का यथायोग्य उपयोग कर सकें।

आचार्य की इच्छा थी कि वह उस बड़ी दूरबीन से सूर्य के धब्बे दिखावे। मगर बदली के कारण हम लोग अपनी यात्रा से पूरा लाभ न उठा सके, इसलिए उसने केवल भिन्न-भिन्न यन्त्रों के उपयोग बतलाये। जिन तारागणों को दूरबीन की सहायता से भी अच्छी प्रकार नहीं देख सकते, उनकी धीमी रोशनी के सामने फ़ोटोग्राफ़ के प्लेट बहुत देर रखने से जो तबदीलियाँ उस पर होती हैं उनसे उन तारागणों का बहुत कुछ हाल मालूम हो जाता है। ज्योतिष विद्या सम्बन्धी जो-जो प्रश्न विद्यार्थियों ने किये उन सबका आचार्य ने सन्तोषजनक उत्तर दिया। इस देखने-भालने में हमारे तीन घण्टे ख़र्च होगये।

भोजन का समय हो जाने के कारण सब लोगों ने ब्यालू की। हमने भी केले और रोटी से पेट भरा। इसके बाद यहाँ के ज्योतिष पुस्तकालय को देखा। वहाँ तारागणों के कितने ही नक्शे हैं। सूर्यग्रहण के बहुत बड़े-बड़े फ़ोटोग्राफ़ हैं। अनेक प्रकार के फ़ोटोग्राफ़ यहाँ देखने में आये।

अग्निबोट ने सीटी दी और हम लोगों ने समझा कि वापस जाने का समय होगया। सब लोग समय पर अग्निबोट में आगए। ठीक सन्ध्या हो जाने पर हम लोग रेल के स्टेशन पर पहुँचे। शिकागो की गाड़ी खुली और दस बजे रात को हम लोग शिकागो पहुँच गए। स्टेशन पर विद्यार्थियों ने फिर "शिकागो-गो" की ध्वनि की। मार्कस और मैं विश्वविद्यालय की ओर चले।

मार्कस ने मेरा हाथ अपने हाथ में दबाकर कहा—"क्यों, सैर का आनन्द आया ?"

"आनन्द तो आया, मगर एक कसर रह गई।"

"वह क्या ?"

"उस बड़ी दूरबीन से सूर्य के धब्बे न देख सके; बदली ने काम ख़राब कर दिया।"

"ख़ैर, फिर कभी सही । झील जनवा दूर तो है ही नहीं ।"

"फिर क्या रोज़-रोज़ आना थोड़े ही होगा ?"

"यह क्यों ? दो ही डालर ख़र्च हुए हैं न ? आधा डालर भोजन का समझ लो ।"

"हर वक्त थोड़े ही प्रोफ़ेसर इस प्रकार बतलाने को तैयार होगा ?"

"हाँ, गर्मियों में एक दिन फिर बहुत से विद्यार्थी आवेंगे। हर तीसरे महीने एक बार प्रोफ़ेसर मोल्टन अपने विद्यार्थियों को वहाँ भेजते हैं ।"

"अच्छा, देखो, यदि मैं गर्मियों में शिकागो में रहा तो अवश्य ही एक दफ़े फिर आऊँगा ।"

"मैं तो इस बार गर्मियों में बाहर स्टीरियास्कोप के चित्र बेचने मिनोसोटा जाऊँगा ।"

"सचमुच ?"

"ज़रूर ।"

"तीन महीने में कितना कमाने की आशा रखते हो ।"

"कह नहीं सकता । कम-से-कम सात-आठ सौ रुपये से कम क्या कमाऊँगा !"

"आप अमरीकन लोग रुपया कमाने में बहुत चतुर हैं ।"

"यह पहली बात है जो हमारे माँ-बाप लड़के-लड़कियों को सिखाते हैं । अमरीकन कहीं चला जाये, भूखा नहीं मरेगा । कोई न कोई काम कर ही लेगा ।"

"हमारे देश में तेली का बेटा तेली और बाबू का बेटा बाबू बनने की कोशिश करता है ।"

"तभी वहाँ के लोग भूखे मरते है। यहाँ शिकागो के एक करोड़-पति का लड़का भी एक कारखाने में काम करता है और १५० रुपये महीना कमाता है, सिर्फ़ इसलिए कि बाप के रुपये के ऊपर अवलम्ब करना ठीक नहीं, मुमकिन है बाप कंगाल हो जाये या उस पर कोई आपत्ति आजाये।"

"इसमें शक नहीं। मै इन बातों का मूल्य अब अच्छी तरह समझा हूँ। हमारे देश में दस-दस बीस-बीस बरस हज़ारों रुपये खर्च करके हम लोग स्कूल और कालिजों में पढ़ते और परीक्षायें पास करते हैं और बाद में जगह-जगह नौकरी के लिए जूतियाँ चटखानी पड़ती हैं।"

"यहाँ हमारे ही विश्वविद्यालय में आप लड़कों को देखें। उनके हाथ देखने से साफ़ मालूम हो जायेगा कि इन लोगों ने मेहनत-मजदूरी की है। क्यों? इसलिए कि हर अमरीकन लड़के का सिद्धान्त है—"To lead an independent life" अर्थात् "स्वतन्त्र जीवन व्यतीत करना।" यदि कोई और काम न मिले तो मजदूरी करके ही ९ रुपये रोज कमा लेगा।"

"एक हमारा देश है, जहाँ मजदूरी करने वाले नीच जाति में गिने जाते है और उनके साथ उठना-बैठना, मिलना-जुलना लोग बुरा समझते है।"

"आप लोगों की नस-नस में कुलीनता (Aristocracy) भरी पड़ी है।"

मैं चुप होगया। हमारी नस-नस में कुलीनता भरी है, क्या यह सच नहीं है? सच है। किस घृणा की दृष्टि से तेली, चमार, लोहार, धोबी, मोची आदि लोग देखे जाते हैं। किसी के बाप-दादे ने कलाल का काम किया तो उसका सारा वंश निन्दित होगया और उनकी भिन्न बिरादरी कर दी गई। इसी प्रकार सबके जुदा-जुदा पेशे होगये। नीच-ऊँच का भाव सिर से पैर तक हमारे देश में है। अफ़सोस!

बिजली की गाड़ी में बैठकर आधे घण्टे में हम विश्वविद्यालय के पास पहुँच गये। मार्कस "गुड नाइट" कहकर अपने घर चला गया और मैं अपने कमरे में पहुँचा। कपड़े उतार बिछौने पर लेट गया। आध घण्टा उसी कुलीनता वाली बात की उधेड़बुन में लगा रहा। इसके बाद म सो गया।

नवाँ अध्याय

दो भारतीयों में भेंट

सन् १९०४ में जब मैं काशी से अमरीका जाने की तैयारी कर रहा था तो उस समय एक बार मैं स्वामी सोमदेवजी के साथ सारनाथ गया। मुझे भिक्षु अनागरिक धर्मपालजी से मिलना था। वे उन दिनों वहीं पर विराजमान थे। यहीं पहलेपहल मैंने सन्त निहालसिंहजी को देखा था। वे थे उस समय बिलकुल जवान——लड़के से। उनकी इच्छा भी नई दुनिया देखने की थी। अखबारी दुनिया में वे पड़ चुके थे और अंग्रेजी के लेख लिखा करते थे। वे भी सारनाथ में श्री अनागरिक मंपालजी से कुछ सहायता लेने के लिए आए हुए थे। सन्तजी से उस समय बिलकुल साधारण सा परिचय हुआ था, लेकिन मुझे यह मालूम था कि वे विवाहित हैं और उनका घर रावलपिंडी में है।

खैर, मैं उन्हें भूल सा गया। सन् १९०६ के शीतकाल के प्रारम्भ में मैं एक रोज़ अपने कमरे में बैठा हुआ था; मुझे टेलीफ़ोन पर किसी ने बुलाया। पता लगा कि सन्तजी भी शिकागो पहुँच गए हैं। वे मुझसे मिलने के लिए आये और हम लोग पंजाबी होने के नाते आपस में हिलमिल गये। शिकागो के किसी एक अंग्रेज़ी पत्र के सम्पादन-विभाग में एक युवती काम करती थी, जिसका रुझान पत्रकला की ओर था। सन्तजी का उससे परिचय होगया; परिचय होते-होते घनिष्ठता बढ़ गई। निहालसिंहजी दूरदर्शी और चतुर व्यक्ति थे। उन्होंने सोच लिया कि जब तक किसी अपने ढंग की, समाचार-पत्रकला में निपुण रमणी को पक्का साथी न बनाया जायेगा तब तक वे समाचारपत्र-संसार में न चमक सकेंगे। उन्होंने उस युवती से पाणिग्रहण का निश्चय कर लिया। एक दिन बातचीत में

जब उन्होंने मुझसे अपने हृदय की बात कही तो स्वाभाविक ही मैंने उसका विरोध करना था। मेरा विरोध सुनकर वे बोले—

"देखिये सत्यदेवजी, पहला विवाह मेरे माता-पिता ने मेरी मर्ज़ी के विरुद्ध किया था। मैं उस समय विवाह सम्बन्धी बातों को जानता भी नहीं था। इस प्रकार उसकी कोई भी ज़िम्मेदारी मेरे सिर पर नहीं है।"

मैं क्या कहता! बात सच्ची थी। लेकिन तिस पर भी मैंने उनसे अनुरोध कर कहा—

"बेशक, मित्र, तुम्हारा यह कहना ठीक है, लेकिन फिर भी आपके पिता की भूल का दण्ड उस बेचारी ग़रीब हिन्दू-पत्नी को भोगना पड़ेगा। इसे सोच लीजिये।"

इस पर सन्तजी ने कुछ जोश में जवाब दिया—

"क्या उसके लिए मैं अपना भविष्य बिगाड़ लूँ? यहाँ एक ऐसी लड़की मुझे मिल रही है जो अमरीकन पत्रकला में बड़ी कुशल है। वह बराबर यहाँ के अख़बारों में लेख लिखती है। मुझे भी ईश्वर ने वही वरदान दिया है और मैं हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में अत्यन्त मनोरंजक लेख यहाँ की मेगज़ीनों में लिख सकूँगा। ऐसी पण्डिता स्त्री का सहयोग प्राप्त हो जाने से मेरे काम में लग जायेंगे चार चाँद—मुझे प्रसिद्धि भी मिलेगी और पैसा भी। मैं ऐसा सुअवसर क्यों छोड़ूँ?"

मैं चुप होगया। सन्तजी की दलीलें प्रबल थीं, जो बाद के अनुभव से सत्य प्रमाणित हुईं। हम लोग शिकागो में रहनेवाले हिन्दुस्तानियों के एक भोज में गये, जहाँ आपस में ख़ूब विचार-विनिमय हुआ। सन्तजी इसके बाद संयुक्त राज्य अमरीका में मुझसे नहीं मिले, यद्यपि मैं उनकी चामत्कारिक लेखनी का रसास्वाद करता रहा और उनका उत्थान देखकर अत्यन्त प्रसन्न होता था।

बाद में, बहुत वर्षों के पीछे, सन् १९३५ में उनसे मेरी फिर भेंट देहरादून में हुई। वे अपने बंगले में अमरीकन स्त्री के साथ निवास करते

थे। बहुत ही अच्छी तरह से वे मिले और भद्रोचित व्यवहार किया। उनकी स्त्री भी अत्यन्त सुशीला सिद्ध हुई। सन्तजी ने अच्छा चुनाव किया था। बातचीत में उस देवी ने मुझसे कहा—

"हम दोनों अत्यन्त स्नेहपूर्वक रहते हैं। हमारा आपस में कुछ मत-भेद नहीं होता, क्योंकि मैंने प्रारम्भ से ही अपनी लेखनी का अधिकार पतिदेव को सौंप दिया था। जो कुछ भी मैं लिखूं, वह सब मेरे पति के नाम से ही बाहर जायेगा। इसी समझौते पर हम लोगों का आपस में सम्बन्ध हुआ और ईश्वर की कृपा से हमारी अच्छी तरह से गुजरती चली जाती है।"

उस अमरीकन स्त्री का यह अद्भुत बलिदान देखकर मैं दङ्ग रह गया। आज दुनिया ख्याति के लिए मरी जाती है; इस पतिव्रता रमणी ने अपने व्यक्तित्व को पति के व्यक्तित्व में मिलाकर विवाह के हिन्दू-आदर्श को सिद्ध करके दिखला दिया।

यह सन् १९०७ की बात है। मैं विश्वविद्यालय से लेखनकला का पाठ लेकर अपने कमरे में आकर बैठा ही था कि किसी ने मेरे कमरे की घंटी बजा दी। मैंने दरवाजा खोला तो देखता क्या हूँ कि एक काला, बिलकुल काला आदमी, अमरीकन पोशाक में, हैट हाथ में लिये खड़ा है। जब मैंने "हैलो" कहा, तब आप बोले—

"मेरा नाम महेशचरणसिंह है और मैं आरेगन से आ रहा हूँ।"

महेशचरणसिंह जी से मेरा पत्रव्यवहार पहले ही से था। मैं 'सरस्वती' में लेख लिखा करता था—अमरीकन विषयों पर। महेशचरणसिंह जी उन्हें पढ़ा करते थे, इसी से आपस में पत्र-व्यवहार होगया था। मैंने उनके साथ बड़े उत्साह से हाथ मिलाया और कमरे में लेजाकर बिठलाया। जब मैंने उनका हाल-चाल पूछा तो आप बोले—

"भाई, आप पहले मेरे खाने का प्रबन्ध कीजिये। मैं तो भूखा मर गया।"

मैंने हैरानी के लहजे में पूछा—"अमरीका में तो कोई जात-पात नहीं पूछता; होटल बराबर खुले रहते हैं; जो चाहे खाइये; फिर आप भूखे क्यों मरे ?"

इस पर महेशचरणसिंह जी ने खिन्न होकर उत्तर दिया—"अरे भाई, पूछिये मत। अमरीका में एक नई जातपात, काले गोरे रंग की, चली हुई है। मैं पेसेफ़िक कोस्ट से चला हूँ और शिकागो आया हूँ। इतने लम्बे सफ़र में मुझे कितना कष्ट उठाना पड़ा है, इसका मैं वर्णन नहीं कर सकता। मैं जिस होटल में जाता था वहाँ यही सुनना पड़ता था—'We don't serve negroes here.' अर्थात् 'हम हब्शियों को यहाँ भोजन नहीं देते।' मैं बड़ी मुश्किल से यहाँ तक पहुँचा हूँ।"

उन्हें दिलासा देकर मैं बोला—"चलिये मेरे साथ; खिलाऊँ मैं आपको पेट भरकर।"

मैं इन दिनों विश्वविद्यालय के निकटस्थ शाकाहारी भोजनालय में खाना खाने जाता था; वहीं मैं उन्हें भी लेगया। हम लोग अन्दर जाकर एक गोल मेज़ के इर्दगिर्द कुर्सियों पर बैठ गये। भोजन परोसने वाली लड़की मेज़ के पास आकर मुझसे बोली—

"इधर आइये मिस्टर देवा, आपसे कुछ कहना है।"

बेचारे महेशचरणसिंह का माथा ठनका। वे बोले—"हुई न वही बात ?" मैंने कहा—"घबराइये नहीं", और उठकर उस लड़की के साथ चला गया। मुझे एकान्त में लेजाकर वह बोली—

"मिस्टर देवा, हम यहाँ हब्शियों को भोजन नहीं देते। यदि हम ऐसा करने लग जायेंगे तो हमारा होटल बन्द हो जायेगा।"

उस लड़की का स्वभाव बहुत ही अच्छा था और मैं उसे बहुत मानता था। मैंने मुस्कराकर समझाया—

"मेरा यह मित्र नीग्रो नहीं है। वह मेरा देशवासी है और आरेगन विश्वविद्यालय से एम० एस-सी० की परीक्षा पास कर हिन्दुस्तान वापस जा रहा है।"

मैंने देखा कि उसके चेहरे पर आश्चर्य के भाव थे। वह मुझ से बोली—

"मिस्टर देवा, आप तो बिलकुल हमारे जैसे हैं। आपके देश में ऐसे काले आदमी क्यों हैं ?"

मैंने हँसकर उत्तर दिया—"ईश्वर ने हमारा देश ऐसा बनाया है कि जिसमें काले, गोरे, गन्दमी, साँवले—सभी रंग के नमूने मिलते हैं। इसलिए हमारा धर्म ऐसे रंग के भेदभाव नहीं मानता।"

उसकी तसल्ली होगई। वह संतुष्ट होकर बोली—

"ओह, तब कोई डर की बात नहीं। आप चलिये, बैठिये; मैं आप दोनों के लिए गर्मागर्म भोजन लाती हूँ।"

जब मैं लौटकर आया तो मेरे मित्र चिन्तित भाव में बैठे थे। मेरा हँसता हुआ चेहरा देखकर खुश होगए और वह लड़की शीघ्र ही भोजन लेकर आगई। हम दोनों ने अच्छी तरह से खाना खाया और पेट भर बातें भी कीं।

श्री महेशचरणसिंह जी अमरीका से लौटकर गुरुकुल काँगड़ी (हरिद्वार) में कुछ समय तक प्रोफ़ेसर रहे। बाद में कई प्रकार के धन्धों में उन्होंने हाथ डाला।

इस प्रकार शिकागो विश्वविद्यालय में रहते हुए मेरा ऐसा मनोरञ्जक अनुभव इन दो भारतीयों से हुआ। आज इतने वर्षों के बीत जाने पर भी उनकी स्मृतियाँ मेरे हृदय-पटल पर खिची हुई है। मनुष्य का मस्तिष्क कैसी विस्मयजनक वस्तु है, जिसमें वर्षों के संस्मरण सुरक्षित धरे रहते हैं !

दसवाँ अध्याय

अमरीका में विद्यार्थी-जीवन

हमारे देश के स्कूलों, कालेजों और पाठशालाओं में पढ़ने वाले विद्यार्थी यह जानने के लिए बड़े ही उत्सुक होंगे कि नई दुनिया (अमरीका) के विद्यार्थी अपने विश्वविद्यालयों में किस प्रकार रहते और विद्याभ्यास करते हैं। इसलिए यह अध्याय मैं बड़े प्रेम से अपने भारतीय छात्रों की भेंट करता हूँ।

अमरीकन विद्यार्थी स्वभाव से ही हँसी, मज़ाक और दिल्लगी पसन्द करते हैं। यह उन लोगों का जातीय गुण समझिये। इसलिए इनके जीवन को इन्हीं की आँखों से देखने वाला पुरुष इनकी आदतों और कामों को भली प्रकार समझ सकता है। सम्भव है कि यहाँ के विद्यार्थियों की कई एक बातें हमारे पाठकों को पसन्द न आवें, और हम यह चाहते भी नहीं कि वे उन्हें ज़रूर ही पसन्द करें। हम लेखक हैं; लेखक का धर्म आकाश-पाताल के कुलाबे मिलाना नहीं है, आदमियों को देवता बनाना नहीं है, बलिक सच्ची बातें जनता के सामने रखना है। यदि हम केवल चुन-चुनकर ख़ास-ख़ास बातें लिखें और तारीफ़ों के तूमार बाँध दें तो हम पाठकों को भुलावा देने के अपराधी होंगे। यह हम स्पष्ट तौर से कह देते हैं कि भारत को बहुत सी बातें अमरीका से सीखनी हैं और उनमें से अमरीकन विद्यार्थियों की जीवनचर्या बहुत ही शिक्षादायक है; क्योंकि इन्हीं विश्वविद्यालयों में अमरीका के रत्न उत्पन्न होते हैं; यहीं स्वाधीन चिन्तन के बीज बोये जाते हैं; यहीं देशभक्ति के प्रति श्रद्धा उत्पन्न की जाती है और यहीं पर साहित्याचार्यों का जन्म होता है।

बनैलू विद्यार्थी और उसका प्रवेश-संस्कार

हाई स्कूल पास करके जो विद्यार्थी कालेज में भरती होता है, उसको

अमरीकन विश्वविद्यालय की परिभाषा में 'Freshman' अर्थात् बनैलू विद्यार्थी कहते हैं। यह क्यों ? इसलिए कि विद्यालय के ऊँचे दरजे के छात्रों के ख्याल में वह जङ्गली समझा जाता है, क्योंकि हाई स्कूल तक लड़कपन का जमाना है। इसलिए जिस जङ्गली विद्यार्थी का प्रवेश-संस्कार नहीं हुआ होता, उसे पुराने विद्यार्थी अपने में मिलने-जुलने नहीं देते। यह केवल विद्यार्थियों का अपना बनाया हुआ सामाजिक नियम है। इस संस्कार के भिन्न-भिन्न कालेजों और विश्वविद्यालयों में भिन्न-भिन्न तरीके हैं। शिकागो के स्नेल हाल में प्रवेश-संस्कार का जो तरीका है, उसे हम अपने पाठकों के मनोरञ्जनार्थ यहाँ लिखते हैं।

सन् १९०६ में कोई बारह विद्यार्थियों का संस्कार होना था। उसमें एक जापानी महाशय भी थे। स्नेल हाल की विद्यार्थी-समिति ने सभा करके ३१ अक्तूबर की रात को नौ बजे उनका प्रवेश-संस्कार करना निश्चित किया। नियमित समय पर सब पुराने विद्यार्थी बाँस की एक-एक छड़ी हाथ में लिये हुए एक बड़े कमरे में इकट्ठे हुए। बनैलू, जिनकी आँखों पर रूमाल बँधे हुए थे, उसी कमरे में लाये गये। सबसे पुराने तीन विद्यार्थी एक चबूतरे पर कुर्सियों पर बैठे थे। उनमें से एक न्यायाधीश था। उसकी पोशाक भी वैसी ही थी। हम* सब पुराने विद्यार्थी कुर्सियों पर बैठे थे। न्यायाधीश की आज्ञानुसार बिजली की रोशनी हटा कर दो मोमबत्तियाँ जला दी गईं। उनसे धुँधली रोशनी होने लगी। उसी प्रकाश में जज ने कुछ मन्त्र पढ़े और सब लोगों ने घुटने टेककर उनको दुहराया। इसके बाद जज ने एक प्रतिज्ञापत्र पढ़ा, जिस पर सब बनैलू विद्यार्थियों ने दस्तखत किये और हम लोगों ने छड़ियों से पीट कर उनको कमरे से निकाल दिया। वे किसी दूसरे कमरे में बन्द कर दिये गये। यह बात उस संस्कार की भूमिकामात्र थी।

*मैं भी पुराने विद्यार्थियों में था, क्योंकि मैंने भारतवर्ष में हाई स्कूल पास करके दो साल कालेज में शिक्षा पाई थी। —लेखक

जब जङ्गली विद्यार्थी चले गये तब जज ने तीन कर्मचारी और नियत किये—एक दरबान, दूसरा चपरासी, तीसरा मुन्शी। निश्चय यह किया गया कि दरबान तो खड़ा रहे दरवाजे पर, चपरासी बुलाकर लावे एक बनैलू को और मुन्शी साहिब जज के आदेशानुसार कार्य करें। अब कार्यवाही आरम्भ हुई। सबसे पहले जापानी का हाथ पकड़ कर चपरासी उसे ले आया। जब दोनों दरवाजे पर पहुंचे, तब दरबान ने पूछा—"कौन है ?" उत्तर मिला—"एक दोस्त।" दरबान उसे जज के पास ले चला और साथ-साथ हम लोग उस एक दोस्त की आमद की खुशी का भजन गाने लगे। दरबान ने उसको मुन्शी के हवाले किया। मुन्शी ने उसको जज के सामने पेश किया।

जज—"तुम कौन हो ?"

जापानी—"मैं एक दोस्त हूँ।"

जज—"अच्छा, हाथ मिलाओ तो देखूं कि तुम दोस्त हो या दुश्मन।"

ज्योंही जापानी ने हाथ मिलाया तो जज महोदय तत्काल बोल उठे—"दुश्मन! दुश्मन!! दूर करो, दूर करो!!" हम सब लोग उसी दम छड़ियों से उसकी पूजा करने लगे। तब जज के एक साथी की सिफ़ारिश पर उस बनैलू के साहस की परीक्षा होने लगी। उसे मुन्शी ने कहा कि एक स्टूल पर खड़े हो जाओ। बनैलू खड़ा होगया। उसकी आँखें रूमाल से बन्द थीं। आज्ञा मिली कि इस स्टूल से दूसरी कुर्सी पर कूदो। वह कूदा तो एक विद्यार्थी ने कुर्सी हटा दी। इस प्रकार बनैलू बेवकूफ बनाया गया और दूसरे लोगों ने छड़ी से उसका आदर-सत्कार किया। इसके बाद उसकी बुद्धि की परीक्षा हुई। उसमें भी उस बेचारे की दुर्गति हुई। तब जज ने उसको आज्ञा दी कि एक व्याख्यान दो। जापानी ने व्याख्यान में कहा—

"मैं आज से स्नेल हाल का पक्का मेम्बर बनता हूँ और बनैलू से

सभ्य होता हूँ। मैं प्रण करता हूँ कि इस हाल के दूसरे विद्यार्थियों का आज्ञाकारी रहूँगा; उनके दुःख में दुःख और सुख में सुख समझूँगा; सदा सभा के नियमों का पालन करूँगा और स्नेल हाल के गुण गाऊँगा।"

पाठकों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि लेक्चर देते वक्त भी जापानी की पीठ पर तड़ातड़ छड़ियाँ पड़ रही थीं।* व्याख्यान के बाद उसको चालीस गज़ के फ़ासले पर ले जाकर खड़ा किया गया, जहाँ से वह घुटनों के बल रेंगता हुआ जज के चबूतरे के पास पहुँचा। वहाँ पर काग़ज़ और पैन्सिल रखी थी; उसने अपना नाम पैन्सिल से काग़ज़ पर लिखा। यह काम ज़रा मुश्किल था। आखें बन्द, घुटनों के बल चलकर काग़ज़ तलाश करना, ऊपर से छड़ियों की बौछार! अजीब नज़ारा था। खैर, इसके बाद उसकी आँखे खोल दी गई; उसका मुँह धोया गया और सब पुराने विद्यार्थियों ने प्रेम से हाथ मिलाये और उसको अपनाया। यही हाल दूसरे बनैलू विद्यार्थियों का भी हुआ। जब सबके प्रवेश-संस्कार हो चुके, तब खूब मिठाई उड़ी।

इसी प्रकार के संस्कार कोलम्बिया, हार्वर्ड आदि विश्वविद्यालयों में भी प्रचलित हैं। कहीं कोई बात सख़्त है, कहीं कोई बात नरम। आरेगन राज्य के विश्वविद्यालय में बनैलू विद्यार्थियों के ज़िम्मे बहुत से काम लगाये जाते हैं। यदि कोई आज्ञा मानने से आगा-पीछा करता है तो वह कपड़ों सहित नदी मे ढकेल दिया जाता है या नहाने के टब में पकड़ कर डाल दिया जाता है और ऊपर से ठण्डे पानी का नल छोड़ देते हैं। इस प्रकार हर तरह से उसे सीधा करते हैं।

* मैं अपने मित्रों के सूचनार्थ यह बतला देना जरूरी समझता हूँ कि मैंने किसी मित्र को नहीं पीटा। मैं केवल दर्शक बना रहा, क्योंकि मुझे सिर्फ़ कार्यवाही देखनी थी। —लेखक

विद्यार्थियों के साहित्य-समाज

ऊपर जो कुछ हमने लिखा है, उसे केवल पाठकों की जानकारी के लिए समझना चाहिये। आगे हम अधिकांश उन बातों को लिखेंगे जिन्हें हमें अमरीका के विद्यार्थियों से सीखना है। उनमें से पहली बात है साहित्यविषयक।

यहाँ के विश्वविद्यालयों में सभी जगह साहित्य-समाज हैं। उनमें दाखिल होकर विद्यार्थी व्याख्यान देना, वाद-विवाद करना तथा राजनीतिक, धार्मिक आदि विषयों पर विवेचना करना सीखते हैं। हमारे देश में विद्यार्थी राजनीतिक विषयों की चर्चा करने से मना किये जाते हैं; कालेजों मे धार्मिक वाद-प्रतिवाद बन्द है ताकि किसी का दिल न दुःखे। उन्हें केवल 'फ़ोनोग्राफ़' की तरह रटन्त विद्या सिखाई जाती है, जिसे वे परीक्षाओं के समय उगल देते हैं। बस! अमरीका के साहित्य-समाजों में प्रत्येक राजनीतिक बात का खण्डन-मण्डन होता है। कुछ विद्यार्थी एक पक्ष लेते हैं, कुछ दूसरा। फिर वाद-विवाद का आनन्द देखिये। इन दिनों जापानियों को निकालने का जो विषय, अमरीका में उठा था उस पर वाशिंगटन, इडाहो और आरेगन राज्यों के विश्वविद्यालयों की ओर से तीन बड़े घनघोर शास्त्रार्थ हुए थे। प्रत्येक विश्वविद्यालय की ओर से दो दल तैयार किये गये थे—एक पक्ष में, दूसरा विपक्ष में। दोनों दलों ने खूब तैयारियाँ की थीं। पक्षपातहीन लोग जज नियत किये गये थे। उन्होंने केवल युक्तियाँ और प्रमाण सुनकर फ़ैसला दिया। वाशिंगटन वालों का दल, जो जापानियों को निकाल देने के पक्ष में था, हार गया; अर्थात् आरेगन वाले दोनों दल हार गये। इस प्रकार के बहस-मुबाहिसों से दोनों पक्षों की युक्तियों का ज्ञान श्रोताओं को हो जाता है और उन्हें खुद सोचने की पूरी सामग्री मिल जाती है। यही नहीं, बल्कि विद्यार्थियों को निबन्ध लिखने, जाँच करने और अपने देश के हित-अहित सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करने का ज्ञान हो जाता है।

और लीजिये। विश्वविद्यालय की एक शाखा-सभा का मैं भी मेम्बर

था। मेरे प्रस्ताव करने पर एक बार यह विषय बहस-मुबाहिसे के लिए रक्खा गया—Resolved that the Christian Missionaries should not be sent to India—अर्थात् ईसाई पादरी भारत में न भेजे जायें। इस बहस में मैंने और दो अमरीकन विद्यार्थियों ने 'न भेजे जाने' का पक्ष लिया और तीन अन्य विद्यार्थियों ने 'भेजे जाने' का। तीन जने जज नियत किये गये। हमने युक्तियों और प्रमाणों द्वारा सिद्ध किया कि भारतवर्ष में ईसाई पादरी व्यर्थ का धार्मिक झंझट खड़ा कर रहे हैं। हिन्दू और मुसलमान दो दल अलग हैं ही, ईसाई अब एक और दल पैदा करना चाहते हैं। हमने सिद्ध किया कि ईसाइयों ही की कृपा से हिन्दू तमाम दुनिया में काफ़िरों (Heathens) के नाम से मशहूर किये जाते हैं और यही लोग जातियों में घृणा का बीज बो रहे हैं। आखिर में एक अमरीकन विद्यार्थी ने सिद्ध किया कि पादरियों को घर ही में रह कर यहीं ईसाई धर्म का प्रचार करना चाहिये, यहीं उनकी सख्त जरूरत है। प्रतिपक्षियों ने इस बात पर अधिक जोर दिया कि इञ्जील में आज्ञा है कि इस धर्म का प्रचार करो, इसलिए हमारा कर्तव्य है कि हम दूसरे देशों में जाकर ईसाई मत का उपदेश करें। जजों ने फ़ैसला हमारे पक्ष में दिया।

इन साहित्य-समाजों में सभी प्रकार के विषयों पर विचार होता है। भारतवर्ष के विद्यार्थियों को तङ्गदिल न रह कर ऐसी-ऐसी सभायें खोलनी चाहियें और राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक सभी विषयों पर विचार करना चाहिये।

विद्यार्थियो के पत्र और पत्रिकायें

प्रत्येक विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों द्वारा सम्पादित दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्र-पत्रिकायें निकलती हैं। सभी विद्यार्थियों को लेख लिखने और कविता करने का अवसर दिया जाता है; उनके उत्साह-वर्द्धन के लिए पदक दिये जाते हैं। अच्छी कथाओं और खोजपूर्ण लेखों के लिए पारितोषिक मिलते हैं। केवल प्रतिष्ठा और ज्ञानवृद्धि के लिए भी

विद्यार्थी लेख लिखते हैं। अमरीका में आज जो बड़े-बड़े धुरन्धर लिक्खाड़ हैं, उन्होंने ऐसी-ऐसी पत्रिकाओं द्वारा ही पहले लिखना सीखा था। फिर धीरे-धीरे उन्नति करते-करते वे प्रसिद्ध लेखक होगये।

भारतवर्ष में हिन्दी के मौलिक लेखकों और अनुभवी सम्पादकों की बहुत कमी है। इसका क्या कारण है? कारण यह है कि हमारे यहाँ के विश्वविद्यालयों में हिन्दी के लेखक और सम्पादक बनाने का कोई उत्कृष्ट साधन नहीं है। परीक्षा-विभाग तो अवश्य खुल गये हैं, जहाँ से आप हिन्दी की एम० ए० तक की डिग्री पास कर सकते हैं और 'भूषण' तथा 'प्रभाकर' भी बन सकते हैं, किन्तु बाकायदा आधुनिक ढङ्ग के ऐसे कालेज नहीं जहाँ योग्य लेखक और सम्पादक तैयार किये जाते हों। अमरीका में प्रत्येक विश्वविद्यालय के साथ-साथ इस प्रकार के कालेज हैं, जहाँ एक ओर लेखन और सम्पादन-कला की शिक्षा दी जाती है और दूसरी ओर विश्वविद्यालयों से निकलने वाली पत्र-पत्रिकाओं में उस कला के अभ्यास करने का पूरा अवसर मिलता है। वहाँ से मँजा हुआ विद्यार्थी, जिसकी भाषा परिमार्जित हो जाती है और लेखक तथा पत्रकार की जिम्मेदारी को समझ लेता है, बाहर निकल कर योग्यता से पब्लिक की सेवा करता है।

हमारे यहाँ दुर्भाग्य से गुट्टबाजी, जातपात और यारी-दोस्ती निभाई जाती है; योग्यता की ओर कोई ध्यान नहीं देता। जिसने किसी कालेज, गुरुकुल, महाविद्यालय आदि से कोई परीक्षा पास करली, उसने समझ लिया कि उसमें सब प्रकार की लियाकत आगई। जिस किसी की पहुँच किसी बड़े आदमी तक होगई, वह वहीं अपनी मित्रता का लाभ लेकर समाचारपत्र निकाल बैठता है और इधर-उधर के पत्रों की नक़ल कर अथवा अंग्रेजी लेखों के अनुवाद कर अपना काम चलाता है; किसी प्रकार के स्वाध्याय, निरन्तर अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं समझी जाती। इसी वजह से हमारी प्रसिद्ध पत्रिकाओं के सम्पादकों में सदा लाग-डाँट रहती है और आये दिन उनके झगड़ों के कारण हिन्दी-संसार दुःखी

रहता है। एक समय 'विशाल भारत' के सम्पादक पं० बनारसीदास चतुर्वेदी और 'सरस्वती' के सम्पादक बाबू श्रीनाथसिंह में कैसे-कैसे धनुषबाण चले, जिनके कारण हिन्दी पाठकों में हायतोबा मची थी! इसी प्रकार 'माधुरी' और 'हंस' के सम्पादकों में भी तू-तू मैं-मैं का बाज़ार गर्म हुआ था। कवियों और लेखकों के पारस्परिक झगड़ों और गुट्टबाज़ियों से तो समझदार पाठक बुरी तरह ऊबे बैठे हैं। इन सब झगड़ों की तह में कारण यही है कि हमारे यहाँ किसी कला को सिखाने का समुचित प्रबन्ध नहीं है। लाटरी अथवा जूए के तौर पर लोग धन्धों को पकड़ लेते हैं और बहुत-सा समय और शक्ति ख़राब कर उस कला के विद्वान् बनना चाहते हैं। इससे पब्लिक को बहुत हानि उठानी पड़ती है और कला-क्षेत्र बदनाम हो जाता है।

विद्यार्थियों की कसरत

शारीरिक उन्नति का ध्यान अमरीकन विश्वविद्यालयों में ख़ास तौर से रखा जाता है। प्रत्येक विश्वविद्यालय में कसरत के लिए ख़ास-ख़ास इमारतें हैं; सिखानेवाले उस्ताद भी मौजूद हैं। विद्यार्थी लोग बड़े शौक़ से कसरत करते हैं। उनके हाथ-पैर मज़बूत और बदन ख़ूब चुस्त होते हैं। 'फ़ुटबाल' और 'बेसबाल' यहाँ के प्रधान खेल हैं। अमरीकन 'फ़ुटबाल' अंग्रेज़ी 'फ़ुटबाल' की तरह नहीं खेला जाता। अमरीकन 'फ़ुटबाल' में चोट-चपेट लगने का अधिक भय है; कई खिलाड़ियों की टाँगें टूट जाती हैं। अंग्रेज़ी 'फ़ुटबाल' में पैर से गेंद को गोल के पास ले जाने का नियम है; अमरीकन 'फ़ुटबाल' में गेंद को हाथ से अथवा पैर से, जिस प्रकार हो सके, गोल मे पहुँचाने का क़ायदा है। दूसरी पार्टी का काम है कि उसको रोके और दूसरे गोल के पार पहुँचावे—बस, यही लड़ाई है। प्रायः विद्यार्थी गुत्थमगुत्था हो जाते हैं। आप ख़ुद ही सोच सकते हैं कि इस खेल में कितना ख़तरा है।

'बेसबाल' अंग्रेज़ी 'क्रिकेट' की तरह का खेल है। यह सब जगह

खेला जाता है। इस प्रसिद्ध अंग्रेजी खेल में परिवर्तन करके इसे अमरीका वालों ने अपना कौमी खेटक (Sports) बना लिया है।

विद्यार्थी का धार्मिक जीवन

भारतवर्ष के विद्यार्थी समझते होंगे कि अमरीकन विश्वविद्यालयों में सभी लड़के ईसाई हैं, किन्तु यह बात नहीं है। ईसाई मत का अमरीका में प्रतिदिन ह्रास हो रहा है। यद्यपि सभी विश्वविद्यालयों में "यंगमेन क्रिश्चियन एसोसियेशन" है और कई एक बाइबल क्लासें भी लगती हैं, परन्तु उनका लाभ लेनेवाले थोड़े ही होते है। शिकागो में मुश्किल से तीस-चालीस विद्यार्थी एसोसियेशन की सभाओं में आते थे; आरेगन में पन्द्रह-बीस ही; बाइबल क्लासों में तो आठ-दस विद्यार्थियों से अधिक नहीं होते थे। ये जितनी एसोसियेशनें चल रही हैं वे सब धनवानों के दान की कृपा के फल हैं। इन समाजों में लोगों को आपस में मिलने-जुलने का अवसर मिलता है। एसोसियेशन का मेम्बर हो जाने से बहुत से और भी फ़ायदे होते हैं। मैं स्वयं एक एसोसियेशन का सभ्य था।

विश्वविद्यालयों के लड़के बड़े उदार विचारों के होते हैं। हाँ, जिन्होंने अपने भावी जीवन में पादरी बनना होता है वे छात्र जरूर तंगदिल होते हैं। जो विद्यार्थी गिरजे जाते है वे प्रायः या तो उमदा गाना सुनने को या किसी अपनी सहेली की ख़ातिर या किसी और ऐसे ही सामाजिक कारण से। हमारे देश के लोगों की तरह 'हस्तिना ताड्यमानोऽपि न गच्छेज्जैनमन्दिरम्' वाली उक्ति को ये लोग नहीं मानते। हमारे देश में ईर्ष्या-द्वेष का साम्राज्य है। शिक्षा की सुलभता के कारण अमरीकन विद्यार्थियों में सहनशीलता का गुण विशेष तौर पर आगया है। आप इनके मतों का जैसा चाहे खण्डन करें, वे बुरा न मानेंगे; आपके विचारों को बड़े शौक से सुनेंगे। इनका धार्मिक विश्वास यह होता जाता है कि सत्य का सिद्धान्त सभी धर्मों में है। जो सत्य का जिज्ञासु है उसको

किसी खास पन्थ में बंधे नहीं रहना चाहिए, बल्कि जहाँ से सत्य मिले वहीं से ले लेना चाहिए। बहुत से लोग नास्तिक भी हैं, परन्तु मेरी यह धारणा है कि अमरीका का भावी धर्म अमली होगा।

विद्यार्थियों का सामाजिक जीवन

यहाँ के विद्यार्थियों का सामाजिक जीवन हमारे लिए बिल्कुल ही नया है। यहाँ लड़के-लड़कियाँ सब इकट्ठे पढ़ते हैं। प्रायः हर-एक लड़के की एक सहेली होती है, जिसके साथ वह फ़ुरसत के वक्त सैर करने या नाव चलाने का आनन्द लूटने जाता है। गर्मियों के दिनों में अपनी-अपनी डोंगी पर, अपनी-अपनी सखी के साथ, लड़के डोंगी खेते दिखाई देते हैं। कभी दो-चार मित्र मिलकर जाते हैं और बाहर ही जङ्गल में पकाते-खाते हैं। लड़कियों के सामने ये लोग बड़ी शिष्टता का व्यवहार करते हैं; असभ्य शब्दों का प्रयोग अपनी भाषा में कभी नहीं करते। नाच के समय प्रत्येक विद्यार्थी अपनी सहेली को साथ लाता है।

लड़के-लड़कियाँ एक दूसरे के साथ भली प्रकार परिचय प्राप्त करें, इसके लिए चाय-पार्टियाँ दी जाती हैं। एक ऐसे ही समारोह का शिकागो में मुझे भी निमन्त्रण मिला था। सन्ध्या के आठ बजे हम सब लोग नियत स्थान पर जमा हुए। पान के बराबर और उसी काट के मोटे-मोटे काग़ज़ हमें दिये गये; उनके साथ छोटी-छोटी पेन्सिलें लटकती थीं। हर एक लड़का उस पान को लेकर जुदा-जुदा लड़कियों से हस्ताक्षर करवाता और आप भी उनके पानों पर हस्ताक्षर करता था। मैंने भी संकोच त्यागकर दस लड़कियों से अपने पान पर दस्तख़त करवाये। इसका मतलब यह था कि जिन दस लड़कियों के साथ मेरी बातचीत होने को थी, उनका निश्चय आरम्भ से ही लड़कियों ने आपस में मिलकर कर लिया था। मेरे साथ जिन लड़कियों ने बातें कीं, उन्होंने अधिकांश मुझसे हिन्दुस्तान सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त किया। ख़ैर, जब यह वार्तालाप ख़त्म हुआ तब हर एक को एक-एक काग़ज़ उस वार्तालाप का सार लिखने के लिए

दिया गया। इसके बाद फिर पेटपूजा आरम्भ हुई और हँसते-खेलते समय बीता।

जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूँ, अमरीकन विद्यार्थी हँसी-दिल्लगी बहुत पसन्द करते हैं। जो चुटकलेबाज़ हँसोड़ हुआ, उसकी तो समझो पाँचों अँगुलियाँ घी में हैं। ऐसे विद्यार्थी की खूब बन आती है। यदि वह पढ़ने-लिखने में होशियार हुआ तो फिर कहना ही क्या! लड़कियों का वह प्यारा, सभा-समाजों का वह दुलारा और विश्वविद्यालय का वह सितारा बन जाता है।

एक बात और भी लिखने लायक़ है। अमरीकन विश्वविद्यालयों में दो शब्द बहुत प्रसिद्ध हैं—एक तो 'Rough House' (रफ़ हौस), दूसरा 'Bath Tub' (बाथ टब)। पहले का शब्दार्थ है—भद्दा घर। जब कभी कोई शरारती विद्यार्थी किसी दूसरे छात्र का कमरा सूना पाता है, तब वह उसकी सब किताबें इधर-उधर कर, उसके कपड़ों का ढेर लगा, मेज़ को उलटी कर, उसके ऊपर कुर्सियाँ सजा, चुपचाप दरवाज़ा बन्द कर, अपनी राह लेता है। जब उस कमरे का निवासी अपने कमरे में आकर उस अव्यवस्था को देखता है, तब चुपचाप अपनी चीज़ें ठीक-ठाक करने लग जाता है; न तो वह गुस्सा करता है और न किसी को कोसता ही है। दूसरे दिन अपनी मित्रमण्डली में वह केवल यही कहेगा—"न जाने किसने मेरे कमरे को 'Rough House' बना दिया ?"

'बाथ टब' उद्दण्ड विद्यार्थियों के लिए एक प्रकार की सज़ा है। अनुशासनभंग करने वाला जो कोई भी विद्यार्थी पकड़ा जाता है, उसे कपड़ों समेत 'नहाने के टब' में डालकर ऊपर से ठण्डे पानी का नल छोड़ देते हैं। यों भी जब शरारत का भूत बहुत से विद्यार्थियों पर सवार होता है, तब पानी की बालटियाँ भर-भर कर होली मचाते हैं। मैं भी तीन बार इनके पञ्जे में फँसा था। जहाँ आदमी रहता है वहाँ की सब बातें थोड़ी-बहुत उसके हिस्से में आती ही हैं। मैं अमरीका में अमरीकन छात्रों में ही रहता था; अन्य हिन्दू छात्रों की तरह अलग मकानों में नहीं रहा।

विश्वविद्यालय के अहातों में जो होस्टल विद्यार्थियों के रहने के लिए होते हैं, मैं वहीं रहता था; इस कारण भला-बुरा सभी कुछ देखने में आया।

अमरीकन विद्यार्थियों को कालेजों में ही सच्ची देशभक्ति और प्रजा-तन्त्र-शासन की महिमा सिखाई जाती है। अपने-अपने विद्यालयों से विद्यार्थियों का प्रगाढ़ प्रेम होता है। हर एक विश्वविद्यालय के वफ़ादारी के भजन तथा राग जुदा-जुदा हैं और ध्वनियाँ भी अलग-अलग, जिन्हें विद्यार्थी खेलों और त्योहारों के अवसरों पर गाते और जयजयकारे लगाते हैं। विश्वविद्यालय में कितने ही ऐसे ओहदे होते हैं जिनका सम्बन्ध विद्यार्थियों से रहता है। उनका चुनाव हर साल विद्यार्थियों के ही 'वोटों' के अनुसार होता है। फ़र्ज़ करो, किसी पत्रिका के लिए नया सम्पादक चुनना है और तीन योग्य विद्यार्थी उसके अभिलाषी हैं तो उसका फ़ैसला सब विद्यार्थियों की वोटों के मुताबिक़ होगा। फुटबाल का कप्तान, विद्यार्थी-समिति का मन्त्री तथा दूसरे कार्याध्यक्षों का चुनाव लड़के खुद ही करते हैं। बड़े होकर यही लोग देश के दक्ष नेता बनते हैं। भारतवर्ष में भी यही होना चाहिये।

हम लोगों को बहुत सी बातें अमरीका से सीखनी हैं। लोग शिकायत करते हैं कि हमारे देश में नये-नये आविष्कार करने वाले पैदा नहीं होते। पैदा हो कैसे सकते हैं, जब कि हमारे यहाँ उस प्रकार के साधन ही नहीं हैं? भारत के कालेजों में पढ़ने वाला ऐसा कौन विद्यार्थी होगा जिसके मन में अपने देश की दुर्दशा का कारण जानने की चाह उत्पन्न न होती हो! विद्यार्थियों की उठती हुई उमङ्गों को दबाना बहुत बड़ा पाप है। आइये, हम सब अपने विद्यार्थियों की उन्नति का प्रयत्न करें; उन्हें देश और मातृभाषा का सेवक बनायें; उनकी शारीरिक अवस्था को उन्नत करें और जिन बातों का ज्ञान देशोन्नति के लिए परमावश्यक है उनके सिख-लाने का शीघ्र प्रबन्ध करें।

ग्यारहवां अध्याय

अमरीका की स्त्रियाँ

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥ मनु०

पाठक ! अपने यहाँ की स्त्रियों का हाल तो आप जानते ही हैं। कहाँ तक आप उन बेचारियों को लिखाते-पढ़ाते हैं ? कहाँ तक आप उनकी शारीरिक अवस्था पर ध्यान देते हैं ? कहाँ तक आप उनके अधिकारों की रक्षा करते हैं ? आपसे और मुझसे ये बातें छिपी नहीं। बाहर के लोगों से यह कह कर कि हम भी किसी समय बड़े सभ्य थे---नहीं नहीं, सभ्यता के स्तम्भरूप थे---हम भले ही अपना पीछा छुड़ा लें, परन्तु क्या इस तरह कभी हमारा सुधार हो सकता है ? कदापि नहीं। हम बड़ी ही दीनावस्था में हैं। हमारा यह अभिमान कि हम किसी काल में यह थे, वह थे, वृथा है। अब हम क्या हैं, यही मुख्य बात देखने की है। जरा आँखें खोलिये। दुनिया हमारी वर्तमान दशा से हमें पहचानती है, बाप-दादों को देखकर नहीं।

एक विद्वान् का कथन है कि यदि तुम किसी देश की उन्नति का कारण जानना चाहो तो वहाँ की स्त्रियों की दशा की जाँच करो। जिस देश में स्त्रियाँ मूर्खा हैं, जिस देश में स्त्रियों की प्रतिष्ठा नहीं है, जिस देश में स्त्रियों के अधिकारों की रक्षा नहीं है, वहाँ के लोग चाहे लाख टक्करें जाति के सुधार के लिए मारें, कभी उनको सफलता प्राप्त नहीं हो सकती। यह कथन कहाँ तक ठीक है, इसी का प्रमाण देने के लिए मैं एक ऐसे देश की ललनाओं की जीवनचर्य्या आपके सामने रखता हूँ जो अपनी उन्नति के लिए संसार में विख्यात है। आप कृपा करके

उनके कामों का अपनी मां-बहिनों के कामों से मुकाबला कीजिये। यदि आपको मेरी बातें अच्छी लगें और लाभदायक जान पड़ें तो जहाँ-जहाँ आपकी पहुँच हो वहाँ-वहाँ उनका ज़िक्र कर दीजिए। इसीसे मैं समझ लूँगा कि मेरा परिश्रम व्यर्थ नहीं गया।

सबसे पहले मैं यह बता देना उचित समझता हूँ कि मैं पाश्चात्य सभ्यता का अन्धा भक्त नहीं हूँ। जिन्होंने मेरे ग्रन्थ ध्यानपूर्वक पढ़े हैं, वे जरूर ही मेरे इस कथन की सत्यता को जान गये होंगे। हाँ, मैं सत्यप्रिय हूँ। अपने हित की कोई बात कहीं हो, उसे ग्रहण करना मैं अपना धर्म समझता हूँ। निर्दोष जाति कोई भी नहीं। मेरा रुख सदा गुणग्राहक का रहा है। राष्ट्र-हित के लिए यहाँ की नारियों के कुछ सद्गुणों का ब्योरा ही यहाँ लिखता हूँ।

जब मैं भारतवर्ष से अमरीका के लिए चला था, तब इस बात के जानने की मुझे बड़ी उत्कण्ठा थी कि अमरीका की स्त्रियाँ अपने पतियों से कैसा बर्ताव करती हैं; घरों में वे किस प्रकार रहती हैं; इनका आपस का व्यवहार कैसा है; पर थोड़े दिन की मुलाकात में आदमी इन सब बातों को अच्छी तरह से नहीं जान सकता।

कारणवश मुझे कुछ महीने मनीला में ठहरना पड़ा। मनीला फिलीपाइन द्वीपसमूह का सबसे बड़ा शहर है। यह द्वीप अमरीका वालों के आधीन था, इसलिए अमरीकनों की संख्या यहाँ काफी थी। वे जुदा-जुदा कामों पर नियुक्त थे। सौभाग्य से वहाँ पर मुझे एक बहुत अच्छा मौका एक अमरीकन सद्गृहस्थ के साथ रहने का मिल गया। मिस्टर स्काट मनीला के शिक्षाविभाग में हैडक्लर्क थे। वेदान्त पर आपकी बड़ी श्रद्धा थी। मुझसे उन्होंने कहा कि आप हमारे ही मकान पर रहें और हमें संस्कृत पढ़ावें। मैंने स्वीकार कर लिया। "एक पन्थ दो काज" वाली बात थी। उनकी स्त्री थी बड़ी सुशिक्षिता। वह एक स्कूल में अध्यापिका थी। कैसा प्रेम मैंने इस पति-पत्नी में देखा! फुरसत के समय वे दोनों

किसी अच्छे लेखक की पुस्तक का स्वाध्याय करते और जीवन का आनन्द लेते थे। मेरे लिए यह सब नई बात थी। हमारे देश में तो जिस लड़के-लड़की का विवाह होना होता है, उसे इस बात का भी पता नहीं चलता कि उसके जीवन का भावी साथी है कैसा—मूर्ख है या विद्यावान्। रुपया देकर कन्या ख़रीदने वाले बहुत बुरी तरह से मार खा जाते हैं। वाह रे भारत, तेरा बाबा आदम न्यारा है! थोड़े ही दिनों में मेरा मिस्टर स्काट के साथ स्नेह-सम्बन्ध बढ़ गया। जब उनकी स्त्री गर्मियों की छुट्टी में ओपरेशन के लिए मनीला से अमरीका जाने लगी, तब मुझसे हँस कर बोली—"देव! घर और मिस्टर स्काट की निगरानी आपके सुपुर्द है।" मैंने मुस्करा दिया। फिर उन्होंने पन्द्रह-बीस बन्द लिफाफे मुझे दिये, जिन पर जुदा-जुदा तारीखें पड़ी हुई थीं और मिस्टर स्काट का पता लिखा हुआ था। मिसेज़ स्काट मुझे वे लिफ़ाफ़े देकर कहने लगीं—"कृपा कर इन चिट्ठियों को तारीखवार मेरे पति को दे दीजियेगा।" मैंने उन्हें ले लिया और उनके आदेशानुसार काम किया। चिट्ठियों के देने का क्या कारण था? मनीला से अमरीका जाने में एक महीना लगता है और एक ही महीना आने में भी। इसलिए पत्र जाने-आने में कम से कम दो महीने लगते। इन दो महीनों में पति को वियोग-दुःख न सतावे, इस कारण मिसेज़ स्काट ने ऐसा प्रोग्राम बनाया था। पति-पत्नी-प्रेम का यह पहला उदाहरण मुझे देखने को मिला। इसी मित्र द्वारा मेरी जान-पहिचान यहाँ कई गृहस्थों से होगई थी। उन कुटुम्बों में भी इसी प्रकार के उदाहरण देखने को मिले।

शिकागो पहुँच कर मुझे और भी विस्तृत क्षेत्र मिल गया। नारी समाज की अवस्था जानने के मौके मुझे यहाँ पुष्कल मिले। विद्यालय में जो लड़कियाँ मेरे साथ पढ़ती थीं, उनसे जब-जब किसी विषय पर बात-चीत करने का अवसर मिला, तो हृदय नाच उठा। गम्भीर से गम्भीर विषय को भी वे समझती थीं। लड़कों की तरह बहुत सी लड़कियाँ विद्यालय में ऐसी थीं जिन्हें अपनी शिक्षा के लिए रुपया कमाना पड़ता

था। विद्या-प्राप्ति की धुन में सब तरह के कष्ट सहकर वे परीक्षायें पास करती थीं।

एक दिन मैं एक लड़की के साथ मिशेगन झील की सैर करने गया। रास्ते मे हमारी अनेक विषयों पर बातचीत हुई। हम दोनों झील के किनारे जाकर बैठ गये। लड़की का नाम था कुमारी एड्डी। उसने मुझ से पूछा—

"अच्छा, आप यह बताइये कि आपको हमारा विद्यालय कैसा लगा?"

मैं—"ईश्वर से यह माँगता हूँ कि मेरे देश में भी ऐसे ही विद्यालय स्थापित हो जायें।"

एड्डी (हँस कर)—"आप लोग यत्न करें तो सब कुछ हो सकता है।"

मैं चुप हो रहा। एड्डी ने फिर पूछा—

"आपके यहाँ लड़कियों के लिए शिक्षा का क्या प्रबन्ध है?"

मैं—"अभी नाममात्र के लिए कहीं-कहीं स्कूल खुले हैं।"

एड्डी (ठंडी साँस भर कर)—"मैं जब यह सोचती हूँ कि ऐसे भी देश हैं जहाँ अबलाएँ अविद्यान्धकार में पड़ी हैं, तब मेरे हृदय में बड़ी कसक होती है। आप जैसे लोग जिस देश में हों वहाँ नारियों की ऐसी दुर्दशा!"

मैं उत्तर नहीं दे सका; मन ही मन मसोस कर रह गया।

कुमारी एड्डी ने यह देखकर कि मुझे अपने देश की दुर्दशा पर दुःख हो रहा है, विषय बदल दिया और बोली—

"कल शनिवार है। आप मेरे साथ व्यायामशाला देखने चलियेगा। आप वहाँ देखेंगे कि यहाँ की लड़कियाँ कैसी अच्छी कसरत करती हैं।"

मैंने बड़ी खुशी से कहा—"बहुत बेहतर।"

दूसरे दिन हम दोनों व्यायामशाला देखने गये। समय दोपहर का था। यह व्यायामशाला विद्यालय से कोई पन्द्रह मील दक्षिण में थी। इस शाला में जो अध्यापिका थी उससे मेरी बहुत अच्छी जान-पहिचान थी; इसलिए मेरे आने से वह बहुत प्रसन्न हुई। उसने मुझे व्यायाम-शाला अच्छी तरह दिखला दी। जैसा सामान लड़कों के लिए होता है, अधिकांश उसी तरह का लड़कियों के लिए भी था। यद्यपि लड़कियों की कसरत के समय मर्दों को वहाँ जाने का निषेध था, परन्तु मुझे अध्यापिका ने कुछ फ़ासले पर खड़े होकर देख लेने की आज्ञा दे दी। एक लड़की, जिसकी उम्र कोई तेरह-चौदह वर्ष की होगी, ठीक मेरे सामने लोहे की छड़ पर कसरत कर रही थी। उसे कसरत करते देखकर क्या-क्या भाव मेरे हृदय में उठे, मैं लिख नहीं सकता। जिस देश में कन्याओं के आरोग्य और शारीरिक सुधार का ऐसा अच्छा प्रबन्ध हो, उस देश को उन्नति के शिखर पर आरूढ़ होना ही चाहिए।

लड़कियों के विषय में कुछ कहने के बाद अब हम अमरीकन स्त्री-समाज की कुछ दिलचस्प बातें पाठकों के लाभार्थ यहाँ लिखते हैं।

यहाँ की स्त्रियों का फ़ुरसत का समय बहुधा क्लबों में जाता है। यह जरूरी नहीं कि इन सभाओं में जाने वाली स्त्रियाँ विवाहिता ही हों, क्वारी भी होती हैं। प्रत्येक शहर में स्त्रियों की क्लबें हैं। क्लबों से मतलब सभाओं अथवा समाजों से है। ये क्लबें भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की सिद्धि के लिए खोली जाती हैं। जैसे "शेक्सपीयर-क्लब" में केवल शेक्सपीयर के ग्रन्थ पढ़े जाते हैं और उनका मतलब अच्छी तरह समझा जाता है। "ब्रौनिङ्ग क्लब" में महाकवि ब्रौनिङ्ग के ग्रन्थों का अध्ययन किया जाता है। याद रखिये, यह सब मैं स्त्रियों की क्लबों का ज़िक्र कर रहा हूँ। व्यायाम-क्लब में स्त्रियां आकर व्यायाम करती हैं; मातृ-क्लब (Mothers' Club) में मातायें अपने लाभ के लिए, समय-समय पर, अमरीका के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध डाक्टरों को बुलाकर उनके व्याख्यान सुनती हैं। व्याख्यानों में बीमारियों के इलाज, बच्चों के पालन-

पोषण का ढङ्ग, खाने-पीने की विधि आदि उपयोगी विषयों की चर्चा रहती है।

एक बार मुझे एक स्त्री-समाज में व्याख्यान देने जाना पड़ा। यह समाज विशेष कर धनी स्त्रियों का था। व्याख्यान के दिन दो सौ से अधिक स्त्रियाँ उपस्थित थीं। व्याख्यान के बाद में कुछ काम के लिए थोड़ी देर ठहर गया। जिस दीवानखाने में मैंने व्याख्यान दिया था, उसके पास ही बाहर के कमरे में होटल की तरह का सामान मैंने देखा। मैंने वहां की अध्यक्षा से पूछा कि क्या यहां कोई होटल भी है? उत्तर में वह देवी बोली—"हाँ, इस-स्त्री समाज की ओर से यहाँ होटल भी है, जिसमे निर्धन स्त्रियाँ थोड़े खर्च से भोजन पाती हैं।" हमारे कोई-कोई साधु पाठक शायद कहेंगे कि सदावर्त ही क्यों न खोल दिया, जिससे स्वर्ग जाने का रास्ता और भी सुगम हो जाता। उत्तर में हम निवेदन करेंगे कि अमरीकावासी हमारी तरह मूर्ख नहीं हैं। आप यदि सम्पत्तिशास्त्र पढ़ें तो आपको पता लगे कि जो लाखों-करोड़ों रुपया हर साल अपने धर्मादे में सदावर्त द्वारा खर्च करते हैं वह सब व्यर्थ जाता है। देश में आलसी हट्टे-कट्टे मूर्खों की संख्या बढ़ती है। उसी रुपये से यदि कारखाने खुलें तो हजारों आदमियों का पालन हो और पुण्य के साथ देशसेवा भी हो। अमरीका के निवासी सम्पत्तिशास्त्र के ज्ञाता हैं। वे आलसी भिखमंगों की वृद्धि करना महापाप समझते हैं।

इलीनाय (Illinois) राज्य में जितने स्त्री-समाज हैं, सबकी एक प्रधान सभा है। उस सभा में प्रत्येक समाज के प्रतिनिधि रहते हैं। सन् १९०६ के नवम्बर में उसका वार्षिक अधिवेशन शिकागो विश्वविद्यालय में हुआ था। इस सभा के उद्देश्य आदि का संक्षिप्त वर्णन सुन लीजिए—

१. पहला उद्देश्य इस सभा का शिक्षासम्बन्धी है। गाँव-गाँव में जो स्कूल राज्य की तरफ़ से खुले हुए हैं, उनकी सहायता यह सभा करती है; वहाँ की पठन-पाठन विधि की उन्नति का ध्यान रखती है।

जो लोग निर्धनता के कारण थोड़ा भी खर्च अपनी सन्तान की शिक्षा के लिए नहीं कर सकते, सभा उनकी सहायता करती है। जिस गाँव में स्कूल तो है, पर अच्छा पुस्तकालय नहीं है, वहाँ यह सभा पुस्तकालय खोलने का यत्न करती है। सन् १९०५ नवम्बर से सन् १९०६ नवम्बर तक, एक साल में, इस सभा ने ५८ पुस्तकालय खोले थे। क़स्बों में यह सभा ऐसे-ऐसे समाज स्थापित करती है जिनके द्वारा बच्चों के माता-पिता अपनी सन्तान के हितसाधन का विचार करते हैं।

२. दूसरा उद्देश्य दान सम्बन्धी है। दान का पात्र कौन है, इसका विचार सभा करती है। जिसे दान देना होता है, वह सभा को भेज देता है; सभा उसको उचित और उपयोगी काम में ख़र्च करती है। भारतवर्ष की तरह लाखों रुपये मन्दिर-मस्जिदों में ये लोग नहीं फूँकते, या किसी पण्डे-पुजारी की भेंट नहीं करते। पाठक, आप ही कहिए––काशी, प्रयाग और गया के पण्डों को जो धन दिया जाता है, क्या वह देशोपकार में ख़र्च होता है?

सभा के प्रतिनिधि समय-समय पर राज्य के जेलख़ानों, अनाथालयों और हवालातों में जाते हैं। वहाँ की हालत देखते हैं। क़ैदियों की अवस्था कैसे सुधर सकती है, इस पर विचार करते हैं। स्कूलों की ज़रूरत होती है तो क़ैदियों के लिए स्कूल खोलने का प्रबन्ध करते हैं। क़ैदियों के रिश्तेदार यदि दानपात्र हों तो सभा उनकी सहायता करती है। यदि किसी को नौकरी या रोजगार की ज़रूरत हो तो सभा उसके लिए काम तलाश कर देती है और जब तक काम न मिले, उसके रहने और खाने-पीने का प्रबन्ध करती है।

३. सभा का तीसरा उद्देश्य पागल, अंधे, बहरे और मोहताज लोगों के लिए स्कूल स्थापित करना है। उनके रहने के लिए अच्छे हवादार मकान प्रत्येक बड़े शहर में बने हुए हैं। ऐसे मकानों में रहने वालों के आराम का बहुत ख़्याल रखा जाता है। मान लीजिये कि कोई

लंगड़ा है, चल-फिर नहीं सकता, ऐसों के लिए छोटी-छोटी गाड़ियाँ रखी जाती हैं।*

४. चौथा उद्देश्य इस सभा का अच्छे साहित्य का प्रचार करना है। सभा की ओर से बाँटने के लिए छोटी-छोटी सचित्र पुस्तकें छपती हैं, वे मुफ्त बाँटी जाती हैं। सभा के आधीन जितने समाज हैं, वे उन पुस्तकों को प्रत्येक बालक के हाथ तक पहुँचाने का उपाय करते हैं। ऐसी पुस्तकों में प्राय: रोचक परन्तु शिक्षाप्रद कथायें रहती हैं।

५. पाँचवाँ उद्देश्य इस सभा का कला-कौशल की उन्नति करना है। राज्य में जहाँ कहीं शिल्पकला के स्कूलों की जरूरत होती है, सभा वहाँ उनके खुलवाने का यत्न करती है। जिस बालक या बालिका की प्रवृत्ति कला-कौशल की ओर होती है, धन से उसकी सहायता करके सभा उसके उत्साह को बढ़ाती है।

अमरीका की स्त्रियाँ अपना समय ऐसे ही कामों में खर्च करती हैं। मैंने केवल उदाहरण के तौर पर ही इतनी बातें लिखी हैं। यदि आप यहाँ की स्त्रियों के काम देखें तो आपको भारत की स्त्री जाति की अधोगति का अच्छी तरह अंदाज हो जाये।

अब ज़रा ग्रामीण स्त्रियों का भी हाल सुनिए। शहरों की स्त्रियाँ तो अपने समय को देश और जाति के उपकार के लिए खर्च करती हैं, पर गाँवों की स्त्रियाँ क्या करती हैं, आपको यह जानने की अवश्य ही इच्छा होगी। मुझे खुद इस बात के जानने का बड़ा शौक़ था। कई महीने निरन्तर गर्मियों में मुझे शिकागो से बाहर दूसरे राज्यों में घूमने का अवसर

* शिकागो विश्वविद्यालय के पास एक ऐसा ही बहुत बड़ा मकान है, जहाँ लूले-लंगड़े रहते हैं। उनके लिए गाड़ियाँ मौजूद हैं। वे गाड़ियाँ ऐसी हैं कि हाथ से कल घुमाने से चलती हैं। इस तरह अमरीका के लंगड़ों की भी ज़िन्दगी अच्छी तरह कटती है। —लेखक

हाथ लगा। वहाँ मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि चार-पाँच सौ की आबादी तक के गाँवों में स्त्रियों की सभायें थीं। ये सभायें अपने-अपने गाँवों की जरूरतों को दूर करने के इरादे से खोली गई थीं। गाने-बजाने का सामान सभी जगह था। यहाँ तक कि गाँव में क़रीब-क़रीब सबके घर में पियानो बाजा था। पुस्तकालयों का तो कहना ही क्या है! ग़रीब से ग़रीब के यहाँ भी पचास-साठ उमदा-उमदा ग्रन्थ होंगे। शेक्सपीअर, जार्ज ईलियट, इमरसन आदि साहित्याचार्यों के नाम आप झोंपड़ियों तक में सुनेंगे। हम आज अपने यहाँ ग्राम्य सुधार की बातें करने लगे हैं, योजनायें बनाते हैं और इतने पर ही फूले नहीं समाते; लेकिन यदि हम अपना मुकाबला पचास वर्ष पहले के अमरीका के साथ करें तो हमें पता लग जाये कि हम दुनिया से कितने पीछे हैं। ओहो! कितना काम हमें करना है और कितना रास्ता तय करने को पड़ा है!!

बारहवाँ अध्याय

शिकागो विश्वविद्यालय में एक वर्ष (१)

आज पचास वर्षों के बाद में पिछली ओर घूमकर शिकागो विश्वविद्यालय में अपने उस अतीत के एक वर्ष की ओर निहारता हूँ। उसमें प्रवेश होने के समय मैं क्या था और एक वर्ष के बाद मेरे में कितना परिवर्तन होगया ! विश्वविद्यालय की वे मधुर स्मृतियां मेरे लिए कितनी बहुमूल्य बनी रहीं, इसका अन्दाजा तो इसी से लगाया जा सकता है कि मैं भारतवर्ष लौटकर बराबर विद्यार्थी जीवन के उन दिनों को वापिस लाने का प्रयत्न करता रहा। भारतवर्ष में जुलाई सन् १९११ से लेकर मई सन् १९१४ तक मैंने आठ नौ हजार रुपया अपनी पुस्तकों की बिक्री से जमा कर लिया था और दुबारा अमरीका जाकर न्यूयार्क नगरी के प्रसिद्ध कोलम्बिया विश्वविद्यालय में भरती होने की तैयारी कर चुका था। सब आवश्यक कागज-पत्र मँगवा लिये गये, रुपया वहाँ के बैंक में जमा कर दिया, आस्ट्रिया की आस्ट्रियन लायड कम्पनी के स्टीमर में बर्थ रिजर्व होगया और मैं सन् १९१४ के अगस्त मास में वहाँ जाने को बिलकुल उद्यत ही था कि यूरोप का भयंकर महासमर प्रारम्भ होगया और मेरे दिल की बात दिल में ही रह गई। सच है—"मेरे मन कुछ और है, तेरे मन कुछ और।" कितनी बार पिछले चौबीस वर्षों में मैंने उस घटना पर विचार किया है और ठण्डी आहें भरी हैं। यदि वह युद्ध एक महीने बाद होता तो मैं एक और जगत्प्रसिद्ध विश्वविद्यालय में जाकर ज्ञान-संचय कर अपने आत्मा की भूख शान्त करता, किन्तु भावी तो उसी के हाथ में है जो जगन्नियन्ता है।

शिकागो-विश्वविद्यालय के वे दिन मेरे जीवन में एक खास स्थान

रखते हैं। प्राचीन आर्यों की संस्कृति में पला हुआ मैं, कट्टर आर्यसमाजी और पाश्चात्य सामाजिक जीवन से सर्वथा अनभिज्ञ, एक बिलकुल नये वातावरण में--नई प्रलोभनाओं में--डाल दिया गया था। मेरे इर्द-गिर्द के विद्यार्थी सिगरेट पीते थे, नाचघरों में जाते थे, नाटकों का मजा लूटते थे; चाय-कहवा का सेवन करते थे और लड़कियों के साथ विचरते थे; किन्तु मुझे उस भरी जवानी की अवस्था में भी ऐसी किसी चीज ने नहीं पकड़ा; लेकिन ज्ञान-प्राप्ति के लिए मेरे हृदय का द्वार शिकागो जाकर और भी खुल गया। मजहब की वह सहनशीलता, जिसकी मुझ में कमी थी, विश्वविद्यालय के वातावरण ने पूरी कर दी। मेरा दृष्टिकोण धार्मिक विषयों में अत्यन्त उदार होगया। काशी में जब मैं किसी ईसाई अथवा मुसलमान को देखता तो उसे शुद्ध करने का भूत मुझ पर बुरी तरह से सवार हो जाता और मजहबी शास्त्रार्थों की वजह से मैं रातों क्षुब्ध अवस्था में सोया नहीं करता था। विश्वविद्यालय की तालीम ने मेरे वे सब चुभने वाले कोने काट दिये और मैं एक शिक्षित मनुष्य बन गया। मुझे पता लगा कि विभिन्नता स्वाभाविक चीज है और उसी में उन्नति का रहस्य छिपा हुआ है।

ज्ञान के उस केन्द्र में जब मैंने जुदा-जुदा देशों के विद्यार्थियों को अपनी श्रेणी में बैठे हुए देखा और साथ ही लड़कियों को आपस में हँसते हुए पाया तो मेरी आँखें खुल गईं। यह था एक नवीन संसार--मेरे लिए बिलकुल नया। अपने कमरे में बैठकर मैं घण्टों इन अद्भुत दृश्यों पर विचार किया करता था। यूरोप वालों की पोशाक, उनका भोजन करने का ढंग, उनके छुरी-कांटों की चमचमाहट, उनकी भूरी-नीली आँखें, उनके रंग-बिरंगे बाल और उनके राष्ट्रीय गाने, सभी मेरे लिए अद्भुत थे। किसी प्रकार का राष्ट्रीय भेदभाव, मजहबी संकीर्णता की बातें सुनाई नहीं देती थीं। जीवन अत्यन्त अलबेला था वह।

जब श्रेणियों में बैठकर विद्वान् प्रोफ़ेसरों से गम्भीर विषयों पर

व्याख्यान सुनता तो मानो ज्ञान से स्नान हो जाता। ज्ञान का वह आनन्द कभी भुलाये नहीं भूल सकता। आज भी मैं ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूं कि वे दयानिधि बार-बार जन्म देकर मुझे विद्यार्थी-अवस्था में रक्खें ताकि मैं नया से नया ज्ञानसंग्रह करता रहूँ।

यह था मेरा पहला वर्ष। भारतवर्ष में मैं यद्यपि पढ़ा तो था दो तीन कालेजों में, किन्तु वह थी बेगारी विद्या। हमारे देश में पढ़ना-लिखना आनन्द की वस्तु नहीं—वह है बोझा, लाचारी। इसके विपरीत शिकागो के उस उद्यान में भ्रमर था मैं और विद्या-रस देने वाले थे प्रोफ़ेसर। वहां पर प्रधानता दी जाती है विद्यार्थी की रुचि को। मैंने इस वर्ष में कई विषय लिये थे, क्योंकि यहाँ का सत्र तीन महीने का होता है और हर तीन महीनों के बाद छात्र विषय बदल सकते हैं। कोई भी मज़मून आपको दूभर न होना चाहिये। यदि वह कठिन और अरुचिकर मालूम हो तो आप उसे शीघ्र छोड़ सकते हैं। ज्ञान तो मनुष्य की दैवी शक्तियों के अनुसार ही मिल सकता है। जिस चीज़ के आप पात्र हैं, वही आपके अनुकूल हो सकती है। एक सत्र में मैंने लेटिन और जर्मन भाषायें लीं। मुझे पता लगा कि मैं भाषाओं को जल्दी पकड़ नहीं सकता, इसलिए अगले सत्र मैंने उन्हें छोड़ दिया। मेरी पसन्द के विषय थे—लेखन-कला, व्याख्यान-कला, राजनीति-विज्ञान, समाजशास्त्र, साहित्य, इतिहास और शिक्षा! धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन भी मैंने किया था, किन्तु यहाँ नहीं। अर्थशास्त्र के विषय को भी मैंने एक सत्र में पढ़ा था, लेकिन दूसरे विश्व-विद्यालय में। क्योंकि मुझे अपने गुज़ारे के लिए पैसा कमाना पड़ता था, इस कारण मैं बड़ी मुश्किल से तीन विषय ही ले सकता था और प्रत्येक दिन होता था तीन घण्टे पाठ और सप्ताह में पाँच दिन पढ़ाई। इस प्रकार शिकागो में मैंने कई प्रोफ़ेसरों के चरणों में बैठकर विद्याध्ययन किया।

जैसे मैं पहले लिख चुका हूँ, मुझे बराबर रुपया कमाने की फ़िक्र करनी पड़ती थी। विश्वविद्यालय में पढ़ते हुए भी मैं कुछ-न-कुछ काम करता ही रहता था। मिस्टर बेलगम नामक एक अमरीकन विद्यार्थी के

साथ मिलकर मैंने भिन्न-भिन्न क्लबों में व्याख्यानों का प्रबन्ध किया, जहाँ व्याख्यान देने की फ़ीस मिलती थी और कहीं-कहीं टिकट लगाया जाता था। उस आमदनी को मैं और बेलगम आपस में बाँट लेते थे। कुछ रुपया 'सरस्वती' में लेख लिखने के कारण आ जाता और कुछ विश्वविद्यालय में थोड़ा बहुत काम करने से प्राप्ति हो जाती। इस प्रकार बड़ी जद्दोजहद में मैंने एक वर्ष इस विश्वविद्यालय में पूरा किया। यहाँ मुझे अच्छे-अच्छे अमरीकन मित्र मिले, जो मेरे साथ बड़ा स्नेह करते थे। उनमें से एक का नाम था मिस्टर व्हाईट, जो अमरीका के दक्षिणी राज्य टेनेसी का रहने वाला था। उसके पत्र अभी तक मेरे पास मौजूद हैं। उनमें से तीन को हिन्दी अनुवाद सहित उन पुरानी स्मृतियों के सम्मानार्थ यहाँ देता हूँ।

पहला पत्र

The McCallie School,
Missionary Ridge,
Chattanooga, Tenn.
Sept. 13, 1906.

My Dear Deva,

I was very glad indeed to find a letter from you awaiting me here when I returned from home this week and am sorry that I haven't had an opportunity of answering it sooner, but the opening of a school you know is always a busy time and does not give much chance for a man to attend to a necessary thing like his correspondence properly. My visit home did not last more than a week, but, after the summer's work at Chicago, I was glad enough to get even that much rest. I was very sorry to hear that you had been having trouble in getting a position and I hope that you will soon receive your money from India and find

yourself in easier circumstances before the autumn quarter commences.

You asked me in your letter to give you some idea of the life in a small Southern town. The town in which my home is situated is a place of about five thousand people—a mere drop in the bucket, of course, in comparison with Chicago's millions—and, though a very old place, seems now to be taking on new life in the way of increased material prosperity. It was founded over a hundred years ago by a band of French Huguenots who came up from the low country around Charleston S. C. in search of a place to carry on their religious practices in the freedom of their own consciences and unmolested by the persecutions which they, as a Protestant sect, had received at the hands of the Roman Catholics in France. There is no trace remaininig now of the original French settlers who came over a century ago and called their village Abbeville after a town of the same name in the old country. A good many Scotch-Irish have since moved in, and it is this class, together with the English, that form the backbone of the population at the present time.

So much for the history of the place. As it is to-day, the town is equipped with practically all the modern conveniences and improvements in the way of water works, electric lights, and manufactures (cotton) that are found in the larger cities. One feature about my home that would please you is the absence of street cars and elevated railroads and a good many other noisy conveyances that annoy you whenever you go out on the street in Chicago.

The town is therefore usually very quiet—a good place

to study, read, and think. We have about six different religious denominations—Presbyterians, Methodists, Baptists, Episcopalians, Associate Reformed Presbyterians and Catholics. They each have very good houses of worship in which services are conducted every Sunday and on one day during the week in the evenings. There is scarcely any divison into social classes. The white people and the negroes, however, are divided strictly and there is no such thing as social equality between the two races. Among the white people themselves the older families are proud of preserving their identity, but merit is always recognized even though it comes from the lowest classes of the people. Further than this there is no class division. On the whole, I think life in a small town is much more pleasant than that in a large city. The people know each other better and are consequently more courteous and hospitable than is possible in the big places.

I could, of course, tell you a good deal more, but it would take too much time and I suspect you are tired reading already. I love my village very much and will probably be able to tell you more at some other time.

By Monday we will be hard at work teaching again. Our boys are about all back now and seem in good spirits for the year's work. I haven't studied any Sanskrit since I left Chicago, but I will try to keep it up during the year.

Let me hear from you again soon. Tell me all about

your work and what you intend to study in the University during the year.

Hoping to receive a letter from you at an early date, I am,

Very Sincerely Yours
Leonard W. White

अनुवाद

मेकाली स्कूल,
मिशनरी रिज्ज, चटानूगा,
टेनेसी स्टेट।
१३ सितम्बर, १९०६

मेरे प्यारे देव,

सचमुच इस सप्ताह घर से लौटने के बाद आपके पत्र को अपनी बाट जोहते हुए देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और मुझे खेद है कि इसका उत्तर देने का अवसर मुझे शीघ्र न मिल सका। लेकिन आप जानते हैं कि सप्ताह की छुट्टियों के बाद स्कूल का खुलना अध्यापकों के लिए बहुत मशगूली का होता है और ठीक तरह से पत्रोत्तर देने का अवकाश व्यक्ति को नहीं मिलता। मैं घर में एक सप्ताह से अधिक नहीं रहा, लेकिन शिकागो विश्वविद्यालय में गर्मी के उस सत्र में परिश्रम करने के बाद इतना विश्राम मिल जाना बड़े सौभाग्य की बात थी। मुझे यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि आपको काम के खोजने में बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ीं और मुझे आशा है कि भारतवर्ष से आपका रुपया शीघ्र आ जायेगा और आप पतझड़ सत्र के आरम्भ होने से पहले निश्चिन्त हो जायेंगे।

आपने अपनी पहली चिट्ठी में दक्षिणी रियासत के किसी छोटे से नगर के जीवन के सम्बन्ध में कुछ जानने की इच्छा प्रगट की थी। उस कस्बे की आबादी जहाँ मेरा निवास-स्थान है, पाँच हज़ार है—शिकागो

की लाखों की जनसंख्या के मुकाबिले में बाल्टी में केवल एक बूंद के बराबर—और यद्यपि यह एक पुरानी बस्ती है किन्तु प्रतीत होता है कि सांसारिक समृद्धि के लिहाज से यह अब नवजीवन धारण कर रही है। सौ वर्ष हुए कि इसकी नींव फ्राँसीसी ह्यूगनाट्स (प्रोटेस्टेन्ट्स) लोगों के एक दल ने डाली थी। वे दक्षिणी केरोलीना के चार्लस्टन नगर के इर्द-गिर्द की नीची भूमि से यहाँ बसने के लिए आये थे। उन्होंने फ्राँस में रोमन केथोलिक धर्मवालों से बड़ा त्रास पाया था, इस कारण वे किसी ऐसे स्थान की तलाश में थे जहाँ वे निर्द्वन्द्व होकर अपनी आत्मा के अनकूल ईश्वराराधना कर सके। इस समय उन पुराने फ्राँसीसियों का कोई चिन्ह यहाँ नहीं पाया जाता। अपनी त्यक्त जन्मभूमि में जो नाम उनके अपने वहाँ के कस्बे का था, उसी का नामकरण संस्कार कर उन्होंने इस नई बस्ती का नाम एबीविले रखा। तब से लेकर वर्तमान काल तक आयर्लैण्ड और स्काटलैण्ड के कुछ निवासी यहाँ आकर बस गये और बाद में कुछ अंग्रेज सद्गृहस्थों ने भी यहाँ आकर आश्रय लिया यही लोग अब इस कस्बे की मुख्य आबादी के स्तम्भ हैं।

इतना तो इस छोटे से नगर का इतिहास है। अब इस समय इसका रूप बड़े शहरों के ढंग का है, जहाँ सभी आधुनिक तरीके के वैज्ञानिक आराम के साधन, जैसे पानी का नल, बिजलीघर, कल-कारखाने, मौजूद हैं। मेरे घर की, आपके मन को मुदित करने वाली, एक विशेषता यह है कि वहाँ पर शिकागो की गलियों की तरह आपको सताने वाली ऊँची रेल की सड़कों, गली में शोरगुल करने वाली बिजली की गाड़ियों तथा अन्य भौं-भौं करने वाली मोटरबसों का सर्वथा अभाव है। इसी कारण हमारा यह कस्बा साधारणतया बहुत शान्त रहता है—पठन-पाठन और ध्यान का यह उपयुक्त स्थान है। हमारे यहाँ छः प्रकार के ईसाई सम्प्रदाय हैं—प्रेस्बीटेरियन्स, मेथोडिस्ट्स, बेप्टिस्टस, एपिस्कोपेलियन्स, एसोशियेट रिफार्म्ड प्रेस्बीटेरियन्स और रोमन केथोलिक्स। प्रत्येक सम्प्रदाय का अपना अलग पूजाघर है, जहाँ प्रत्येक रविवार को धार्मिक सत्संग होता

है और सप्ताह में एक बार सन्ध्या के समय धर्मचर्चा होती है। यहाँ के सामाजिक जीवन में कोई भेद-भाव नहीं; अलबत्ता गोरे और हब्शियों में कठोर सामाजिक प्रतिबन्ध है और इन दो नस्लों के लोगों में किसी प्रकार की सामाजिक समता नहीं। गोरे गृहस्थों में यहाँ के पुराने खानदानी निवासी अपने वंश के बड़े अभिमानी हैं, लेकिन गुणग्राहकता का प्रभाव व्यापक है, चाहे वह गुण निर्धन से निर्धन में ही क्यों न हो। इसके अतिरिक्त कोई वर्गभेद यहाँ नहीं। सभी बातों को ध्यान में रखकर मेरी राय में बड़े शहरों की अपेक्षा छोटे कस्बों का सामाजिक जीवन अधिकतर सुखदायी होता है। बड़े शहरों में जिस शिष्टाचार और शालीनता का मिलना असम्भव-सा होता है, छोटे कस्बों के निवासियों में आपस की अच्छी जान-पहिचान के कारण वे गुण अधिक मात्रा में होते हैं।

निस्सन्देह मैं आपको अपने कस्बे के विषय में और भी बहुत कुछ बतला सकता हूँ, किन्तु मुझे सन्देह है कि आप इतना ही पढ़कर न उकता गये हों। मुझे अपने ग्राम से बड़ी मुहब्बत है। सम्भवतः किसी दूसरे समय इस सम्बन्ध में और भी अधिक बतला सकूँ।

सोमवार से हम अपने अध्यापन-कार्य में फिर लग जायेंगे। हमारे लड़के करीब-करीब वापिस आ गए हैं और वर्ष भर का कार्य-भार उठाने के सर्वथा योग्य हैं। शिकागो छोड़ने के बाद से मैं संस्कृत का अपना अभ्यास जारी न रख सका, लेकिन मैं वर्ष के अन्दर-अन्दर उसके अभ्यास का भरसक प्रयत्न करूँगा।

आप मुझे फिर शीघ्र पत्र भेजें और अपने कार्य के विषय में सविस्तर लिखें। आप कौन-कौन से मजमून वर्ष भर में पढ़ने की इच्छा रखते हैं ?

आप से शीघ्र पत्र पाने की आशा रखता हुआ, मैं हूँ,

आपका सच्चा मित्र,
ल्योनार्ड डब्ल्यू. व्हाईट

दूसरा पत्र

Chattanooga, Tenn.
Oct. 14, 1906.

My dear Deva,

Your card reminding me that I had been somewhat negligent in my correspondence with you has just reached me, and I am now trying to make amends as soon as possible by answering your last letter. You can't imagine how glad I am that you made successful arrangements by which you can continue your studies as a regular student in the University through the winter. I only regret that I could not have made some similar plans to enable me also to continue my education further in Chicago, and to be able to remain with you for a while longer at least. I have not yet forgotten the pleasant times we had in each others, company during the past summer at the University, nor indeed do I think that I ever shall forget them. But probably you would be interested in knowing something of how I pass my time in my present situation.

Our school is somewhat larger this year than it was last year and, consequently, though we have two more teachers than we used to have, the work is just about as hard as before. Our total enrolment of students is ninety-four and there are six teachers actively engaged in the school. By having such a small number of students you will see that, with six teachers, we are able to manage very small classes, and in this way to give a greater amount of attention to the individual than would be possible if we had to have as large classes as some other schools do. We try to prepare the boys just as thoroughly as we can for the

Universities so that when they go away from school to home they will be of some credit to the school at which they were previously trained. My duties here are to teach six classes, namely, three in Latin, one in English and two in German. School opens every morning at about half-past eight and continues with some intermission for dinner until about half past two in the afternoon. After the school hours close every day I have to go down to the athletic field and coach the boys in playing their favourite game football. Probably you have already seen something of this great American game up there at Chicago and if you have not you can scarcely realize how strenuous it makes the teachers' life when he has to play football after he has finished his teaching work for the day. At night my time is all taken until bed-time correcting students' themes and in preparing the lessons I have to teach the next day. You will thus see that I am a pretty busy man. I am quite happy and am satisfied with every thing, except that I have to play the football in the afternoons which leaves me no time at all for private study and meditation. It is for this reason that I have been unable to keep up my Sanskrit studies which I began under you during the summer quarter at the University. It was very hard to have to give it up, but I hope that sometime within the next few years, if I can save a little money, that I will be able to get back in college again. Then I shall be able, I trust, to go ahead without stopping until I finish.

I wish very much that you could see the country around where I am now living. It is so beautiful that I am sure you would enjoy seeing it. Our school is situated on the

side of a high ridge and down at the foot in the valley lies the city of Chattanooga with the Tennessee river flowing by the side and high ranges of mountains be yond. The country all around is very mountainous and in this respect is very different from that around Chicago which as you have doubtless observed is very flat and wearisome. There is a calm and restfulness about the mountains that I like very much and the climate, too, is balmy and salubrious. The U. S. Government, too, has placed monuments all around to mark the historical spots where some of the great battles were fought during the dark days from 1861 to 1865. All these things add to the natural beauty of the scenery, the charm of historical association, which always makes a place more interesting, I think.

I suppose you managed with the Students' Fund Society as you said in your last letter that you were thinking of doing. I think that would be the best thing you could do because then you could go ahead and continue your studies without having to worry about your support. There is an unseen Power that will always help you out of your distress if you will always put your trust in Him. I hope that you will not wait as long to write to me as I waited before answering your letter. You must write me another long letter and tell all about how you are getting along, the University, etc. I hope you are still taking great interest in your English studies. Of course that is the most important thing for you now, and after you have mastered the language a man of as good mind as yours ought not to find any trouble with the other studies.

It is about time for me to close for this time. Don't

forget me. Hoping to hear from you again very soon, I remain,

Faithfully yours
L. W. WHITE

अनुवाद

चटानूगा, टेनेसी
१४ अक्टूबर, १९०६

मेरे प्यारे देव,

आपका पोस्टकार्ड मुझे अभी मिला। आपने लिखा है कि मैं आपके साथ पत्र-व्यवहार में कुछ लापरवाह सा होगया हूँ। खैर, अब मैं आपके पिछले पत्र का उत्तर शीघ्रातिशीघ्र देकर पिछली देरी का मुआवजा चुकाने का प्रयत्न कर रहा हूँ। सचमुच आप अन्दाजा नहीं लगा सकते कि मैं यह जानकर कितना प्रसन्न हुआ हूँ कि आपने अपने शरद् ऋतु के सत्र के लिए सफलतापूर्वक सब प्रबन्ध कर लिया है, जिससे कि अब आप इन सर्दियों में यूनीवर्सिटी के एक बाकायदा विद्यार्थी की तरह अध्ययन कर सकेंगे। मुझे इस बात का बड़ा दुःख है कि मैं शिकागो में अपनी शिक्षा को जारी रखने के लिए इसी प्रकार के प्रबन्ध के उपाय न कर सका, जिससे कि मैं कम से कम कुछ समय और आपके साथ रह सकता। मुझे अभी वे सुहावनी घड़ियाँ, जो हमने पिछली गर्मियों में यूनिवर्सिटी में इकट्ठे रहकर बिताई थीं, भूली नहीं। सचमुच मेरा तो यह ख्याल है कि मैं उन्हें कभी भी न भूल सकूँगा। लेकिन हाँ, शायद आपको यह जानने में दिलचस्पी होगी कि अपनी वर्तमान परिस्थिति में मेरा समय कैसे गुजर रहा है।

पिछले वर्ष से हमारे स्कूल के लड़कों की संख्या इस साल कुछ अधिक है और परिणामस्वरूप, यद्यपि दो अध्यापकों की वृद्धि की गई है, तिस पर भी हमारा अध्यापन-कार्य पहले से कुछ कम कठिन नहीं हुआ। कुल संख्या हमारे यहाँ रजिस्टर्ड विद्यार्थियों की चौरानवे है और छः अध्यापक

स्कूल में पूरे परिश्रम से पढ़ाते हैं । आप देख सकते हैं कि स्कूल में विद्यार्थियों की संख्या कम होने के कारण स्कूल में प्रत्येक शिक्षक के जिम्मे विद्यार्थियों की कम संख्या उसके अध्यापन कार्य को आसान बनाती है और इस प्रकार हम प्रत्येक विद्यार्थी पर अलग-अलग, व्यक्तिगत रूप में, बड़ी संख्या वाले स्कूल की अपेक्षा, बहुत ज्यादा ध्यान दे सकते हैं । हम छात्रों को विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा प्राप्ति के लिए पूरा पात्र बनाने का प्रयत्न करते हैं ताकि स्कूल छोड़ने के बाद जब वे घर जायें तो अपने पुराने विद्या-मन्दिर के लिए कीर्तिकर हों । मैं यहाँ ६ श्रेणियों को पढ़ाता हूँ, जिनमें से तीन लातीनी भाषा की, दो वर्ग जर्मन के और एक अंग्रेज़ी का है । स्कूल प्रतिदिन सवेरे साढ़े आठ बजे खुलता है और बीच में दोपहर का भोजन करने की छुट्टी को सम्मिलित कर बराबर अढ़ाई बजे तक जारी रहता है । प्रत्येक दिन पढ़ाई के बाद मुझे व्यायाम-क्षेत्र में जाना पड़ता है और वहाँ विद्यार्थियों को उनके अत्यन्त प्यारे फ़ुटबाल के खेल का अभ्यास कराता हूँ । सम्भवतः आपने शिकागो में अब तक अमरीका के इस महान् राष्ट्रीय खेल का कुछ-न-कुछ अध्ययन किया ही होगा और यदि अभी तक नहीं किया तो आप अन्दाज़ा नहीं लगा सकते कि सारा दिन स्कूल में पढ़ाने के बाद फिर विद्यार्थियों के साथ फ़ुटबाल में भिड़ने से किसी मास्टर पर कितना ज़ोर पड़ता है । रात का मेरा सारा समय, बिस्तरे पर जाने तक, विद्यार्थियों के अभ्यास की कापियाँ शोधने में जाता है और मुझे अगले दिन का सबक भी इसी समय तैयार करना होता है । अब आप स्वयं देख सकते हैं कि मैं कितना मशगूल आदमी हूँ । मैं अपनी वर्तमान परिस्थिति में बड़ा प्रसन्न और सन्तुष्ट हूँ, केवल यह दोपहर बाद फ़ुटबाल का बखेड़ा मुझे अच्छा नहीं लगता, क्योंकि यह मेरे लिए कोई अवकाश अन्य किसी प्रकार के विद्याध्ययन अथवा साधना के लिये नहीं छोड़ता । इसी कारण मैं अपना संस्कृत का अभ्यास, जिसे मैंने शिकागो विश्वविद्यालय के ग्रीष्म सत्र में आप से आरम्भ किया था, जारी नहीं रख सका । किसी चीज़ को आरम्भ कर बीच में छोड़ देना मेरे लिए अत्यन्त

दुःखद होता है, लेकिन मैं आशा करता हूँ कि आगामी कुछ वर्षों में यदि मैं कुछ रुपया बचा सका तो फिर कालेज में जाकर भरती हूँगा और अपने हृदय की इस कामना को पूरा करूँगा। तब मुझे विश्वास है कि मैं उसे बीच में न छोड़कर ख़त्म करके ही दम लूंगा।

मेरी बड़ी अभिलाषा है कि आप मेरे वर्तमान निवासस्थान के इर्द-गिर्द के भूखण्ड की सैर करें। यह ऐसा मनोभिराम स्थान है कि आप इसे ख़ूब ही पसन्द करेंगे। हमारा स्कूल एक ऊँची पहाड़ी पर स्थित है, जिसके नीचे पहाड़ी दामन में चटानूगा का शहर बसा हुआ है और टेनेसी नदी पास ही बहती है। दूसरी ओर सुन्दर नैसर्गिक दृश्य हैं। इधर का यह सारा इलाका गिरि-गुहापूर्ण है। शिकागो के थकानेवाले और चपटे मैदान की बनिस्बत इधर का भूभाग बड़ा पर्वतीय है। इन पहाड़ियों में शांति और विश्राम मिलता है जो मुझे भाता है और यहाँ का जलवायु भी सुगन्धियुक्त और आरोग्यवर्द्धक है। संयुक्तराज्य की सरकार ने सन् १८६१ से सन् १८६५ तक के अन्धकारमय दिनों में घटित भयङ्कर युद्धों के ऐतिहासिक स्थानों के स्मारक चिह्न स्थान-स्थान पर रखवा दिए हैं। ये सब चीजें इस जगह के प्राकृतिक सौन्दर्य को बढ़ाती हैं; इतना ही नहीं बल्कि मैं समझता हूँ कि इनके द्वारा ऐतिहासिक संस्मरणों का आकर्षण भी बढ़ता है।

जैसा कि आपने अपने पिछले पत्र में लिखा था कि आपका विचार अपनी पढ़ाई का सत्र समाप्त करने के लिए "विद्यार्थी सहायक फण्ड" से बिना सूद कर्ज लेने का है, सो मैं समझता हूँ कि आपने वैसा ही किया होगा। मेरे ख़याल में यही श्रेष्ठतम उपाय आपके करने योग्य था, क्योंकि तब आप निश्चिन्त होकर, पेट की चिन्ता से मुक्त, अपनी पढ़ाई को बराबर जारी रख सकेंगे। यदि आप उस सर्वशक्तिमान् प्रभु पर दृढ़ विश्वास रखेंगे तो वह अदृष्ट शक्ति सदा आपकी कठिनाइयों में सहायता करेगी। मुझे आशा है कि आप मेरी तरह पत्रोत्तर भेजने में विलम्ब न करेंगे। आप मुझे दूसरा लम्बा पत्र भेजें और अपने विषय में तथा विश्व-

विद्यालय सम्बन्धी सब बातें विस्तार से लिखें। मैं उम्मीद करता हूँ कि आप अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन में उसी प्रकार तल्लीन होंगे। निस्सन्देह आपके लिए यही सबसे पहली परमावश्यकता है और जब आप अंग्रेजी भाषा के पण्डित हो जायेंगे तो आप जैसे अच्छे मस्तिष्क वाला व्यक्ति दूसरे विषयों का ज्ञाता बनने में कोई कठिनाई अनुभव नहीं करेगा।

अब इस सयय चिट्ठी बन्द करने का समय होगया है। मुझे भूलियेगा नहीं। आपकी ओर से शीघ्र पत्र पाने की आशा रखता हुआ, मैं हूँ,

आपका विश्वासपात्र,
एल० डब्ल्यू० व्हाईट

तीसरा पत्र

McCallie School,
Chattanooga, Tenn.
Dec. 9, 1906

My dear Deva,

Your nice long letters that you have been so faithful in writing to me ever since I left the University have certainly merited more prompt attention, but I think you understand the situation clearly enough to preclude any further necessity of excuses for negligence on my part. One great burden is now removed from my shoulders because of the fact that the football season is over and the worry connected with it being removed also leaves me a little more time to myslf, so that I hope I may be able to answer your letters more regularly in the future than I have done upto this time. I suspect you are about beginning now to prepare for your Autumn Quarter exa-

minations which I suppose will come upon you pretty soon. How have you enjoyed your work at the University during the fall ? As much, and more, as you did in the summer, I hope.

It has been a source of great satisfaction to me to learn that you managed successfully in the matter of your support at the University for further work during the fall and winter, and I hope that you will not be troubled by similar inconveniences in the future. A man of your abilities should not permit any thing to interfere with the progress of his studies: and from my previous knowledge of your character and habits, I am sure that I can predict a bright future for you if you still continue in your present methods of study and investigation. You are right in trusting in that Unseen Power, which always helps those who make any effort whatever to help themselves. The right will always triumph in the end no matter how many and how severe the trials may it be called upon to go through in order to prove itself worthy of a crown. In these principles and with your present opportunities for study, I fear you have a much better chance of making a philosopher out of yourself than I have. Upto this time I have read very little of Emerson but with that which I have read I am very much impressed. The arrangement of his composition is sometimes not very good and orderly, but the style of each sentence is, I think, clear and forcefnl. His writings though have this great merit that almost any sentence you might happen to pick out will bear quoting as a gem. This atleast shows the great amount of thought that must have been packed into everything that the Concord sage wrote. I have always desired to study him more

thoroughly and will do so at my first opportunity.

It will be a pleasure to me to do anything I can for you in the way of helping you in the preparation of your book by revising your writing to the best of my ability. I don't make many pretensions toward being much of a writer, but if you are willing to trust your work with me I'll do the best I can for you. As you already know, I have very little time for work outside of the regular school duties but if you could give me something that you want done now so that I can work on it during the Christmas holidays I might be able to accomplish something for you. If I find that I have time after Christmas holidays are over, I will then also help you as much as I may be able. I am anxious to learn the nature of your story and I am quite sure that I shall be interested in it. You must, therefore, write me a full account of plans and make careful and complete explanations of what you want me to do.

In your last letter you made some inquiries about the moral condition of young boys in preparatory schools which I shall now try to answer as my experiences of such things go. To the best of my knowledge, there are not prevaleat in the boarding department of our school any of the vices you mention, but to say that they do not exist at all in the whole student body would be to go beyond the sphere of my knowledge. Nobody can make any statement of facts about the existence or non-existence of the secret vices who has not lived on very intimate terms with the person supposed to be guilty of the offence; and since I am not directly associated with any of our boys in their home life, except with those who

board in the school, it is impossible for me to make any positive statement about the extent to which the vices are prevalent in this school. Most of our pupils are day pupils simply, but I believe I am safe in saying that if these vices exist at all, they are extremely rare here. Your informant, however, was correct in saying that such things exist in schools for either sex and there have been cases of self abuses found so flagrant that the guilty-parties have had to be removed from schools and in extreme cases the persistence in the vice often results in insanity and the general break-down of the health, both physical and mental. In this school where-ever we find any thing that even looks vicious in that direction, we of cource try to stamp it out at once. Only a short time after I received your letter I overheard some boys in a room talking dirty, obscene things, and I immediately made it my business to tell each one about the evils of such things and to try to impress upon them individually the dire consequences of such practices. They all took my lecture in good spirits, and I don't anticipate any trouble from them in the future.

What do you intend to do during your Christmas holidays ? You will have about a week or ten days rest from the regular University work ; won't you ? I hope that you will write to me again very soon and tell all about what you have been doing since I last heard from you.

It is about time for me to close, but you must be sure and write to me soon. Till then, I remain,

Yours very sincerely,
L. W. White

अनुवाद

मेकाली स्कूल,
चटानूगा, टेनेसी
९ दिसम्बर, १९०६

मेरे प्यारे देव,

मेरे विश्वविद्यालय छोड़ने के समय से आप जो निरन्तर लम्बी दिलचस्प चिट्ठियां वफ़ादारी से भेजते रहे हैं, सचमुच वे शीघ्र उत्तर पाने की अधिकारिणी थीं। लेकिन मैं समझता हूं कि आप मेरी स्थिति का भली प्रकार अन्दाज़ा लगा सकते हैं। मुझे इस विषय पर अब किसी प्रकार की क्षमाप्रार्थना की आवश्यकता नहीं, क्योंकि मैंने किसी उदासीनता अथवा गफ़लत के कारण ऐसा नहीं किया। अब एक बड़ा बोझ मेरे कन्धों पर से उतर गया है, क्योंकि फुटबाल की ऋतु का अन्त हो जाने से मैं कुछ निश्चिन्त सा होगया हूं; इतना ही नहीं, इसके साथ लगी हुई चिन्ता के हट जाने से मुझे अपने दूसरे कर्त्तव्यों के पालनार्थ अवकाश मिलने लगा है। सो मैं आशा करता हूं कि अब मैं पहले की अपेक्षा आपको पत्रोत्तर देने में अधिक सुव्यवस्था से काम कर सकूंगा। मेरी ऐसी धारणा है कि अब आप शीघ्र आनेवाली अपनी पतझड़ की परीक्षा की तैयारी करने में संलग्न होंगे। इस पतझड़ में आपने अपने अध्ययन का कैसा आनन्द लिया? उतना ही, अथवा ग्रीष्म ऋतु के सत्र से अधिक?

मुझे यह बात जानकर परम सन्तोष हुआ कि आपने पतझड़ और शरद ऋतु के सत्रों का खर्च चलाने का समुचित प्रबन्ध कर लिया है और मुझे विश्वास है कि अब आपको भविष्य में पहले की तरह किसी प्रकार की रुकावटों का सामना नहीं करना पड़ेगा। आप जैसी योग्यता के पुरुष को अपने अध्ययन के आदर्श की पूर्ति के मार्ग में किसी प्रकार की बाधा को आने देना नहीं चाहिये और आपके चरित्र और स्वभाव की पहली वाक़फ़ियत के आधार पर मुझे पूरा निश्चय है कि मैं आपके

भावी उज्ज्वल जीवन की भविष्यवाणी कर सकता हूं, यदि आप अपने अध्ययन और अन्वेषण को निरन्तर जारी रक्खेंगे। उस अदृश्य शक्ति पर प्रकट किये गये आपके विश्वास के साथ मैं पूर्णतया सहमत हूं कि वह हमेशा पुरुषार्थ करने वाले व्यक्तियों की सहायता करती है। सत्य संकल्प की सदा अन्त में विजय होगी, चाहे कैसी और कितनी ही कठोर परीक्षायें मार्ग में क्यों न आवें—उस ताज की प्राप्ति-हेतु अपने आपको पात्र सिद्ध करना ही पड़ता है। इन सिद्धान्तों में श्रद्धा तथा ऐसे वर्तमान अध्ययन के सुअवसर प्राप्त होने के कारण आपको मेरी अपेक्षा अधिक मौका दार्शनिक बनने का है। अब तक मैंने अमरसन्त (Emerson) की कृतियों को बहुत कम पढ़ा है, लेकिन जितना थोड़ा बहुत मैंने पढ़ा है उससे मेरे हृदय दर उनके लेखों की बड़ी गहरी छाप पड़ी है—उनके लेखों का प्रबन्ध कला के लिहाज से इतना अच्छा नहीं, लेकिन वाक्यों की शैली स्पष्ट और ओजपूर्ण है। उनके लेखों में यह बड़ी खूबी है कि प्रत्येक वाक्य अपना स्वतन्त्र भाव रखता है और आप उसे उठाकर कहीं भी उद्धृत कर दें, वह रत्न की तरह सुशोभित होगा। इतनी ही बात से पता चलता है कि कितने अधिक गम्भीर विचार कनकार्ड के इस ऋषि ने अपने वाक्यों में थोड़े शब्दों में सूत्रवत् भर दिये हैं। मेरी सदा उनके ग्रन्थों को सम्पूर्ण रूप से पढ़ने की इच्छा रही है और पहला अवसर मिलते ही मैं अपनी इस सुभ कामना की पूर्ति करूंगा।

आपकी पुस्तक को शोधने, परखने और तैयार करने में जो कुछ भी सहायता मुझसे हो सकेगी, मैं बड़ी प्रसन्नता से अपनी योग्यतानुसार उसे करूंगा। मैं कोई लेखक होने का दावा नहीं करता, लेकिन यदि आप अपनी रचना मेरे हाथों में विश्वासपूर्वक सौंप देंगे तो मैं आपके लिए भरसक प्रयत्न करूंगा। जैसा कि आप जानते हैं कि मैं अपने स्कूल के बाकायदा अध्यापन कार्य्य से बहुत कम फुर्सत पाता हूं, लेकिन यदि आप मुझे अब कोई काम इन बड़े दिनों की छुट्टियों में करने को देंगे तो मैं आपके लिए शायद कुछ कर सकूं। यदि बड़े दिनों की छुट्टियों के बाद

भी मुझे अवकाश मिलेगा तो उस समय भी मैं यथाशक्ति आपकी सहायता करूंगा। मैं आपके उपन्यास के ढांचे के विषय में जानने का बड़ा उत्सुक हूं और मुझे पूरा यकीन है कि वह मेरे लिये मनोरंजक होगा। इसलिये आप मुझे अपनी तजवीज का पूरा ब्योरा लिखें और जो कुछ आप मुझसे करवाना चाहते हैं उसके विषय में भी सब सूचनायें भेजें।

अपने पिछले पत्र में आपने प्रारम्भिक स्कूलों के लड़कों की नैतिक अवस्था के विषय में कुछ बातें पूछी थीं; अब मैं इस पत्र में अपने अनुभव के आधार पर उनका उत्तर देता हूं। जिन बुराइयों का आपने जिक्र किया है, जहां तक मेरी वाकफ़ियत है, वे मेरे बोर्डिंग हाउस के लड़कों में नहीं पाई जातीं, लेकिन यह कहना कि सारे विद्यार्थी-समुदाय में इन कुटेवों का अभाव है, अपनी जानकारी के क्षेत्र से बाहर जानेवाली बात होगी। कोई भी व्यक्ति उन छिपे हुए दुर्गुणों के होने या न होने के सम्बन्ध मे यथार्थता से वक्तव्य नहीं दे सकता, जो बुरी आदतें रखने वाले विद्यार्थियों से घनिष्ठ परिचय में न आया हो। चूंकि मैं किसी भी विद्यार्थी के घरेलू जीवन के साथ इस प्रकार का सीधा सम्बन्ध नहीं रखता, सिवाय उनके जो हमारे बोर्डिंग हाउस में रहते है, मेरे लिए निश्चित तौर से इस बुराई की सीमा को निर्धारित करना असम्भव सा है। अधिकांश हमारे विद्यार्थी दिन के समय के हैं, लेकिन मैं विश्वाश करता हूं कि यदि किसी प्रकार की बुराई इनमें होगी भी तो वह नगण्य सी है। आपको सूचना देने वाले सज्जन ने कोई गलत बात नहीं कही, जब कि उसने इन बुराइयों का अस्तित्व हमारे यहां के स्कूलों के लड़के-लड़कियों में बतलाया। हस्तमैथुन के इस प्रकार के उदाहरण जब जाहिर हुए तो अपराधियों को स्कूलों से निकाल दिया गया। जो लोग इन बुराइयों में सीमा का उल्लंघन कर जाते हैं उनकी तन्दुरुस्ती का सत्यानाश हो जाता है और वे पागल हो जाते हैं। इस स्कूल में जहां कहीं भी हम ऐसी बुराई की गन्ध पाते हैं, हम उसे जड़मूल से नस्ट करने का प्रयत्न करते हैं। आपकी चिट्ठी मिलने के कुछ समय बाद ही मैंने एक

कमरे में कुछ विद्यार्थियों को गन्दी और अश्लील बातें करते हुए सुना और मैंने उसी समय अपना यह कर्त्तव्य समझा कि प्रत्येक लड़के को जुदा जुदा इनकी हानियां समझाऊं और उनके दुष्परिणामों का चित्र खींचूं। उन्होंने मेरे इस लेक्चर को बड़े अच्छे भाव में लिया और मैं भविष्य में इस प्रकार के किसी क्लेश की आशा नहीं करता।

आप बड़े दिनों की छुट्टियों में क्या करने की इच्छा रखते हैं? आपको विश्वविद्यालय के नियमित पाठ्यक्रम से एक सप्ताह अथवा दस दिन का अवकाश रहेगा न? मुझे आशा है कि आप जल्दी मुझे पत्र भेजेंगे और बतलायेंगे कि आप पिछले पत्र के भेजने के समय से अब तक क्या करते रहे?

अब पत्र बन्द करने का समय होगया है, लेकिन मुझे आप निश्चित ही शीघ्र लिखें। उस समय तक मैं हूं,

आपका अत्यन्त सच्चे हृदय से
एल० डब्ल्यू० व्हाईट।

मिस्टर ल्योनार्ड डब्ल्यू० व्हाईट बड़ा सुशील, सुसंस्कृत और चरित्र-वान् नवयुवक था---मेरा हमजोली---२७-२८ वर्षों का। हम दोनों पहले सत्र में 'हिचकाक हाल' में रहते थे। जब मैं विश्वविद्यालय में आया और जापानी विद्यार्थियों की खोज की तो मैंने अनुभव से सीखा कि विदेश में जाकर उसी देश के लोगों के साथ सम्पर्क बढ़ाना अधिक लाभदायक और शिक्षाप्रद होता है। मिस्टर व्हाईट को संस्कृत पढ़ने की धुन थी, सो मेरा आगमन उसके लिए एक वरदान की सी बात होगई और हम दोनों में, समवयस्क होने की वजह से, घनिष्ठता बढ़ गई। उस सत्र की समाप्ति पर पैसे की कमी के कारण व्हाईट को नौकरी तलाश करनी पड़ी और वह 'मिशनरी रिज' में स्कूलमास्टर होगया। हमारा पत्र-व्यवहार बराबर जारी रहा। सन् १९०७ में जब मैंने अपने उस प्यारे मित्र को कई पत्र भेजे और कुछ भी उत्तर न पाया तो मुझे कारण

जानने की बड़ी उत्सुकता हो उठी। कुछ दिनों बाद उसकी बहिन ने मुझे पत्र भेजा, जिसमें उसकी मृत्यु का शोकजनक समाचार था। मेरा हृदय दुःख से भर गया और मैं अपने कमरे की खिड़की के पास बैठकर विचार करने लगा—

"जीवन और मृत्यु ये दोनों हमारे सामने हैं। जीवन को पाकर हम बड़े प्रसन्न होते हैं और मृत्यु हमारे लिए दुःखदायी बन जाती है। यह क्या रहस्य है? किसी वृद्ध का, पूरी उम्र भोगकर, जर्जरित शरीर को छोड़ देना उचित है। वह समझ मे भी आता है। लेकिन एक नीरोग, होनहार और भरी जवानी के शरीर का इस प्रकार मृत्यु के गाल में चला जाना अनुचित और बुद्धि से बाहर हो जाता है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मृत्यु के सम्बन्ध में हमारी वाकफ़ीयत बहुत ही अधूरी है। लाखों वर्षों से मौत का यह भीषण दृश्य मनुष्य को सताता रहा है, किन्तु मजहबी प्रमाणवाद के कारण हमने इसकी तहक़ीकात अच्छी तरह से नहीं की, केवल "Thy will be done" अर्थात् "तेरी इच्छा पूर्ण हो" कहकर घटना के सामने सिर झुका दिया और संसार-चक्र में पड़ गये। हमने कभी भी गम्भीरता से सारी शक्ति लगाकर इस अत्यावश्यक रहस्यपूर्ण घटना की गुत्थी सुलझाने की कोशिश नहीं की। अमर कीर्ति का नुस्खा तो पा लिया ताकि हमें ढाढ़स मिल जाये और जीवन-स्फूर्ति प्राप्त हो, लेकिन यह बात जानने का प्रयत्न नहीं किया कि एक अच्छा भला तन्दुरुस्त शरीर इतनी शीघ्रता से ख़त्म क्यों हो जाता है। आंधी से पेड़ गिर जाते हैं, पर यदि हम उनके इर्द-गिर्द मजबूत दीवार बना दें तो वे गिरने से बच सकते हैं। मृत्यु के रोकने का उपाय अभी तक हमको नहीं सूझा, क्योंकि हमने इसकी ओर वैज्ञानिक दृष्टि से विचार नहीं किया—भावुकता के मायाजाल में फँसे रहे हैं।

"क्या नब्ज का टूट जाना ही मृत्यु का चिन्ह है? हमारे यहाँ के हठयोगी नब्ज को रोक लेते हैं, लेकिन मरते नहीं। वे छः छः महीनों तक भूमि में गड़े रहते हैं, किन्तु उनका शरीर नहीं छूटता। मेंढक भी तो

महीनों कीचड़ में पड़े सोया करते हैं। हमने अभी तक यह बात नहीं जानी कि वह कौनसा ऐसा कारण है जो शरीर को ठण्डा कर देता है, रक्तप्रवाह को रोक देता है और बदन को सड़ाने लगता है। हमें चाहिये कि हम अपने सारे ज्ञान को इस महान् प्रश्न के हल करने में लगायें, क्योंकि इसके हल पर ही विश्व आत्मा की महान् चेतनाशक्ति का रहस्य जाना जा सकता है।"

मिस्टर व्हाईट की मृत्यु ने मुझे बड़ा धक्का लगाया और अमरीका में रहते हुए मैंने कई बार एकान्त में बैठकर उसके सुन्दर सुडौल शरीर को सामने खड़ा कर इन्हीं विचार-तरङ्गों मे गोते खाये।

विश्वविद्यालय में मुझे और भी मित्र मिले—सब आयु के; छोटे डोरान से लेकर बुढ़े जेफ़रसन तक। आज भी उनकी स्मृतियाँ उन मधुर दिनों की याद दिलाती हैं। शिकागो विश्वविद्यालय का वह नवीन स्फूर्ति-दायक जीवन मेरे लिए उच्च शिक्षा का प्रेरक बना। इसके पहले मुझे शिक्षा के नीरोग वातावरण का कुछ भी ज्ञान न था। हालांकि मैं बाल्यकाल में डी. ए. वी. स्कूल में पढ़ता रहा; दीपालपुर (जिला मिन्टगुमरी) में, जहाँ मेरे पिताजी हेडमास्टर थे, भी मैंने शिक्षा पाई; फिर डी. ए. वी. हाई स्कूल और कालेज में पढ़ा; बाद में बनारस के सेन्ट्रल हिन्दू कालेज में भी कुछ समय लगा दिया; काशी जी के पुराने ढर्रे के विद्यार्थी-जीवन के बीच में से भी गुजरा; किन्तु वह मजा, वह ताजगी, वह ज्ञान-स्नान, वे आरोग्य-वर्द्धक शिक्षायें और वे मस्तिष्क के विकास की बातें, जो शिकागो विश्वविद्यालय में प्राप्त हुई और आगे चलकर आरेगन विश्वविद्यालय में मिलीं, उनका अंशमात्र भी मुझे भारत-वर्ष में प्राप्त न हुआ। एक ही वर्ष में मैं जीवन-विकास-पथ पर खड़ा होगया और ज्ञान-प्रकाश की किरणों ने मेरे हृदय में उजाला कर दिया। साम्प्रदायिकता की तामसिक वृत्ति काफ़ूर होगई और मैंने समझ लिया कि ज्ञान किसी जाति अथवा व्यक्ति विशेष की जायदाद नहीं है। मानव जीवन का लक्ष्य ज्ञान-प्राप्ति है। सब सम्प्रदायों को मिटाकर, सब प्रकार

के प्रमाणवाद को एक ओर रखकर हमें अनन्त की ओर मुँह करना चाहिये और सारी सामाजिक व्यवस्था का आधार इसी आदर्श को बनाना उचित है। मानव जाति जिस दिन इस तत्व को समझ जायेगी, उस दिन संसार में सतयुग का प्रारम्भ होगा और हम विश्व-शान्ति-पथ को पा सकेंगे।

तेरहवाँ अध्याय

शिकागो विश्वविद्यालय में एक वर्ष (२)

शिकागो विश्वविद्यालय का मुख्य सम्बन्ध अमरीका के जगत्प्रसिद्ध मिट्टी के तेल के राजा स्वर्गीय मिस्टर जॉन डी० रॉकफ़ेलर (John D. Rockfeller) के साथ है। यद्यपि मिस्टर रॉकफ़ेलर अब इस संसार में नहीं है, तो भी जब तक यह विश्वविद्यालय कायम रहेगा, इस सेठ की कीर्त्ति अमर रहेगी।

स्वर्गीय मिस्टर रॉकफ़ेलर बैप्टिस्ट सम्प्रदाय के अनुयायी थे। ईसाई धर्म के भिन्न-भिन्न फ़िरके है। जैसे हिन्दुओं मे मत-मतान्तर है, ऐसे ही हजरत ईसा के मानने वालों ने अपने जुदा-जुदा टुकड़े कर डाले हैं। उनमें से बैप्टिस्ट मिशन प्रोटेस्टेन्ट सम्प्रदाय की एक शाख है। इस कारण इस सम्प्रदाय वालों का विश्वविद्यालय पर विशेष प्रभाव है। यहाँ इनका एक बड़ा गिर्जा बना हुआ है, जिसमे उसी जमायत के सिद्धान्तों के अनुसार धर्मचर्चा होती है। मैं रविवार के दिन वहाँ भी जाया करता था और विद्वान् पादरियों के धर्मोपदेश सुनता था। प्रायः वहाँ पर ख्यातनामा व्याख्यानदाता लेक्चर देने आते थे। पादरी जिप्सी स्मिथ ईसाई धर्म का एक मशहूर उपदेशक हुआ है। एक बार वे भी अपना सन्देश विद्यार्थियों को सुनाने के लिए यहाँ आये थे। बड़ा आकर्षण देखा मैंने उस मनुष्य में। भीड़ उनका व्याख्यान सुनने के लिए उमड़ी पड़ती थी और हाल खचाखच भरा रहता था। अपनी गम्भीर आवाज़ में वे श्रोताओं को ईसा का सन्देश सुना मन्त्रमुग्ध करते और पवित्र आत्मा के गुण गाते थे। मैंने भी उनके कई व्याख्यान सुने और मुझपर इनकी व्याख्यान-कला का बड़ा प्रभाव पड़ा।

जो विश्वविद्यालय प्राइवेट तौर पर ज्ञान-प्रचार करते है, वे उन ख़ास

व्यक्तियों के प्रभाव के नीचे रहते हैं जिन्होंने अपने धन का सदुपयोग मजहब के आधार पर किया है। जिन दिनों योरुप और अमरीका में मजहब की तूती बोलती थी, तब वहाँ हमारे देश की तरह धनी लोग अपने धर्म-मन्दिर बनवाया करते थे, किन्तु वर्तमान काल में विद्या-प्रचार हो जाने से अब सबकी रुचि बड़े-बड़े विद्यापीठ स्थापित करने की ओर है। हार्वर्ड, कोलम्बिया, शिकागो, जॉन हॉप्किन्स, स्टेनफ़ोर्ड और येल ऐसे ही अमरीकन विश्वविद्यालय हैं, जो सेठों की उदारता से प्रसिद्धि को प्राप्त हुए हैं और जहाँ अधिकांश अमीर माँ-बाप के बच्चे पढ़ते हैं। आजकल वैज्ञानिक उन्नति के कारण नये-नये ज्ञान-विभाग खुलते जाते हैं, जिनके कारण किसी आधुनिक विद्यापीठ की स्थापना करना सहज काम नहीं—उसके लिये करोड़ों रुपये चाहियें। ये विद्याकेन्द्र धन-सम्पन्न होने की वजह से सब प्रकार के साधन जुटाते हैं और बड़े-बड़े कीमती सामान इनके यहाँ मौजूद रहते हैं, जहाँ अन्वेषण-कार्य बड़े मजे से हो सकता है। अनन्त ज्ञान के प्रेमी इसी लिए ऐसे विद्या-केन्द्रों में जाना पसन्द करते हैं जहाँ उनकी ईश्वरदत्त शक्तियों के पूर्ण विकास के साधन हों। बौद्धकाल में भारतवर्ष में भी ऐसे ही ज्ञान-केन्द्र थे, जहाँ दूर-दूर देशों के जिज्ञासु अपनी ज्ञान-तृषा बुझाने के लिए आते थे।

उस ज्ञान-प्राप्ति के लिए आधुनिक ढंग की व्यायामशाला एक परमोपयोगी साधन है। आजकल के शिक्षाचार्य इस बात को स्वीकार कर चुके हैं कि कोई भी विश्वविद्यालय सुन्दर व्यायामशाला के बिना उन्नति की ओर मुंह नहीं कर सकता। भारतवर्ष तो इस सत्य सिद्धान्त को भूल ही गया है, इसी कारण इसके विद्यापीठों में दिमाग़ी ऐयाशी के कीड़े रेंग रहे हैं। ताजा विचार लाने के लिए नीरोग रक्त-प्रवाह की आवश्यकता है और वह भिन्न-भिन्न प्रकार की शारीरिक कसरतों द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। मैं जब इस विश्वविद्यालय में पहुँचा तो यहाँ की व्यायामशाला को देखकर अवाक् रह गया, क्योंकि इसके साथ

तैरने का अभ्यास करने के लिए अत्यन्त साफ़-सुथरा सरोवर भी था। मुझे तैरने का शौक़ है। पहली बार जब मैं निर्मल पानी से भरे हुए उस बड़े जलकुण्ड में तैरने के लिए गया तो दरवाज़ा घुसते ही सबसे पहले मुझे वहाँ के डाक्टर ने रोका और कहा—

"अपने सब कपड़े उतारकर उस (हाथ के इशारे से) नम्बर की खूँटी पर टाँग दीजिए, तब अन्दर जाकर पहले स्नानागार में अपने बदन को साबुन से धो डालिये, तत्पश्चात् उस कुण्ड में प्रवेश करने का अधिकार आपको मिल सकता है।"

मैंने उस छोटे से कमरे में जाकर सब कपड़े उतार दिये; केवल एक लङ्गोट पहिन कर बाहर आगया। इस पर डाक्टर बोला—

"नहीं-नहीं, इसे भी उतार दीजिये; बिलकुल नङ्गे होकर अन्दर जाइये।"

मैंने हैरानी से पूछा—"इसका क्या मतलब है?"

डाक्टर ने मुस्कराकर उत्तर दिया—"हम नहीं चाहते कि बीमारी का कोई कीटाणु हमारे विद्यार्थियों के शरीर में घुसे। यहाँ आप की परीक्षा कर ली जावेगी और तब आपको अन्दर जाने की आज्ञा मिलेगी।"

मैंने फिर पूछा—"डाक्टरी इम्तिहान के बाद तो मैं लङ्गोट पहिन सकूँगा न?"

डाक्टर ने सिर हिलाकर दृढ़ स्वर में उत्तर दिया—"नहीं, आप बिलकुल नङ्गे होकर अन्दर जाइये; पेशाबघर में पेशाब कीजिये; स्नानागार में स्नान कीजिये और तब सब विद्यार्थियों की तरह बिलकुल नङ्गे होकर नहाइये।"

मैं क्या करता! उसकी आज्ञा का पालन कर मैं भी बिलकुल नङ्गा होकर बाहर आया। डाक्टर ने देखा-भाला; प्रवेश-द्वार खुल गया और मैंने अपने आपको उस जलकुण्ड के किनारे खड़ा हुआ पाया।

आहा ! क्या दृश्य था ! दो-तीन सौ छात्र उस बड़े सरोवर में अठखेलियाँ कर रहे थे। पानी डूबने लायक गहरा था, लेकिन स्वच्छ, बिलकुल स्वच्छ। उसका तापमान भी सहन करने योग्य था ताकि स्नान करनेवाला पूरा सुख ले सके। सरोवर में जगह-जगह थककर सहारा लेने के लिए जञ्जीरें बंधी हुई थीं और अटकने के स्थान बने हुए थे, जहाँ कई विद्यार्थी एक बाँह के सहारे दम ले रहे थे। कई दोनों हाथों से जञ्जीर को पकड़ कर आराम से लटके हुए थे---सभी नङ्गे और गोरा बदन। अपने जीवन में पहली बार मैंने यह अद्भुत दृश्य देखा। अपने देश में हम झूठी शर्म के मारे मरे जाते हैं और नाना प्रकार की व्याधियाँ फैलाते हैं। स्नानार्थ जो सरोवर बने हुए हैं उनमें लोग पेशाब करते हैं, जूठे बर्तन माँजते हैं। नहाने के समय गन्दी धोतियाँ पहिन कर जल में घुस जाते हैं। अच्छी तरह शरीर भी साफ़ नहीं कर पाते---केवल बेगार सा होता है। और यहाँ ? क्या कहना है ! सब बातें बुद्धिपूर्वक विचार से की जाती हैं; पुराने मैले-कुचैले ढंग से नहीं। मैं कई मिनट तक वहीं खड़ा हुआ तैरनेवालों की किलोलें देखता रहा। कोई मुर्दे की तरह तैरता था, तो कोई मेंढक की तरह; कोई बेल्ट बाँधे हुए था, तो कोई पानी में खलबली मचा रहा था। गोताख़ोरों की भी कमी न थी, जो डुबकियाँ लगाकर एक दूसरे को पकड़ते थे और छलाँगें मारनेवाले ? वाह ! कैसी कुदक्कियाँ लगाते थे वे ! मैं तो खुश हो गया। एक अठारह वर्ष का लड़का, जिसके सुनहरी बाल थे और गहरी भूरी आँखें थीं, तैरने में कमाल करता था। सब आयु के स्नानार्थी मैंने यहाँ देखे। फ्रेश मेन (Fresh Men), नये अल्हड़ छात्र, जिनके प्रवेश का पहला ही वर्ष था, बड़ी खरमस्तियाँ कर रहे थे; मानो उन्हें कोई अलभ्य वस्तु मिल गई हो और अधेड़ तथा साठ वर्षों तक की आयुवाले अनुभवी अध्यापक भी अपने बाल्यकाल को नये सिरे से वापिस बुला रहे थे।

जब मेरे मित्र मिस्टर पैनी ने "तुम तो यहीं गड़ गये !"---कहकर

मेरा हाथ खींचा तो मुझे अपने स्नान की सुध हुई और मैं स्नानागार में घुसा। ठण्डे और गर्म पानी से खूब मलमल कर नहाया; तब हम दोनों जने सरोवर की सीढ़ियों पर जाकर बैठ गये। पैनी ने मुस्करा कर कहा—

"पानी काफ़ी गहरा है। तुम्हें तैरना आता है न? वह देखो, चारों ओर मदद लेने की खूंटियाँ—जंजीरें—मौजूद हैं। जरा-सा थकने पर भी आराम ले सकते हैं।"

मैंने देखा कि बहुत से विद्यार्थी मेरी ओर ताक़ रहे थे, मानो कह रहे हों—"देखें, कैसे हाथ मारता है यह हिन्दू।" मैं पानी में उतर गया और लगा मस्ती से तैरने। पैनी मेरे पास ही था। मुझे तैरते हुए देखकर वह बोला—"तुम तो अच्छे तैराक हो यार! मैं तो मुफ़्त में ही डरता था।" मैंने हँस दिया और लगा मुर्दे की तरह तैरने। मेरी श्रेणी के कई विद्यार्थी भी सरोवर में आए हुए थे। मुझे देखकर वे भी पास आगए। खिचड़ी बालों वाला हेनरी सिम्स मेरा बड़ा दोस्त था और था भी बड़ा हंसोड़। वह कहने लगा—

"वाह रे देवा, तुम तो छिपे रुस्तम निकले। हम समझते थे कि तुम ख़ाली मजहबी शास्त्रार्थ ही कर सकते हो, लेकिन आज हमने देख लिया कि तुम अमली तौर पर भी दूसरों को पार लगा सकोगे।"

इस प्रकार उस रोज नहाने का बड़ा लुत्फ़ आया। कैसी जिन्दगी थी वह! भोला-भाला विद्यार्थी जीवन, निर्द्वन्द्वता की खान और आरोग्यता की शान!

यह तो हुई तैराकी की बातें। मैं व्यायामशाला में भी जाता था। मुझे शौक था कुश्ती का—वही पुरानी हिन्दुस्तानी खेल—जिसमें आज भी भारतीय सबसे आगे बढ़े हुए हैं। अपने वजन के किसी भी विद्यार्थी को मैं अपने सामने टिकने नहीं देता था। दो-चार दाँव तो मेरी चुटकियों पर थे, जिनके कारण विद्यार्थी मुझसे परेशान हो जाते थे। कुश्ती का

मास्टर भी मुझे बहुत चाहता था। उस समय मेरा वजन १२५ पौण्ड होगा। कुश्ती में मेरी लोकप्रियता के कारण दो-चार लड़के मुझ से खार खाने लगे। उनके अन्दर रङ्ग का पक्षपात कूट-कूट कर भरा हुआ था। वे बिना कारण ही मुझसे खफ़ा रहते थे। काली भेड़ें सभी जगह होती हैं, जो अपनी दुर्गन्ध फैलाने से बाज़ नहीं आतीं। ख़ैर !

दूसरे हर तरह के व्यायाम भी विश्वविद्यालय में थे। उनमें से लटकते हुए लोहे के कड़ों को पकड़ना मुझे बहुत भाता था। छत में मजबूत रस्सी से बंधे हुए कई कड़े फ़ासले-फ़ासले पर लटकते रहते हैं। एक को एक बाँह से पकड़कर कसरती लटका हुआ आता है और दूसरी बाँह से अगले कड़े को पकड़ लेता है; फिर उस बाँह से झूलता हुआ वह आगे जाता है और खाली बाँह से अगले कड़े को पकड़ता है; इस प्रकार बढ़ता चला जाता है और अन्त में थककर छोड़ देता है। बड़ा अच्छा व्यायाम है यह। मुझे झूला झूलने का भी बड़ा शौक था; उससे काफ़ी व्यायाम हो जाता है। लकड़ी की घोड़ियों पर उछलने-कूदने में भी मैं बड़ा होशियार था। दुःख यही है कि आंख की कमज़ोरी के कारण फ़ुटबाल और क्रिकेट में मैं दखल न कर सका। अमरीका का फुटबाल अंग्रेज़ी फुटबाल से भिन्न है। अंगेज़ी फ़ुटबाल में गेंद को हाथ नहीं लगाते, उसे पैरों की मार से ही 'गोल' पर पहुँचाना होता है। परन्तु अमरीकन फ़ुटबाल में खिलाड़ी गेंद को हाथ में भी ले सकता है और विरोधियों को अंगूठा दिखलाकर गोल कर सकता है। इस भगदड़ में खासी मारामारी हो जाती है। इसी वजह से अमरीकन फ़ुटबाल बड़ा कठोर खेल है, जिसमें डरपोक के लिए कोई स्थान नहीं। किसी समय भी हाथ-पैर टूट जायें। जब अमरीकन फ़ुटबाल का दङ्गल होता है तो उसे देखने के लिए दर्शक पागल हो जाते हैं। चालीस-पचास हज़ार की भीड़ तो मामूली बात है। बड़े-बड़े मैदानों में यह खेल खेला जाता है और शौकीन दर्शक दूरबीनों से उसे देखते हैं। एक-एक हरकत को दम रोककर तोला जाता है। अखबार खिलाड़ियों की तसवीरों से भरे

रहते हैं। नवयुवकों के लिए ऐसी विज्ञप्ति बड़े प्रोत्साहन की वस्तु है।

ऐसे विश्वविद्यालयों में अमीर लड़कों की खास क्लबें होती हैं, जिनमे साधारण-वृत्ति के छात्र प्रविष्ट नहीं हो सकते। उनका चंदा ज्यादा होता है; भोजन-पार्टियाँ और मनबहलाव के सामान भी ख़र्चीले होते हैं और रङ्ग-बिरङ्गी कीमती पोशाकें जुदा-जुदा अधिवेशनों पर पहिन कर आना पड़ता है। इन्हीं कारणों से यह अमीरों की सामाजिक चीज़ है। उस क्लब का अपना निज का घर होता है, जहाँ उसके सदस्य पूरी स्वतन्त्रता से विहार करते हैं। योरुप और अमरीका के सब बड़े विश्वविद्यालयों में इस प्रकार के विद्यार्थी-संघ हैं जिनमें ग़रीब का लड़का दम नहीं मार सकता। हाँ, किसी गुणविशेष की वजह से प्रसिद्धि पाया हुआ छात्र उनमें घुसना चाहे तो घुस भी जाता है। जैसे, कोई फ़ुटबाल अथवा मुक्केबाज़ी का "स्टार" अर्थात् कुशल-प्रवीण विद्यार्थी हो, कोई बातचीत, प्रहसन, चुटकलेबाज़ी में अव्वल नम्बर पाया हुआ हो अथवा ऐसा सुन्दर हो कि उसके आकर्षण से युवक-युवतियाँ न बच सकें। स्वाभाविक तौर पर कबूतर कबूतर की तलाश करता है और बाज़ बाज़ की। आप सबको एक रस्सी से नहीं हाँक सकते। आदर्श के तौर पर प्रजातन्त्रवाद ठीक है और होना भी चाहिये, किन्तु अमली तौर पर उसकी सफलता नहीं हो सकती। तरह-तरह के स्वभाव वाले छात्र इन विद्यापीठों में आते हैं। अमरीका तो ख़ास तौर से इस बात में समुद्र है, जहाँ सब देशों और सब जलवायु के लोग जाकर बसे हैं और उनका आपस में ख़ून मिल रहा है। वहाँ पर जुदा-जुदा सामाजिक केन्द्रों का होना और अपने स्वभाव के अनुसार मिलकर बैठने की प्रवृत्ति स्वाभाविक ही है। जहाँ जन्म से जाति नहीं मानी जाती, जहाँ गुण, कर्म, स्वभाव की प्रधानता है, वही समाज धीरे-धीरे नये टाइप के लोग पैदा करता है, उसी समाज के द्वारा नये आविष्कार भी होते हैं और वही ज्ञान-प्रचार में अगुआ बनता है। हिन्दुओं ने जन्म का सिद्धान्त पकड़कर अपने आपको विनाश के गढ़े में ढकेल लिया है। इसी कारण उनका खून गन्दा, उनके विचार दकिया-

नूसी और उनकी बुद्धि शब्दाडम्बरी होगई है। ज्ञान-क्षेत्र में नवीनता लाने के लिए नये-नये प्रकार के फ़ार्मूलों अर्थात् सूत्रों को बनाना पड़ता है। नये-नये जलवायु के गुण, कर्म, स्वभाव वाले रक्त-वीर्य के मेल से ही चामत्कारिक बीज पैदा हो सकते हैं। जो इस तथ्य को समझते हैं वे ही ज्ञान-मार्ग की महत्ता को हृदयङ्गम कर सकते हैं।

यहाँ पर विश्वविद्यालय में रहते हुए मुझे एक बार शिकागो के मशहूर स्टाकयार्ड्स अर्थात् बूचडखाने को देखने के लिए जाना पड़ा। 'स्नेल हाल' के नं० ६० के कमरे में रात को प्रगाढ़ शान्ति में जब कभी मुझे दुर्गन्ध-युक्त वायु की तरंगें लगतीं तो मैं बेचैन हो उठता था। दिन के समय मित्रों से कारण पूछने पर मालूम हुआ कि वह बदबू बूचड़खाने की थी। शिकागो विश्वविद्यालय से सात मील की दूरी पर यह दीर्घकाय बूचड़-खाना है। इतनी दूर होने पर भी उसकी गन्दगी का प्रभाव यूनीवर्सिटी तक पहुँचता है। ऐसे भीषण कारखाने को देखने की मेरी भी इच्छा हुई और मैं एक दिन अपने मित्र हेनरी सिम्स के साथ उसे देखने के लिए गया। शिकागो जैसे बड़े शहर का यह एक भाग है और उसके साथ सम्बन्ध रखने वाले कितने ही कारखाने वहाँ पर हैं। पशुओं के शरीर की कोई चीज व्यर्थ नहीं जाने पाती। हड्डी, सींग, बाल, तन्तु, रक्त, मूत्र और गोबर आदि जितनी भी वस्तुएँ भेड़, बकरी, सूअर और बैलों के शरीरों से निकलती हैं, सबको रुपये का रूप दिया जाता है। देश-देशान्तरों और द्वीप-द्वीपान्तरों में इस बूचड़खाने का माल जाता है और यहाँ पर सब प्रकार के विशेषज्ञ पक्का माल तैयार करने में लगे रहते हैं। हजारों बैल, सूअर, बकरी और भेड़ें देश के कोने-कोने से गाड़ियों के डिब्बों में लाद लाद कर शिकागो भेजी जाती हैं। कृषि-प्रधान राज्यों से नित्यप्रति हजारों पशु यमराज की इस नगरी में अपनी जीवन-लीला समाप्त करने के लिए रुदन करते हुए चले आते हैं। कौन सुनता है उनके करुणाजनक चीत्कार को!

जब हम वहाँ पर पहुँचे तो दर्शक ने हमें उन सधे हुए जानवरों

को दिखलाया जो अपने साथियों को मृत्यु के घाट उतारने के लिए बुला लाते हैं। लकड़ी के बाड़े बने हुए थे, जिनमें हज़ारों पशु बन्द थे। अजीब नज़ारा था—साक्षात् नरक ! हम पहले सूअर का काटना देखने गये। सूअर जब मशीन के निकट आता तो एक बड़ा मजबूत आदमी उसकी टाँग एक 'हुक' में अटका देता और वह जंजीर से लटकने लगता। उसी समय उसकी दर्दनाक चिल्लाहट दर्शकों का हृदय विदीर्ण करने लगती। एक छोटा-सा लड़का अपने बाप के साथ हमारी तरह इन निर्दयी नजारों को देखने के लिए आया था। जब वह शूकर सूली पर चढ़ा तो उसकी दयनीय दशा देखकर वह बालक अपने पिता से बोला—"नहीं पापा (पिताजी), मैं यह सब देखना नहीं चाहता। मुझे घर ले चलिये।" भला उस चाण्डाली, अस्वाभाविक, क्रूर कृत्य को वह बच्चा कैसे सहन कर सकता था ! पका-पकाया हुआ मांस खा लेना और बात है और पशु काटते हुए बेरहम बूचड़ को देखना दूसरा ही दृश्य है। लाखों ऐसे मांस खाने वाले हैं जो यदि पशु को कटता हुआ देख लें तो कभी भूल कर भी मांस खाने का नाम न लें। यदि घर की धर्मात्मा विदुषी स्त्री अपने पति को गरीबों की खाल उतारकर पैसा कमाते हुए देख ले तो कभी भी उस पैसे को छूये नहीं। हम बहुत से पाप इसलिए कर बैठते हैं कि हमें उनके मूल कारणों का ज्ञान ही नहीं होता। उस लड़के के अत्यन्त आग्रह करने पर उसके पिता को वहाँ से हटना पड़ा।

और वह सूअर ? उस आदमी का काम दिन भर सूअरों को टांगना था और ज़ंजीर से टंगा हुआ पशु आप ही आप आगे बढ़ जाता। थोड़ी दूर पर दूसरा आदमी खड़ा हुआ छुरी हाथ में लिये उसकी गर्दन की एक ख़ास नस को काट देता और सूअर लटकता हुआ आगे चला जाता। उसके शरीर से खून की धारा निकलने लगती, जो फ़र्श पर गिरकर छेदों द्वारा न जाने कहाँ लोप हो जाती। कुछ दूरी पर तीसरा आदमी खड़ा था, जो उसके बदन के किसी दूसरे ख़ास हिस्से को काट डालता। इस प्रकार कितने ही आदमियों के हाथों में लटकता हुआ वह पशु ज़ंजीर

द्वारा मशीन की मेहरबानी से चला जाता। प्रत्येक मनुष्य का दिन भर एक ही प्रकार का काम है, अर्थात् दिन भर सूअर लटकाना, दिन भर गले की हड्डी काटना, सारा दिन उसका पेट चाक करना। काम बटे हुए थे और इस ढंग से पशु मारे जाते थे कि किसी का एक मिनट भी व्यर्थ न जाय और प्रत्येक मजदूर ज्यादा से ज्यादा काम कर सके। मेरे खड़े खड़े कई सूअर निकल गए और कटकटाकर अपने-अपने कारखानों म पहुँच गये। उनकी हड्डियों के कंघे, चाकुओं के दस्ते और टूथब्रुश बनने लगे। उनके बाल दाँत धोने वाले ब्रशों में जमाये जाने लगे। सारांश यह कि स्वार्थी मनुष्य की बुद्धि का अद्भुत चमत्कार यह शिकागो का बूचड़खाना है। भला सोचिये कि जो मजदूर दिन भर सूअर को लटकाता रहेगा, या उसका गला काटता रहेगा, उसकी तन्दुरुस्ती कब तक चलेगी! उस दुर्गन्धयुक्त वातावरण में हज़ारों मनुष्य काम करते हैं, जो उस विषैली हवा को पाँच-दस बरस ही सहन कर सकते हैं। जब वे बूचड़खाने में नौकरी की तलाश में आते हैं उस समय आप उनके चेहरे देखिये; सुन्दर सुडौल बदन, गालों पर लाली, निर्मल आँखें और मानवतापूर्ण हृदय। वे ही इस नरक में पांच वर्ष काम करने के बाद अपना सब कुछ खोकर निकलते हैं। अलबत्ता यदि भाग्यशाली हुए तो बैंक में तीन-चार हज़ार डालरों की पूंजी उनकी अवश्य जमा हो जाती है।

इस प्रकार इस बूचड़खाने में केवल पशु ही नहीं मारे जाते बल्कि नीरोग नवयुवकों की भी बुरी तरह से हत्या की जाती है। योरुप के भिन्न-भिन्न देशों से तन्दुरुस्त कृषक बच्चे रोटी की तलाश में संयुक्त राज्य अमरीका और केनेडा की ओर मुँह करते हैं। बूचड़खानों के एजण्ट उनकी ताक में रहते हैं और चुन-चुन कर तन्दुरुस्त पट्ठों को अच्छी तनख्वाह का लोभ देकर यहां ले आते हैं और इस प्रकार "नये आये, पुराने गये" का प्रवाह बराबर जारी रहता है। जिनका यह बूचड़खाना है—स्विफ़्ट एण्ड आर्मर कम्पनी वाले—वे समुद्र-तटों पर अथवा लावण्य-मयी पर्वत-स्थली में बने हुए अपने भव्य भवनों में जीवन का मज़ा

लेते हैं और विहार करते हैं। उनकी जाने बला ! उनकी फिलासफ़ी यह है—

"हम तो अच्छी तनख्वाहें देते हैं, रहने को मकान देते हैं और काफ़ी छुट्टियां भी देते हैं; फिर भला किसी को शिकायत क्यों हो ? हम बुलाने थोड़े ही जाते हैं ! वे आते हैं नौकरी की खोज में, हम उन्हें नौकरियां देते हैं। उन्हें तो शुकरगुजार होना चाहिये, जो पांच वर्षों में चार हजार डालर बैंकों में जमा कर लेते हैं। ऐसी नौकरी और ऐसे मालिक मिलेंगे कहां !"

बैल कैसे मारे जाते हैं, यह देखने की मेरी बड़ी इच्छा थी। अपने देश में तो मुसलमान कसाई पशु को तड़पा-तड़पा कर मारता है और वह भी खुदा के नाम पर; यह व्यापारी वर्ग इनकी किस प्रकार हत्या करता है, इसे जानने को मैं उत्सुक था। मिस्टर सिम्स मुझे उसी ओर ले गये। वहाँ जाकर मैंने देखा कि एक प्रकार की गैलरी बनी हुई है, जिसके नीचे छोटे-छोटे बाड़े थे, जिनमें अकेला पशु खड़ा हो सके और बैठ सके। नीचे दरवाजे थे, जिधर से पशुओं को हंकाकर बाड़ों मे कर देते थे। गैलरी और बाड़े में थोड़ा-सा ही फ़ासला था। एक दीर्घकाय मनुष्य उधर से आया और उसने एक हथौड़े से खड़े हुए बैल के माथे पर भयङ्कर चोट की। पशु फ़ौरन गिर पड़ा, बिलकुल मूर्छित। पाँच चार आदमी आकर उसकी खाल उतारने लग गये और हमारे देखते देखते उसकी लाश उठाकर "स्टोरेज" में पहुँचा दी गई। बाद में हमने वहाँ जाकर देखा कि उस बर्फ़ानी घर में चमड़ा उतारे हुए बैलों की लाशें खूँटियों से अधर टंग रही थीं। उन लोथड़ों के टुकड़े कर ये लोग डिब्बों में बन्द कर उन स्थानों में भेजते हैं जहाँ मनुष्य को खाद्य-पदार्थ शीघ्र उपलब्ध नहीं होते। करोड़ों रुपये का अमरीका का व्यापार इस बूचड़-खाने की बदौलत है। हजारों मील दूर बैठे हुए मांसभोजी स्त्री-पुरुष अपना पैसा अमरीका भेज रहे हैं। उन्हें पता भी नहीं कि किस बेरहमी

से पशुओं की हत्या कर, नीरोग नौजवानों की बलि द्वारा, वह भोजन उन्हें मिलता है। यह निगोड़ा व्यापार-युग कितने भयङ्कर पाप स्वार्थी मनुष्य से कराता है!

बस पाठक, आप भी अब ऊब गये होंगे और मैं भी इस प्रकरण को बन्द करता हूँ। आपको भले-बुरे दोनों पहलू दिखाने थे। अपना सिद्धान्त तो यह है—

राखत नाही मलीन मन, सज्जन 'देव' उदार।
गुण गहते है हंस बन, अवगुण लेत सुधार॥

चौदहवां अध्याय

एक अमरीकन खेत पर मेरे कुछ दिन

मैं सन् १९०६ के जून मास में शिकागो विश्वविद्यालय में पहुँचा था। जुलाई मास से मेरा ग्रीष्म सत्र प्रारम्भ हुआ और सितम्बर के अन्त तक रहा। अक्तूबर मास से पतझड़ का सत्र शुरू हुआ और दिसम्बर मास के आखिर में उसकी पढ़ाई खत्म हुई। फिर आया जाड़े का सत्र, जो इकत्तीस मार्च सन् १९०७ में पूरा हुआ। अन्तिम सत्र था वसन्त ऋतु का, जो जून महीने की समाप्ति पर ख़त्म हुआ। इस प्रकार सब क़िस्म की मेहनत-मज़दूरी कर, हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं मे लेख लिखकर पैसा कमा और व्याख्यानों द्वारा थोड़ी-बहुत कमाई कर मैंने विश्वविद्यालय में अपने वर्ष भर की पढ़ाई पूरी कर दी। मित्रों ने मुझे बतलाया कि संयुक्त राज्य अमरीका की पूर्वी और मध्यवर्ती रियासतों में विदेशी स्वावलम्बी विद्यार्थियों के लिए रुपया कमाने के अवसर पश्चिमी राज्यों की अपेक्षा बहुत कम थे। आरेगन, केलेफ़ोर्निया और वाशिङ्गटन राज्यों में मज़दूरी करनेवाले भारतीय बंधुओं की चिट्ठियाँ मेरे पास, मुझे वहाँ बुलाने के लिए, अक्सर आया करती थीं। उधर का जलवायु भी हिन्दुस्तानियों के लिए अधिक अनुकूल था। इस कारण मैंने सोचा कि यदि इस ओर छुट्टियों में धन कमाने का वसीला न लग सका या मैं पढ़ाई लायक धन न कमा सका तो फिर पश्चिम की ओर चलकर अपने पुरुषार्थ को आज़माऊँगा। उधर जाने में नया देश देखने का शौक भी पूरा हो जाता था।

वसन्त ऋतु का सत्र पूरा होने को था। साल भर की पढ़ाई ख़त्म होगई। विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को अब तीन महीनों की छुट्टियाँ होनी थीं। हरेक छात्र ने छुट्टियाँ बिताने के प्रोग्राम पहले से तैयार कर

लिये। योरुप की सैर को जाने वालों ने स्टीमरों पर अपने-अपने स्थान सुरक्षित कर लिये अथवा लद्दू जहाज़ों पर नौकरियाँ तलाश कर लीं। जापान की ओर जाने वालों ने जापानी भाषा सीखने का लग्गा लगा दिया। जो मेरी तरह स्वावलम्बी थे उन्होंने कल-कारखाने वालों से लिखा-पढ़ी कर ली। सारांश यह कि सभी ने अपनी-अपनी आवश्यकताओं के अनुसार जोड़-तोड़ लगा ली।

मैं भी हाथ पर हाथ धरकर भाग्य के भरोसे न बैठा था। पहले तो एक कम्पनी के ग्राहक बढ़ाने का काम करने का विचार किया और इसके लिए पत्रव्यवहार भी हुआ, पर पीछे से इरादा बदल गया। मि० राबर्ट वेनहार्न मेरे घनिष्ठ मित्रों में से एक थे। उनसे भी शिकागो विश्वविद्यालय में ही परिचय प्राप्त हुआ था। वे इन दिनों आयोवा (Iowa) राज्य के सूसिटी नगर के पास के एक कालेज में अध्यापक थे। अमरीका के खेतों पर किस प्रकार वैज्ञानिक ढंग से खेती होती है, इसके विषय में जानकारी हासिल करने की मेरी बड़ी उत्कण्ठा थी। मेरे मित्र का सम्बन्ध एक जमींदार से था, जिसके पास छः सौ एकड़ भूमि थी। मेरे निवेदन पर उन्होंने जमींदार दोस्त के नाम एक सिफ़ारिशी चिट्ठी मेरे पास रवाना कर दी। बस, मेरा काम होगया।

मित्र का पत्र लेकर में वरमिलियन नामक नगर में पहुँचा। यह छोटा-सा क़स्बा दक्षिण डकोटा राज्य में है। यह शिकागो से पाँच सौ मील पश्चिम की ओर है। यहाँ के एक भूमिपति मिस्टर एण्ड्रयूज़ के नाम मेरे दोस्त ने पत्र दिया था। मित्र से यह मुझे पता लग गया था कि एण्ड्रयूज़ महाशय मिशेगन कालेज के ग्रेजुएट थे; कानून में भी आपने एल-एल. बी. की पदवी प्राप्त की थी। इसलिए मैं समझता था कि श्रीमान् बड़े ही फूंक-फूंक कर चलनेवाले होंगे।

जिस समय गाड़ी वरमिलियन पहुँची, उस समय दोपहर थी। धूप ऐसी कड़ाकेदार थी कि मुझे अपना प्यारा देश याद आ गया। जब मैं एल्वी महाशय के घर पहुँचा तब वे कहीं बाहर गये हुए थे। उनकी

वृद्धा माता ने मुझे प्रेम से बिठलाया और ठहरने के लिये कमरा दिखला दिया ।

कमरे मे अपना बग रख कर मै दरवाज़े के बाहर बरामदे में कुर्सी पर आ बैठा । हवा बहुत धीरे चल रही थी, इसलिए मैं पसीने से तर हो गया । वृद्धा ने मुझे एक पंखी लाकर दी और मेरे पास कुर्सी पर बैठ कर कपड़ा सीने लगी । थोड़ी देर तक हम लोग चुप रहे । तब वृद्धा ने पूछा—

"एल्वी कहता था कि एक हिन्दू हमारे खेत पर काम करने आवेगा । क्या आप ही खेत पर काम करने के विचार से आये हैं ?"

मैं—(बड़े अदब से) "जी हाँ, इसीलिए आया हूँ ।"

उसने कुछ मिनट तक मुझे ध्यान से देख कर कहा—"अमरीकन खेत का कठिन काम आप जैसे शरीर का पुरुष कैसे कर सकेगा ?"

मैं—"आप ऐसा न समझिये कि मैं बिलकुल ही कमज़ोर हूँ । इसमें शक नहीं कि मेरा शरीर अमरीकन मजदूर का सा नहीं है, परन्तु मेरा साहस उन्हीं का सा है ।"

वृद्धा हंसकर बोली—"अच्छा, इसकी परीक्षा हो जायेगी ।"

वह फिर अपने काम में लग गई । मैं कुर्सी पर बैठा सोचता रहा कि बुढ़िया कहीं रङ्ग में भङ्ग न डाल दे, कि मेरा यहाँ आना ही वृथा हो जाये ।

रात को मिस्टर एल्वी आगए । मुझसे बड़ी अच्छी तरह पेश आये । साढ़े चार रुपया रोज के काम पर उन्होंने मुझे रखना स्वीकार किया । दूसरे ही दिन मैं उनके खेत पर गया ।

वरमिलियन से आठ-दस मील पर वरबेंक नाम का एक छोटा-सा गाँव है । वह रेल की सड़क पर है । एल्वी महाशय की चार सौ एकड़ भूमि यहीं पर थी । मुझे यहीं काम करना था ।

मैं जिस समय खेत पर पहुँचा, सब लोग गिर्जे गए हुए थे; केवल एक मज़दूर खेत पर था। यहाँ पर यह भी बतला देना चाहिये कि जैसे हमारे यहाँ बड़े-बड़े ज़मींदार एक प्रबन्धकर्ता रखते हैं, वैसे ही मिस्टर एल्वी के खेत पर भी एक मैनेजर, मिस्टर हालवे, अपनी घर-गृहस्थी के साथ रहता था। उसके एक दर्जन लड़के-लड़कियाँ थीं। शाम को ये सब लोग गिर्जे से लौटे।

धीरे-धीरे भोजन का समय आया। हम लोग मेज़ के चारों ओर कुर्सियों पर बैठे। उस समय मेरी अजीब हालत थी। भला कहाँ शिकागो यूनिवर्सिटी की विशाल भोजनशाला का स्वच्छ और सभ्य-जनोचित भोजन और कहाँ यहां का रूखा-सूखा मोटा भद्दा खाना! यद्यपि विश्वविद्यालय में भी मुझे मांस खानेवालों के पास बैठकर भोजन करना पड़ता था, तथापि कभी ऐसी घृणा उत्पन्न न हुई थी। जिनको तमाम दिन खेत पर काम करना पड़े, भला वे ज़रा-से गोश्त पर कैसे गुज़ारा कर सकते थे! यहाँ मांस के इतने बड़े-बड़े टुकड़े उनको खाने को दिए गए थे कि देखने ही से तबीयत खराब होती थी। रसोईघर बिलकुल ही पास था। मारे दुर्गन्ध के मैं तो बेचैन-सा होगया। सोचा कि यहाँ इनके साथ रहकर खेत पर काम कैसे हो सकेगा! परोसने वाली स्त्री जब मुझे मांस देने लगी, तब मैंने सिर हिला दिया।

स्त्री—(आश्चर्य से) "क्या आप मांस नहीं खाते?"

मैं—"नहीं जी, मैं मांस नहीं खाता।"

मैनेजर हालवे, जो मेरे सामने बैठा था, बोला—"तो आपसे यहां का काम न हो सकेगा।" ख़ैर मैं चुप रहा।

हालवे थे आयरिश। इनके पिता आयर्लैण्ड से अमरीका आये थे। उनकी उमर पचास वर्ष से ऊपर थी, मगर देखने में पैंतीस वर्ष के मालूम होते थे। क़द मंझोला, कोई साढ़े पांच फ़ीट होगा। अधिकांश अमरीकनों की तरह चेहरा बिलकुल सफ़ाचट नहीं था, बलिक मोटी-

मोटी मूँछें थीं; हां, दाढ़ी माफ़ थी। स्वभाव के साधु होने पर भी इनमें अक्खड़पन कूट-कूट कर भरा हुआ था। इनकी स्त्री दूसरे विवाह की थी। बड़ी स्थूल, चलना-फिरना कठिन, पर आखिर किसान की स्त्री थी, दिन भर काम में लगी रहती। स्वभाव की बड़ी नेक थी। जब उसे मालूम होगया कि मैं मांस नहीं खाता और अण्डाभोजी भी नहीं, तब से वह मेरे लिए अलग भोजन बना दिया करती थी। मैं उसको 'माता' कहकर पुकारता था।

अभी तक मेरा नाम यहां कोई नहीं जानता था। भोजन के बाद और लोगों के साथ जब मैं भी घुड़साल में गया, तब वहां एक नौजवान मजदूर ने मुझसे दिल्लगी के तौर पर कहा—"कहो तो जानी, भोजन का मजा आया?"

मैंने हँस दिया। फिर वह मुझसे पूछने लगा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

मैं—"मेरा नाम जानी (Johnnie) ही ठीक होगा।"

बस सारे खेतवाले मुझे "जानी" ही कहकर पुकारने लगे। यदि फिर मैं उसी खेत पर कभी काम करने जाऊँ तो लोग "जानी" ही कहकर बुलावेंगे, असली नाम "देव" कहकर कोई न पुकारेगा।

इस खेत पर इन दिनों केवल पांच आदमी काम करते थे—हालवे, उसका लड़का तथा तीन और मजदूर। मेरे आने से छः जने होगये। फ़सल का समय न होने से इतने ही काफ़ी थे। यदि किसी दिन अधिक काम हो जाता तो हालवे की दो लड़कियां हाथ बटा लेती थीं। उनको आदमियों से कुछ कम मजदूरी मिल जाती थी।

अस्तबल में हरएक आदमी अपनी जोड़ी को चारा डालने और पानी पिलाने लगा। मैं चुपचाप खड़ा देखता रहा, क्योंकि अभी मैंने खेत के कामवाले कपड़े भी नहीं ख़रीदे थे। घोड़ों की तृप्ति कर उन लोगों ने सूअरों को मकई के भुट्टे डाले। पांच-चार बैल भी एक तरफ़ बंधे थे; उनको भी दाना डाला गया

हालवे मेरे पास खड़ा सूअरों को मकई डाल रहा था। मैंने उससे पूछा—"इतने सूअर आपने क्यों पाल रखे है ?"

हालवे—(हंसकर) "इन्हीं के लिए तो यह सब खेती है। इनको खिला पिलाकर मोटा करते है, तब बेच डालते हैं।"

मैं—"और ये बैल आप लोग क्या करते है ?"

हालवे—"अभी पाँच-चार रोज़ हुए, एक सौ बैल हम लोगों ने सूसिटी के बाज़ार में बेचे थे। ये चारों भी बेच डाले जायंगे।"

उस समय मेरे दिल पर बड़ी चोट लगी। मैंने शिकागो का बूचड़-खाना अपनी आंखों से देखा था। हज़ारों सूअर, भेड़ और बैल वहां पर मैंने बूचड़खाने के बाहर बंधे देखे थे। यही लोग पशुओं को यहां से पाल-पाल कर वहां मारने को भेजते हैं और अपने दाम खरे करते हैं। यह क्या माया है ? स्वार्थ! खुदगर्ज़ी!! अमरीका में लाखों एकड़ भूमि सिर्फ़ पशुओं के निमित्त है। ज़मींदार लोगों की अधिकांश आमदनी इसी व्यापार से है। मकई जितनी पैदा होती है, उसका दसवां भाग मनुष्य अपने खाने में लाते होंगे; बाक़ी सब सूअरों, भेड़ों और बैलों के खाने में आती है। जब ये पशु खूब मोटे-ताज़े हो जाते हैं तब सभ्यताभिमानी मनुष्य उनको मार कर खा जाते हैं। अमरीका का करोड़ों रुपये का व्यापार इसी से होता है। इन पशुओं की क़ीमत इनके वज़न के अनुसार लगती है। इसीलिए हालवे इनको मकई खाने को देते थे।

अमरीका में घोड़ों से खेती होती है। प्रातःकाल सात बजे अपनी-अपनी गोडने की कल, जिसके आगे दो घोड़े लगे रहते हैं, लेकर मज़दूर अपने-अपने काम पर गये। मैं इस काम को बिलकुल न जानता था, इसलिये खोदने का काम मुझे दिया गया। ग्यारह बजे के करीब मैं मकई

के खेत में खड़ा काम कर रहा था कि किसी ने पीछे से मेरी पीठ पर हाथ रक्खा। मैंने घूमकर देखा तो ज़मींदार महाशय किसानों के कपड़े पहिने हाथ में कुदाली लिये खड़े थे। मैं बड़ा हैरान हुआ। अव्वल तो बी० ए०, फिर एल-एल० बी०, तिस पर भी छः सौ एकड़ भूमि का मालिक, मेरी तरह काम करनें के लिए तैयार खड़ा था। धन्य! अमेरिका, धन्य! ! अपने ऐसे ही परिश्रमी सुपुत्रों की बदौलत आज तू उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर विराजमान है। परन्तु जिस देश के शिक्षित और धनवान् मनुष्य शारीरिक परिश्रम से बेतरह नाक-भौं सिकोड़ते हैं, वह देश क्यों न अधोगति को प्राप्त हो? क्यों न वह दुःख-दारिद्र्य का लीलास्थल बना रहे? जब मेरी उनकी चार आंखें हुई, तब वे हँसकर बोले—"क्यों, कैसा कठिन काम है?"

मैं—(मुस्कराकर) "सभी काम आरम्भ में कठिन होते हैं; पीछे से अभ्यास हो जाने पर आसान हो जाते हैं।"

एल्वी—"शाबाश! ऐसे ख्याल वाले आदमी के लिए दुनिया में कोई काम मुश्किल नहीं है।"

मैं चुप रहा। फिर एल्वी बोले—"आप यदि आलू के खेत मे काम करें तो बहुत अच्छा हो। यह मकई तो प्रायः पशुओं के खाने में आती है, इसलिए इसकी अच्छी-बुरी की ज्यादह परवाह नहीं। खास कर इस समय जब दूसरी खेतियों में आदमियों की सख्त ज़रूरत है।"

मैं—"जैसी आज्ञा, मुझे तो काम करना है।"

हम दोनों आलू के खेत में पहुँचे। ज़मींदार महाशय ने इस साल १२० एकड़ भूमि में आलू बोये थे। आलू की फसल के अच्छे होने की इस साल कम आशा थी। पहले तो भूमि में ही घास-फूस बहुत उगा था, आक और सूरजमुखी बहुत थे, जिनके उखाड़ने के लिए दो आदमी बराबर दरकार थे। दूसरे आलू की फसल में इस साल कीड़ा लग गया था। बाज़-बाज़ जगह तो इन मूज़ियों ने ज़मीन सफाचट कर दी थी। मैंने

एल्वी महाशय से पूछा—"क्या इन कीड़ों के दूर करने का कोई उपाय नहीं है ?"

एल्वी—"है क्यों नहीं ? कल देखो, दो आदमी लगाकर सारे खेत में पेरिस ग्रीन (Paris Green) छिड़कवा दूँगा। मैं दूसरे-दूसरे कामों में लगा रहा, इसलिए यह सब गफलत हुई।"

पेरिस ग्रीन एक प्रकार का विष होता है। एक बड़ी डिब्बेदार गाडी को पानी से भरकर उसमें इस विष को घोल देते हैं। डिब्बे के पीछे ऐसी एक कल लगी रहती है कि जब उस पर बैठा हुआ आदमी घोड़ों को हाँकता है तब फुहारे की तरह विष-मिश्रित पानी दोनों ओर की कतारों पर पड़ता जाता है, पौधे बिलकुल भीग जाते हैं और कीड़े प्रायः मर जाते हैं। बाज़-बाज़ दफे चार-चार कतारों पर एक ही बार पानी छिड़कते जाते हैं। उस कल की नली को बढ़ा-घटा कर ऐसा करते हैं। मुझे दो चार दिन यह भी काम करना पड़ा था।

बारह बजे भोजन के लिए छुट्टी हुई। एक बजे से फिर मैं खेत में काम करने चला गया।

आलू के खेत में और दो जने गोडने की कल चला रहे थे। इस कल के आगे दो घोड़े लगे रहते हैं और एक आदमी चलाने वाला होता है। यह कल खेत की क्यारियों में दोनों ओर पौधों की जड़ों में मिट्टी खोद खोद कर डालती जाती है, इससे खेती शीघ्र फूलती फलती है। वर्षा से मिट्टी दब जाती है और धूप से सख्त हो जाती है, इसलिए फ़सल के पकने तक पाँच चार बार सारे खेत को गोड़ना ज़रूरी है। यह मशीन बहुत कीमती नहीं होती। चालीस पचास रुपये में अच्छी काम लायक मिल सकती है।

"जानी !"—भोजन करके मैं बरामदे में खड़ा था कि किसी ने पीछे से पुकारा। मैंने घूमकर देखा तो हालवे का लड़का थोड़ी दूर पर खड़ा मुझे बुला रहा था। मैंने पास जाकर पूछा—"क्यों, क्या है ?"

लड़का—"पापा (पिता) कहते हैं कि आज आप हम लोगों के साथ जौ के खेत पर काम करने चलें।"

मैं—"बहुत अच्छा।"

मैंने हालवे से गेहूँ और जौ काटने वाली कल को चलती हुई देखने की इच्छा कई बार प्रकट की थी। आज इसीलिए उसने मुझे बुलाया था। जब मैं खेत पर पहुँचा, तब हालवे मशीन चला रहे थे। इस मशीन को अंग्रेजी में बाइण्डर (Binder) कहते हैं। इसके चलाने के लिए चार, छः, आठ, दस घोड़े, जैसी मशीन हो, दरकार होते हैं। बड़े-बड़े खेतों पर पच्चीस-पच्चीस, तीस-तीस घोड़े इस मशीन को चलाते हैं। एल्वी के खेत पर जो मशीन थी, उसमें घोड़े पीछे रहते थे और काटने वाली कल आगे। नहीं तो प्रायः घोड़े मशीनों के आगे ही जोते जाते हैं। इस मशीन से तीन काम होते हैं—काटना, बाँधना, और फेंकना। जौ को काट कर उसके पूले बना और रस्सी से बाँधकर यह मशीन फेंकती जाती थी। हम तीन जने (मैं तथा दो लड़के और) उन पूलों को उठा, उनके सिरे मिलाकर खड़ा करते जाते थे। इस तरह पाँच-छः पूले इकट्ठे इस प्रकार खड़े किये जाते थे कि धूप से जौ जल्द सूख जायँ और यदि पानी बरसे तो उनके ऊपर से बह जाये।

अक्सर जमींदार अनाज के सूखते ही उसको भूसी से अलग करने के लिए मड़नई की कल (Thrashing Machine) का उपयोग करते हैं। इस मशीन से गेहूँ या जौ अलग होकर डिब्बेदार गाड़ियों में गिरते जाते हैं। भूसा कल के ज़ोर से उड़-उड़कर दूर गिरता जाता है। उसका एक बड़ा ऊँचा टीला सा बनता जाता है। पास के एक खेत पर एक दिन मैं गेहूँ की मड़नई देखने गया था। एल्वी का विचार शीघ्र मड़नई करने का नहीं था, इसलिए जौ के सूखने पर उन पूलों के बड़े-बड़े कुप्प बना दिये गये।

इस खेत पर सौ एकड़ भूमि में जई (oats) बोये गये थे। जब वे पक गये, तब इसी मशीन से वे भी काटे गये। उनके भी बड़े-बड़े कुप्प

बना दिये गये। यह मशीन बिलकुल जड़ तक फ़सल नहीं काटती; आठ से दस इंच तक डंठल रह जाते हैं। परन्तु इससे कोई हानि नहीं, उल्टा फ़ायदा है। जब भूमि पर नए सिरे से हल चलाया जाता है, तब यह डंठल खाद का काम देते हैं। पश्चिमी अमरीका में बहुत से ज़मींदार ऊपर ही ऊपर से फ़सल काटते हैं; बाकी खाद के लिए रहने देते हैं। यहाँ भी जब ओट कट चुके और उनके पूलों के बड़े ऊँचे कुप्प बना दिये गये, तब हल का काम आरम्भ हो गया। हल वाली कल को अंग्रेज़ी में प्लोइंग मशीन (Ploughing Machine) कहते हैं। इसके आगे भी छः, आठ, दस, ज़रूरत के मुताबिक, घोड़े रहते हैं। पशुओं के लिए यह बड़ा कठिन काम है। आठ से दस इंच सख्त ज़मीन को खोद-खोद कर फेंकने में उन्हें बड़ी मेहनत पड़ती है। जैसा मैंने बतलाया, वे सब कटे हुए डण्ठल इस मिट्टी के नीचे दबकर खाद बन जाते हैं।

यही खाद काफ़ी नहीं होती। खाद डालने के लिए एक जुदा कल है। उसको अंग्रेज़ी में मेन्युर स्प्रेडर (Manure Spreader) कहते हैं। यह भी एक डिब्बेदार गाड़ी की तरह की कल है। पहले इसको खाद से भर लेते हैं, फिर खेत में ले जाकर पीछे की कल खोल देते हैं। ज्यों-ज्यों गाड़ी के घोड़े चलते जाते हैं, त्यों-त्यों खाद गिरता जाता है।

* * * *

आज सख्त बारिश थी। खेत पर नहीं जाना था। छुट्टी थी, गप्पें उड़ने लगीं। मैं, हालवे, दो लड़के, हालवे की तीन लड़कियां और उनकी माता, बैठक में कुर्सियों पर बैठे थे। हालवे की बड़ी लड़की, जिसका नाम एल्सी था, पियानो के स्टूल पर बैठी थी।

मैंने गांव में किसी से सुना था कि मिस्टर एल्वी मजदूरों से काम तो ले लेते हैं, पर मजदूरी देने में आगापीछा करते हैं। अपना सन्देह दूर करने के लिए मैंने हालवे से कहा—"क्यों जी, क्या सचमुच एल्वी महाशय मजदूरी देने में देर लगाया करते हैं?"

मेरे सवाल करने का लहजा ऐसा था कि "माता" मेरे दिल का भाव समझ गई। उन्होंने दिल्लगी के तौर पर कहा—"अभी तक तो किसी को मजदूरी मिली नहीं। छः मास से हम लोग यहां हैं। सिर्फ़ पन्द्रह रुपये मिले हैं। उम्मीद नहीं कि आपको इस साल कुछ मिले।"

मैं—"वाह! यह कैसे हो सकता है? मैं कालेज कैसे जाऊँगा?"

इस पर सब लोग हँस पड़े। हालवे ने कहा—"घबराइये नहीं। इस मुल्क में मजदूरों की रक्षा गवर्नमेंट अच्छी तरह से करती है। आपको यदि एल्वी मजदूरी न दें तो आप उनका असबाब नीलाम करवा सकते हैं।"

इस पर एल्सी (बड़ी-लड़की) ने हँसकर, मुझे सम्बोधित कर पूछा—"अच्छा, यदि एल्वी आपको मजदूरी न दे तो आप उनकी कौन सी चीज लेना पसन्द करेंगे?"

मैं—"उनके अस्तबल में जो अन्धी घोड़ी बँधी है, मैं तो उसी पर चढ़कर रफूचक्कर हो जाऊँगा।" इस पर मारे हँसी के सब लोग लोट-पोट होगये।

इस तरह बहुत प्रकार की बातचीत होती रही। मैंने हालवे से कहा कि आप कोई दिल्लगी की बात सुनावें। हालवे बोला—"दिल्लगी क्या, एक सच्ची बात सुनाता हूँ।"—

"जब पिछली बार हम लोग बैल बेचने सूसिटी गये, तब लोगों से सुना कि यहाँ पूर्व से पादरी लोग व्याख्यान देने आये हुए हैं। एक लेक्चर उस रोज भी तीसरे पहर होने वाला था। मैं भी सुनने गया। एक नौजवान पादरी खड़ा हुआ लेक्चर दे रहा था। लेक्चर में उसने अपने पादरी हो जाने का कारण बतलाया। कहने लगा कि मैं किसान हूँ। एक दिन दोपहर को खेत में खड़ा काम कर रहा था कि मुझे आकाश में कुछ शब्द सुनाई दिया। मैंने जो आँख उठाकर देखा तो एक फरिश्ता खड़ा पाया। उसके हाथ में एक तख्ती थी। उस तख्ती पर मोटे अक्षरों में

"पी० सी०" (P. C.) लिखा हुआ था। कुछ देर में फ़रिश्ता लोप होगया। मैं सोचने लगा कि यह क्या बात है? आख़िर मैंने समझा कि फ़रिश्ता कह गया है कि "Preach Christ" अर्थात् ईसा के सिद्धान्तों का प्रचार कर। बस, मैंने उस दिन से अपना काम छोड़कर ईसाई धर्म का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। यह सुनकर श्रोतागणों में से एक बुड्ढा, जो कोने में बैठा था, उठा और कहने लगा--'महाशय, आपने भूल की।' व्याख्यानदाता (हैरान होकर)---'क्या?'

"बूढ़ा---'फ़रिश्ते ने आपसे कहा था---'Plough Corn अर्थात् मकई बोओ।' आपने उलटा समझा।'

"जितने आदमी वहाँ बैठे थे, सभी कहकहा मारकर हँस पड़े। व्याख्यानदाता पर मानो घड़ों पानी पड़ गया।"

हम लोग इस प्रकार बहुत देर तक बातें करते रहे।

उस दिन तमाम दिन पानी बरसता रहा। शाम को भोजन के बाद सब लोग फिर बैठक में इकट्ठे हुए। एल्वी भी दोपहर की गाड़ी से आगये थे। एल्सी पिआनो बजाने में कुशल थी। गाना बजाना आरम्भ हुआ। एक अजीब दृश्य था—स्वामी, सेवक सब एक समान, कोई भेद-भाव नहीं था। अपने देश में तो नौकर पशु से भी बदतर समझा जाता है। ज़मींदार लोग किसानों को अपने साथ कुर्सी पर बिठलाना हत्तक इज़्ज़त समझते हैं। पाठक, यदि आपके यहाँ कोई नौकर हो तो आप उसको शिक्षा दें; उसके अन्दर आत्मसम्मान का माद्दा उत्पन्न करें; यही सच्ची देश-सेवा समझिए।

एल्सी पिआनो बजाती थी और गाती भी थी। उसके साथ उसकी दो बहिनें और भाई भी गाते थे। अधिकांश भजन प्रेम और ख्रीष्ट-धर्म सम्बन्धी थे। दो घण्टे तक हम लोगों ने गाने का आनन्द लूटा। अन्त में, हालवे के कहने पर, एक छोटी लड़की ने, जिसकी उम्र आठ बरस की थी, एक भजन गाया। उसके कुछ पद मैं नीचे लिखता हूँ—

There are many flags in many lands,
There are flags of every hue;
But there is no flag in any land,
Like our own red, white and blue.

CHORUS

Then hurrah for the flag,
Our country's flag, its stripes and white stars.

I know where the prettiest colors are,
And I'am sure if I only knew;
How to get them here I would make a flag,
Of glorious red, white and blue.

We should always love the stars and stripes,
And we mean to be ever true;
To this land of ours and the dear old flag,
The red, the white and blue.

न जाने क्यों, इस भजन को सुनकर मुझे बेचैनी सी हुई। मैं झट से उठकर, सबसे आज्ञा ले, अपने कमरे में चला गया। आँखों से टप टप आँसू गिर रहे थे। अकेला अँधेरे कमरे में बैठा जो कुछ सोच रहा था, उन भावों को लिखने की शक्ति इस लेखनी में कहाँ!

* * * *

घास के खेत में काम करना कठिन था। वर्षा के बाद मच्छरों की बहुतायत होगई थी। इस समय दोपहर को हवा भी बन्द थी। दोनों हाथों से या तो काम करें या मच्छर हटावें; इधर हाथ हटाओ तो उधर काटते हैं। मतलब यह, काम करनेवालों का उस दिन नाक में दम था।

हम दो आदमी भाग्यशाली थे—एक तो मैं, दूसरा मेरा साथी। हमारा काम घास की मेंड बाँधकर उसके बुर्ज बनाना था। इसलिए हम दोनों जमीन से कई फुट ऊँचे रहते थे और ज्यों-ज्यों घास आती थी, त्यों-त्यों ऊँचे होते जाते थे। इससे मच्छरों से बहुत कुछ रक्षा हो जाती थी।

घास के बुर्ज बनाने के लिए जो मशीन रहती है उसके लिये छ: आदमी दरकार होते हैं। एक आदमी कटी हुई घास को इकट्ठा करता जाता है—हाथ से नहीं, मशीन से। दो जने दूसरी मशीनों से उस कटी हुई घास को लाकर एक बड़ी मशीन के दाँतों के आगे रखते जाते हैं। ये दाँत लकड़ी के डेढ़ डेढ़ गज लम्बे होते हैं। जब सब घास उन दाँतों में अट जाती है, तब एक आदमी दूसरी तरफ से घोड़ों को हांक देता है। घास उन दांतों पर ऊपर उठती हुई चली जाती है। जमीन से कोई पांच गज ऊँचे जाकर ये दांत पीछे की ओर ढुलक पड़ते हैं। तब घोड़ों को रोक लेते हैं और सारी घास पीछे गिर जाती है। फिर घोड़ों को वापिस हांक लेते हैं। इस तरह मशीन घास को पीछे की ओर फेंकती जाती है। वहां दो आदमी गिरी हुई घास को इकट्ठा कर उसकी मेंड बांधने और बुर्ज बनाने में लगे रहते हैं। तात्पर्य यह कि घास को इकट्ठा कर इस तरीके से रखते हैं जिससे वर्षा का पानी पड़ने से वह सड़ न जाये।

अभी दो ही घण्टे मुझे काम करते हुए थे कि एक लड़के ने मुझे आकर कहा कि एल्वी बुलाते हैं। बुर्ज से उतर कर मैं एल्वी के पास गया। एल्वी दूसरे खेत में एक और काम में मशग़ूल थे। जब मैं वहाँ पहुँचा, तब मुझे मकई भरने में मदद देने का काम मिला। यहाँ एक दूसरी ही कल चल रही थी। इसको अंग्रेजी में कार्न शेलर (Corn Sheller) कहते हैं। इसका काम मकई के भुट्टों से दानों को अलग करना है। बारह घोड़े इस कल को चला रहे थे। एक आदमी मकई के भुट्टों को एक बड़े नल में डालता जाता था। अंडियाँ अलग

होती जाती थीं और दाने दूसरी नली से डिब्बेदार गाड़ी में गिरते जाते थे।

इस खेत पर काम करने का यह मेरा आख़िरी दिन था। दूसरे दिन अपनी मज़दूरी लेकर मैंने सबसे "गुड बाई" कही और दूसरी धुन में किसी और जगह चला गया।

मैं कहाँ गया? मि० वैनहार्न के घर पर। सूसिटी के पास मौनिङ्ग साइड कालेज है। वहीं जाकर मैं उनसे मिला। आज भी उनका वह खिलखिलाता हुआ चेहरा मेरे हृदय को पुलकित करता है। बड़े प्रेम से उन्होंने मेरे साथ हाथ मिलाया और अपने यहाँ ठहरने का प्रबन्ध कर दिया। इन दिनों इधर नई ही बस्ती हुई थी, इस कारण मच्छरों का बड़ा जोर था। सन्ध्या के समय सब गृहस्थ घास जला-जला कर धूआँ करते और इन खलों को भगाते थे। धूयें से जब आकाश आच्छादित हो जाता था तो इर्द-गिर्द के घरों के बच्चे खूब हल्ला करते थे और दरवाज़ों में बैठी हुई उनकी मातायें उन्हें बार-बार चुप होने को कहती थीं। कैसे नख़रे थे उन अल्हड़ बच्चों के!

मि० वैनहार्न से जब अपने भावी प्रोग्राम पर विचार हुआ तो उन्होंने भी यही सलाह दी कि पश्चिम के किसी विश्वविद्यालय में जाकर विद्या समाप्त की जाये। वे बोले—

"मिस्टर देवा! शिकागो विश्वविद्यालय बड़ा ख़र्चीला विद्या-केन्द्र है। हमारे रियासती विश्वविद्यालय छात्रों को कम ख़र्च पर विद्यादान देते हैं। प्रायः वहाँ कोई फ़ीस भी नहीं लगती और बाक़ी सब प्रकार के ख़र्च भी थोड़े पैमाने पर होते हैं। बेहतर यही होगा कि आप वहीं जायें। मैं आपको दो-तीन व्याख्यानों का प्रबन्ध करवाकर कुछ डालर जमा करा दूँगा। आपके लिए रेल का क़िराया हो जायेगा और आजकल गर्मियों के रियायती टिकट भी मिलते हैं।"

मित्र की बात मैंने मान ली। मेरे पास भी अस्टोरिया से पं०

ऋषिराम जी का पत्र आ चुका था। वे मुझे आग्रहपूर्वक बुलाते थे और सब प्रकार की सहायता करने का वचन देते थे। आर्यसमाजी होने के नाते वे मेरी सहायता करना अपना परम कर्तव्य भी समझते थे।

यहाँ मौर्निङ्ग साइड में व्याख्यान दिये। टिकट लग गया; उससे मेरे सफ़रलायक काफ़ी पैसा होगया। मित्र को हृदय से धन्यवाद देकर मैं शिकागो लौटा और वहाँ पहुँचकर पश्चिम की ओर जाने वाली रेलगाड़ी का रियायती टिकट ख़रीद लिया। शायद उस पर १६०) लगे होंगे।

इस प्रकार शिकागो का मेरा यह वर्ष निर्विघ्न समाप्त होगया। मैं बेंकोवर से केनेडा का सैंकड़ों मील का पहाड़ी इलाका लाँघकर सेन्ट पाल की ओर से अमरीका में प्रविष्ट हुआ था। अब शिकागो से दूर पश्चिम की ओर जाने के लिए उद्यत होगया। सोचता था—"इस छोटे से जीवन में मने न जाने ज्ञान-सञ्चय करने की धुन में कहां-कहां का पानी पीना है!"

पन्द्रहवाँ अध्याय

कोलम्बिया नदी के किनारे

कैसा क्षुब्ध वातावरण था उस समय आरेगन राज्य में हिन्दुस्तानी मज़दूरों के लिए! शिकागो में तो रङ्ग का पक्षपात था, जो प्रायः सारे अमरीका में थोड़ा-बहुत पाया जाता है और वह भी केवल हब्शियों के साथ। पश्चिमी राज्यों में हब्शियों के प्रति ऐसी कुछ ख़ास घृणा नहीं थी। यहाँ देखा मैंने एक दूसरा नया सवाल---एशिया में रहनेवाले मज़दूरों के प्रति विरोधभाव। ज़रा इसके कड़वे अनुभवों का भी वर्णन सुनिये।

पण्डित ऋषिराम जी अस्टोरिया की प्रसिद्ध डोर फ़ैक्टरी में काम करते थे। वहां उनकी ख़ूब चलती थी। फ़ैक्टरी का मालिक उनको बहुत मानता था, क्योंकि वह एक तरह से हिन्दुस्तानी कुलियों के सरदार माने जाते थे। गोरे मज़दूरों की कमी होने पर वे फौरन, छोटे नोटिस पर, कम मजदूरी लेनेवाले पंजाबी मज़दूरों को बुला सकते थे। उन्हें इधर आये हुए कई वर्ष हो चुके थे, इसी कारण पश्चिमी राज्यों में उनकी थी बड़ी जान-पहिचान। मैं भी उन्हीं की डोरी से खिंचा हुआ, अच्छा-भला शिकागो में बैठा हुआ, यहाँ चला आया। सच है---"भावी बड़ी प्रबल होती है।"

अस्टोरिया कोलम्बिया नदी के किनारे पर बसा हुआ है। यह बहुत बड़ी नदी है, जिसमें सामन मछली का बहुत बड़ा व्यापार होता है। यह नदी बड़े-बड़े जंगलों को लाँघती हुई आती है और समुद्र से अपना सम्बन्ध जोड़ती है; इसलिए लकड़ी की बड़ी-बड़ी मिलें तथा अन्य कल-कारखानें इसके किनारे पर हैं। अस्टोरिया भी ऐसा ही एक नया बसा

हुआ क़स्बा इसके किनारे पर था, जो अब अच्छा बड़ा शहर होगया है।

इसी नदी के बिलकुल किनारे लकड़ी का एक सुन्दर छोटा सा घर, बड़े-बड़े शहतीरों पर अवलम्बित, बना हुआ था। उस छोटी सी झोंपड़ी की खिड़की से यदि आप कोई चीज़ फेंकें तो वह नीचे नदी के पानी में तैरने लगती थी अर्थात् वह नदी के बीच में थी—कोई साठ-सत्तर फ़ुट ऊपर पानी से। बड़ा सुन्दर नदी का दृश्य यहाँ से दिखाई देता था। विश्वविद्यालय का सुखदायी 'स्नेल हाल' छोड़कर मैं इस झोंपड़ी का वासी बना। पं० ऋषिराम इसी घर में रहते थे। जब मैं अस्टोरिया पहुँचा तो उनका कहीं पता न लगा। मैंने केवल यही सुना कि उस क़स्बे के गोरे मजदूर हिन्दुस्तानियों से बुरी तरह घृणा करते थे। उस नफ़रत के कारणों को ढूँढने के लिए मुझे दूर जाने की ज़रूरत न पड़ी। मैंने थोड़े दिनों के अन्दर ही इस बात को भाँप लिया कि हमारे आदमी थे इसी लायक—बड़े दंगई, शराबी, कबाबी, अनपढ़-गँवार, औरतों के लिए बुरी तरह ख़तरनाक। खास तौर से बुरे नमूने के पंजाबी सिक्ख और मुसलमान इधर मजदूरी करने के लिए आये हुए थे, जिनके पापों का फल, उनका देश-वासी होने के नाते, मुझे भी भोगना पड़ा। इस कारण जब मैं ऋषिराम जी को ढूँढता-ढूँढता उस डोर फ़ैक्टरी के मालिक के पास पहुँचा तो उसने मुझे सारी स्थिति समझा दी। उसने मुझे कहा—

"ऋषिराम बड़ा ईमानदार, धर्मात्मा और सच्चरित्र व्यक्ति है। उसका हमारा वर्षों का सम्बन्ध है। लेकिन दूसरे हिन्दुस्तानी मजदूर बड़े बेसमझ निकले, जिनकी वजह से ऋषिराम को भी कष्ट पहुँचा। ऋषिराम तो इस समय बीमार होकर पोर्टलैण्ड अस्पताल में चले गये हैं। यहाँ अस्टोरिया में हिन्दुस्तानी मजदूरों को इस समय कोई बरदाश्त नहीं करता।"

उसकी ये सब बातें सुनकर मैं सन्नाटे में आगया। मैं आया था बड़ी बड़ी आशायें बाँधकर, हवाई किले खड़े कर, दुगुना-चौगुना पैसा कमाने

की लालसा से, ताकि विश्वविद्यालय में मज़े से पढ़ सकूँ। पर यहाँ तो कुछ और ही होगया। मुझे चुप देख कर सहानुभूति भरे लहजे में मिलस्वामी बोले—

"आपके चेहरे से चिन्ता के चिन्ह चमक रहे हैं। आप कौन हैं और कहाँ से आते हैं ?"

जब मैंने उन्हें अपनी कहानी सुनाई तो वे मेरी पीठ ठोककर बोले—

"घबराओ नही नौजवान ! खुदा उनकी मदद करता है जो अपनी मदद आप करते हैं। तुम्हारी चाल-ढाल, पोशाक और चेहरा देखकर मैंने तो तुम्हें कोई योरुपियन ही समझा था, क्योंकि तुम दूसरे हिन्दुस्तानियों से बिलकुल भिन्न हो। तुम अमरीका में तालीम हासिल करने के लिए आये हो और तुम्हारा बड़ा ऊँचा आदर्श है। मेरा फर्ज है तुम्हारी मदद करना। तुम ऋषिराम वाले घर में मजे से रहो, मैं तुमको उसकी ताली देता हूँ। वहाँ ज़रूरत का सब सामान मौजूद है। तुम कल से हमारी मिल में काम करो। हम तुम्हें ६ रु० रोज़ देंगे।"

मेरा हृदय कृतज्ञता से भर गया। उस दयालु अमरीकन को मैंने बहुत-बहुत धन्यवाद दिया। उससे ताली ले ली और खुशी-खुशी उस झोंपड़ी की ओर चला। ताला खोलकर देखा तो उसमें खाट, खाना पकाने के बर्तन और दूसरी आवश्यक चीजें मौजूद थीं। सब खिड़कियाँ मैंने खोल दीं और घर को झाड़ा-बुहारा—बिलकुल साफ किया। वह छोटी सी साफ-सुथरी जगह मेरे मन को बहुत भायी। कुर्सी को खिड़की की ओर खेंचकर मैं सुस्ताने लगा। सामने कोलम्बिया नदी की अगाध जलराशि दूर तक दिखाई देती थी। मैं सोचने लगा—

"मनुष्य में कितनी कम श्रद्धा है भगवान् पर ! कितना छोटा दिल है इसका और कितना दयालु है वह ईश्वर ! कुछ समय पहले मुझपर दुःख की घटायें छाई हुई थीं; मैं निराशा के गहरे गर्त्त में गिरा जा रहा था; मानो सब कुछ लुट गया हो; किन्तु वह कैसा दयानिधि है ! उसने झट

मुझे प्रकाश की झाँकी दिखला दी; मेरी मूर्खता मुझ पर स्पष्ट होगई और मुझे पता लगा कि कलकत्ते से बैंकोवर तक महान् पेसेफ़िक सागर लाँघने पर भी मैंने अभी तक परमात्मा पर पूर्ण श्रद्धा से विश्वास करना नहीं सीखा। जिन्होंने ईमानदारी का रास्ता पकड़ा है, पुरुषार्थ को अपना शस्त्र बनाया है और भगवान् की शरण ली है, उनके लिए कभी किसी चीज की कमी नहीं रही। परीक्षायें आती हैं मनुष्य की पहिचान के लिए, उसके उत्थान के लिए। उसे चाहिये कि वह ऐसे कष्टों के समय हिम्मत न हारे और सदा उसकी ओर दृष्टि रक्खे जो आशा का पुंज और हम सबका पथप्रदर्शक है।"

खिड़की के पास बैठा हुआ मैं इस प्रकार विचार-तरङ्गों में बह रहा था। सामने, फ़ासले पर, एक बड़ा स्टीमर धूंआ फेंकता हुआ सीटी दे रहा था। उसने पानी में लहरें पैदा कर दीं और मेरा ध्यान भङ्ग हुआ। मैंने भी विचार किया कि इस स्टीमर की तरह मेरा जीवन भी भवसागर पर तैरता चला जा रहा है। इस स्टीमर को अपना घाट मालूम है, निश्चित दिशा का पता है, इसलिए वह मस्तानी चाल से उधर बढ़ा चला जा रहा है। मुझे भी शीघ्रातिशीघ्र दिशा पहिचाननी चाहिये, निश्चित घाट का पता लगाना चाहिये, तभी जीवन में असली नशा और मस्ती आयेगी और इसकी उत्तरोत्तर उन्नति हो सकेगी।

दूसरे दिन से मैं मिल में काम करने लगा। मैं ही अकेला हिन्दू उस मिल में था, सो वहाँ मच गया शोर। जिस 'बॉस' (मजदूरों का सरदार) के साथ मैं काम करता था, जिससे मेरा बहुत अधिक सम्बन्ध था, वही दुष्ट मुझे सताने लगा। मेरा काम था मशीन के सामने कटे हुए छोटे-छोटे टुकड़ों को इकट्ठा कर ट्रकों में भरना और फिर उन्हें खेंचकर एक नियत स्थान पर ले जाकर ढेर कर देना। दिन भर मुझे यही करना पड़ता था। जहाँ वह भयंकर मशीन लकड़ियाँ चीरती थी, वहाँ एक बड़ा सुन्दर लड़का काम करता हुआ दिखाई दिया। गहरी नीली आँखें थीं उसकी, गोल चेहरा और एक हाथ कटा हुआ। मैं उसके साथ बातचीत किया करता।

पूछने पर पता चला कि उसकी बाईं भुजा उसी कम्बख्त मशीन की लपेट में आकर कट गई। उसकी बात सुनकर मेरा हृदय बेचैन होगया, पर वह लड़का हँसता-खेलता था, मानो कोई खास बात हुई ही न हो। उस फ़ैक्टरी में जो प्रबन्धकर्त्ता था, उसके अधीन दफ्तर में काम करने वाला सहायक एक अमरीकन नौजवान मेरा परिचित होगया। वह हाथ-कटा लड़का तो नार्वे का निवासी था और इस मिल में अधिकतर योरुपियन मजदूर ही काम करते थे; अमरीकन तो अच्छे-अच्छे ओहदों पर मुकर्रर थे। उन्हीं में से एक सदाचारी नौजवान मेरा वाकिफ़ होगया। मैं लकड़ी के ट्रकों की पीठ पर—"Thou shalt not steal" अर्थात् "तू चोरी न कर", "Thou shalt not speak lie" अर्थात् "तू झूठ मत बोल", "Thou shalt not commit adultery" अर्थात् "तू व्यभिचार मत कर" आदि वाक्य लिख दिया करता था। मिल में घूमते समय जब उस खूबसूरत अमरीकन नौजवान ने लकड़ी के ट्रकों पर लिखे हुए हजरत ईसामसीह के वे पवित्र वाक्य पढ़े तो वह बड़ा चकित हुआ और उसने लिखने वाले की तलाश की। इसी से मेरी और उसकी वाक़फ़ीयत का बीज वपन हुआ। जब मैंने उससे अपनी कठिनाइयां कहीं और अपने साथ होने वाले मजदूरों के अत्याचारों का वर्णन किया तो उसने उनको दूर करने का वचन दिया। मिलमालिक की लड़की के साथ उसका पाणिग्रहण होने वाला था, सो वहां पर भी उसका प्रभाव था। मेरे कष्ट उसने दूर करवा दिये और वे विदेशी मजदूर जान गये कि इस हिन्दू की पीठ पर भी मददगार हैं। इस प्रकार मैं वहां पर कुछ समय तक काम करता रहा।

जब मैंने देखा कि अब मेरे पास विश्वविद्यालय में भरती होने के लिए काफ़ी रुपया होगया है तो मैंने आरेगन विश्वविद्यालय के रजिस्टरार से लिखा-पढ़ी की। मेरे पहले के भारतीय बन्धु, जो हांगकांग में मुझे छोड़कर चल दिये थे, मिस्टर सोई, सोहनलाल रवि और सरदार पालासिंह भी आरेगन के कृषि कालेज (कारवालिस) में पढ़ते थे। अल्मोड़ा के पं० भोलादत्त पाण्डे भी उसी कालेज में आकर भरती हो

गये थे। इन्हीं सब मित्रों की प्रेरणा से मैंने आरेगन राज्य के विश्व-विद्यालय में दाख़िल होने का संकल्प कर लिया। मिलमालिक से अपनी सारी मज़दूरी का चैक लेकर मैंने अस्टोरिया छोड़ने की तैयारी कर ली। ऋषिराम जी की मृत्यु का समाचार भी मुझे मिल चुका था, सो उनकी झोंपड़ी को आख़िरी नमस्कार कर दुःखी हृदय से मैंने कोलम्बिया नदी पर बसे हुए उस क़स्बे से प्रस्थान किया।

सोलहवाँ अध्याय

पेसेफ़िक कोस्ट पर ब्रिटिश सरकार की सशंक दृष्टि

सन् १९०७ की सूरत काँग्रेस पर भारतवर्ष के पोलिटिकल जीवन का नक्शा बदल गया। अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा पर पहले नरम दलवालों का अधिकार था। बम्बई प्रेसीडेन्सी के राजनीतिज्ञ ही उसपर अपनी प्रभुता जमाये हुए थे। भारतीय राजनीतिक क्षेत्र में काम करनेवाले नरम और गरम दलवालों का तीर्थ पूना शहर था। वहीं रहते थे माननीय मिस्टर गोखले और लोकमान्य बालगंगाधर तिलक। क्रमानुसार वे दोनों नरम और गरम पार्टियों के नेता थे।

सूरत में क्या हुआ? गरमदलवाले अपने अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर गुजरातियों के उस शौकीन शहर में पहुँचे—काँग्रेस पर कब्जा करने की दृढ़ प्रतिज्ञा के साथ। बेचारे सूरतिये क्या लड़ते! गरमदलवाले जीत गये और काँग्रेस में नवजीवन का संचार हुआ।

इसी वर्ष हिन्दुस्तान में क्रांतिकारी घटनाएँ घट गईं। पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिंह पंजाब से निर्वासित कर बर्मा में नजरबन्द कर लिये गये। सारा पंजाब इन घटनाओं से क्षुब्ध हो उठा। शिक्षित समाज लालाजी पर आशिक था और पंजाबी सिक्ख जाट सरदार अजीतसिंह को बहुत मानते थे। उधर पूर्व में जब बङ्ग-भङ्ग आन्दोलन खड़ा होगया तो भारतीय राजनीतिक नभमण्डल में दमन की घटायें छागईं। समाचारपत्रों द्वारा इन हलचलों ने उग्र रूप धारण किया और ब्रिटिश शासन का अन्त करने के लिए गुप्त समितियों का जन्म हुआ।

यद्यपि ऐसी समितियों का प्रारम्भ इससे कुछ वर्ष पहले ही हो चुका था, किन्तु देश मे किसी प्रकार की ठोस पोलिटिकल अशान्ति के

अभाव से ऐसी संस्थाओं का पनपना असम्भव था । आर्यसमाज के आन्दोलन में सामाजिक सुधार के साथ-साथ पोलिटिकल जागृति के लिए भरपूर सामग्री मौजूद थी और यदि यह संस्था स्वतन्त्र विचारवाले लोगों के हाथ में रहती तो शायद देश को महात्मा गांधीजी की आवश्यकता ही न पड़ती; क्योंकि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपनी दूरदर्शिता से राजनीतिक स्वाधीनता के लिए इसमें पुष्कल बीज बो दिये थे। लेकिन आर्य्यसमाज चला गया सरकारी नौकरों के हाथों में, वकीलों और ठेकेदारों के पंजे में; इस कारण बेचारा आर्यसमाज समाजसुधार ही करता रह गया और इसकी बची-खुची शक्ति क्रान्तिकारी कार्यक्षेत्र के अभाव से आपस की दलबन्दी में स्वाहा होगई ।

जब सन् १९०७ में पंजाबी, बङ्गाली और मरहटे ब्रिटिश सरकार से खीझ गये तो देश में गुप्त समितियों की बाढ़ सी आगई । इसी बीच में कई राजनीतिक हत्यायें भी होगईं । इधर ब्रिटिश सरकार चौकन्नी हुई, उधर बमबाजों ने भी अपनी चाल तेज़ कर दी । जैसा जिसके दिल में आया, वैसा ही नक्शा उसने देश की स्वाधीनता का बनाया, किन्तु एक बात में सब सहमत थे—ब्रिटिश शासन का अन्त । इस संहारक प्रोग्राम के बाद क्या होगा, इस पर क्रान्तिकारी आपस में सहमत न थे ।

अब बमबाजों की तैयारियाँ प्रारम्भ हुईं । उन्होंने शस्त्र-संग्रह करने शुरू किये, फ़ौजी सिपाहियों को भड़काने का षड़यन्त्र रचा, शहर शहर में अपनी शाखाओं का जाल फैलाया; लेकिन शस्त्र तो बाहर से ही मिल सकते थे, इस कारण नेताओं ने उनके लिए जोड़तोड़ लगाई । पंजाबी सिक्ख बड़ी संख्या में बैंकोवर (ब्रिटिश कोलम्बिया) तथा संयुक्त राज्य अमरीका के पेसेफ़िक कोस्ट पर मजदूरी करते थे। उनमें काफ़ी संख्या उन फ़ौजी सिपाहियों की थी जो पेन्शन लेकर अथवा फ़ौजी नौकरियाँ छोड़कर धन कमाने के लिए नई दुनिया में चले गये थे । उनकी तादाद हज़ारों तक पहुँच चुकी थी । वहाँ थी गनपाउडर की मेगज़ीन, जहाँ थोड़ी सी चिनगारी से आग की लपटें निकल सकती थीं।

भला ऐसा सूखा ईंधन पंजाबी और बङ्गाली क्रान्तिकारियों की नज़रों से कब बच सकता था! उन्होंने अपने आदमी उधर दौड़ाये और वे बैंकोवर, वाशिङ्गटन, आरेगन और केलीफ़ोर्निया---पेसेफ़िक कोस्ट के इन चार भूखण्डों---में काम करनेवाले मज़दूरों में घुसकर पैसा और रंगरूट जमा करने लगे। ये अनपढ़ पंजाबी मज़दूर हज़ारों रुपये कमा कमा कर अपने घरों को भेजा करते थे। जब इन्हें पोलिटिकल हवा लगी और देशभक्ति की आग इनमें सुलगाई गई तो वे उसी धन को देश की स्वाधीनता के लिए देने लगे। क्रान्तिकारी उस रुपये से अस्त्र-शस्त्र ख़रीद कर भारत भेजने लगे। मजदूर प्रायः अपने घरों को जाते-आते ही थे, इस कारण इन शस्त्रों को भारत भेजना कोई कठिन काम न था। किन्तु जब देश में कई पोलिटिकल हत्यायें होगईं तो ब्रिटिश सरकार सावधान हुई और उसने शस्त्र-स्रोत का पता लगाना प्रारम्भ किया। रिवाल्वरों पर उन कम्पनियों के नाम अङ्कित थे जहाँ से वह बनकर निकलते थे। भारत सरकार को पता मालूम होगया कि ज्यादातर ऐसे भीषण शस्त्र संयुक्त राज्य अमरीका से आते हैं और वे भी पेसेफ़िक कोस्ट से। तब नौकरशाही ने पेसेफ़िक कोस्ट पर बाक़ायदा अपना भेदिया-विभाग स्थापित किया।

मैं इन दिनों शिकोगो में था। मुझे इन सब हलचलों का पूरा ज्ञान न था, अलबत्ता हवा में उड़ती हुई खबरें कानों तक अवश्य पहुँचती थीं। किसी ने कह दिया कि अंग्रेजी सरकार भारतीय मजदूरों को पेसेफिक कोस्ट से निकालने के लिए तरह-तरह के षड़यन्त्र रच रही है। दूसरे ने कान में फुसफुसा दिया कि मिस्टर कपूर नामक प्रसिद्ध पंजाबी खुफिया पेसेफिक राज्यों में घूम रहा है। तीसरे ने खबर दी कि कुछ बङ्गाली क्रान्तिकारी लड़के सिक्खों को भड़काने के लिए सियेटल और बैंकोवर में आये हैं। ऐसी-ऐसी राहचलती खबरें मुझे सुनाई पड़ जाती थीं। मैंने कभी भी ऐसी क्रान्तिकारी पार्टियों की उपयोगिता पर विश्वास नहीं किया। जिस देश की जनता अविद्यान्धकार में डूबी

हुई हो और स्वयं विदेशी शासन का स्तम्भस्वरूप बनी हो, वहां बाहर के हथियार कर ही क्या सकते हैं? शक्ति हमेशा अन्दर से आती है, बाहर से नहीं। जिन्होंने इस सिद्धान्त को समझा है वे इस प्रकार के विनाशकारी आन्दोलनों में भाग नहीं लेते। मैंने इसीलिए इन बातों पर कुछ ध्यान नहीं दिया। मैं अपनी स्वतन्त्रता की खोज में मग्न रहा।

लेकिन प्रकृति ने मुझे शिकागो से उठाकर पेसेफिक कोस्ट पर पटकना था। ब्रिटिश सरकार के पास सामुद्रिक तार भेजा गया कि सत्यदेव मजदूरों को भड़काने के लिए आरेगन की ओर गया है। अमरीका बहुत बड़ा देश है। ऐसे बड़े देश में यदि भारतीय फैल जायें और ब्रिटिश विरोधी काम करें तो उनकी चालों का पता लगाने के लिए भारत सरकार को एक बड़ी रकम खर्च करनी पड़ेगी, इस कारण खुफ़िया पुलिसवाले यह चाहते थे कि भारतीय खुफ़िया विभाग के अमरीका में दो मुख्य केन्द्र ही रहें—एक पेसेफिक कोस्ट पर और दूसरा न्यूयार्क में। केलिफोर्निया की स्टेट यूनिवर्सिटी में इन दिनों कई भारतीय छात्र भी पढ़ते थे, जिनमें अधिकांश संख्या बंगालियों की थी। इसी प्रकार पेसेफिक कोस्ट के भिन्न-भिन्न विद्यालयों में दो-दो चार-चार भारतीय छात्र ज्ञानोपार्जन कर रहे थे। कई पंजाबी विद्यार्थी वाशिंगटन स्टेट विश्वविद्यालय सियेटल में जाकर दाखिल होगये थे। मैं जब आरेगन विश्वविद्यालय में प्रविष्ट होने की तैयारी कर रहा था तो उस समय भारत सरकार के खुफ़िया विभाग और हिन्दुस्तानी बमबाजों में खासी मुठभेड़ हो चुकी थी। खुफिया विभागवाले यह चाहते थे कि सिक्खों के पैसे को व्यापारी रुख देकर उसे क्रान्तिकारियों के हाथों में पड़ने से बचाया जाये और वे क्रान्तिकारी भारतीय मजदूरों को किसी योजना में फंसने से रोकते थे। ब्रिटिश सरकार का भेजा हुआ राबर्ट टिन्न नाम का एक अंग्रेज गुप्तचर बैंकोवर पहुँचा और वहां अपना दफ्तर खोलकर हिन्दुस्तानियों से प्रेम बढ़ाने लगा। उसने केनेडा इण्डियन ट्रेडिंग कम्पनी नाम की एक व्यापारिक संस्था खोलकर कुछ स्वार्थी

हिन्दुस्तानियों को एजण्ट बनाकर उस कम्पनी के हजारों डालरों के हिस्से बेच डाले। वह बैंकोवर से लेकर लास एञ्जलस तक घूमता था। जहाँ-जहाँ हिन्दुस्तानी मजदूर अथवा विद्यार्थी थे वहाँ-वहाँ पर वह जाता और क्रान्तिकारियों की सब योजनाओं पर दृष्टि रखता था। पंजाबी मजदूरों में वह टीन साहब के नाम से प्रसिद्ध था।

ऐसा था वह वातावरण जब मैं पेसेफिक कोस्ट पर पहुंचा। मैं था उस समय पोलिटिकल हथकण्डों से अपरिचित और ज्ञानोपार्जन की धुन में मस्त। आज जब इतने वर्षों के बाद मैं उस समय की घटनाओं पर विचार करता हूं तो मेरे सामने मनुष्य-स्वभाव की कुटिलता का कैसा निर्दयी चित्र खड़ा हो जाता है! जिन्हें हम बिलकुल भोला और निर्दोष समझते थे, जो हमारे सामने आकर बड़ी मीठी-मीठी बातें करते थे, जिनकी जबान पर देशभक्ति के राग हर समय रहते थे, जो बढ़ चढ़कर बातें मारते थे, देश की दुर्दशा पर जिनके आंसू थमाये नहीं थमे और जो त्याग-बलिदान-सेवा पर लच्छेदार व्याख्यान देते थे, वे अन्दर से कैसे पाखण्डी, कैसे काले विषधर निकले, उनका स्मरण आते ही आज भी हृदय में बड़ी कसक होने लगती है। हम कहाँ जायें और किस पर विश्वास करें! गरीब मजदूरों से देशसेवा के नाम पर पैसा लेना, शस्त्र भेजने के बहाने रुपया हथियाना और उसे चुपके-चुपके बैंकों में जमा करते जाना अथवा अपने नाम से कोई मकान खरीद लेना---ऐसी कितनी घृणित बातें पेसेफिक कोस्ट पर उन कमीने हिन्दुस्तानियों द्वारा हुईं जो भारतीय अंग्रेजी पत्रिकाओं में लेख लिखते थे और कांग्रेस के प्लेटफार्मों पर व्याख्यान देते फिरते थे। सच है, चरित्रहीनता ही राष्ट्रों के पतन का कारण बनती है।

उन दिनों ऐसा ही एक व्यक्ति, बड़ा अच्छा संस्कृतज्ञ, मुसलमानी नाम रखकर बैंकोवर में आकर रहा था और वहाँ के मजदूरों पर देखरेख रखता था। बोलने-चालने में वह बड़ा मधुर और विनयी था। उसने मजदूरों के एक प्रभावशाली पंजाबी ठेकेदार के द्वारा सभी अनपढ़

कुलियों को अपनी मुट्ठी में कर लिया। थोड़ा-थोड़ा पैसा लेकर विश्वास-घात करने वाले देशद्रोहियों की यहाँ कमी न थी, जो क्रान्तिकारियों की गतिविधि का पूरा ब्योरा खुफिया पुलिस के चीफ तक पहुंचाते थे। इन्हीं दिनों लन्दन में मिस्टर कर्जन वायली की हत्या पंजाबी नवयुवक ढिंगरा ने की थी, जिसके कारण ब्रिटिश सरकार बड़ी विचलित हो उठी थी। स्वर्गीय पण्डित श्यामजी कृष्ण वर्मा का नाम उन दिनों बड़ा प्रसिद्ध था। उन्होंने भारतीय छात्रों के लिए लन्दन नगर में इण्डिया हाउस की स्थापना की थी। वह घर बमबाजों का मुख्य अड्डा था, जहाँ से वे सारी दुनिया पर छापे मारते थे। भारतीय स्वाधीनता की योजनायें यहीं बनाई जाती थीं और यहीं से भारत को अस्त्र-शस्त्र भेजने की स्कीमें तैयार होती थीं। पूना, नासिक आदि नगरों में जो हत्यायें हुई थीं, कहते हैं कि उनका निकास भी यहीं से हुआ था। अमर दार्शनिक हरबर्ट स्पेन्सर के नाम के वजीफे निकालकर वर्माजी ने देशभक्त विद्यार्थियों को अपनी ओर आकर्षित किया और उन्हें दृढ़ क्रान्तिकारी बना दिया। श्यामजी कृष्ण वर्मा के प्रभाव से प्रभावित होकर भारतीय विद्यार्थियों के सिरताज लाला हरदयालजी एम० ए० ने सरकारी वजीफा छोड़कर देशसेवा की शपथ ली और निर्धनता का व्रत लिया। उन्होंने भारत लौटकर पत्र-पत्रिकाओं में ऐसे लेख लिखे जिन्होंने स्कूल-कालेजों की शिक्षा की पोल खोल दी और बहुत से विद्यार्थी क्रान्तिकारी बनकर विदेश की ओर चल पड़े। सियेटल में भी ऐसे कुछ विद्यार्थी आगये, कुछ केलीफोर्निया में पहुंचे और कुछ पेसेफ़िक कोस्ट के अन्य शिक्षणालयों में फैल गये।

इस प्रकार पेसेफ़िक कोस्ट भारतीय सरकार के विरुद्ध एक सुव्यवस्थित क्रान्तिकारी फैक्टरी बन गया, जहाँ से हिन्दुस्तान में ग़दर मचानेवाले रंगरूट तैयार किये जाने लगे। तारकनाथदास और गुरुदत्तकुमार इन्हीं दिनों सियेटल में आकर बैठ गए। दास बाबू तो विश्वविद्यालय में भरती होगये और वहीं उन्होंने शिक्षा समाप्त की

और बाद में एक धनवान् अमरीकन स्त्री से विवाह कर वे अमरीका में ही बस गये। गुरुदत्तकुमार ने मजदूरों में क्रान्ति का काम किया और वर्षों तक गदर पार्टी की योजनाओं में लगे रहे। बाद में कमागाटामारू के यात्रियों में सम्मिलित होकर वे भारत पहुंचे और भेष बदलकर घूमने लगे।

पेसेफ़िक कोस्ट पर ऐसा ही चंचल वातावरण था, जबकि पुराने आदर्शों में पला हुआ, पोलिटिकल हत्याओं का विरोधी और मध्यम पथ का प्रचारक मैं बिलामेट घाटी में विद्याप्राप्ति की इच्छा से आरेगन विश्वविद्यालय मे पहुंचा। यद्यपि मैंने एक वर्ष शिकागो-विश्व-विद्यालय मे सभ्य और सुसंस्कृत अमरीकन जीवन का अनुभव ले लिया था, किन्तु वह थी एक विशाल नगर के नागरिकों की जीवन-चर्य्या। वहाँ पर था धनवान् युवक-युवतियों की क्लबों का वातावरण; निर्धन विद्यार्थी ऐसे अमीराना ठाठवाले विश्वविद्यालय में किस प्रकार पैसा पैदा कर विद्याध्ययन करते हैं, इसका ब्योरा भी मुझे भली प्रकार मिल चुका था। अब मुझे आवश्यकता थी सादा जीवन रखनेवाले साधारण कस्बे में स्थित विश्वविद्यालय की, जहाँ किसानों के बच्चे सादगी से जीवन व्यतीत करते हों। सो ठीक मेरे मन के अनुकूल स्थान मुझे मिल गया। छः महीनों तक मैंने यहाँ निर्मल ज्ञान-सरोवर में सुखपूर्वक गोते लगाये। कैसी मधुर हैं वे स्मृतियाँ और हृदय को कैसे पुलकित करने वाले हैं वे संस्मरण! पाठक महोदय, जरा उनकी मनो-रंजक कथा भी सुन लीजिये।

सत्रहवां अध्याय

विलामेट घाटी की मधुर स्मृतियाँ

सन् १९०७ के जन मास में शिकागो-विश्वविद्यालय में अपना प्रथम वर्ष समाप्त कर मैंने पैसा कमाने के लिए कमर कसी। यद्यपि शिकागो में तो ग्रीष्म सत्र जुलाई से ही प्रारम्भ हो जाता है और मैं पिछले साल इन्हीं दिनों विश्वविद्यालय में भरती हुआ था, किन्तु अन्तिम सत्र समाप्त होने पर जब मैंने अपनी बैंकबुक देखी तो बस "ख़ात्मा बिलख़ैर" की बात पाई। अपने प्यारे मित्र स्वर्गीय मिस्टर व्हाईट की तरह मुझे भी दिल पर पत्थर रखकर विश्वविद्यालय छोड़ना पड़ा और मैं निकला पैसे की तलाश में। पहले तो एक अमरीकन खेत पर कुछ काम किया, जिसका वर्णन पाठक पढ़ चुके हैं। इसके बाद लेक्चरों से कुछ प्राप्ति हुई, जो रेलवे टिकट में ख़र्च होगई। तत्पश्चात् मैं उस डोर फ़ैक्टरी में आया, जिसके विषय में लिखा जा चुका है। यहां से अध्ययन के योग्य पैसा कमाकर मैंने आरेगन स्टेट विश्वविद्यालय में जा फिर अपना पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने की ठानी।

स्टेट विश्वविद्यालयों में वर्ष भर में दो सत्र होते हैं—एक दिसम्बर में समाप्त होता है और दूसरा मई के अन्त में। सन् १९०७ के जुलाई मास से लेकर दिसम्बर के प्रारम्भ तक—कुल पांच महीने—मैंने रुपया कमाने में लगा दिये और एक सत्र के लिए ख़र्च का पूरा प्रबन्ध कर लिया। जाड़े का प्रारम्भ होगया था और ईसाइयों का प्यारा बड़े दिनों का त्योहार अपने शुभ आगमन की सूचना दे चुका था। ऐसे ही समय में मैं आरेगन रियासत के छोटे से नगर यूजीन के द्वार पर ज्ञान-भिक्षा के लिए पहुंचा। कैसी थी वह शुभ घड़ी और कैसा था वह

सुहावना दिन ! विलामेट घाटी में यद्यपि कई नगर और क़स्बे आबाद हैं, किन्तु यूजीन अंगूठी में चमकते हुए हीरे की तरह सुशोभित है। छोटा सा यह रमणीय शहर, जिसमें कहीं भी शराब का नामोनिशान नहीं, जहां सदाचारी स्त्री-पुरुषों की बस्ती है और जहां राज्य का प्रधान विद्याकेन्द्र स्थापित है, विद्यार्थियों के लिए महान् आकर्षण रखता है। ऐसे ही ज्ञानस्रोत के किनारे में उस प्रशान्त जाड़े में अपनी ज्ञान-प्यास बुझाने के लिए पहुंचा।

विश्वविद्यालय के प्रेजीडेण्ट महोदय ने मेरा हृदय से स्वागत किया। मैं ही था वहां अकेला भारतीय विद्यार्थी, जो हजारों मील दूर, अपनी जन्मभूमि को छोड़कर, विलामेट की उस सुरम्य घाटी में स्वतन्त्रता की खोज करता हुआ आया था। राजनीतिक-विज्ञान था मेरा मुख्य विषय; उसके साथ अर्थ-शास्त्र, इतिहास, अंग्रेजी साहित्य और शिक्षा को भी मैंने जोड़ लिया ताकि मुख्य विषय की कलियां भली प्रकार खिल सकें और मेरी वाकफ़ीयत का दायरा प्रशस्त हो जाये। उस शान्त वातावरण में मेरा विद्यार्थी-जीवन फिर से जारी होगया।

विश्वविद्यालय के छात्रभवन में मैं रहने लगा। मुझे कम किराये का कमरा मिल गया और साथी-संगी भी मध्यम वृत्ति के—युवक और युवतियाँ। यहाँ शिकागो की तरह अधेड़ और बूढ़े विद्यार्थी तलाश करने पर भी नहीं मिलते थे—सभी थे यौवन-मद में भरे हुए मौजी छात्र। वह जो प्राइवेट धनाढ्य विश्वविद्यालयों का अमीराना ठाठ होता है, उसका मैंने यहाँ पर सर्वथा अभाव पाया। आरेगन है परिश्रमी गिर्जाप्रेमी कृषकों का राज्य, जहाँ पर जनता को पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त है, जहाँ रिफ़्रेण्डम द्वारा लोग शासन करते हैं। कोई भी राज्याधिकारी, चाहे वह शहर में हो अथवा क़स्बे में, प्रजा के विरुद्ध आचरण करने पर, प्रजा की आज्ञा से, अपनी अवधि के पहले ही निकाला जा सकता है। इसी कारण इस राज्य में शराब-बन्दी का सिद्धान्त प्रचलित हो चुका था।

मैं जब विश्वविद्यालय में पहुँचा तो बड़े दिनों की छुट्टियाँ सिर पर

आ गई और लड़के परीक्षायें समाप्त कर अपने-अपने घरों को चल दिये; कुछ थोड़े से, जिनके माँ-बाप काफ़ी दूर रहते थे, खर्च की कमी के कारण घर न जा सके। सो एक प्रकार का सन्नाटा सा वहाँ पर हो गया। मैं आया था थका हुआ, अस्टोरिया के मजदूरों से त्रस्त, मुझे ज़रूरत थी विश्राम की, अतएव ऐसा अवकाश मानो मुझे ईश्वर की ओर से मिल गया। उस आजादी और शान्ति के वायुमण्डल में मैं आनन्द लेने लगा। दिन को नदी किनारे घूमने जाता, पत्थरों पर बैठकर घण्टों नदी की कलकल ध्वनि सुनता। विलामेट नदी यहाँ पर पहाड़ियों में से होकर बही है। इसके किनारे पथरीले हैं। जगह-जगह पर ऊँची नीची शिलायें जल का सुहावना दृश्य देखने के लिए बड़ी उपयुक्त हैं। पहाड़ी तटों के साथ टकराती हुई नदी बड़े वेग से बहती है। इसके किनारे वृक्षों के कुञ्ज आजकल ठूंठ से दिखाई देते थे; शीत ने उन पर कब्जा किया हुआ था। लेकिन सूर्य भगवान् इधर अपनी दया दिखाते हैं; शिकागो की तरह यहाँ उन पर बुढ़ाई नहीं आती। हिम यद्यपि गिरता तो है, किन्तु बहुत थोड़ा—जो जल्दी पिघल जाता है। ऐसे दिनों में, जब बर्फ़ पिघल जाये, आकाश निर्मल हो और तेज़ हवा बहती हो, तो भगवान् भास्कर की रश्मियाँ भी हिम्मत तोड़ देती हैं और ठण्ड अपना प्रचण्ड रूप धारण करती है। ऐसे दिनों में भी मैं मीलों घूमता, अपने फेफड़ों को नीरोग आक्सीजन से भरता और व्यायामशाला में कसरत करता था। मक्खन-दूध की बहुतायत होने के कारण मुझे यहाँ मनभावना भोजन मिला और मैंने नींद की पूरी कसर निकाल ली—पढ़ाई के लिए बिलकुल ताज़ा होगया।

छुट्टियाँ समाप्त होगईं। विश्वविद्यालय में जीवन आ गया। चारों ओर चहलपहल दिखलाई देने लगी। फ़ुटबाल के मैदान में खेलों की धूम मची और छात्रों की अटपटी बातें मेरे हृदय को प्रसन्न करने लगीं। पहले दिन जब भोजन की घण्टी बजी और मैं नीचे भोजनालय में गया तो सब स्थानों को भरा हुआ देखकर मेरा मन उल्लसित हो उठा।

छुट्टियों के दिनों में मै तथा अन्य पांच-दस छात्र उस बड़े भोजनालय में बैठे हुए सुनसान अनुभव करते थे; आज सब विद्यार्थी अपनी-अपनी परिचित कुर्सियों पर बैठे हुए अपने दोस्त-यारों को हँस-हँस कर घर की बातें सुना रहे थे और क्रिसमस की भेंटों का बखान कर रहे थे। मैं बैठा तो था भोजन करने, लेकिन मेरी इन्द्रियाँ थीं खब चैतन्य——वे निरीक्षण करने में लगी थीं। मैं चारों ओर आँखें दौड़ाकर छात्रों के सुन्दर चेहरों का अध्ययन कर रहा था और उस ईश्वर को बार-बार धन्यवाद देता था जिसने मुझे इस मस्ताने जीवन में भाग लेने का अवसर दिया। मैं अपने परिचित दो-चार विद्यार्थियों के पास बैठा था। यद्यपि मेरी उनकी वाकफ़ीयत थोड़े ही दिनों की थी, किन्तु में एक नया प्राणी होने की वजह से शीघ्र ही सबके मनोरंजन की वस्तु बन जाता था। अमरीकन स्वभाव से ही नवीनता के पुजारी होते हैं। नई चीजों के विषय में जानना, तत्सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करना, उनका स्वभाव सा होगया है। यहाँ आरेगन रियासत में प्रजातन्त्रवाद अपने यौवन में होने के कारण मुझ पर सब छात्रों की बड़ी कृपा थी और वे बड़े सौहार्द्र भाव से मुझसे पेश आते थ। छुट्टियों म मैं जिन विद्यार्थियों के साथ चेकर्स खेला करता था, उनसे मेरी शीघ्र घनिष्ठता होगई; सारा सत्र वे मेरे स्नेही बने रहे। निकोलस नाम का एक लड़का मेरे साथ पढ़ता था, जिसकी मधुर स्मृति मेरे हृदय पर आज भी बिलकुल ताजा है और जो सन् १९१० में मेरे अमरीका-भ्रमण के समय मुझे यहीं विश्वविद्यालय में मिला था। उस समय भी उसने आतिथ्य-सत्कार कर अपने शिष्ट स्वभाव का परिचय दिया था।

स्टेट विश्वविद्यालयों के प्रोफ़ेसर भी विद्यार्थियों से अधिक सम्पर्क में आते हैं। छात्रों की संख्या कम होने की वजह से तथा बड़े नगरों की अन्य आकर्षक प्रवृत्तियों के अभाव से उन्हें अवकाश काफ़ी मिलता है, इस कारण वे प्रत्येक विद्यार्थी पर विशेष ध्यान दे सकते हैं——यहाँ गुरु और शिष्य में अधिक निकटस्थ भाव पैदा हो जाता है। मैं प्रायः अर्थ-

शास्त्र के अध्यापक प्रोफ़ेसर यङ्ग के पास उनके घर पर भी जाता था। इसी प्रकार यूनीवर्सिटी के पास रहने वाले अपने अन्य प्रोफ़ेसरों से भी बहुत हिलमिल गया था। यहाँ की व्यायामशाला मामूली सी थी और यहाँ से आरेगोनियन नाम की मेगज़ीन भी निकलती थी, जिसमें मैंने भी "My First Night in Chicago" अर्थात् "शिकागो में मेरी प्रथम रात्रि" शीर्षक लेख प्रकाशित करवाया था। उसका सम्पादक मिस्टर फिल-पैट्रिक (आयरिश) ग़रीब माता-पिता का पुत्र था। वह भी बाद में मुझे अमरीका की पैदल यात्रा करते समय एक स्कूल में मास्टरी करता हुआ मिला। मुझे स्मरण नहीं कि यहाँ का कोई छात्र किसी धनकुबेर का बेटा था या नहीं; प्रायः अमीरों के लड़के प्राइवेट विश्वविद्यालयों में ही जाकर पढ़ते हैं, जहाँ वे मनचाहे साथी पाते हैं।

एक बार कार्नवाल के मौके पर विद्यार्थियों ने स्वांग रचे। भान्ति-भान्ति के रूप बनाकर, देश-देशान्तरों की पोशाकें पहिनकर, लड़के-लड़कियाँ बड़े हाल में एकत्रित हुए, जहाँ बड़ा नाच होने वाला था। मुझे याद है कि मैंने एक लड़के के सिर पर पीली पगड़ी बांधी थी और उसकी हिन्दुस्तानी वेशभूषा बनाई थी ताकि वह अपने साथ नाचने वाली सहेली का दिल रिझा सके। इसी प्रकार दूसरे लड़कों ने भी अजीब तरह की शकलें बनाई थीं। उस रात दो बजे तक उस बड़े हाल में ज़ोर के ठठाके हुए, अट्टहास की ध्वनि गूँजी और खिलखिलाहट के गुल खिले। जब सब थककर चूर होगये तो झूमते-झामते अपने-अपने कमरों की ओर चले। नाचना जाड़े के दिनों का प्रधान व्यायाम होता है। छात्राये और छात्र इसे बहुत पसन्द करते हैं। पहले से ही साथी तय हो जाते हैं और खासी तैयारियाँ होती हैं। यहाँ भी मुझे बहुत से लड़के-लड़कियों ने नाचने के लिए कहा, किन्तु लजीलेपन की आदत ने मुझे ऐसा करने नहीं दिया और मैं इस नीरोग खेल को न सीख सका। यह व्यायाम सारे शरीर पर प्रभाव डालता और पसीने से तर कर देता है; बदन में फुर्ती लाता है और उसे लचीला बनाता है। शिकागो

विश्वविद्यालय के 'स्नेल हाल' में जब नाच हुआ था तो मेरी एक सह-पाठिनी लड़की ने मुझे अपने साथ नाचने के लिए कहा था और मेरी अनभिज्ञता प्रगट करने पर मुझे उसकी शिक्षा देने पर उद्यत भी होगई थी, किन्तु मैंने अपने आपको मोटी बुद्धिवाला कहकर उससे पिण्ड छुड़ाया था, जिसकी सजा मुझे बाईस वर्षों बाद सन् १९२९ के कार्नवाल के अवसर पर कोलोन में मिली और मैं सख्त चोट खा गया। कौन जान सकता है भावी की बात !

इस प्रकार सन् १९०८ के मेरे पहले पाँच मास प्यारे यूजीन में स्वप्नवत् बीत गये। सियेटल से मुझे बुलावे आ रहे थे और वहाँ के हिन्दुस्तानी विद्यार्थी चाहते थे कि मैं भी वहीं पहुँच जाऊँ। मेरे लेख इन दिनों इलाहाबाद की सरस्वती (हिन्दी पत्रिका) में बराबर निकल रहे थे, जिनके कारण हिन्दी-संसार मुझे भली प्रकार जानने लगा था। सियेटल में भी उन लेखों की खबरें पहुँचती थीं। इसी वजह से चन्दा करने वाले भारतीय सब हिन्दुस्तानी छात्रों को एक स्थान पर इकट्ठे कर उनके नाम से धन की अपील करना चाहते थे। उन्होंने किया भी ऐसा ही; हमारे सिरों पर हाथ रखकर अपना स्वार्थ सिद्ध कर लिया। पण्डित भोलादत्त पाण्डे मेरे निकट ही कारवालिस कालेज में थे। वे अवकाश मिलने पर मेरे पास यूनीज में आ जाते थे। बड़ा ही शिष्ट, मिष्टभाषी और दोस्तों का दोस्त था यह पहाड़ी ब्राह्मण। जब मैं अपना अध्ययन समाप्त कर पैदल यात्रा करने के लिए निकला, तब पाण्डेजी भी अपनी पढ़ाई खत्म कर पोर्टलैण्ड आगये। मेरी उनकी यहाँ भेंट होगई। वे तो पोर्टलैण्ड से रेल में बैठकर न्यूयार्क की ओर चल दिये ताकि योरुप होते हुए भारत लौट जायें। मुझे भी सेन्ट जॉन वाले देशभक्त काशीराम घर लौटने का किराया देते थे, पर मैंने स्वीकार नहीं किया। मेरे सिर पर शनि का भूत सवार था और दिल में थी अमरीका देखने की उमङ्ग; साथ ही नये नये अनुभव जमा करने का शौक और कठिनाइयों से युद्ध करने की मस्ती ! मेरे जीवन का यह अद्भुत समय था।

विश्वविद्यालय का सत्र पूरा होने पर आया। परीक्षायें खत्म होगईं। पैसा पैदा करने की समस्या ने मुझे फिर आ घेरा। जून मास में छुट्टियाँ होगईं और बोर्डिङ्ग हाउस के प्रायः सभी पक्षी चोगा जमा करने की धुन में उड़ गये। प्रोफेसर यङ्ग को अपने खेत पर एक मज़दूर की जरूरत थी, सो उन्होंने मुझे रख लिया। उस खेत पर मैं निकम्मे पौदों को उखाड़ा करता था और किसी समय प्रोफेसर महोदय भी मज़दूर बनकर मेरे साथ सहयोग करते थे। वहाँ एक दर्दनाक घटना घट गई, जिसकी याद मुझे अब भी बेचैन किया करती है। उस खेत पर एक मोटा-ताज़ा साँड था, जिसे प्रोफ़ेसर ने बूचड़ों के हाथ बेच दिया। जब बूचड़ उसे पकड़ने आये तो मैं खेत पर काम कर रहा था। वह पशु मानो समझ गया और उसने यमराज के दूतों को पहिचान लिया। उन्होंने रस्सा बाँधकर उसे ले जाने की बड़ी कोशिश की, मारा-पीटा, किन्तु वह टस से मस न हुआ। आख़िर उन दुष्टों को उसकी हत्या खेत पर ही करनी पड़ी और वे उसकी लाश को गाड़ी में लादकर ले गये। इर्द-गिर्द के खेतों पर रहनेवाले लोगों पर साँड के उस सत्याग्रह का गहरा असर हुआ और कइयों ने उस रोज़ से माँस न खाने की प्रतिज्ञा ले ली। इस प्रकार की बेरहमी से काटा हुआ पशु अपने खानेवालों के स्वभाव को बिगाड़ता है और उनमें क्रूरता भरता है। मैं बहुत देर तक उस घटना पर विचार करता रहा और उस साँड की स्वातन्त्र्य-प्रियता की प्रशंसा करता रहा। मनुष्य को चाहिये कि ऐसे पशुओं से शिक्षा ग्रहण करे। स्वेच्छा से कभी भी अत्याचार को सहन नहीं करना चाहिये और अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर भी स्वाधीनता की रक्षा करनी चाहिये। यदि हम इस सबक को गाँठ बाँध लेते तो हमारा देश कभी भी गुलाम न होता। लाश भले ही निकल जाये, लेकिन जीते जी अपने ऊपर ज़ुल्म न होने देना चाहिये। जो सिर झुकाकर ज़ुल्म सहन कर लेता है, वह ज़ुल्म करने की स्वीकृति देता है।

उस खेत पर कुछ दिन काम करने के बाद प्रोफ़ेसर यङ्ग की

सिफ़ारिशी चिट्ठी लेकर यूजीन के एक मिलमालिक के कारखाने में में काम करने चला गया। लकड़ी की यह फ़ैक्टरी शहर के कुछ फ़ासले पर थी। वहाँ भी मेरे मार्ग में बड़ी दिक्कतें खड़ी होगईं। मजदूरों को जब मेरे हिन्दुस्तानी होने का पता लगा तो वे मुझे मारने पर उतारू होगये। इस पर मिलमालिक के सहृदय मैनेजर ने उन्हें बुरी तरह डाँटा और मैंने अगले साल की पढ़ाई के लिए पैसा कमा लिया।

प्यारे पाठक, विलामेट की उस लावण्यमयी घाटी को छोड़कर मैं सियेटल चला तो गया, लेकिन पीछे से पछताया। शिकागो और आरेगन के विश्वविद्यालयों में अकेला रहने का जो सुख मुझे मिला, उसकी प्राप्ति सियेटल में न हुई। सियेटल में मुझ पर कैसी बीती और दो वर्ष कैसे कटे, अब उसकी कथा सुनाता हूँ।

अठारहवाँ अध्याय

सियेटल के वाशिङ्गटन स्टेट विश्वविद्यालय में

दो वर्षों के बाद अब नया परदा उठता है। यद्यपि मैं था तो नई दुनियाँ के सियेटल नगर में—पेसेफ़िक कोस्ट के किनारे—लेकिन मेरा वातावरण पुरानी दुनियाँ का सा होगया। बेंकोवर और सियेटल का निकटस्थ सम्बन्ध है, इस कारण भारतीय मज़दूर प्रायः इधर-उधर आते जाते रहते हैं। उन दिनों तो ख़ास तौर से बेंकोवर में हिन्दुस्तानियों की संख्या अधिक थी और मिलों में वे ही वे दिखाई देते थे; गोरे मज़-दूरों की अपेक्षा कम मजदूरी लेने के सबब उनकी मांग भी अधिक थी। अर्धशिक्षित हिन्दुस्तानी मज़दूर अपने नितान्त अनपढ़ देशबन्धुओं को पीछे लगाकर दल बांध यहाँ-वहाँ कारख़ानों में काम करते थे। इनमें से बहुत बड़ी तादाद पञ्जाबी सिक्खों की थी और थोड़े से मुसलमान श्रमिक भी यहाँ पर आगये थे।

सियेटल में भी लकड़ियों के कई कलकारखाने थे, जहाँ लाखों फ़ीट लकड़ी कटा करती थी। इनमें भी बहुत से भारतीय काम करते थे और दिनप्रतिदिन उनकी संख्या बढ़ती जा रही थी। निस्सन्देह योरुप से आये हुए गरीब मज़दूर अपनी आदतों में हिन्दुस्तानी मजदूरों से मिलते जुलते थे, किन्तु वे शीघ्र अमरीकनों में मिलकर वैसी ही साफ सुथरी जिन्दगी बनाने के लिए बाध्य हो जाते थे; तभी तो वे मजदूरी में कमी सहन नहीं कर सकते थे। इसके विपरीत हिन्दुस्तानी अपनी पुरानी दकियानूसी आदतों को छोड़ता नहीं, वह उपयोगी नई बात सीखता नहीं और अपना जीवन-माप ऊँचा नहीं बनाता। विदेशियों की उन बातों को वह जल्दी सीख लेता है जो उसे स्वच्छन्द बनाने में मदद देती हैं, धन कमाने का साधन बनती हैं और इन्द्रिय-सुख भोगने

का प्रोत्साहन करती है। गोरों की आजादी देखकर तो हिन्दुस्तानियों के मुँह मे पानी भर आया और वे अपने देश की स्वाधीनता के लिए छटपटाने लगे, परन्तु कौन से गुण कौमों को आजाद बनाते हैं और अमरीकन जाति किन सद्गुणों के धारण करने से महान् हुई है, उनकी ओर उन्होंने जरा भी ध्यान न दिया। वे बिना तपस्या के वरदान के इच्छुक थे। ऐसा ही वातावरण क्रान्तिकारी उनमें पैदा भी कर रहे थे। वे उनके सामने मिर्च-मसाला लगाकर अंग्रेजी-शासन की बुराइयाँ कहते, स्वतन्त्रता के गुणों को स्वच्छन्दता का रूप देते और बलवे का प्रचार करते थे। सदाचार, सच्चरित्रता और अनुशासन सम्बन्धी बातें तो वे सिखलाते नहीं थे, उलटा उनके मनोविकारों को उत्तेजित कर उन्हें मरने-मारने की तालीम देते थे।

ऐसे ही समय, सन् १९०८ के उस पतझड़ मे, मैं सियटल में पहुँचा और वाशिंगटन विश्वविद्यालय में जाकर भरती हुआ। हम वहाँ आठ-दस भारतीय विद्यार्थी थे। कुछ नाम मुझे स्मरण है—तारकनाथ दास, नाथीराम जोशी, विष्णुदास, बिहारीलाल, मजूमदार, उमरावसिंह, गुरदित्ताराम, और हरनामसिंह। मुझे इस समय यही नाम स्मरण हैं। इनमें से गुरदित्ताराम न जाने कैसे यहाँ आगये थे, क्योंकि इन्होंने बाकायदा तौर पर भरती होकर विश्वविद्यालय में शिक्षा नहीं पा॰। अलबत्ता वे नौकरी करते थे और विद्यार्थियों तथा मजदूरों के प्रत्येक आन्दोलन में चौधरी बनते थे। जब विद्यार्थियों को मकान की आवश्यता पड़ी तो इन्होंने ही दूसरों के साथ मिलकर धन जमा करने का जिम्मा लिया और हरनामसिंह के साथ मिलकर उसे अपने नाम पर रजिस्टर्ड करवा लिया। मुझे इनकी कुटिलता अच्छी न लगी। ये थे देवसमाजी और उन दिनों पंजाब में आर्यसमाज और देवसमाज की आपस में लगती थी। अतः ये महाशय मेरे विरोधी होगये। मुख्य कारण यह हुआ कि मैं जब रुपये का हिसाब उनसे पूछा करता तो ये महानुभाव कुछ स्पष्ट बात बतलाते नहीं थे। मुझे इसीलिए उनके

विरुद्ध कहना पड़ता और आपस की अशान्ति बढ़ती थी। पब्लिक फण्ड में कतरब्योंत करने का मैं सदा शत्रु रहा हूँ, इसीलिए वे मनुष्य मुझे फूटी आंख नहीं भाते जो संस्थायें बनाकर जनता को ठगते हैं। हिन्दुस्तानियों की वह किचकिच, जिसका स्वरूप हमारी संस्थाओं मे बहुधा मिलता है, विश्वविद्यालय के हिन्दुस्तानी छात्रों में मौजूद थी, जिसका विषैला प्रभाव विद्यार्थियों पर पड़ता था। मैं इसी कारण सियेटल में आकर सुखी न हुआ।

तिस पर भी मैंने वहाँ के जीवन का पूरा लाभ लेने का प्रयत्न किया। यहीं पर पहलेपहल मुझे सोशलिज्म अर्थात् समाजवाद के सिद्धान्तों का भली प्रकार पता लगा। प्रोफेसर स्मिथ हमारे विश्वविद्यालय का बड़ा रोशनदिमाग़ व्यक्ति था। मेरा था वह गुरु और मैं उससे समाजशास्त्र पढ़ता था। सियेटल नगर के धनी-मानी व्यापारी सोशलिज्म से घबराते थे और ऐसे किसी प्रोफेसर को रखना नहीं चाहते थे जो लड़कों को बिगाड़ता हो। परन्तु अध्यापक स्मिथ थे बड़े लोकप्रिय, अतएव दोनों पार्टियों में कुछ समझौता सा होगया और प्रोफेसर महोदय विश्वविद्यालय में बने रहे।

उस समय समाजवाद नवीन आकर्षण रखता था, जैसा कि वह आजकल तीस वर्षों के बाद भारतवर्ष में रखने लगा है। योरुप और अमरीका का फटापुराना वस्त्र भारतीय शिक्षित वर्ग बड़े गौरव से पहनने लग जाता है और उसे समझता है नई चीज़। हमारे यहाँ के कालेजों के छात्र, जिन्हें समाजवाद की नई हवा लगती है, वार्त्तालाप के समय बड़े जोश में आकर मुझे इतना तक कह बैठते हैं—"स्वामीजी, सोशलिज्म के विषय में आप कुछ नहीं जानते; आपको इसके ग्रन्थ पढ़ने चाहियें।" मैं चुप हो जाता हूं। इन अनजानों के मुंह कौन लगे! निःसन्देह समाजवाद सरसरी तौर पर देखने से बड़ा प्यारा बोध होता है, धन पैदा करने के साधनों को यह संयमित करता है, उसे राष्ट्र की सम्पत्ति बनाता है और गरीबी का अन्त करने में सहायक बन सकता है; किन्तु जो बात

विचारधारा (theory) में ठीक जचती है वह अमली तौर पर काम में लायी जा सकती है या नहीं, इसका ध्यान व्यवहारकुशल व्यक्ति सदा रखते हैं। सिद्धान्त यह है—"Justice to all and privileges to none." अर्थात् "सबके साथ न्याय और किसी को विशेष रियायतें नहीं।" फर्ज ीजिये कि एक आदमी किसी ऐसे विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी है जिसमें चार सौ आदमी काम करते हैं। उसक दो-तीन लड़के भी वहीं पर नौकर हैं, जो बाप की स्थिति का लाभ लेकर अपने लिए कुछ रियायतें प्राप्त कर लेते है। ऐसे कितने बाप होंगे जो बड़ा अधिकार पाकर अपने लड़कों को रियायतें न दें और अपने अधीनस्थ सब कर्मचारियों के साथ न्यायपूर्वक बरताव करें ! यदि आप चाहते है कि समाज में न्याय हो तो आपको जान लेना चाहिये कि हमारी मुख्य बाधा हमारा स्वार्थ है, जो सदुपदेशों के बिना दूर नहीं हो सकता । कानून धरे रह जाते है, 'वादों' की मिट्टी पलीद होती है, जब मनुष्य के अन्दर छिपा हुआ स्वार्थ नंगा होकर नाचता है। समाजवाद का यह आकर्षण उन लोगों के लिए है, जिन्होंने मनोविज्ञान (Human Psychology) का पूरे तौर से अध्ययन नहीं किया। अमरीका में भी उस समय यही कुछ हो रहा था, जैसा आजकल भारत में होने लगा है।

हाँ, हम कह रहे थे विश्वविद्यालय की बातें। सच बात तो यह है कि सियेटल में मैं अधिकतर हिन्दुस्तानियों के साथ रहा। वहाँ अपने अनुकूल भोजन मिलता था, हिन्दुस्तानी गप्पें होती थीं, समाचारपत्र मिलते थे और मजदूरी प्राप्त करने के तरीकों का पता जल्दी मिल जाता था। प्रायः प्रत्येक रविवार को हिन्दुस्तानी मजदूर हम लोगों के पास आते थे। अपने-अपने आचार-व्यवहार के अनुसार हमारी उनसे मित्रता थी। वे कहीं-न-कहीं कुछ-न-कुछ काम हमारे लिए ढूँढ देते थे और हम इनका लिखाई का काम कर देते थे।

सियेटल में एक मिस्टर कविङ्गटन रहते थे । उनकी धर्मपत्नी हिन्दू धर्म में बड़ी श्रद्धा रखती थी। बड़ी सुन्दर नीली आँखों वाली

थी वह युवती । तारकनाथदास से उसकी बहुत घनिष्ठता थी और उसी की बदौलत मेरा भी परिचय मिसेज़ कविङ्गटन से होगया । एक दिन वह बोली—

"मिस्टर देवा, आप मुझे उपनिषदें पढ़ाइये।"

मैंने कहा—"बहुत अच्छा।"

तब उसने पूछा—"एक घण्टा रोज़ पढ़ाने का आप क्या वेतन लेंगे ?"

मैंने मुस्कराकर उत्तर दिया—"आपसे क्या लूँगा मिसेज़ कविङ्गटन ! अव्वल तो हमारे यहाँ ब्रह्मविद्या टके में नहीं बिकती; दूसरे, आप तो हिन्दुस्तानी छात्रों पर बड़ी कृपा रखती हैं। आपके पतिदेव हमारे मज़दूरों की बड़ी मदद करते हैं। भला मैं आपसे क्या लूंगा !"

इस पर उसने कहा—"ऐसा नहीं हो सकता। मैं मुफ़्त में कोई चीज़ न लूंगी । मैं जो कुछ आप लोगों के लिए कर रही हूँ, उससे मुझे सुख मिलता है। आप मज़दूरी कर विद्या पढ़ते हैं। मेरा फ़र्ज़ है आपका हाथ बटाना।"

मैंने उनकी बात मान ली और उसे उपनिषदें पढ़ाने लगा। आज भी दूरस्थित सियेटल के उसके सुसज्जित मकान में मैं उसे बैठा हुआ देखता हूँ। वह मुझे अपने घर का मन्दिर दिखला रही है, जिसमें बैठ कर वह प्राणायाम किया करती थी। उसके वे दूध जैसे सफ़ेद दाँत, गहरे लाल बाल, नीली आँखें—आर्य स्त्री का परिष्कृत नमूना—मेरे सामने मौजूद है। एकान्त में उसके साथ घण्टों बातें होती थीं और वह कितनी निष्ठा से योग के विषय में पूछती थी और तन्त्रशास्त्र के उन रहस्यों के विषय में खोज-खोजकर प्रश्न करती थी ! ज्ञान की वह जिज्ञासा जो व्यक्ति को सब कुछ भुला देती है, उस रमणी में मैंने मौजूद पाई। ऐसे कितने स्त्री-पुरुष हमें अपने इस अमरीकन प्रवास में

मिले जो भारतीय ब्रह्मज्ञान के लिए दीवाने थे। उनकी स्मृतियाँ बड़े आदर से हमें आज भी उनकी ओर खेंचती हैं।

मिसेज़ कविङ्गटन ने हम लोगों की बड़ी मदद की। जब भी कभी कोई भीड़ आकर पड़ती, किसी गोरे से झगड़ा हो जाता, कहीं सिफ़ारिशी चिट्ठी की जरूरत होती, किसी घरवाली से कमरा किराये के विषय में ग़लतफ़हमी हो जाती, तो फ़ौरन मिसेज़ कविङ्गटन के पास टेलीफ़ोन किया जाता और वह देवी सदा हँसती हुई फ़ोन पर बोलती। उसने कभी सहायता, सत्परामर्श और समय देने से इन्कार नहीं किया। कैसा विशाल हृदय था उस नारी का! किन्तु ऐसी विशालता की इस पापी दुनिया में क़द्र कहाँ! उसके पति को ये सब बातें न भाती थीं। मिसेज़ कविङ्गटन की माता उसके साथ ही रहती थी—घर में सहायता करने के लिए—क्योंकि मिस्टर कविङ्गटन की कोई सन्तान नहीं थी। उसकी माता उसे बार-बार समझाती और पतिदेव के रुष्ट होजाने का डर दिखाती, किन्तु वह ललना कुछ परवाह नहीं करती थी। हिन्दुस्तानियों पर उसने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया था। पति-पत्नी के बीच खुदी हुई वह खाई चौड़ी होती गई। पति नहीं चाहते थे कि उसकी स्त्री घर का कामकाज छोड़कर हिन्दुस्तानियों के पीछे दौड़ती रहे। वह स्वयं बड़ा अच्छा आदमी था, किन्तु वह समझता था कि उसकी स्त्री आवश्यकता से अधिक बढ़ी जा रही है। सुनते हैं कि कुछ वर्षों बाद उनकी आपस में जुदाई होगई और तलाक ने उन्हें अलग-अलग पथ पर डाल दिया।

शिकागो विश्वविद्यालय के Y. M. C. A. के मन्त्री मिस्टर जॉर्ज स्वान वहाँ से बदलकर सियेटल नगर के Y. M. C. A. में आगये और मैं प्रायः उनसे मिलने जाया करता था। एक बार जब मैं उनसे मिलने के लिए गया तो उस हँसमुख नौजवान ने, जिसकी आयु ३० वर्ष की होगी, मुझ से कहा—

"मिस्टर देवा, मैं अपने घर गया हुआ था। मेरी माता न

दूसरा विवाह कर लिया है, सो मैं अपने नये पिता से मिलने गया था।"

मेरे हृदय पर ठेस लगी। कुछ देर तक मैं उसके मुंह की ओर ताकता रहा। उसके चेहरे पर कोई विषाद का चिह्न न देखकर मैंने विस्मित होकर पूछा—

"क्यों जॉर्ज, तुम्हारी माता की क्या उम्र होगी?"

मिस्टर स्वान के दाँत भी बड़े सुन्दर थे और चेहरा था गोल। जब वह बोलता था तो उसके मुंह से मानो फूल झड़ते थे। मैं इसीलिए उसके साथ बातचीत करने चला आता था। मेरा प्रश्न सुनकर उसने उत्तर दिया—

"मेरी माँ की आयु चौवन वर्ष की है और मैं ही उसका एकमात्र लड़का हूँ।"

मेरी हैरानी दूर नहीं हुई। मैंने फिर पूछा—"क्यों जॉर्ज, तुम्हारे जैसे योग्य पुत्र के होते हुए माँ को दूसरा विवाह करने की आवश्यकता क्यों पड़ी? क्या तुम उसे कमाकर नहीं खिला सकते थे?"

मैंने देखा कि उसके चेहरे पर मन्द मुस्कान दौड़ गई और वह बोला—"मेरे प्यारे मित्र, तुम जीवन के सुख को नहीं समझते। मेरे पिता माँ के लिए काफ़ी पैसा छोड़ गये हैं। वह मेरे जैसे दसों को खिला सकती है। जीवन का अर्थ पेट भरना ही नहीं, जीवन तो विकास के लिए है। मैं यहाँ Y. M. C. A. के क्षेत्र में अपनी सारी शक्तियाँ लगा चुका हूँ। जन-सेवा का यह काम मुझे बड़ा पसन्द है। मुझे अपनी दैवी शक्तियों के उपयोग का पूरा मौक़ा मिलता है। घर में माता थी अकेली, उसे भी तो साथी चाहिये, जो जीवन-यात्रा में सहायक हो सके और रास्ता सुखद बना सके। सो उसने अपने ही जैसा पैसेवाला साठ साल की आयु का साथी तलाश कर लिया। अब वे दोनों मजे में बैठकर ग्रन्थ पढ़ते हैं, कविताओं का आनन्द लेते हैं, मिलकर गिर्जे जाते हैं, नीरोग स्थानों की सैर करते हैं और इस प्रकार

अपनी शेष आयु निश्चिन्त होकर काटना चाहते हैं। तुम्हें इसमें क्या आपत्ति है ?"

मैं क्या आपत्ति करता ! अक्ल की बात के सामने एतराज़ करना जहालत है। मुझे उसकी बात जच गई और मैंने बड़े स्नेह से उससे हाथ मिलाकर कहा--

"जार्ज, मैंने आज तुमसे एक बात सीखी है। जीवन के इस दृष्टि-कोण को मैंने आज तक कभी इस ढङ्ग पर सोचा नहीं था। मनुष्य अनुभव से सीखता है और विदेश-भ्रमण उसकी आँखें खोलता है। हम अपने दृष्टिकोण को सर्वोत्तम मान लेते हैं, इसलिए कोई नई बात सीख नहीं पाते। 'गुड बाई' मित्र ! फिर मिलेंगे।"

हमारे विश्वविद्यालय से वाशिङ्गटोनियन नामक मासिक पत्रिका निकला करती थी। उसमें मैंने "On the Ganges" अर्थात् "गङ्गा के किनारे" शीर्षक कहानी लिखी जो विद्यार्थियों को बहुत पसन्द आई। उसका हिन्दी रूपान्तर मेरी कहानियों की पुस्तक 'देवपूर्णिमा' में मिलेगा। प्रायः विद्यार्थी अपने साहित्यिक चाव इसी पत्रिका में पूरे किया करते थे। एक और वार्षिक मेगज़ीन, जिसका नाम कास्मो-पॉलिटन (Cosmopolitan) था, यहाँ से निकलती थी। उसमें उस वर्ष के विद्यार्थियों के चित्र, उनके द्वारा लिखे हुए लेख, कवितायें, प्रहसन रहते थे। वह थी एक प्रकार की विदेशी छात्रों की याददाश्त---शिक्षा साल की उनकी क्लबों का वार्षिक विवरण। प्रत्येक विदेशी छात्र उसे ख़रीदना अपना कर्तव्य समझता था। पैसेवाले अमीर छात्र उसकी कई प्रतियाँ मोल लेकर अपने इष्ट-मित्रों के पास भेंट के तौर पर भेजा करते थे। उसकी बिक्री इतनी हो जाती थी कि छपाई का सारा ख़र्च मज़े में निकल आता था। सम्पादन और लेखसंग्रह करनेवाला विद्यार्थी सब सेवा मुफ़्त करता था और वह विद्यार्थियों की दृष्टि में सम्मान पाता था। मैंने यहीं पर अपना साहित्यिक कार्य प्रारम्भ किया। यद्यपि

शिकागो विश्वविद्यालय में पढ़ते हुए मैंने इसका श्रीगणेश कर दिया था और हिन्दी में अच्छी कहानी लिखनेवाले को इनाम देने की घोषणा कर प्रोत्साहन भी दिया था, पर सियेटल में आकर मेरी रुचि साहित्य में अत्यधिक बढ़ गई। मैंने यहाँ पर प्रसिद्ध कहानी-लेखकों की चुनी हुई गल्पें पढ़ीं। मुझे पता लगा कि साहित्य में गल्पें विशेष स्थान रखती हैं और उनमें समाज-सुधार की प्रचण्ड शक्ति है। मै गल्पे लिखने तो लगा, लेकिन अपने में एक बात का बड़ा अभाव पाया। शर्मीली आदत होने की वजह से तथा आँखों की कमजोरी के कारण मैं समाज के अन्दर छिपी हुई बुराइयों की गहराई में न जा सका। बहुत सी चीज़ें मुझे दिखाई ही नहीं देती थीं और बहुत सी बातों के प्रति मै अपनी आँखें बन्द कर लेता था। परिणाम यह हुआ कि मेरी वर्णनशैली तो परिपक्व होती गई, किन्तु गल्पों के प्राइवेट ब्योरों को चित्रित करने में मैं सफल न हो सका। सफल गल्प तथा उपन्यास लेखक वह बनता है जो अत्यन्त निकट से निरीक्षण कर सकता है और घटना सम्बन्धी विस्तृत जानकारी से भर जाता है; तब उसे ख़ास ख़ास चुभती हुई बातें चुनने की सुविधा रहती है। जब उसकी वाक़फ़ीयत ही अत्यन्त सीमित हुई—वह तह में न जा सका—तो किस प्रकार वह अपने पाठकों के सामने पात्रों तथा घटनाओं का जीवित रूप रख सकता है! मेरी आँखें इतनी कमज़ोर थीं कि मैं बोर्ड पर लिखे हुए प्रश्नों को नहीं पढ़ सकता था। ऐसी अवस्था में मुझे चाहिये था कि मैं ढीठ बनकर—निकट पहुँचकर—वस्तुस्थिति को भली प्रकार देखता, किन्तु स्वभाव के लजीलेपन ने मुझे ऐसा न करने दिया। उदाहरण के तौर पर, यदि मैं किसी कहानी में स्त्रियों के आभूषणों का वर्णन करना चाहूँ या उनके सौन्दर्य का चित्रण करना हो तो इसके लिए मैं अपने आपको असमर्थ पाता हूँ; अथवा यदि किसी वृक्ष का वर्णन ब्योरेवार लिखना चाहूँ तो नहीं लिख सकूँगा; क्योंकि उतना तो मेरी आँखें अपनी सीमा में ले सकती ही नहीं। हाँ, मुझमें शौक था जानने का।

विकट बाधायें सहकर भी मैं प्राकृतिक छटाओं को देखने के लिए पहुँचता। निरीक्षण की जितनी शक्ति मेरे जैसी आँखोंवाले पुरुष में आ सकती थी, उसमें मैंने ज़रा भी कसर न की और ले लिया जितना ले सकता था। प्रभु की असीम कृपा से उतनी सामग्री ने भी मेरी साहित्यिक कम्पनायें चैतन्य कर दीं और मैंने अनन्त की ओर मुंह कर लिया।

उन्नीसवाँ अध्याय

अब्राहम लिंकन की शतवर्षी

अमरीका की स्वाधीनता का दिन तो प्रत्येक वर्ष ४ जुलाई को मनाया जाता है और उस अवसर पर वहाँ के प्रत्येक ग्राम, कस्बे और नगर में कुछ-न-कुछ धूमधाम होती है, किन्तु सन् १९०९ की १२ फरवरी को संयुक्त राज्य अमरीका में विशाल पैमाने पर राष्ट्रीय महोत्सव मनाने की आयोजना की गई थी। वह दिन था अमरशहीद प्रेसीडेण्ट अब्राहम लिकन की शतवर्षी का। सन् १८०९ की १२ फ़रवरी को वे ग़रीब मां-बाप के घर एक लकड़ी के मकान में पैदा हुए थे। सियेटल में महोत्सव की तैयारियाँ दो महीने पहले से ही होने लगी थीं और प्रत्येक छोटी-मोटी सभा-सोसाइटी ने इसे मनाने के लिए अपने-अपने प्रोग्राम बनाये थे। यह उत्सव केवल अमरीका में ही नहीं मनाया गया, बल्कि जिस-जिस भूभाग में अमरीकन नागरिक व्यापार अथवा अन्य किसी कार्य के लिए गये अथवा बसे हुए हैं, वहाँ-वहाँ उन्होंने राष्ट्र के इस नररत्न का-जन्मदिन मनाया। इतने विस्तृत क्षेत्र में यह शतवर्षी मनाई गई थी कि इससे लिंकन महोदय की लोकप्रियता का जाज्वल्यमान प्रमाण मिलता था। क्या विशेष गुण थे इस व्यक्ति में, जिनकी वजह से उसका इतना आदर अमरीकन जाति करती है? इस बात पर मैं विचार करने लगा। मुझे अमरीकन इतिहास के पिछले पन्ने उलटने की आवश्यकता पड़ी। इस जन्मोत्सव पर हमारे विश्वविद्यालय में भी बड़ी तैयारियाँ की गई थीं और प्रोफेसरों ने विद्यार्थियों को व्याख्यानों द्वारा लिंकन महोदय की गुणावली का बखान सुनाया। हमारे पाठकों को भी अमरीकन इतिहास के इस तेजस्वी नायक की कहानी जाननी

चाहिये, क्योंकि महापुरुषों की पुनीत कथायें ही गिरी हुई जातियों की नाड़ियों में नवजीवन का सञ्चार कर सकती हैं।

सत्र हवीं सदी के आरम्भ में योरुपियन लोग अपने-अपने देशों से आकर उत्तरी अमरीका मे बस्तियाँ बनाने लगे। अमरीका जंगली देश था, इसलिए उन लोगों को जंगल साफ़ करने और दूसरे कामों के लिए मजदूरों की सख्त जरूरत पड़ी। मजदूर कहाँ से आवें ? वहाँ तो सभी जिमींदार थे, अतएव अमरीका वालों की इस जरूरत को पूरा करने और धन कमाने के लिए पुर्तगालवालों ने अफरीका से हब्शी लाकर बेंचने का ठेका लिया। धीरे-धीरे यह व्यापार अंग्रेज लोगों के हाथ मे आया। हजारों निरपराध हब्शी हर साल भेड़-बकरियों की तरह बिकने लगे। नई दुनिया के मनुष्य-समाज की भावी विपद के बीज इसी समय से ही बोये गये।

सन् १७७६ में जब उत्तरी अमरीका की तेरह बस्तियों ने स्वतन्त्रता का झण्डा बुलन्द किया और "मनुष्यमात्र ईश्वर की दृष्टि में बराबर हैं" इस सिद्धान्त की सारे संसार में घोषणा की, तब दुनिया के राजनीतिक इतिहास में एक नया क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। यद्यपि फ्रांस के मशहूर लेखक रूसो ने इसका प्रचार पहले से ही किया था, तथापि वह केवल उस समय तक जबानी जमाखर्च था। अमरीका वालों ने अपना रक्त बहाकर उस सिद्धान्त में रूह फूंक दी, परन्तु एक बात में वे भी कसर कर गये। उस सत्य सिद्धान्त के महत्व को उन्होंने गौरवर्ण वालों तक ही परिमित रखा, बेचारे हब्शी 'मनुष्य' शब्द की व्याख्या में न लाये गये। खैर, अमरीका वाले इंग्लिस्तान से स्वतन्त्र होगये। यद्यपि अमरीका वालों ने अपने यहाँ के हब्शी गुलामों को आजादी तो न दी, मगर गुलामों की तिजारत बन्द करने की चेष्टा जरूर की। इंग्लिस्तान वालों ने अपनी उदारता का प्रमाण देकर और अपने पापों पर पश्चात्ताप कर यह क्रूर कर्म बिलकुल ही बन्द कर दिया और दूसरी जातियों पर भी गुलामों की तिजारत छोड़ देने के लिए जोर दिया।

अच्छा, अमरीका वालों ने गुलामी की प्रथा को बिलकुल ही क्यों न बन्द कर दिया ? इसका उत्तर है——स्वार्थ के कारण। इन तेरह बस्तियों में से जो दक्षिण की ओर थीं, उनका अधिकांश काम गुलामों के ही सहारे चलता था। उनके खेतों पर गुलाम लोग कड़ी धूप में काम करते और मालिक चैन की बंसी बजाते थे। मगर सन् १७७६ की घोषणा——"मनुष्यमात्र ईश्वर की दृष्टि में बराबर हैं"——अपना काम कर गई। उत्तरी रियासतों में गुलामों को आज़ाद करने का बीड़ा लोगों ने उठाया। धीरे-धीरे देश में इस बात पर दो दल बन गये। एक दल गुलामों को स्वतन्त्र करना चाहता था और दूसरा उन्हें उसी अवस्था में रखने के पक्ष में था। दोनों में बड़े-बड़े झगड़े हुए और वे यहाँ तक बढ़े कि सन् १८५९ में देश की दशा नाज़ुक होगई। देश-हितैषी कहने लगे कि युनाइटेड स्टेट्स आफ़ अमेरिका को दो टुकड़ों में विभक्त होने से केवल ईश्वर ही बचा सकता है।

भँवर में पड़ी हुई युनाइटेड स्टेट्स की किश्ती को पार लगाना साधारण व्यक्ति का काम न था। इसके लिए एक असाधारण मल्लाह की आवश्यकता थी। अथवा यों कहिये कि उस समय एक ऐसे महात्मा की ज़रूरत थी जिसमें दैवी शक्ति हो, ईर्ष्या-द्वेष जिसे छू न गया हो, प्रसिद्धि की जिसको लालसा न हो, गोरे-काले जिसकी दृष्टि में बराबर हों, जो नीति में कुशल हो और जिसकी बुद्धि तीक्ष्ण हो। मतलब यह है कि दूसरों के दुःख में दुःख और सुख में सुख समझने वाले तथा अपने देश की रक्षा के लिये सब कुछ स्वाहा करने वाले महापुरुष की आवश्यकता थी। ऐसा पुरुष, अनाथ हब्शी गुलामों का दुःख दूर करने और अपने देश को दो टूक होने से बचाने के लिए, पैदा हो चुका था। सन् १८५९ में उसकी उम्र पचास वर्ष की थी। गरीब माता-पिता के घर उत्पन्न होकर अपने श्रेष्ठ गुणों से धीरे-धीरे उन्नति करते-करते यह महापुरुष सन् १८५९ में अपना उद्देश्य पूरा करने के लिए अपने देशवासियों के सामने आया। इस समय वह अमरीका का प्रेसीडेंट चुना गया।

पूर्वसञ्चित पापों का प्रायश्चित्त अमरीकन जाति को ज़रूर करना था। सन् १८६० में हब्शी गुलामों के कारण उत्तरी और दक्षिणी रियासतों में लोमहर्षण युद्ध प्रारम्भ हुआ। इस युद्ध का वर्णन पढ़ने योग्य है। प्रेसीडेंट लिङ्कन ने सबसे पहले इस बात के लिए सिरतोड़ कोशिश की कि बिना युद्ध के सब झगड़ों का निबटारा हो जाये। मगर ऐसा न हो सका। जब युद्ध प्रारम्भ हुआ और प्रेसीडेंट ने आदमियों के लिए अपील की, तब उसके देशवासियों ने उत्तर में कहा—"Father Abraham we are coming." अर्थात् "पिता अब्राहम, हम आ रहे हैं।" अमरीका स्वतन्त्र देश था; कोई आदमी जबर्दस्ती फ़ौज में भरती नहीं किया जाता था; दूसरे देशों की तरह सजी-सजाई सेना (Standing Army) भी यहाँ नहीं रखी जाती थी। यहाँ तो जब ज़रूरत पड़ती थी, तब लोग अपना घरबार छोड़कर देश के झण्डे के नीचे आ खड़े होते थे। बारह बार प्रेसीडेंट लिङ्कन ने आदमी माँगे। माँगे २७,६३,६७० आदमी थे और आये २७,७२,४०८ आदमी। पाँच साल युद्ध हुआ; सात लाख के करीब आदमी दोनों ओर से बलिदान होगये; अरबों रुपये की जायदादें नष्ट हो गईं; तब कहीं जाकर गुलामी की प्रथा का अन्त हुआ। तीस लाख हब्शी गुलामी से छूट गये और पिता लिङ्कन का गुण गाने लगे। महात्मा लिङ्कन का उद्देश्य पूरा होगया और वे भी अपने देश की बीमारी दूर कर शहीद होगये।

अब हम एक-आधा उदाहरण देकर इस महापुरुष का महत्त्व दर्शाते हैं। युद्ध के समय जब सिपाहियों को किसी अपराध के कारण "कोर्ट मार्शल" की सजा मिलती थी, तब अफ़सर लोग नियमानुसार उन फैसलों को प्रेसीडेंट के पास दस्तख़त के लिए भेजते थे। प्रेसीडेंट लिङ्कन हमेशा इस बात का यत्न करते थे कि कोई-न-कोई ऐसा नुक़ता मिल जाये जिससे अपराधी बच जाये। क्षमा और दया उनमें बेहद थी। फौजी अफ़सर प्रेसीडेंट की इस दयालुता की सदा शिकायत किया करते थे, परन्तु महात्मा लिङ्कन कुछ ध्यान न देते थे। एक बार एक

नौजवान को मृत्यु-दण्ड की सज़ा मिली। उसका मुकदमा प्रेसीडेंट के पास आया। लड़के का क़सूर यह था कि वह पहरे पर सो गया था। प्रेसीडेंट लिङ्कन ने उसको क्षमा कर दिया। अफ़सरों के कारण पूछने पर उन्होंने कहा—"मैं इस ग़रीब लड़के की हत्या अपने सिर लेकर सदा के लिए अपराधी नहीं बनना चाहता। यह लड़का खेतों पर पला और रहा है। आश्चर्य नहीं कि जिसको शाम ही से सोने की आदत हो, वह रात का पहरा देते समय भूल से सो जाये। इस अपराध के लिए मैं इसको गोली नहीं मार सकता।" फ्रेडरिक्सबर्ग की लड़ाई में वह नौजवान मारा गया। जब उसके मृतक शरीर पर से कपड़े उतारे गए, तब लोगों ने देखा कि वह अपने हृदय के ऊपर प्रेसीडेंट लिङ्कन की तसवीर रखे हुए था और उस तसवीर के नीचे लिखा हुआ था—"God bless President Abraham Lincoln." अर्थात "परमेश्वर प्रेसीडेंट अब्राहम लिङ्कन का कल्याण करे।"

एक और उदाहरण सुनिए। बोस्टन की रहने वाली एक बिक्सबी नाम की मेम के पाँच लड़के थे। वे पाँचों युद्ध में मारे गये। इस पर प्रेसीडेंट लिङ्कन ने दुःखी माता की सांत्वना के लिए यह पत्र लिखा—

"प्यारी मैडम! युद्ध-विभाग के काग़ज़ों की जाँच-पड़ताल करने पर मुझे मालूम हुआ कि आपके पाँचों पुत्र वीरता से लड़ते हुए देश के लिए मारे गये। उनकी मृत्यु से जो कष्ट आपको हुआ है, उसको दूर करने का यत्न तो मेरी शक्ति में कहाँ! परन्तु मैं इस प्रजासत्ताक राज्य की ओर से, जिसकी रक्षा की ख़ातिर आपके पुत्रों ने प्राण दिये, आपको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकता। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह आपको शान्ति दे और आपके मृत पुत्रों का पवित्र स्मारक सदा के लिए आपको शान्तिदायक हो। स्वतन्त्रतारूपी यज्ञ में जो शुद्ध बलि आपने दी है, उसका गौरव आपको सांत्वना देने वाला हो।

आपका—

अब्राहम लिङ्कन।"

इस चिट्ठी ने उस पुण्यशीला माता को बहुत कुछ शान्ति दी और उसका नाम सदा के लिए अमर होगया। जब तक अमरीकन जाति जीवित रहेगी और अमरीकन क़ौम का इतिहास बना रहेगा, तब तक माता बिक्सबी का नाम स्थायी रहेगा। यह चिट्ठी लिङ्कन की महानता का अच्छा परिचय देती है। युनाइटेड स्टेट्स का प्रेसीडेंट, भयङ्कर युद्ध का समय, भारी जिम्मेदारी का काम! उस काम को करते हुए उन माताओं, भगिनियों और स्त्रियों के दुःख दूर करने के लिए पत्र लिखना. जिनके बन्धु युद्ध में मारे गए थे; यह वही कर सकता है जिसके प्रेम का दायरा बहुत बड़ा हो, जो दूसरों के दुःख को अपना समझता हो।

इस महात्मा के चरित्र का दूसरा पहलू देखिये। वे रियासतें जिन्होंने सन् १८६० में प्रेसीडेंट लिङ्कन के विरुद्ध युद्ध किया था, आज उसका जन्मोत्सव मनाती हैं। क्यों? कारण यह है कि प्रेसीडेंट लिङ्कन को बागियों से द्वेष नहीं था। ज्यों ही लड़ाई समाप्त हुई और युद्ध में प्रेसीडेंट लिङ्कन का दल जीत गया, त्यों ही इस महापुरुष ने परास्त दल को अपनाया, बहुत नरम शर्तों पर उससे सन्धि कर ली और युद्ध का ख़ात्मा कर दिया।

एसे गुणों के कारण ही लिङ्कन का शताब्दी-जन्मोत्सव इस धूमधाम से मनाया गया। केनटकी और इलीनाए रियासतों में उत्सव की तैयारियाँ कई महीने पहले से की गईं और लाखों रुपये खर्च किये गए। लकड़ी के जिस घर में लिङ्कन पैदा हुए थे, उसको सुरक्षित रखने और उस स्थान पर यादगार बनाने के लिए सभायें की गईं। मतलब यह कि अमरीका वालों ने अपनी जाति के भूषण का हर तरह से सत्कार किया।

कैसा उत्साह था उस रोज़ हमारे विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों में! भारतवर्ष में भी राष्ट्रीय त्योहार आते हैं और चले जाते हैं। उन्हें कौन मनाता है? बेचारे अनपढ़ लोग, दुकानदार और व्यापारी वर्ग; सो वह भी धार्मिक रूप में, उन महापुरुषों को अवतार समझ कर। महा-पुरुष का दरजा हटाकर जब किसी देशभक्त को ईश्वर के दरजे पर

बिठलाया जाता है, तब उसकी उपयोगिता नष्ट हो जाती है और ये त्योहार तथा जन्मोत्सव राष्ट्र के बच्चों को नवजीवन प्रदान करना छोड़ देते हैं। भारतीय शिक्षित समाज अपने त्योहारों के प्रति उदासीन सा होगया है; वह मानो इनकी कुछ उपयोगिता ही नहीं समझता। इसके विपरीत अमरीका के विश्वविद्यालयों में वहाँ के विद्यार्थियों को इनके द्वारा विशुद्ध राष्ट्रभक्ति सिखलाई जाती है, देश की स्वाधीनता के लिए सर्वस्व बलिदान करने की भावना भरी जाती है और राष्ट्र का आवाहन कर उसकी पूजा की जाती है। उस रोज़ प्लेटफ़ार्म पर खड़े हुए विश्वविद्यालय के प्रोफ़ेसरों और नीचे हाल में खड़े हुए विद्यार्थियों के कण्ठों से जब अमरीकन राष्ट्र की स्वाधीनता का गीत गम्भीर नाद में गाया गया तो मेरी हृत्तन्त्रियाँ पुलकित हो उठीं और मेरी आँखों में हर्ष के आँसू आगये। इसके बाद न जाने कितनी बार उस गीत को मैंने अपने देश की पर्वत-स्थलियों में मधुर स्वर से गाया है। पाठकों के लाभार्थ सबसे पहले उसका अंग्रेज़ी रूप दिया जाता है; तत्पश्चात् हिन्दी कविता में उसका भावानुवाद भेंट किया जायेगा।

1

My country ! 'tis of thee,
Sweet land of liberty,
Of thee I sing;
I and where my fathers died,
Land of the pilgrims pride,
From every mountain side
Let freedom ring !

2

My native country thee,
Land of the noble free,
Thy name I Love;

I Love thy rocks and rills,
Thy woods and templed hills;
My heart with rapture thrills
Light that above.

3

Let music sweet the breeze,
And ring from all the trees,
Sweet freedom's song !
Let mortal tongue awake,
Let all that breathe partake,
Let rocks their silence break,
The sound prolong.

4

Our father's God ! to thee,
Author of liberty,
To thee we sing;
Long may our land be bright,
With freedom's holy light;
Protect us with thy might,
Great God, our King.

छन्दोबद्ध हिन्दी अनुवाद

(१)

अय देश धन्य ! नयनाभिराम,
अय आज़ादी के स्वर्गधाम,
मैं करता हूँ गुण बखान;
पितरों का शान्त शयनागार,
तू यात्रियों का स्नेहाधार,
चहुँ ओर से करें गिरि करार,
स्वतन्त्रता की मधुर तान ।

(२)

हे जन्मभू ! तू है महान्,
स्वतन्त्र नररत्नों की खान,
प्राणप्रिय तेरा है नाम;
तब शिला-स्रोत मम प्रेम धन,
मन्दिर समान हैं शैल-वन,
उन्मत्त है मम हिय प्रसन्न,
लखि तेजमय वह देवधाम ।

(३)

करे सरस राग समीर को,
प्रतिध्वनित पादप जगत हो,
स्वतन्त्रता का मधुर गीत;
चैतन्य हो मानव वाणी,
गावें सभी मिलकर प्राणी;
करें भङ्ग मौन गिरि मानी,
तब फैले नाद संगीत ।

(४)

हे मात पिता जगदीश प्रभो !
तुम आजादी के स्वामी हो,
तब यश गाते हैं सारे;
आलोकित हो यह भूमि सदा,
ले विमल प्रकाश स्वाधीनता,
करो निज पराक्रम से रक्षा,
परमदेव पिता हमारे ।

किसी भी जाति को उठाने के लिए स्फूर्तिदायक और स्वस्थ कविताओं, गीतों, गल्पों, उपन्यासों और निबन्धों की आवश्यकता होती है । यह

है खुराक उसके मस्तिष्क की जिस पर उसकी विचार-धारा अवलम्बित है। भारतवर्ष के पतन का एक मुख्य कारण यह भी हुआ है कि यहाँ राष्ट्रीय साहित्य का अभाव सा है। चन्दवरदाई से लेकर अंग्रेज़ी काल तक हिन्दी-साहित्य में भक्ति रस की प्रधानता रही है। ब्रजभाषा में वैष्णव सम्प्रदाय के कवियों और लेखकों ने भक्ति तथा शृङ्गार रस में जनसाधारण को डुबो दिया और परिणाम यह हुआ कि हमारे लोग निपट स्वार्थी होगये और दिमाग़ी ऐयाशी ने हम पर कब्ज़ा कर लिया। हमारे अच्छे-अच्छे कवि और लेखक आज भी उस बीमारी से ग्रसे हुए हैं और "हाला मधुप्याला" गा-गाकर हमारी शक्तियों को घुन लगा रहे हैं। अमरीका के विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों को राष्ट्रीय और चरित्र-संगठन के भावों से ओतप्रोत साहित्य पढ़ाया जाता है, इसीलिए वहाँ के नवयुवक घर का सारा ऐश-आराम छोड़कर सिन्धु नदी के किनारे पहुँचते है और विकट नंगा पर्वत पर चढ़ने का साहस करते हैं। बाधायें उन्हें भयभीत नहीं करतीं और न मृत्यु ही उन्हें डरा सकती है। ज्ञान की प्यास उनमें इस क़द्र हो जाती है कि वे उसके लिए सब कुछ न्योछावर कर देते हैं। वे समझते है जीवन का यथार्थ मूल्य। उनका साहित्य उन्हें सिखाता है आजादी और ज्ञान के लिए मरना। इसी कारण नये-से-नये आविष्कार, नई-से-नई खोज और नई-से-नई आकांक्षायें उन्हें आगे बढ़ने को उत्साहित करती हैं। लॉंगफैलो और व्हिटमेन की कवितायें उनमें जीवन-रस भरती हैं और थोरो के लेख उन्हें देश के लिए मरने की शिक्षा देते हैं।

ओहो! नीरोग उच्च शिक्षा में कैसा अद्भुत बल है और राष्ट्रीय त्योहारों में कैसी सञ्जीवनी शक्ति है! वही त्योहार जब उच्च शिक्षा-प्राप्त नायकों द्वारा मनाये जाते हैं तो उनमें जनता को ऊँचा उठाने की कैसी प्रचण्ड प्रेरणा उत्पन्न हो जाती है! ये नेता ला सकते हैं उनमें नवीनता, दे सकते हैं उनको आधुनिक रंग और फैला सकते हैं उनके द्वारा नीरोग विचार। सालभर में हमारे कितने धार्मिक और राष्ट्रीय त्योहार

आते हैं, किन्तु उनका लाभ कौन उठाता है ? अजमेर शरीफ़ में प्रत्येक वर्ष चिश्ती की दरगाह पर हज़ारों मुसलमान जाते हैं, और वहाँ होता क्या है ? वही ठगी, वही गुण्डापन और वही बदमाशी, जिनके लिए हिन्दू-तीर्थ बुरी तरह से बदनाम हैं। पढ़े-लिखों का इधर कुछ भी ध्यान नहीं। कितना प्रचार कर सकते हैं वे ऐसे-ऐसे मेलों और त्योहारों पर, जहाँ बिना बुलाये लाखों की संख्या में लोग आते हैं ! उठाईगीरों को ऐसी भीड़ें मानो ख़ुदा की ओर से मिलती हैं और वे वहाँ मनमानी फ़सलें काटते हैं। इसी प्रकार यह प्रवाह चला जा रहा है और देश का नैतिक पतन बढ़ रहा है।

जब हम अपने जनसाधारण से सीधे सम्बन्ध में आते हैं, मजदूरों से काम लेना पड़ता है, बढ़ई, लोहार, मिस्त्री आदि कर्मकरों से घर की चीजें बनवाते हैं, तो कितना निराश होते हैं हम ! झूठ बोलना, कुफर तोलना, इन लोगों का पेशा होगया है। ईमानदारी तो मानो इनके पास फटकी ही नहीं। इसका क्या कारण है ? वही जिसका वर्णन हमने ऊपर किया है। हमारे उच्च शिक्षा के केन्द्रों से जो लोग निकलते हैं—संस्कृत के पण्डित, मस्जिदों के मौलवी और विश्वविद्यालयों के पदवीधारी—उनकी तनिक भी रुचि नीरोग साहित्य-निर्माण की ओर नहीं। राष्ट्रीय त्योहार उनके लिए हलवा-पूरी उड़ाने के अवसर हैं। उनका ध्येय है, येन केन प्रकारेण धन कमाना। जनसाधारण जब इन दिग्गज पदवीधारियों को पैसे के लिए वेश्याओं जैसा आचरण करते हुए देखते हैं, तब वे भला सदाचार की ओर कैसे जा सकते हैं ! उन्हें मस्तिष्क की खुराक देने वाले जब स्वयं पतित हैं, जब वे उन्हें अधम देवी-देवताओं और अवतारों की कथायें सुनाकर पैसा ठगते हैं तो फिर उन भेड़ों से परोपकार और परमार्थ की आशा क्या हो सकती है ! अफसोस ! सारा सामाजिक वातावरण ऐसा दूषित, ऐसा गन्दा और ऐसा विषैला होगया है कि किसी किसी समय उसके सुधार की सभी आशायें अन्धकार में विलीन हो जाती हैं।

हमें करना क्या चाहिये ? हमें अब घर को ठीक करने में सारी शक्ति लगा देनी चाहिये। त्योहारों का सुधार, उनकी काँट-छाँट, नये राष्ट्रीय गीत ओर नैतिकता से भरे हुए भजन, राष्ट्रीय भावों से ओतप्रोत कवितायें, मनोरंजक और तन्दुरुस्त चुटकले, आरोग्यतावर्द्धक हास्यरस का मसाला और सत्यज्ञान की वृद्धि करने वाले व्याख्यान—बिलकुल नवीन विचारधारा (New Thought Movement)—देश में चलाने चाहियें और ज्ञान के सभी विभागों में नये ग्रन्थ लिखकर राष्ट्रीय खजाना भरना चाहिए। हमारे लिए कितना काम है और कैसा बेशकीमती समय खोते हैं हम ! हमारा युग है रचनात्मक और हमने निर्माण करना है राष्ट्रीय भवन। अब्राहम लिंकन की शतवर्षी का एक उदाहरण देकर हमने अमरीकन राष्ट्रीय जीवन की झलक दिखला दी है ताकि हमारे देशवासी अपनी जिम्मेदारी को समझें।

बीसवां अध्याय

सन् १६०६ के ग्रीष्म अवकाश के कुछ अनुभव

२६ मई सन् १९०९ बुधवार के रोज मेरा विश्वविद्यालय का साल पूरा हुआ। परीक्षाओं से छुट्टी पाई। तब यह फिक्र लगी कि अगले साल की पढ़ाई के लिए रुपया कमाने का प्रबन्ध करना चाहिये।

जब से मैं अमरीका में आया, मैंने अपना प्रबन्ध इस तरह रक्खा कि विश्वविद्यालय का साल पूरा होने तक मेरे पास कुछ-न-कुछ रुपया अवश्य ही बचा रहे, जिसमें मजदूरी ढूंढने के समय तक खाने-पीने के लिये कष्ट न हो। पिछले साल इन दिनों मेरे पास १२० रुपये थे। उस पूंजी को मैंने छः सप्ताह बेकार बैठकर खाया था, बाकी सात सप्ताह मुझे काम मिल गया था। गत वर्ष अमरीका में आर्थिक उद्वेग था, इस कारण मजदूरी की बड़ी किल्लत रही। इस साल सियेटल नगर में, जहां मैं था, प्रदर्शनी होने वाली थी, इससे ख्याल था कि खूब काम मिलेगा। प्रदर्शनी में न सही तो और जगहों में काम मिल जाने की बहुत उम्मीद थी। मन में यह भी विचार था कि यदि कुछ दिन काम न मिला तो बैठकर लेख ही लिखेंगे। फुरसत की कमी के कारण इस साल मैं बहुत कम लेख लिख सका था। परन्तु भावी के खेल विचित्र हैं; बात जैसी मैं चाहता था, वैसी न हुई।

मई के आरम्भ में मेरी आंखें दुखने लगीं। पढ़ना-लिखना कठिन होगया। परीक्षा के दिन निकट! मजबूरन एक अमरीकन डाक्टर के पास जाना पड़ा। इस झगड़े में मेरी पूंजी का रुपया खत्म होगया। २६ मई को परीक्षाओं में उत्तीर्ण होने के अनन्तर जब मैंने अपनी बैंक

की किताब देखी तो केवल १२ रुपये शेष थे। मकान का एक सप्ताह का किराया ६ रुपये और बनिये के ९ रुपये मेरे जिम्मे निकलते थे। अब क्या किया जाये? सोचा कि दिन चढ़ते ही मजदूरी की खोज म निकलेंगे।

२७ मई। जलपान करके और कपड़े पहिनकर मैं बैठा ही था कि विष्णुदास ने मेरा दरवाजा खटखटाया। मैंने दरवाजा खोल दिया।

विष्णु—"कहिये, चलने को तैयार हैं?"

मैं—"जी हां।"

विष्णु—"आपकी घड़ी में क्या वक्त है?"

मैं—"साढ़े आठ बजे हैं।"

विष्णु—"वह मेक्सिकन कहां है? हम लोगों के साथ चलेगा कि नहीं?"

मैं—"जरूर चलेगा। वह अभी नीचे से आता है।"

थोड़ी देर हम लोग बातें करते रहे। जब मेक्सिकन आगया, तब तीनों आदमी नौकरी की तलाश में बाहर निकले।

अपने इन दो साथियों का परिचय पाठकों से करा देना आवश्यक है। विष्णुदास वाशिंगटन विश्वविद्यालय में इलेक्ट्रिक इञ्जिनीयरिंग पढ़ते थे और मेरी तरह मेहनत पर ही बसर करते थे। विद्यालय में इनका यह पहला ही साल था। यह साल तो इनका अच्छी तरह कट गया, क्योंकि इनके पास विद्यालय प्रवेश करते समय काफ़ी रुपया था, जो इन्होंने वेंकोवर में रहकर कमाया था। अगले साल की पढ़ाई के लिए ये भी द्रव्योपार्जन के चक्कर में थे। दूसरे महाशय, सिसारिनो मघाइयाँ, मेक्सिकन थे, जो सिर्फ रुपया कमाने के लिए अमरीका आये थे। आदमी नेक और मिलनसार होने से हमारे साथी होगये थे। पास के दूसरे कमरे में रहने की वजह से तथा एक ही धुन के होने के कारण

हम लोगों का मन इनसे मिल गया था। इसलिए तीनों परदेसी इकट्ठे मज़दूरी की तलाश में निकले।

अमरीका में सब काम पेशे के तौर पर होते हैं। मज़दूरी तलाश कर देना भी एक पेशा है। बड़े-बड़े शहरों में कितनी ही एजन्सियाँ ऐसी हैं जिनका काम नौकरी तलाश कर देने का है। अंग्रेज़ी में इनको इम्प्लायमैण्ट एजन्सीज़ (Fmployment Agencies) कहते हैं। हम लोग इन्हीं एजन्सियों में नौकरी की बाबत पूछने चले थे।

कोई साढ़े दस बजे के करीब हम लोग सियेटल के उपनगर से शहर में पहुँचे। सियेटल शहर भी अमरीका के और बड़े शहरों की तरह मीलों लम्बा-चौड़ा चला गया है। वाशिङ्गटन विश्वविद्यालय भी यहीं पर है। बिजली की गाड़ियाँ इधर से उधर, उधर से इधर दौड़ती फिरती हैं। प्रदशनी के कारण इन दिनों गाड़ियों में बहुत भीड़ रहती थी; खास कर उन गाड़ियों में जो विश्वविद्यालय से शहर आती-जाती थीं। क्योंकि प्रदर्शनी के भवन विश्वविद्यालय की भूमि पर बनाये गये थे और हम लोग विश्वविद्यालय के पास रहते थे, इसी से हमें शहर पहुँचने में देर लगी।

सियेटल की बड़ी-बड़ी सड़कों पर इन एजन्सियों के अड्डे हैं। वहां जाकर हमने पूछताछ शुरू की। भिन्न-भिन्न प्रकार के कामों के इश्तिहार एजन्सियों के बाहर दीवारों पर लगे हुए देखे। नमूने के तौर पर दो-चार का तर्जुमा हम नीचे देते हैं—

१—तीस मजदूर सड़क पर काम करने के लिए दरकार हैं; तनख्वाह ६ रुपये रोज।

२—तीन मजदूर लकड़ी के कारखाने में काम करने के लिए; तनख्वाह १२० रुपये माहवार; रहने का मकान मुफ्त।

३—दो आदमी एक होटल में बरतन धोने के लिए चाहियें। तनख्वाह ९० रुपये; खाना-मकान मुफ़्त।

४—छः बढ़ई पश्चिमी सियेटल में दरकार हैं; तनख्वाह ९ रुपये रोज़।

इस प्रकार के बहुत से इश्तिहार बहुत जगहों पर पाये। हमारा विचार एलास्का जाने का था; हमने वहाँ का हाल दरयाफ़्त किया, मगर पता लगा कि एलास्का की भरती अभी शुरू नहीं हुई। एक जगह पर हमने अमरीकन गवर्नमेण्ट के काम के मुताल्लिक नोटिस देखा। उस पर मज़दूरी साढ़े सात रुपये रोज़ लिखी हुई थी। पूछने पर मालूम हुआ कि वहाँ हम लोगों को नौकरी नहीं मिल सकती, क्योंकि हम लोग काले थे। एजन्सी के कर्मचारियों ने मुझको गवर्नमेंट के एक अफ़सर की चिट्ठी दिखलाई। उसमें साफ़ लिखा था कि मज़दूर अमरीका या आयलैंड आदि के गोरे हों, काले हिन्दू न भेजे जायें। इस चिट्ठी को पढ़कर भाँति-भाँति के विचार मेरे दिल में उठे, जिनका उल्लेख करना यहाँ पर उचित नहीं।

इस तरह घूमते-घामते हम लोग "पायोनियर" नामक एजन्सी के पास पहुँचे। वहाँ भी कई प्रकार की मज़दूरी के इश्तिहार देखे। दो-चार हमारे मतलब के भी थे। पूछताछ करने के लिए हम लोग एजन्सी के दफ़्तर में घुस गये। वहाँ तीन आदमी अपने काम में मशगूल पाये, जो मज़दूरों से बातचीत करके उनके लिए कागज़ लिख रहे थे। हमारी बारी आने पर मैंने एक से कहा कि हमारे लिए कोई अच्छा काम बतलाओ; ऐसी जगह भेजो जहाँ तीन महीने तक लगातार काम रहे और हम लोग अपने पढ़ने भर के लिए रुपया कमा लें। उसने कहा कि यहाँ सियेटल में ही आपको अच्छा काम मिल जायगा। आप एक-एक डालर (तीन-तीन रुपये) दें; बहुत अच्छा पक्का काम दिला दूँगा। हमने स्वीकार कर लिया और तीन आदमियों की जगह चार आदमियों की फ़ीस चार डालर (बारह रुपये) अदा कर दिये। मेरे पास तो कोई डालर था नहीं। विष्णुदास के पास पाँच डालर थे, सो उन्होंने चार डालर दे दिये। एजन्सी वाले ने हमको एक चिट्ठी दी, जिस पर मेरे हस्ताक्षर करवा लिये।

यह चिट्ठी जेनिङ्गस नाम के एक मनुष्य के नाम थी । एक प्रकार का प्रपञ्च था, जिससे बेचारे अनजानों का धन लूटा जाता था। हमसे एजण्ट ने कहा कि कल सुबह साढ़े सात बजे फ़लानी जगह पर जाना और मिस्टर जेनिङ्गस को यह रुक्का दे देना । उन्हें चार आदमियों की जरूरत है। बड़ा आसान काम है और पक्का है।

बड़ी खुशी-खुशी हम तीनों जने एजन्सी से निकले । दिल में समझा कि काम मिल गया; अब कोई चिन्ता नहीं थी। बाहर निकलकर हम दो-चार ही क़दम गये थे कि एक अपनी जान-पहिचान के मिले।

मुलाक़ाती—"अच्छा, आप लोगों ने फ़ीस कितनी दी ?"

मैं—"एक डालर फ़ी आदमी।"

मुलाक़ाती—(हँसकर) "आप लोगों को एजन्सी वाले ने ठग लिया । शहर के काम के केवल पचास सेण्ट (आधा डालर) देने पड़ते हैं। आप लोगों ने एक-एक डालर कैसे दे दिया ?"

मैं—"हम लोगों को बहुत आसान और पक्का काम मिला है, इसलिए उसने एक-एक डालर लिया होगा।"

मुलाक़ाती—(मुस्कराकर) "यह बात कल सवेरे मालूम हो जायेगी।"

हम लोगों ने उसकी बात का कुछ ख्याल न किया। शहर में घूमते-फिरते अपने-अपने रहने की जगह पहुंचे। रात को लम्बी तानकर सो रहे ताकि सवेरे काम पर ठीक समय पर पहुँच जायें और आसानी से काम कर सकें।

२८ मई। प्रातःकाल उठकर मैंने कुछ खाना-पीना तैयार किया। नियत समय पर तीनों जने गाड़ी में बैठकर मिस्टर जेनिङ्गस के पास चले। चौथा आदमी सरदार तेजासिंह हमको रास्ते में मिल गया था। बातें करते हुए हम रिपब्लिकन गली में पहुँचे। यहीं पर जेनिङ्गस का काम था। वहाँ देखते क्या हैं कि सड़क पर कुटाई हो रही है और

पचास-साठ आदमी काम कर रहे हैं। हम लोगों ने उस मेक्सिकन को मिस्टर जेनिङ्गस के पास भेजा। उसने कागज़ देखकर हम चारों आदमियों को गाड़ियाँ खींचने पर लगा दिया। यह काम बड़ा मुश्किल था। एक ढलुआ जगह पर एक मशीन खड़ी थी, जिसमें गारा तैयार हो रहा था। गाड़ियाँ उसके मुंह के नीचे खड़ी कर दी जाती थीं और वह मशीन उनको गारे से भर देती थी। दो आदमियों का काम था कि भरी हुई गाड़ी को घोड़ों की तरह खींचकर तीन सौ गज़ नीचे ले जायें और वहाँ जाकर उलट दें। फिर खाली गाड़ी को खींचकर ऊपर चढ़ा लावें और मशीन के मुंह के आगे धर दें। यही खच्चरों का काम करने के लिए हम यहाँ भेजे गये थे। विष्णुदास और मैं एक गाड़ी से चिपट गये; हमारे दूसरे दो साथी दूसरी से। मैं और विष्णुदास तो ख़ैर रोते-धोते इस चढ़ाई-उतराई में लगे रहे, परन्तु हमारे दूसरे साथियों ने एक ही बार गाड़ी खींच कर तोबा की और अलग खड़े होगये। मेक्सिकन ने चिल्लाकर हमसे काम छोड़ने को कहा। हमने भी छोड़ दिया।

मेक्सिकन--(एजण्ट को गाली देकर) "देखा उसकी बदज़ाती! यह खच्चरों का काम करने के लिए हमें यहाँ भेजा और एक डालर फ़ीस भी ली। बदमाश!"

मैं--(हँसकर) "अच्छा, तो अब क्या सलाह है? चलकर अपने चार डालर वापिस लेंगे।"

मैंने विष्णुदास से कहा कि जाकर मिस्टर जेनिङ्गस से इस कागज़ पर लिखा लाओ कि यहाँ पक्का काम नहीं है। जेनिङ्गस ने कागज़ पर लिख दिया—"ये लोग गाड़ियाँ नहीं खींचना चाहते।"

वहाँ से चक्कर लगाते, क़ब्रिस्तान देखते, हम लोग फिर उसी एजन्सी में पहुँचे; जाकर कागज़ दिखाया और अपनी फ़ीस वापस माँगी। अब फ़ीस भला ये लुटेरे क्यों वापस देने लगे! उलटा हम लोगों को बेवकूफ़ बनाना शुरू किया कि तुमने जेनिङ्गस के काम का हर्ज किया।

मैंने उससे कहा कि तुम्हारा हमारा यह इक़रार था कि आसान और पक्का काम मिले; इसी पर हमने एक डालर फ़ीस भी दी। बड़े झगड़े के बाद यह हुआ कि वह हमको दूसरी जगह काम करने के लिए भेज दे और इसके लिए उसने एक दूसरा कागज़ हम लोगों को दिया।

यह काम विश्वविद्यालय के निकट ही मिट्टी काटने का था। फावड़े से मिट्टी काट-काटकर गाड़ी में भरने की नौकरी थी। एजन्सी वाले ने हम लोगों से कहा कि अभी तुम लोग वहाँ जाओ और दोपहर को एक बजे काम शुरू करो।

चार डालर देकर हम फँस गये थे; अब फटकने से क्या हो सकता था! दिल में निश्चय होगया कि ये डालर तो गये। यदि इनके द्वारा एक भी सप्ताह का काम मिल जाय तो हम समझ लें कि गङ्गा नहाये। जिस खुशी से पहले दिन हम एजन्सी से निकले थे, वह आज न थी। मेरे साथियों के चेहरों पर मायूसी छा रही थी। यही बात उनके मुंह से निकलती थी—"काम न मिलेगा तो क्या होगा?" विष्णुदास मुझसे बार-बार पूछते—"कहो देव, काम न मिलेगा तो कैसे अगले साल पढ़ेंगे?" उनको मैंने समझाया कि धीरज धरो, काम मिल जायगा। मगर उनको यह पता न था कि देव के रहने-बैठने का भी ठिकाना नहीं! मकानवाली यदि आज किराया माँगे तो सख्त परेशानी हो। लेकिन मुझे विष्णुदास के चार डालरों की बड़ी चिन्ता थी, क्योंकि उस बेचारे ने मेरी ही ख़ातिर चार डालर निकालकर सबकी फ़ीस भरी थी।

ख़ैर, इसी उधेड़बुन में हम वापस आये। भोजन कर एक बजे जहाँ जाना था वहाँ पहुँचे। वहाँ जाकर कार्याध्यक्ष को एजन्सी वालों का कागज़ दिखाया। उसने कहा कि आज हमारे पास काम नहीं है; कल सवेरे साढ़े सात बजे तुम लोग यहाँ आओ, काम मिल जायगा। लो! यह दिन भी ख़राब गया; उलटा आने में ट्राम के पैसे पल्ले से ख़र्च हुए। मगर क्या किया जाता! अपना-सा मुंह लेकर कमरों में लौट आये। रात को यह सोचकर मैं सो रहा कि कल काम ज़रूर मिल जायगा।

२९ मई। प्रातःकाल नाश्ता करके मैंने दोपहर का खाना साथ बांधा और अपने साथियों को साथ लेकर काम पर चला। वहाँ ठीक साढ़े सात बजे हम लोग पहुँच गये। कार्याध्यक्ष ने कहा कि तुम लोग घण्टा डेढ़-घण्टा इन्तज़ार करो, मेरा छकड़ा आ जाये तो काम शुरू करना। हमने कहा—"अच्छा", और लगे छकड़े का इन्तज़ार करने। सवा नौ बजे के करीब छकड़े साहब आये और हमने काम शुरू किया। बारह बजे तक मशीन की तरह काम करते रहे। हमारे साथ दस अमरीकन मज़दूर भी काम करते थे। वे हम लोगों को देखकर बेतरह कुढ़ते थे। हम लोग चुपचाप काम करते रहे। तेजसिंह और मेक्सिकन मघाइयाँ तो ऐसे कामों के आदी थे; उनको कुछ मालूम न हुआ; मगर मुझे और विष्णुदास को नानी याद आगई। सड़क पर फावड़े से मिट्टी तो मैं कई बार काट चुका था, परन्तु काट-काट कर छकड़े में भरने का अभ्यास मुझे न था। जब-जब मैं फ़ावड़े से मिट्टी काटकर छकड़े में फेंकता तो धूल उड़कर आँख, कान, नाक में जाती। सारा दिन इसी प्रकार धूल फाँकते रहे। सारे कपड़े मिट्टी से भर गए, सिर में मिट्टी ही मिट्टी! ख़ैर, पाँच बजे छुट्टी होगई। शनिवार का दिन था। विचार किया कि यह भी अच्छा हुआ। रविवार को आराम करके सोमवार को फिर काम पर आ डटेंगे और एक सप्ताह के बाद अभ्यास पड़ जाने पर कुछ भी कष्ट न होगा।

क़ायदे के मुताबिक आज मज़दूरी मिलने का दिन था। यहाँ पर सप्ताह के सप्ताह मज़दूरी मिल जाती थी। हम लोग भी मज़दूरों की कतार में खड़े होगये। हमारी बारी आई तो हम लोगों को कार्याध्यक्ष ने एक डालर पचपन सेण्ट फ़ी आदमी दिए। अमरीका के क़ानून के मुताबिक़ तो हम लोग पूरे दो डालरों के हकदार थे, क्योंकि हम लोग साढ़े सात बजे वहाँ पहुँच गए थे। हमें क्या, छकड़ा चाहे नौ बजे आता, चाहे दस बजे। हम तीन जने तो हिन्दू थे, इसलिए अपने भारतवर्षीय संस्कारों से वेष्टित होने के कारण एक डालर पचपन सेण्ट ही लेकर चुप

रह गए, पर वह मेक्सिकन, जो सबसे आखिर में था, अपने चेक को देखकर बोला--

मेक्सिकन--"ए मिस्टर, क्यों तुम हम लोगों को दो डालर नहीं देते ?"

कार्य्या०--"तुम लोगों ने साढ़े नौ बजे काम शुरू किया था।"

मेक्सिकन--"हम लोग साढे सात बजे यहाँ आगये थे। हमको क्या, चाहे तुम्हारा छकड़ा दस बजे आवे, चाहे बारह बजे।"

कार्य्या०--"तुम को लेना हो तो लो, नहीं तो जाओ।"

मेक्सिकन ने अपना चेक उसको वापस दे दिया। उस अन्यायी ने हम लोगों से कह दिया कि सोमवार को काम पर मत आना और एजन्सी वाले कागज़ की पीठ पर लिख दिया--"They are no good" अर्थात् ये लोग ठीक काम नहीं करते। चार डालरों के वापस आने की जो थोड़ी बहुत आशा थी, उस पर भी इसने पानी फेर दिया।

जब एजन्सी वालों की दिलाई हुई नौकरी का यह परिणाम हुआ तो मैंने सोचा कि अब क्या करना चाहिए। सोचते-सोचते मेरा ध्यान अपने मित्र जॉर्ज स्वान की ओर गया। उसका सियेटल नगर में प्रभाव था। उस रोज़ सन्ध्या के समय मैं Y. M. C. A. के दफ़्तर में गया। मिस्टर स्वान मुझे दरवाज़े पर ही मिल गया। मुझे देखते ही खिले हुए चेहरे से बोला--

"हेलो देवा ! क्या गर्मियों की छुट्टियाँ होगईं ?"

मैंने मुस्कराकर कहा--"जी हाँ, होगईं। क्या आप कहीं बाहर जा रहे हैं ?"

जॉर्ज स्वान--"हाँ, जा तो रहा हूँ; कहो, क्या मैं कुछ सेवा कर सकता हूँ ?"

मैंने दो-चार मिनट में ही उसे अपनी दशा बतला दी। इस पर उसने हँसकर कहा--

"तुम बड़े बहादुर हो देवा ! तीन साल तुमने निकाल ही दिये। अब यह तुम्हारा आखिरी वर्ष है। यह भी निकल जायेगा और तुम ग्रेजुएट हो जाओगे। मुझे इस समय ज़रूरी काम है, नहीं तो मैं तुमसे बातचीत करता। मैं तुम्हें एक चिट्ठी अपने मित्र के नाम देता हूँ; उनका घर बन रहा है, वे तुम्हें ज़रूर ही काम दे देंगे।"

दरवाजे में लगे हुए बिजली के लाटू की रोशनी में उस मेरे प्यारे मित्र ने अपने विज़िटिंग (मुलाकाती) कार्ड पर ही दो-चार शब्द लिख दिये और उसे मेरे हाथ में देकर बोला--

"तुम कल सवेरे साढ़े सात बजे वहाँ पहुँच जाना। तुम्हें ज़रूर ही काम मिल जायेगा। फ़र्ज़ करो कि वहाँ काम न मिले तो तुम सीधे मेरे पास आना, मैं तुम्हारे लिए और प्रबन्ध कर दूँगा; सियेटल में आजकल मज़दूरी की भरमार है।"

उसे धन्यवाद देकर मैंने हाथ मिलाया और विदा लेकर अपने कमरे की ओर चला।

दूसरे दिन सवेरे ही नियत समय पर मै वहाँ पहुँचा। एक अधेड़ उम्र का आदमी खड़ा हुआ अपने सहायकों को कुछ समझा रहा था। उस का नाम विलियम ब्रुक्स था, जिसके लिए मेरे मित्र ने वह कार्ड दिया था। उस कार्ड को देखते ही वह मेरी ओर घूमा और बड़े प्रेम से बोला---

"मिस्टर स्वान ने मुझे आपकी बाबत कई बार बतलाया है और सदा आपकी प्रशंसा की है। मेरे पास काफी काम है। मैं आपको अभी काम पर लगाता हूँ---अढ़ाई डालर रोज़ पर।"

मैं खुश होगया। उसने मुझे काम पर लगा दिया। एक दूसरा अमरीकन मज़दूर भारी-भारी लकड़ियाँ उठाता था; मुझे उसी की सहायता करनी थी। हमारा काम था, कड़ियों को उठाकर ज़रूरत के स्थान पर पहुँचाना। मकान बन रहा था बड़ा आलीशान और वहाँ लगे थे

सैकड़ों मज़दूर। मैं वहाँ मस्ती से काम करने लगा। मेरे साथी मघाइयाँ और विष्णुदास को भी प्रदर्शनी में काम मिल गया।

मुझे काम करते हुए अभी एक सप्ताह ही हुआ था कि मैंने उस अमरीकन साथी के बरताव में कुछ भेद पाया। उसे मेरे हिन्दू होने का पता लग गया था, इसी कारण वह मुझसे बुरा सलूक करने लगा। लकड़ियाँ उठाते समय कभी इधर मार देता, कभी उधर और मेरे चुप रहने पर "गॉड डैम" भी कह देता। दो-चार दिन तो मैंने अपने आपको संयम में रक्खा, लेकिन एक दिन दोपहर बाद जब उसने ख़्वामख़्वाह ही मुझे माँ की गाली दे दी तो फिर मैं अपने आपको न रोक सका। मैंने उसकी टाँगें पकड़ कर नीचे पटक दिया और उसकी छाती पर बैठकर दो-चार घूंसे लगा दिये। एक दूसरा स्वीडिश मज़दूर हमारे पास ही काम करता था और वह उस बदसलूकी को रोज़ देखता था। आज जब मैंने उस दुष्ट को करारा दण्ड दे दिया तो वह दौड़कर आया और मेरी पीठ ठोककरबो ला—

"शाबाश दोस्त, शाबाश! अब इसे छोड़ दो। तुमने इसे जीत लिया। अब यह कभी भी तुम्हें बुरा-भला नहीं कहेगा, बल्कि तुम्हारी इज्ज़त करेगा। दुनिया में जीने का यही नियम है—

The good old plan—
He will have who has the power,
He will keep who can.

अर्थात् संसार का यह पुराना अच्छा सिद्धान्त है कि जिसके पास शक्ति है उसी को वस्तु मिलेगी और वही उसे रख सकेगा जिसमें रखने का दम है। उस दिन से वह अमरीकन मज़दूर मेरा बड़ा मित्र बन गया और जितने दिन मैंने वहाँ काम किया, खूब मज़े से कटी।

यहाँ पर तीन सप्ताह काम करने के बाद जॉर्ज स्वान ने मुझे प्रदर्शनी में काम करने के लिए कहा। उसकी सहायता से मैंने इस गर्मी

में अगले साल के लिए काफ़ी पैसा संग्रह कर लिया और प्रदर्शनी भी अच्छी तरह से देखी। वह भी एक चीज़ थी देखने लायक। आइये पाठक, अब आपको अपने एक भारतीय दर्शक मित्र के मुख से इसका वर्णन सुनावें, उसके मनोहर दृश्य दिखलावें। आपको उसमें भी काफ़ी सीखने की सामग्री मिलेगी और मनोरञ्जन होगा सो अलग।

इक्कीसवाँ अध्याय

एलास्का-यूकन पेसेफ़िक प्रदर्शनी

"लो उदयराम जी, मैं तो कल रात को स्टीमर से सियेटल जाऊँगा।"

"क्यों, इतनी जल्दी क्या है ?"

"चलेंगे; चलकर सियेटल की प्रदर्शनी देखेंगे।"

"मुझे भी तो प्रदर्शनी देखनी है।"

"आप न जाने कब आवें। पहली जून से प्रदर्शनी खुली हुई है और आप तभी से 'आज चलते हैं, कल चलते हैं' कह रहे हैं। पूरे तीन महीने तो आपने इस तरह गुज़ार दिये, बाकी डेढ़ महीना और रह गया है, वह भी इसी प्रकार गुज़ार देंगे। न आपको अपने गोरख-धन्धे से फुरसत मिले और न प्रदर्शनी देखना नसीब हो।"

मेरी यह बात सुनकर उदयराम जी हँस पड़े और बोले—"भाई, बात तो सब सच कहते हो। क्या करें, यह संसार का धन्धा ही ऐसा है। पर यह तो बात निश्चित है कि यदि आपके साथ हमारा जाना न हुआ तो प्रदर्शनी न देख सकेंगे। अच्छा, आप तीन दिन और ठहरें। पांच सितम्बर की शाम को यहाँ से चलें और छः सितम्बर को सियेटल पहुँचेंगे। छः को प्रदर्शनी में बड़ा भारी मेला भी है। कहते हैं, उस रोज़ 'सियेटल डे' (Seattle Day) है और बहुत लोग उस दिन आवेंगे।"

"अच्छा, तीन दिन और ठहर जाता हूँ; पर इसके बाद न ठहरूँगा।"

"बस, इसे पक्का समझिये। पांच को हम लोग सियेटल चलेंगे।"

बेचारे उदयराम कामकाज की भीड़ में पांच को भी तैयार न हो

सके। मैंने पाँच की सुबह को अपने मित्र बिहारीलाल को तार द्वारा सूचना दे दी कि मैं रात के स्टीमर से सियेटल आ रहा हूँ।

उदयराम जी लुधियाना (पञ्जाब) के रहने वाले थे। जन्म के आप ब्राह्मण थे। केनेडा आये हुए आपको चार वर्ष हो चुके थे। आपका कारोबार बहुत अच्छा चलता था। एक दुकान थी, कुछ ठेका था और कुछ ज़मीन ख़रीदी हुई थी। 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते' यह इनका परम सिद्धान्त था। यदि सोचें तो इस ज़माने में है भी ठीक। ईश्वर की दया से आपने अच्छा रुपया पैदा किया और कर रहे थे। सब काम अकेले ही देखना पड़ता था, इसलिए फ़ुरसत कम रहती थी।

अपने एक दूसरे मित्र मुन्शीराम जी को साथ ले मैंने सियेटल की तैयारी की। मुन्शीराम भी पञ्जाबी थे और इधर बेंकोवर में ही मेरी इनसे भेंट हुई थी। आदमी साधु और शान्त स्वभाव होने से सर्वप्रिय थे। आपसे मेरा घना सम्बन्ध होगया।

रात के साढ़े नौ बजे के क़रीब हम लोग केनेडियन पेसेफ़िक कम्पनी के wharf पर पहुँचे। युनाइटेड स्टेट्स ऑफ़ अमेरिका का परदेशगमन सम्बन्धी जो दफ़्तर बेंकोवर में है, वहाँ से हमने ज़रूरी काग़ज़ ले लिये थे, इसलिए स्टीमर पर चढ़ने में कोई दिक्कत न हुई। पन्द्रह रुपये आने-जाने के फ़ी आदमी लगे, क्योंकि हम लोगों ने वापसी टिकट लेने में किफ़ायत देखी थी।

स्टीमर में जहाँ हम बैठे थे, वहाँ एक केनेडियन भी अपने एक छोटे लड़के के साथ था। बातचीत करने से मालूम हुआ कि वह भी प्रदर्शनी देखने सियेटल ही जा रहा था। वह लड़का कोई आठ वर्ष का होगा, मगर था बड़ा समझदार। प्रदर्शनी की बाबत तरह-तरह के सवाल अपने बाप से पूछता था।

लड़का—"पिता, एलास्का-यूकन पेसेफ़िक प्रदर्शनी--इतना बड़ा नाम क्यों इस मेले का रक्खा गया है?"

बाप—"बेटा ! तुम अब सो जाओ। कल हम तुम को यह सब बतलावेंगे।"

लड़का—"मुझे तो अभी नींद नहीं आई। जब तक नींद नहीं आती, तब तक आप ज़रूर बतलावें।"

बाप—"अच्छा सुनो ! वेंकोवर के उत्तर-पश्चिम की ओर एलास्का एक शीतप्रधान देश है।"

लड़का—(बात काटकर) "एलास्का तो मैं जानता हूँ—वही जहाँ बहुत सी सोने की खानें हैं।"

बाप—"हाँ वही; तुमसे अब जो कुछ मैं कहता हूँ, ध्यान से सुनते जाओ। एलास्का युनाइटेड स्टेट्स गवर्नमेंट के आधीन है। वहाँ आबादी बहुत थोड़ी है; मुल्क बहुत बड़ा है; अच्छा मुल्क है। बहुत सी खानें हैं। अमरीकन गवर्नमेंट चाहती है कि लोग वहाँ जाकर बसें। जिन्होंने वहाँ अपना रुपया व्यापार व ज़मीनों में लगा रक्खा है, वे भी चाहते हैं कि लोग आकर बसें; मगर लोग तभी आवें जब उनको एलास्का की बाबत मालूम हो, कोई उसके गुण गान करे। यह प्रदर्शनी एलास्का की चर्चा सभ्य दुनिया में करने के लिए खोली गई है। एलास्का की चीज़ें वहाँ रक्खी गई हैं ताकि लोग देखें और वाक़फ़ीयत हासिल करें। इसीलिए इस मेले के पहले एलास्का का नाम आया है।"

लड़का—"एलास्का तो होगया, अब यूकन के विषय में बतलाइये।"

बाप—"ब्रिटिश कोलम्बिया के दक्षिण में यूकन एक प्रान्त है। यह भी अमरीका वालों के आधीन है और कोई २,००,००० वर्गमील क्षेत्रफल में है। योरुप तथा दक्षिणी अमरीका के लोग इस विषय में बहुत कम जानते हैं। एलास्का की तरह वहाँ भी आबादी बहुत कम है, पर खानें बहुत हैं। इस यूकन प्रान्त का विज्ञापन सभ्य दुनिया में देना, यह इस प्रदर्शनी के उद्देश्यों में से एक है।"

वह लड़का ऊंघने लग गया था, इसलिए उसके पिता ने उसको सुला

दिया; मगर हम लोग चूँकि उसकी बात ध्यान से सुन रहे थे, इसलिए वह हम लोगों को सम्बोधन कर कहने लगा—

"आप लोगों को यह बातचीत दिलचस्प मालूम हुई ?"

मैं—"जरूर। आप बतलाइये कि यह पेसेफ़िक का नाम इस प्रदर्शनी के साथ क्यों जोड़ा गया है ?"

केनेडियन—"पेसेफ़िक जोड़ने से बहुत कुछ मतलब है। पहले तो यह कि पेसेफ़िक महासागर में बसे हुए जो द्वीप-द्वीपान्तर हैं, उनकी आपस में तिजारत बढ़ाने का उपाय करना, दूसरे पेसेफ़िक तटस्थ जो अमरीकन रियासतें हैं, जैसे—वाशिंगटन, केलेफ़ोर्निया, आरेगन, उनकी उपज और धनधान्य का ब्योरा पूर्वी अमरीकन रियासतों को बतलाना ताकि वहाँ से भद्र लोग इधर आकर बसें। तीसरे, पेसेफ़िक महासागर में बसी हुई जो जातियाँ हैं, उनका आपस में मेलमिलाप बढ़ाना। इस प्रकार लम्बी-चौड़ी व्याख्या इस पेसेफिक शब्द की है।"

मैं—"तो क्या यह सब काम इस प्रदर्शनी से निकल आवेंगे ?"

केनेडियन—"जरूर। प्रदर्शनी में दूर-दूर से लोग आवेंगे ? वे आकर खुद इन सब प्रान्तों की चीजें अपनी आँखों से देखेंगे, जांच-पड़ताल करेंगे, एक दूसरे से मिलकर अपनी तसल्ली करेंगे। आप जानते हैं कि बहुत सी गलतियाँ इस प्रकार दूर हो जावेंगी। इस प्रान्त के लोग दूसरे प्रान्त वालों से मिलकर बहुत सी बातों का यहीं फैसला कर लेंगे। चीन-जापान से लोग आवेंगे। अमरीका वालों से थोड़ी बहुत उनकी अनबन है, वह दूर हो जावेगी; क्योंकि प्रदर्शनी द्वारा वे समझ जावेंगे कि एक को दूसरे की मित्रता से कितना लाभ है, कितनी तिजारत आपस के प्रेम द्वारा बढ़ सकती है। यहीं आप वेंकोवर में ही देखिये, अभी तीन ही महीने से किस क़दर जमीन की क़ीमत बढ़ने लगी है। क्यों ? कारण यह है कि प्रदर्शनी से इधर लोग घूमने आते हैं, जमीनें देखते हैं और अच्छी समझ कर खरीदते भी हैं। इस प्रदर्शनी से

अमरीका वालों को तो फ़ायदा होगा ही, केनेडा को बड़ा भारी लाभ पहुँचेगा। अमरीका के बराबर का मुल्क केनेडा है। अमरीका में आठ क़रोड़ की आबादी है; केनेडा में अभी साठ लाख भी नहीं। हम लोग चाहते हैं कि केनेडा की आबादी बढ़े और लोग यहाँ आकर बसें। इस प्रदर्शनी से बहुत लोग इधर भी आवेंगे। केनेडा की आबादी बढ़ेगी, जंगल कटकर शहर बसेंगे, मुल्क की तिजारत बढ़ेगी और हम लोगों के वारे-न्यारे होंगे।"

मुन्शीराम ने मुझसे कहा कि एक बात मैं भी पूछ लूँ। मैंने कहा, पूछिये। उस केनेडियन से उन्होंने दरयाफ़्त किया—

"क्यों जनाब, आप लोग इतनी जल्दी इस मुल्क को बसाने की फिक्र में क्यों हैं? इतनी जल्दी क्या पड़ी है जो बाहर से लोगों को बुला बुलाकर देश आबाद करने की फ़िक्र हो रही है?"

यह प्रश्न सुनकर केनेडियन मुस्कराया और बोला—

"आप लोग हिन्दुस्तान से आते हैं न, इसलिए ऐसा सवाल है। वह भूखा मुल्क है। आबादी ज्यादा है, मुल्क छोटा है, तिस पर खेती के साइन्टिफ़िक तरीक़े लोग नहीं जानते। इल्म-हुनर की तरक्की उस देश में नहीं है। आजकल के वैज्ञानिक तरीकों से वे लोग वाक़िफ़ नहीं हैं। इसके विपरीत यहाँ खाने को बहुत है; बहुत ही उपजाऊ भूमि है; आबादी थोड़ी है। आप सोचिए कि देश की सम्पत्ति बिना मेहनत के नहीं बढ़ सकती। करोड़ों एकड़ ज़मीन जो ख़ाली पड़ी है, वह कुछ भी देश को फायदा नहीं पहुँचाती। यदि लोग बसेंगे तो उनके द्वारा आमदनी की सूरतें निकलेंगी, हम लोग बड़े-बड़े कारखाने खोल सकेंगे, हमारी चीज़ें सारी दुनिया में बिकने जावेंगी, रुपया आवेगा, देश मालदार होगा, यह बड़ी जाति हो जावेगी। आज यदि हमारा सम्बन्ध इंग्लिस्तान से टूट जावे तो युनाइटेड स्टेट्स केनेडा को अपने साथ मिला ले। हम लोग अमरीकनों का मुक़ाबिला नहीं कर सकते। एक तो हमारे पास धनाभाव से जंगी जहाज़ नहीं, दूसरे हमारी आबादी थोड़ी है, इतने

सिपाही कहाँ से आवेंगे ? इसलिए हम लोगों को अपने देश की आबादी बढ़ाकर धनी और सम्पन्न होना चाहिये ताकि संसार में हमारी भी एक महती जाति बने और दूसरी जातियों का हमें डर न रहे।"

वार्तालाप से हम लोगों को बहुत सी बातें मालूम हुई। दिल तो चाहता था कि कुछ और भी पूछताछ करें, मगर रात अधिक होगई थी; उस भले आदमी को सोना था; इसलिये हमने उसको धन्यवाद देकर सोने की तैयारी की और अपने शयनागार में जाकर सो रहे।

अग्निबोट जल से अठखेलियाँ करता हुआ जा रहा था। प्रातःकाल का शीत स्वच्छ पवन शरीर को पुलकित करता था। भगवान् सूर्य्यदेव की स्वर्णमयी किरणें डेक पर खड़े यात्रियों को सियेटल नगर की ओर आह्वान करती थीं। पेसेफ़िक महासागर भी अग्निबोट के साथ खेलता हुआ मन्द-मन्द मुस्कराता था और उस मुस्कराहट में रंग-बिरंगी इन्द्र-धनुष की आभा यात्रियों का मन मोहे लेती थी।

हम लोग भी इस सुन्दर दृश्य का आनन्द लेते तथा प्राणायामीय श्वासों से नीरोग पवन सेवन करते-करते सियेटल पहुँच गये। डेक के ऊपर बहुत से लोग अपने इष्ट मित्रों की इन्तज़ारी में खड़े अग्निबोट की ओर प्रेमभरी दृष्टि से ताक रहे थे। हमारे मित्र बिहारीलाल भी खड़े थे। सीढ़ी लगते ही लोग नीचे उतरने शुरू हुए। हम लोग भी उतर आये। बिहारीलाल हमें देखते ही दौड़कर आया और हँसता हुआ बोला--

"आहा कृष्ण! आप आ गये! मैं घण्टे भर से खड़ा इन्तजार करता था।"

मैं--(मुस्कराकर) "वही न हिन्दुस्तानियों वाली बातें। भला घण्टा भर पहले हैरान होने की क्या ज़रूरत थी! स्टीमर का समय तुमको मालूम नहीं था तो टेलीफोन करके पूछ लेते और ठीक समय पर आते।"

मुन्शी०--(हँसकर) "बिहारीलाल का प्रेम कैसे ज़ाहिर होता !"

बिहारीलाल--"हाँ बेशक, मेरा प्रेम कैसे ज़ाहिर होता !"

मैं--"अच्छा चलो प्रेमी, अब प्रदर्शनी दिखलाओ।"

हँसी-ठट्ठा करते हुए हम तीनों जने थर्ड एवेन्यू पर आये। यहीं से प्रदर्शनी को गाड़ी मिलती थी। रास्ते में जगह-जगह पर हमने ये इश्तिहार मोटे अक्षरों में लिखे देखे--

Seattle Day

Sep. 6

I will be there.

200,000 Strong.

मैंने बिहारीलाल से पूछा कि इससे क्या मतलब है। बिहारीलाल ने बतलाना शुरू किया--

"जब से प्रदर्शनी खुली है, तब से तरह-तरह के दिन प्रदर्शनी वाले रखते हैं। आप जानते हैं कि पहली जून से सोलह अक्तूबर तक--साढ़े चार महीने--प्रदर्शनी जारी रहेगी। साढ़े चार महीने कैसे गुज़रें ? उनको गुज़ारने का ऐसा ढंग होना चाहिये कि सब प्रकार के लोग आकर्षित हों और उनका मन न ऊबे। इसलिए ऐसे-ऐसे दिन नियत किये गये हैं, जैसे--Grocers' Day अर्थात् बनियों का दिन; उस रोज़ सारे शहर के बनिये आवेंगे। Japanese' Day अर्थात् जापानियों का दिन; उस रोज़ पेसेफ़िक के किनारे जो राज्य हैं वहाँ बसने वाले सभी जापानी आवेंगे। Farmers' Day अर्थात् किसानों का दिन; सारे

किसान उस रोज़ इकट्ठे होंगे और प्रदर्शनी का आनन्द लेंगे। आज सियेटल वालों का दिन है। यह विज्ञापन प्रत्येक सियेटल निवासी को कहता है कि मेले में आज दो लाख से कम आदमी किसी सूरत में भी न हों। सभी को जाना चाहिये; इसी में सियेटल की नाक रहती है। इसीलिए देखो, पाँच-पाँच मिनटों के बाद बिजली की गाड़ियाँ खचाखच भरी हुई प्रदर्शनी को भाग रही हैं।"

मैं—(खिले चेहरे से) "शाबाश! अब तो तुम होशियार होते जाते हो बिहारीलाल!"

बिहारी०—(हँसकर) "यूनिवर्सिटी में पढ़कर भी होशियार न हूँगा तो कब हूँगा!"

मुन्शी०—(बिहारीलाल की पीठ ठोक कर) "खूब! पर सावधान रहना, अभी बहुत से सवाल-जवाब होने हैं, प्रदर्शनी आ लेने दो।"

बिहारी०—"मैं तैयार हूँ।"

इस प्रकार बातें करते हुए हम लोग गाड़ी पर चढ़ गए।

'प्रदर्शनी, प्रदर्शनी'! आख़िर हम प्रदर्शनी के सामने पहुँच गए। सबसे पहले दो बड़े-बड़े स्तूपों के दरम्यान रंग-बिरंगी झंडियाँ देखने में आई। ये अमरीका, जापान, इंगलिस्तान आदि स्वतन्त्र देशों के कौमी झण्डे थे। उन झण्डों के नीचे मोटे अक्षरों में Seattle Day अर्थात् सियेटल का दिन लहरा रहा था।

अर्द्धचन्द्राकार तीन दरवाजों द्वारा स्त्री-पुरुष और बाल-बच्चे अन्दर जा रहे थे। हम लोगों ने भी, पहले दरवाज़ों के बाहर जो तीन कोठियाँ थीं वहाँ से, पचास-पचास सेण्ट * का एक-एक सिक्का ले लिया और अन्दर घुस गए। घुसते ही मेरी दृष्टि एक विशाल मूर्ति पर पड़ी। यह

*हरएक दर्शक अपना-अपना सिक्का लेकर द्वार पर जाता और वहाँ शीशे के बक्स में अपना सिक्का फेंक देता था। तब द्वारपाल चक्र घुमा उसे अन्दर जाने की आज्ञा देता था।

जार्ज वाशिंगटन का दीर्घकाय बुत (Bronze Statue) था। "Father of the Country" अर्थात् "देश का पिता" ये शब्द मेरे कान में पड़े जो एक माता अपने बच्चे को यह मूर्ति दिखलाकर कह रही थी। Father of the Country ये शब्द मैंने बार-बार दोहराए। श्रद्धाभरी दृष्टि से मैं उस महान् आत्मा की ओर देखता रहा। सचमुच इसी वीर की हिम्मत से अमरीका स्वतन्त्र हुआ था। सचमुच इसी देशभक्त ने अपना सर्वस्व अपने देश को अर्पण कर इसको गुलामी से आजाद किया था। कैसे-कैसे कष्ट इसने सहन किये थे! देश के लिए किस-किस की गालियाँ इसने नहीं सहीं! किस हिम्मत और धैर्य से इसने अपने देशभाइयों को अति दुःख के समय ढाढ़स दिया था और उनको निराश होने से बचाया था। निस्सन्देह, अय जार्ज वाशिंगटन! तुम इस देश के पिता हो और अमरीकन बच्चों के आदर्श हो। नहीं नहीं, सभी दुःखित देशों के बच्चों के आदर्श हो। मैं भी निष्काम सेवा की शिक्षा आप से ग्रहण कर अपनी जननी का दुःख दूर करूँ। यह कह मैंनें मन ही मन में उस वीर को नमस्कार किया और आगे बढ़ा।

सबसे पहले हम लोग पे स्ट्रीट* की ओर गये, क्योंकि बहुत बड़े हुल्लड़ में इमारतों के देखने का मजा नहीं आता। वहाँ सब चीजें आराम से देखने वाली होती हैं और दर्शक लोग पहलेपहल इमारतों पर ही टूटेंगे, यही सोचकर हम लोग पे स्ट्रीट की ओर चले।

कैसा मनोहर दृश्य था! छोटी-छोटी क्यारियों में विद्युत् बल्ब बड़ी तरतीब से लगाये गये थे। यद्यपि इस समय दिन था, बिजली की रोशनी नहीं थी, पर उनकी सजावट लुभावनी थी। छोटे-छोटे वृक्षों में फलों की भांति बिजली के दीपक लटक रहे थे। 'रात को ये दीप क्या ही

---

*पे स्ट्रीट उस गली का नाम था जहाँ हर तरह के खेल तमाशे थे।

गज़ब ढायेंगे'—यह मैंने मुन्शीराम से कहा । मुन्शीराम बेचारे हैरान थे । उन्होंने कभी कोई प्रदर्शनी नहीं देखी थी ।

ख़ैर, हम लोग पे स्ट्रीट में पहुँचे । लोगों का धन हरने को यहाँ भाँति-भाँति के तमाशे रचे हुए थे । एक बहुत बड़ा चक्र, जिसमें पंगूड़े लटकते थे, दर्शकों को बहुत ऊँचा ले जाता और प्रदर्शनी का नज़ारा दिखलाता था । इसके दस आने देने पड़ते थे । जापानियों और चीनियों का बाज़ार देखने में आया । यहाँ चीन-जापान से भाँति-भाँति की कारीगरी की चीजें बिक्री के लिए मौजूद थीं । अन्दर ही अपनी-अपनी रंगशालायें भी बनाई हुई थीं, जहाँ खेल होते थे ।

अमरीकन लोगों ने धन कमाने के हेतु तरह-तरह के स्वांग रचे हुए थे । एक जगह Scenic Alaska अर्थात् एलास्का के दृश्य नामी इमारत के अन्दर पाँच-चार घेरेदार नहरें थीं, जिनका पानी एक चक्र के ज़ोर से बह रहा था । एक छोटी सी नौका में पाँच-चार दर्शक बैठ जाते थे। किश्ती उन घेरों में से गुजरती थी । नहर के इर्दगिर्द दीवारों पर मिट्टी से एलास्का के हिमाच्छादित पर्वती दृश्य बनाये हुए थे । बस, इसी के पाँच आने ले लेते थे । एक जगह रूस, एलास्का, न्यूज़ीलेण्ड आदि के असकीमो इकट्ठे किये हुए थे; उनकी झोपड़ियाँ उनके रहन-सहन का ढंग दिखलाती थीं । दूसरी जगह फिलीपाइन द्वीप से इग्रोटो लाकर रक्खे हुए थे । इग्रोटो उन द्वीपों की जंगली जाति का नाम है, जो नंगे रहते हैं और कुत्तों का मांस खाते हैं । इस प्रकार यह सब तमाशे के तौर पर वहाँ थे । निस्सन्देह यहाँ के लोगों को ये प्राणी बहुत अजीब मालूम होते थे, पर हम लोगों को इन सब जंगली जातियों का नाचना-कूदना अच्छा न लगा ।

पे स्ट्रीट में यों तो बहुत सी जगह लोग अपना पैसा खर्च कर हँसते-खेलते थे, पर हम लोगों ने डेढ़ रुपया देकर एक जगह से ही सारा आनन्द लूट लिया । वह मानीटर और मेरीमेक का जल-युद्ध था । इस जल-युद्ध का ब्योरा इस प्रकार है :

सन् १८६० में जब युनाइटेड स्टेट्स की उत्तरी और दक्षिणी रियासतों में हब्शियों की गुलामी के झगड़े के कारण घोर संग्राम प्रारम्भ हुआ, तब उत्तरी रियासतों ने दक्षिणी रियासतों का जल-मार्ग बन्द कर दिया ताकि उनको योरुप से कोई सहायता न पहुँच सके। उस युद्ध में दक्षिणी रियासतों की गवर्नमेण्ट की तरफ़ से मेरीमेक नाम का एक लोहे का जंगी जहाज बनाया गया था। उस जहाज़ ने एक ही दिन के युद्ध में शत्रुओं के अच्छे-अच्छे जहाज नष्ट कर दिये। करने ही थे, क्योंकि मेरीमेक अपने ढंग का लोहे का पहला ही जहाज़ था। अब तक लकड़ियों के ही जहाज़ों से युद्ध होता था। इस मेरीमेक के बनने की ख़बर उत्तर वालों को भी मिल गई थी। उन्होंने मानीटर बनाना आरम्भ कर दिया था, पर वह ठीक समय पर न पहुँच सका। दूसरे दिन जब मेरीमेक फिर युद्ध करने आया, तब अपने मुक़ाबिले में एक छोटे से जंगी जहाज़ को डटा देखा। यह मानीटर था। अब खूब घमासान युद्ध हुआ, जिसमें छोटे मानीटर ने अपने शत्रु के खूब दाँत खट्टे किये।

बस, इसी युद्ध की नक़ल दिखलाई गई थी। नक़ल क्यों थी, असल थी। वैसा ही समुद्र, उसमें वैसे ही चलते हुए जहाज़, फिर वैसे ही तोपों का चलना, जहाज़ों में आग लगनी, उनका डूब जाना, मेरीमेक का पहले दिन के युद्ध से विजयी लौटना, रात को वैसे ही अन्धेरी, दिन चढ़ना, मानीटर का आना, उसकी मेरीमेक से मुठभेड़, दनादन तोपों का छूटना, मानीटर की विजय! यह सारा खेल उसी तरह दिखलाया गया। न जाने, यह सब कैसे किया गया! यह मेरी समझ में नहीं आया। चलती-फिरती तसवीरों (Moving Pictures) के ढंग पर ही इसकी रचना थी।

हम तीनों जने इस जल-युद्ध को देखकर अवाक् रह गये। यह दृश्य सारी उम्र नहीं भूलेगा। डेढ़ रुपया देकर दिल को तसल्ली होगई और हमने सोचा कि हमें आशा से बहुत अधिक मिल गया।

सात सितम्बर को, प्रातःकाल के कार्य्यों से निश्चिन्त हो, खा-पीकर,

दस बजे के क़रीब मैं और मुन्शीराम दोनों प्रदर्शनी देखने चले। बिहारीलाल किसी दूसरे काम के सबब हमारे साथ न आ सके थे और आज हम लोगों को उनकी कुछ ऐसी आवश्यकता भी न थी।

आज सब बड़ी-बड़ी इमारतों को देखने का विचार था। निश्चय किया कि आरम्भ से एक-एक इमारत देखें और आज का सारा दिन तथा दस बजे रात तक प्रदर्शनी का मजा लूटें; जब चित्त भर जावे तब बाहर निकलें।

मुख्य द्वार पर घुसते ही दाहिनी ओर को जो रास्ता जाता था, वह तो पे स्ट्रीट की गली थी। ज़रा आगे, दाहिनी और बाईं ओर, दो विशाल भवन थे---एक आडिटोरियम, दूसरा फाइन आर्ट्स बिल्डिंग। इन दो भवनों के बीच 'युगेटप्लाज़ा' नाम का एक रम्य स्थान था, जहाँ हरी-हरी घास की दूब आँखों को आनन्दित करती थी। इसी के बीच में महात्मा वाशिंगटन का दीर्घकाय बुत खड़ा था। हम लोग पहले 'फ़ाइन आर्ट्स' भवन के अन्दर गये। यह भवन उन सात भवनों में से एक है जो प्रदर्शनी के बाद वाशिंगटन स्टेट यूनीवर्सिटी को मिल जावेगा और जहाँ यूनीवर्सिटी अपना केमिस्टरी हाल सजावेगी। इस इमारत पर स्टेट गवर्नमेण्ट का छः लाख रुपया खर्च हुआ था। इस भवन के अन्दर फ्रांस, इटली, जर्मनी, इंग्लैण्ड आदि देशों के निपुण चित्रकारों के तैल-चित्र रखे हुए थे। यह वह स्थान था जहाँ महीनों तक निरन्तर आनन्द मिल सकता था। हम लोग एक ही घण्टे में क्या देख सकते थ! एक से एक बढ़कर चित्र---पर्वतों और बनों के नज़ारे, नदी और समुद्रों के किनारे, भेड़ों और गायों के चरवाहे---ये सब सजीव दृश्य दर्शकों का मन हरते थे। कहीं सुन्दर रमणियाँ अपनी अलौकिक प्राकृतिक छटा में चित्रकार के गुणों को उज्ज्वल करती थीं, कहीं शूरवीर रणभट वीरों को वीररस पान कराते थे, कहीं प्रीतम अपनी प्रिया दत्त प्रेम-रस चख रहे थे। सभी प्रकार के भाव, सभी प्रकार के जीवन वहाँ विद्यमान थे। जो जिसका अधिक प्यारा था, जिसको जो दृश्य अधिक

भाता था, वह उसी के सामने टकटकी लगाये बुत बना हुआ खड़ा था और दिल में कहता था—"काश कि यह चित्र मुझको मिल जाये।"

फाइन आर्ट्स भवन से निकलकर हम लोग 'आडिटोरियम' में गये। यह भवन भी पक्का ईंटों का बनाया गया था और इस पर नौ लाख रुपया लगा था। यह भी प्रदर्शनी के बाद वाशिंगटन यूनीवर्सिटी की मिल्कियत हो जायेगी। इसमें ढाई हज़ार मनुष्यों के बैठने का स्थान था। दूसरी पक्की इमारतों की तरह यह भी 'अग्नि-प्रूफ' बनाई गई थी।

आडिटोरियम से निकलकर हमने मुख्य फाटक वाली सड़क को फिर पकड़ा। 'युगेटप्लाज़ा' के आगे उसी सड़क में 'ओलिम्पिक-प्लेस' की क्यारी थी, जिसके दाहिनी ओर 'एलास्का भवन' और बाईं ओर 'यूनाइटेड स्टेट्स गवर्नमेण्ट भवन' थे। गवर्नमेण्ट भवन की चर्चा दर्शकों में बहुत थी, इसलिए हम पहले इसी के अन्दर घुसे।

यह भवन गुम्बद की शक्ल का था, जिसमें गेलरी के ढंग की छतें थीं। पहली छत पर दो भाग थे। एक ओर अमरीकन लोगों की शिक्षा के लिए गवर्नमेण्ट ने 'लाइट हौस' का घूमना तथा जलभाग में शत्रुओं से रक्षा के उपाय दिखाये थे। उधर ही अमरीका के बड़े-बड़े विख्यात देशभक्तों के चित्र लटकते दिखाई दिये। दूसरी ओर सिक्के बनते थे और नोट छपते थे। इधर अमरीका के जंगलों की बहुत बड़ी-बड़ी तसवीरें थीं और गवर्नमेण्ट के जंगल-विभाग की कारगुजारी अच्छी तरह दिखलाई गई थी। एक तरफ़ पुराने ढर्रे के जहाज़ बनाकर रखे हुए थे और उनका मुक़ाबिला आधुनिक जहाज़ों से किया गया था।

दूसरी छत पर 'युद्ध विभाग' का सामान था। १७८५ से लेकर आज तक अमरीकन गवर्नमेण्ट के इस महकमे में जो कुछ देखने योग्य रहा है, वह सब सामग्री यहाँ मौजूद थी। पिछली शताब्दी की तोपें, सिपाहियों की पोशाकें, लड़ाई के जहाज़—ये सब दर्शकों की शिक्षार्थ बनाकर रक्खे गये थे और उनके पास आधुनिक तरक्क़ी के नमूने पूर्ण रूप से दिखलाये

हुए थे। भयङ्कर ड्रेडनाट भी यहाँ देखने में आया, जो जल पर तैर रहा था। यह सब कुछ अमरीकन गवर्नमेण्ट ने अपनी प्रजा की आँखें खोलने के लिए किया था। छोटे-छोटे बच्चे अपनी माताओं से भाँति-भाँति के प्रश्न इन दुर्दमनीय जलयानों को देखकर करते थे। वे भी हँसती हुई अपनी संतान को अपनी जाति का गौरव विदित कराती थीं। पर मेरे मुंह से यही निकलता था—"इन रुद्ररूप मशीनों का अन्त कहाँ होगा!"

तीसरी छत पर अमरीकन गवर्नमेंट का न्यायालय-सम्बन्धी सामान, पोस्ट आफ़िस विभाग तथा शिक्षा विभाग की सामग्री थी। इसके अतिरिक्त मन को लुभानेवाला एक और विभाग था, उसको 'मत्स्य-विभाग' कहना अनुचित न होगा। यहाँ हर प्रकार की मछलियाँ देखने में आईं। दीवार से लगे हुए स्वच्छ जलों के छोटे-छोटे कुण्ड थे, जिन पर मोटा शीशा लगा था। मशीनों द्वारा कुण्डों में पानी आता जाता था। इन्हीं कुण्डों में रंग-बिरंगी मछलियाँ तैर रही थीं। ऐसी कारीगरी से ये कुण्ड बनाये गये थे कि ठीक समुद्र या दरिया की तरह का बोध हो। ऊपर से रोशनी पड़ती थी और दर्शक लोग मछलियों का एक-एक अंग अच्छी तरह देख सकते थे। मैं तो यह सब देखकर बड़ा ही खुश हुआ। जो जन्तु हम किसी तरह भी अच्छी प्रकार न देख सकते थे, वे आज आसानी से भली-भाँति देखने में आये और फिर इस उत्तम तरीक़े से।

यहाँ से निकलकर हम लोग 'एलास्का भवन' में पहुँचे। एलास्का की स्वर्ण की खानें प्रसिद्ध हैं। वहाँ की बड़ी-बड़ी स्वर्ण की ईंटें देखीं; खानों से निकले हुए अन्य धातुमिश्रित सोने के बड़े-बड़े टुकड़े रक्खे हुए दिखाई दिए। पास ही एक मशीन द्वारा कच्चे सोने को साफ़ किया जाता था। दूसरी तरफ़ एलास्का के जानवरों की क़ीमती पोस्तीनें लटक रही थीं, जिनको पहिनकर बीसवीं शताब्दी के सभ्य मनुष्य गौरवान्वित होते हैं। एक ओर 'एलास्का दृश्य' नाम की कोठरी थी।

हम लोग उसके अन्दर गये। वहाँ देखते क्या हैं कि चांद चढ़ा हुआ है। हिमावृत पर्वत-श्रेणी उस चाँदनी में अवर्णनीय शोभा दे रही है। सामने घाटियाँ हैं, या जंगल है। अरे यह क्या! धीरे-धीरे चन्द्रदेव अस्ताचल पर्वत पर पहुँच रहे हैं। ये लो, वे अस्त होगये! पौ फटने लगी। धीरे-धीरे प्रकाश होता जाता है और घाटियों में श्वेत हिम चमकने लगी है। "क्या यह जादू है या तिलिस्म ?"—मैं यह विचार ही रहा था कि एक द्वारपाल ने हम लोगों को दूसरे द्वार से बाहर कर दिया।

घड़ी में देखा कि तीन बज गये हैं। "मुन्शीराम भाई, आओ ज़रा सुस्ता लें"—यह कहकर मैं मुन्शीराम के साथ एक बेंच पर बैठ गया। जहाँ हम बैठे थे, हमारे पीछे 'कारन्थियन स्तूप' ठीक गवर्नमेंट भवन के सामने विराजमान था। इसी सीध में 'Cascades' अर्थात् जलपतन और 'Arctic Circle' अर्थात् उत्तरीय वृत्त थे। तीन स्थानों पर थोड़ी-थोड़ी ऊँचाई से पानी एक दूसरे जलकुण्ड से गिरता हुआ उत्तरीय वृत्त में जाता था और वहाँ बीच में से एक बड़ा फ़व्वारा बहुत ऊँचा उठकर जल की वर्षा करता था। आध घण्टा हम लोग यह मनोहर दृश्य देखते रहे। फिर 'योरुपियन बिल्डिग' देखने चले।

'जल-पतन' और 'उत्तरीय वृत्त' के दोनों ओर चार बृहत् भवन थे। दाहिनी ओर 'योरुपियन एग्रीकल्चरल बिल्डिङ्ग' और बाईं ओर 'ओरियण्टल' तथा 'मेन्युफ़ेक्चरिंग बिल्डिङ्ग' थीं। योरुपियन भवन में जर्मनी, फ्रांस, आस्ट्रिया, इटली, टर्की आदि देशों की कारीगरी के नमूने मौजूद थे। ख़रीद और फ़रोख़्त का काम भी होता था। जर्मनी के बने हुए खिलौने बहुत चाह से बालक-गण ख़रीदते थे। बहुत सरसरी तौर से इस भवन में हम घूम गये, फिर 'एग्रीकल्चरल भवन' में दाख़िल हुए। यहाँ पर हर प्रकार के फल देखने में आये। सेव, नाशपाती, अंगूर, संतरा, नारंगी, आड़, खरबूजे, तरबूज़ आदि जो-जो फल इधर होते हैं, सभी यहाँ देखने में आये। जिस प्रान्त में जैसा फल होता है, वैसा ही उसका प्रतिनिधि वहाँ मौजूद था। इससे दर्शकों को यह पता लगता

था कि कहाँ कैसा फल उत्पन्न होता है; भूमि के फलदा होने न होने का बोध होता था। इसी प्रकार अनाजों की व्यवस्था की गई थी। वैज्ञानिक ढङ्ग से पैदावार में तरक्की कैसे हो सकती है, इसके उदाहरण मौजूद थे।

"इन सब चीजों को देखकर कितना ज्ञान बढ़ता है!"—आश्चर्य्य से मुन्शीराम ने मुझसे कहा।

"बेशक, क्यों नहीं। ये सब बातें किसानों के लिए कितनी मुफ़ीद हैं! यहाँ के किसानों ने इस बिल्डिङ्ग में आकर कितना लाभ उठाया होगा!"

"अफ़सोस, एक हमारा भी देश है जहां अन्धकार में पड़े हुए लोग जिन्दगी गुजार रहे हैं। वही पुराने हल-बैल हैं; उसी से जो कुछ थोड़ा बहुत पैदा हो, उसी पर सन्तोष कर भूखे रहते हुए दिन काट रहे हैं। बेचारे समझते हैं कि उनके भाग्य में ऐसा ही बदा है। भूमि कम उपज देती है, पर यह खबर नहीं कि अविद्या के गढ़े में पड़ने से यह दुर्गति है। वही भूमि सौगुना अधिक उपजाऊ हो सकती है यदि उसको वैज्ञानिक ढंग से काम में लाया जावे।"

"पर सिखावे कौन ?"

"जैसे यहाँ गवर्नमेंट करोड़ों रुपये खर्च कर देश के किसानों को सिखाती है, इसी तरह हमारी गवर्नमेंट को भी करना चाहिये।"

मैं मुस्करा दिया। मुन्शीराम समझ गये कि इस मुस्कराहट का अभिप्राय क्या है। ठण्डी साँस भरते हुए वे मेरे साथ भवन से बाहर आगये।

ओरियण्टल भवन में हमको बहुत देर नहीं लगी। वहाँ अधिकतर इटली की बनी हुई मूर्तियाँ थीं। यूनानी हुनर अभी तक इटली में ही प्रधान है; वहीं के कारीगर संगतराश योरुप और अमरीका की ऐसी माँग पूरी करते हैं। बेशक उनका काम बहुत ही उच्च कोटि का है। दर्शक देखकर उनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहता। पर हम तो 'ओरि-

यण्टल' नाम देखकर चौंके थे और समझे थे कि शायद हम अपनी पुण्य-भूमि की कोई वस्तु स्पर्श कर अपने आपको धन्य मानेंगे, पर निराशा देवी ने विकट हास्य कर निरादर से हमको बाहर निकाल दिया।

अब मेन्युफेक्चरिंग भवन की बारी आई। युनाइटेड स्टेट्स के अन्दर जो-जो वस्तुएं कल-कारखानों द्वारा बनती हैं, उनकी कम्पनियों ने अपनी अपनी ओर से प्रतिनिधि यहाँ भेजे हुए थे, जो अपनी-अपनी मशीनें चला कर पब्लिक को दिखलाते थे कि इस प्रकार उनके यहाँ चीजें तैयार होती हैं। यह एक प्रकार से उन कोठीवालों का इश्तिहार था। लाखों आदमी, जो प्रदर्शनी देखने आये, उनको उन कोठीवालों का पता मालूम होगया। एक जगह कलें रेशम बुन रही थीं; वहाँ यदि दर्शक रेशमी रूमाल या और कोई रेशमी कपड़ा ख़रीदना चाहता था तो उस पर प्रदर्शिनी तथा ग्राहक का नाम बुन दिया जाता था। बड़े-बड़े आरे तथा लकड़ी काटने के औज़ार, हल, अनाज काटने की मशीनें इत्यादि बहुत कुछ वहां धरा था। एक दुकान पर भाँति-भाँति के मुरब्बे-अचार रक्खे थे और बेचनेवाली कम्पनी अपने विज्ञापन बांटती थी। न्यूयार्क, न्यू इंग्लैंड की कपड़ा बेचने वाली कम्पनियों की बड़ी-बड़ी दुकानों के चित्र दर्शकों को दिखलाये जाते थे और उनसे यह आशा की जाती थी कि वे उक्त कम्पनियों का माल ख़रीदें।

सन्ध्या होगई। बिजली की रोशनी से प्रदर्शनी भवन जगमग जगमग करने लगे। गवर्नमेंट भवन का गुम्बद कैसा प्रकाशमान था! इधर-उधर, ऊपर-नीचे सुन्दर कतारों में बिजली देदीप्यमान थी। इन वृक्षों को देखो, विद्युद्दीप कैसी शोभा देरहे हैं! वह देखो, जलपतन के नीचे विद्युत्-प्रकाश कैसी छटा दिखाता है! सचमुच, प्रदर्शनी की महिमा रात को ही देखने योग्य थी। सड़कों के किनारे छोटे-छोटे वृक्ष-कुञ्जों में दिन को जो विद्यु-द्दीप मुक्ताफल सम बोध होते थे, अब तनिक उनकी छवि निहारिये।

विद्युद्देवी का अकथनीय प्रभाव देखते हुए हम लोग 'रेनियर विस्टा' की, और बढ़े चले गये। अभी बहुत सी इमारतें देखनी बाक़ी थीं। केली-

फोर्निया, वाशिंगटन, आरेगन भवन सब पीछे छोड़ आये थे। और भी बहुत सी छोटी-मोटी इमारतें देखने को थीं, पर दिल में विचार किया कि इतना बहुत है, हमने भर पाया।

'रेनियर विस्टा' की ओर घूमते-घामते हम लोग वहाँ पहुँचे जहाँ 'कैदी बैलून' (Captive Balloon) उड़ रहा था। बहुत से लोग यहाँ पर खड़े थे, हम भी खड़े होगये। एक-एक डालर इस गुब्बारे पर चढ़ने-का देना पड़ता था और दो पुरुष एक बार बैठ सकते थे। गुब्बारा पृथ्वी से सात सौ गज़ के क़रीब ऊँचा जाता था और बहुत थोड़ी देर ठहरकर नीचे उतर आता था। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि यह गुब्बारा मज़बूत तारों से बंधा हुआ था।

एक-एक डालर देकर हम दोनों जने भी उस गुब्बारे के पंगूड़े में बैठ गये। झट से गुब्बारा ऊपर उठा। मैंने मज़बूती से पंगूड़े का रस्सा पकड़ लिया। मुंशीराम ने तो आँखें बन्द कर अपना मुंह पंगूड़े में छिपा लिया और कहने लगे—"मैं मरा, मैं मरा।" मैंने कहा—"डरो मत मुंशीराम! गिरते नहीं।" देखते-देखते हम लोग आसमान में टँग गये। मैं कभी आँखें बन्द करता, कभी खोलता। नीचे देखने का साहस न होता था। यह तो देखा, क्या देखा? कुछ नहीं; मन का भ्रम रहा। हाँ, रोशनी, इधर-उधर प्रकाश; चला, नीचे, नीचे। मैंने भी कलेजा थामा और मुंशी-राम को ज़ोर से चिपट गया।

हाथ पकड़कर गुब्बारे वाले ने हम लोगों को पंगूड़े से निकाला और एक ओर बिठला दिया। मैं अभी तक मानो स्वप्नावस्था में था। मुंशी-राम पहले चैतन्य हुए और मुझे पकड़ कर बोले—

"चलो राधाकृष्ण, अब घर चलो।"

बाईसवाँ अध्याय
'सियेटल' या 'सेटल'

नियमपूर्वक बारह बजे के बाद मैं डाकखाने में डाक लेने गया। उस दिन कई-एक चिट्ठियाँ आई हुई थीं। सियेटल से भी एक चिट्ठी मिली, जिसका मुझे बड़ा इन्तजार था। उस पत्र को पढ़कर मैंने सियेटल जाने का निश्चय किया, क्योंकि वहाँ एक बड़ा जरूरी काम था।

जिस कमरे में मैं रहता था, मुझे उसका किराया छः रुपये साप्ताहिक देना पड़ता था। आज शनिवार था और आज ही मेरा सप्ताह पूरा होता था। इसलिए अपने कमरे में लौटकर, किवाड़ लगा मैं जरूरी चिट्ठियों का उत्तर देने में लग गया ताकि शीघ्र ही अपने काम से छुट्टी पा जाने के बाद चलने की तैयारी करूँ। मैं बैठा लिख ही रहा था कि किसी ने दरवाजा खटखटाया। मैंने आवाज दी--

"अन्दर आइये।"

दरवाजा खुला और घर की मालकिन अन्दर आकर बोली--

"क्या आप दूसरे सप्ताह के लिए भी कमरा रखना चाहते हैं?"

नम्रता के लहजे में मैंने उत्तर दिया--

"मैं आज शाम सियेटल जा रहा हूँ--I am going to Seattle (सेटल) this evening."

"बहुत अच्छा", यह कहकर वह रमणी धीरे से दरवाजा बन्द कर चली गई और मैं फिर अपने काम में लग गया।

संध्या होगई। गाड़ी के जाने में एक घण्टा रह गया। अपने कपड़े बेग में डाल, अपनी सब चीजें सम्भालकर मैंने चलने की तैयारी की। हाथ में बेग और छाता लेकर मैं नीचे उतरा। घर की मालकिन नीचे ड्योढ़ी में खड़ी थी। जब उसने मुझे देखा तो हैरान होकर बोली--

"आप कहाँ जा रहे हैं ?"

मैंने अपनी टोपी उतार कर बड़े अदब से उत्तर दिया—"मैं सियेटल जा रहा हूँ—I am going to Seattle (सियेटल)।" गुस्से भरे शब्दों में वह रमणी झुंझलाकर बोली—"आपने आज शाम को फ़ैसला करने को कहा था—"You said you were going to settle this evening."

अब मेरी बारी हैरान होने की थी। मैंने जरा ज़ोर से उत्तर दिया—

"नहीं, मैंने कहा था कि मैं आज शाम को सियेटल जाऊँगा—No, I said I was going to Seattle this evening."

मेरा रास्ता घेर वह रमणी खड़ी होगई और बोली—"आप अपने आपको बड़ा होशियार समझते हैं, परन्तु आप मुझे बेवक़ूफ़ नहीं बना सकते—You think you are very smart, but you can't fool me."

मैंने नम्रता से उत्तर दिया—

"क्षमा कीजिये देवी, मेरा हर्गिज इरादा आपको धोखा देने का नहीं था। यह भूल मेरे विदेशी उच्चारण होने के कारण हुई जान पड़ती है—Pardon me lady! I did not mean to deceive you. I think it is my foreign accent which gave you wrong impression."

उस रमणी का क्रोध कुछ शान्त हुआ और वह पीछे हटकर बोली—

"आपसे मुझे डेढ़ रुपया वसूल करना था। मगर अब मैं जाने देती हूँ, क्योंकि आप एक अजनबी पुरुष है; आप 'सियेटल' को 'सेटल' (settle) कह सकते हैं।"

उस स्त्री से जान छुड़ाकर मैं बाहर आया और सारा रास्ता 'सियेटल' और 'सेटल' की दिल्लगी पर हँसता रहा।

तेईसवाँ अध्याय

सियेटल का एक दुकानदार

अमरीका में हरएक क़िस्म के पेशे को वैज्ञानिक ढाँचा पहिनाने का यत्न किया जाता है। किसी क़िस्म का काम हो, उसके स्कूल खुले हैं, जहाँ उक्त काम के लिए लोग तैयार किये जाते हैं। अमरीका तिजारती देश है। जो चीज़ें कलों द्वारा तैयार होकर बाज़ारों में बिकने आती हैं, वह कैसे जल्दी और सहज में बेची जा सकती हैं, इसके नये-नये ढंग हैं। जो उन ढंगों से वाक़िफ़ है वही अपना माल ख़ूब बेच सकता है। बड़ी-बड़ी कोठियों की ओर से ऐसे ही लोग नियत रहते हैं, जो दुकान, बाज़ार, देहात तथा नगरों में घूम-घूमकर सौदा बेचते हैं। इनको अंग्रेज़ी में सेलसमेन (Salesmen) कहते हैं। अपनी बोलचाल में, जो दुकान पर सौदा बेचनेवाले रहते हैं उनको गुमाश्ते और घूमकर बेचनेवालों को फेरीवाला कहना ठीक होगा। ख़ैर, मेरा काम यहाँ गुमाश्तों से है। ये लोग ग्राहक को सौदा बेचने में बड़े उस्ताद होते हैं। कोई ग्राहक खाली न जाये, यही उनका सिद्धान्त रहता है।

सियेटल में एक बार मैं कार्य्यवश विश्वविद्यालय से शहर गया। दो बजे दिन का समय था। काम पूरा करके मैंने सोचा कि आज फ़ुरसत है, किसी दुकान में घूमकर 'सूट' ठीक करूँ। मेरे पास एक ही सूट था, जो तीन साल लगातार पहिनने से कामलायक नहीं रहा था। ख़रीदने को पैसा तो पास था नहीं, मगर मैंने सोचा कि कामचलाऊ एक जोड़े की कीमत मालूम हो जाने से रुपये का प्रबन्ध कर लूँगा। यह विचार कर मैं एक बहुत बड़ी दुकान में घुसा। इस दूकान में भी, जैसा कि अमरीका के दुकानदारों का क़ायदा है, अच्छे-अच्छे सूट कम क़ीमत की चिट्ठियाँ लगाकर शीशे की खिड़कियों में बाहर घूमनवालों को

फँसाने के लिए रक्खे हुए थे और अस्ल में मै भी बाहर से ही कम क़ीमत देखकर ख़ाली जेब ही दुकान के अन्दर घुस गया था। एक बाँके-रसीले ने जब मुझे और मेरे कपड़े देखे तो भाँप गया कि इसको सूट की सख़्त ज़रूरत है। उसने बड़ी नम्रता से आकर मुझसे पूछा—

बाँका—"आपको सूट की ज़रूरत है?"

मैं—"हाँ, ज़रूरत तो है।"

बाँका—"कैसा सूट आपको दरकार है?"

मैं—"ऐसा ही कामलायक।"

"अच्छा आइए"—कहकर वह मुझे जहां सूट रक्खे हुए थे ले गया और एक रद्दी सूट निकाल कर मुझे पहिनाने लगा।

मैं—"मुझे यह सूट न चाहिए।"

बाँका—"आप इसे पहनिये तो सही, यह बहुत अच्छा नफ़ीस सूट है।"

मैं—"नहीं, मुझे यह न चाहिये।"

इस पर उसने एक अच्छा सूट निकालकर दिखाया और कहा—

"यह तो आपको ज़रूर ही पसन्द होगा। पच्चीस डालर का यह सूट है, आपको बीस में ही दे देंगे।"

मैंने इस तरह के सूट बाहर के शीशों मे दस डालर दाम पर लिखे देखे थे। जब उस धूर्त ने दस डालर के सूट के बीस बताये तो मैंने दिल मे सोचा कि क्यों समय खोते हो। अपने पास रुपया तो है नहीं, और अगर हो भी तो इससे दाम न पटेगा। बेहतर है किसी जानकर के साथ आवेंगे। यह मन में सोच मैंने बाहर जाने का रुख़ किया। मगर वह बाँका जवान कहाँ जाने देता था! वह बोला—

"आइए साहब, आपको यह पसन्द नहीं तो दूसरा सूट दिखलाता हूँ। यहाँ हर तरह के सूट हैं।"

उसने यह सब ऐसे ढंग से कहा कि मै उसके साथ और सूट देखने लग गया। जब वे सूट मेरे पसन्द न आये और मैंने उससे कहा कि

मुझे जाने दो, फिर कभी आकर देखूँगा, तब वह एक अजीब तरीके से मुझको अपने साथ ले चला और मीठी-मीठी बातों में उसने लगा लिया। उस समय मैंने सोचा कि आज अमरीका के फेरीवालों तथा गुमाश्तों के हथकण्डे देखते चलो। पैसा तो बन्दे के पास है ही नहीं। यह सोचता और बातें करता हुआ उसके साथ चला ही तो गया।

उस दूकान के दूसरी तरफ़ बहुत सा माल रक्खा था और वहाँ भी चालाक गुमाश्ते ग्राहकों का सिर मूँडने में व्यस्त थे। उस बाँके बीर ने मुझे एक बहुत ही निपुण बेचने वाले के सुपुर्द किया और मेरा परिचय करवाकर कहा कि इनको सूट दिखला दो। मैंने भी चित्त में कहा—"अच्छा धूर्तो! तुम मेरा भी समय खोवोगे और अपना भी।" ख़ैर, वह लगा सूट दिखलाने।

उसने तरह-तरह के सूट दिखलाने शुरू किये और लगा बातों में मुझे रिझाने, पर यहाँ तो जेब ही खाली थी; रीझते तो कैसे रीझते! खाली जेब मैं कोई न कोई नुक्स सूट में निकाल ही देता। जब वह सूट दिखाता-दिखाता परेशान होगया, तब झुँझलाकर बोला—

गुमाश्ता—"आपको कैसा सूट चाहिए? कुछ मुह से भी तो कहिये।"

मैं—(मुस्कराकर) "खफ़ा न हूजिये हज़रत! मुझे अब जाने दीजिये। मेरी मर्ज़ी के लायक़ चीज मिलेगी तो दाम देकर ले लूँगा।"

गुमाश्ता—"आप मेरी नौकरी छुड़ाने तो यहाँ नहीं आये?"

मैं—(ज़रा हैरानी से) "यह कैसे?"

गुमाश्ता—"क्यों नहीं? यदि मैं आपको सूट न बेच सका तो मेरा मालिक समझेगा कि मैं इस काम के लायक नहीं हूँ और वह मुझे निकाल देगा। (नम्रता से) आइए, आप दूसरा सूट देखिए।" फिर वह लगा सूट दिखलाने।

मैंने उससे कहा—"जिस क़िस्म का मैं सूट चाहता था, वैसा सूट

दस डालर के दाम का बाहर खिड़कियों में है, पर वैसे सूट के यहाँ तुम लोग पन्द्रह और बीस डालर माँगते हो।"

"उस कपड़े और इस कपड़े में फर्क है।"

उसने जबाब दिया--

अब फ़र्क का फैसला कौन करे ! जब उसने देखा कि वह मुझे कोई सूट बेच नहीं सकता और कोई भी सूट मेरे पसन्द नहीं आता, तब दूसरे दरवाज़े के पास ले जाकर मुझसे गुस्से में बोला—

"अच्छा जाइए। अगर आप जैसे दो-चार ग्राहक आ जाये तो हमारी दुकानदारी ख़ाक में ही मिल जाए।"

"मैं तो पहले ही जाता था। आप लोगों ने मेरा भी समय नष्ट किया और अपना भी।"

चौबीसवाँ अध्याय

विश्वविद्यालय के जीवन का अनमोल धन

मैं अब पीछे घूमकर देखता हूँ। सन् १९०६ के जून मास से सन् १९१० के मई मास तक---ये चार वर्ष मेरी उच्च शिक्षा के हैं। इन चार वर्षों में मुझे कैसे-कैसे बहुमूल्य पदार्थ, कैसी-कैसी बेशकीमत शिक्षायें और कैसे-कैसे स्फूर्तिदायक अनुभव प्राप्त हुए! सियेटल विश्वविद्यालय में मेरा था यह अन्तिम वर्ष। मुझे इस वर्ष डिग्री मिलने वाली थी और मैं अपने जीवन के परिवर्तन पर गम्भीरता से विचार कर रहा था। पुरानी दुनियाँ से नई दुनियाँ में आकर, काशीजी की प्रसिद्ध ज्ञान-नगरी को छोड़कर, पातालदेश के विश्वविद्यालयों में स्वावलम्बन द्वारा शिक्षा प्राप्त कर मुझे क्या अनमोल धन मिला? इन बातों पर विचार करने का समय आगया।

निस्सन्देह मैं अपने घर से स्वतन्त्रता की खोज करने के लिए निकला था और इसीलिए काशी पहुँचा भी था कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की तरह संस्कृत-विद्या प्राप्त कर अपने देशबन्धुओं की कुछ सेवा करूँ। ये सब बातें चित्त में थीं, तो, लेकिन इनका स्पष्ट आदर्श--इनका दिव्य चित्र---हृदय-पट पर खिंचा नहीं था। काशीजी में तो विचार यह भी था कि हिन्दुस्तान जैसे गुलाम देश में रहकर गुलाम बच्चे पैदा करना महान पाप है, अतएव किसी स्वतन्त्र देश में जाकर बसना चाहिए। अमरीका के विश्वविद्यालयों की शिक्षा ने सबसे पहला बड़ा काम मेरे लिए यह किया---मेरे जीवन का आदर्श निश्चित होगया। जब मैं भारतवर्ष में था तो मेरे मस्तिष्क में विचारों का जमघट सा था, जीवन-आदर्श की बात निश्चित नहीं थी। लेकिन विश्वविद्यालय की शिक्षा ने मुझ पर यह रोशन कर दिया कि मेरे लिए देशसेवा करते हुए

सत्यज्ञान की खोज करने से बढ़कर कोई दूसरा आदर्श हो नहीं सकता और उसकी सिद्धि सारी आयु अविवाहित रहने से ही हो सकती है। मुझे रास्ता दिखाई देने लगा। मैं जीवनपथ पर आगया। मैंने समझ लिया कि मुझे भी महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के पद-चिन्हों पर चलकर सारी आयु अकेले ही रहकर सत्य और स्वतन्त्रता की खोज करनी चाहिए, ताकि अपनी सारी शक्तियों को केन्द्रीभूत कर ज्ञानमार्ग का सफल यात्री बना जा सके।

आर्यसमाज के संस्थापक ने जिस समय जन्म लिया था और आर्य-संस्कृति-प्रचार का कार्य उठाया था, वह समय था कुछ और। उस समय जरूरत इस बात की थी कि सैकडों वर्षों से बहकी हुई भारतीय जनता को प्राचीन आर्यों की गौरव-गाथा सुनाई जाए, जिससे वह अपने स्वरूप को पहिचान सके। स्वामी दयानन्द जी थे सत्यज्ञान के अन्वेषक। अपनी सारी आयु उसी धुन में लगाकर उन्होंने अपनी खोज की कुञ्जी का पता लगाया और घोषणा की—"सत्यज्ञान के अन्वेषक को अपना हृदय-मन्दिर प्रकाश के लिए खुला रखना चाहिए और उसे सत्य के ग्रहण करने और असत्य के त्यागने में सदा तैयार रहना उचित है।" उनसे पहले के आचार्यों ने अपने-अपने सम्प्रदायों की रचना की और आर्य संस्कृति के क्रियाशील प्रभाव को दूर रखकर उसे दार्शनिक रूप दे दिया, जिससे जनसाधारण ज्ञानमार्ग से हटकर शुष्क फ़िलासोफ़ी के जंगल में भटकने लगा। मनुष्य की इन्द्रियों के ज्ञान को मिथ्या बतलाकर उन्होंने विकास का दरवाजा बन्द कर दिया और गुरुडम की जड़ जमा दी। शताब्दियों तक प्राचीनकाल के उस ज्ञानमार्ग पर काल की घटनाओं की मिट्टी पड़ती रही और वह रास्ता अदृश्य होगया। महर्षि स्वामी दयानन्दजी ने उसी मार्ग की खोज की और उसे ढूढ़निकाला। वे चाहते थे कि वर्तमान काल का गुलाम भारत अपनी दासता से निकलकर स्वतन्त्र भारत के मस्तिष्क को पकड़ ले और बीच की गहरी खाई को पाट दे। बीच की गहरी खाई

कैसे पाटी जा सकती है, इसपर उनके और दूसरे सत्यज्ञान के पथिकों मे मतभेद हो सकता है, किन्तु इस बात में सब सहमत होंगे कि स्वामीजी महाराज का परिश्रम सफल हुआ। उन्होंने ज्ञान का जो मार्ग ढूँढ़ निकाला, वही हकीकत में आर्यों के लाखों वर्षों की सत्यज्ञान खोज का परिणाम था।

अच्छा, तो मैं इस बात को स्पष्ट करने की चेष्टा कर रहा था कि स्वामी दयानन्दजी के बाद परिस्थितियाँ बदल गई। स्वतन्त्र और गुलाम भारत के बीच की गहरी खाई की भयङ्करता धीरे-धीरे बोध होने लगी। खाई इतनी भीषण है और उसका पाटना इतना कठिन है, इसका ठीक-ठीक पता स्वामी दयानन्दजी के बाद उनके पद-चिन्हों पर चलने वालों को लगा। इसीलिए उस समस्या को हल करना भारतीय स्वाधीनता के पक्षपातियों के लिए प्रधान समस्या होगई। जिस समय मैं काशीजी से चला था, उस समय था मुझमें एकाङ्गीपन। विश्वविद्यालय की शिक्षा ने मुझे चारों ओर दृष्टि दौड़ाने का अवसर दिया। साम्प्रदायिकता के विषैले वातावरण से दूर, गुलामी के निष्प्रभ वायुमण्डल से अलग, अमरीका के स्वाधीन समाज में बैठकर जब मैंने उस गहरी खाई को पाटने की समस्या पर विचार किया तो मुझे पता लगा कि बीच का फ़ासला अत्यन्त दुस्तर हो चुका है। उस पर पुल बाँधने के लिए हमें पश्चिम की सहायता लेनी ही पड़ेगी। पूर्व और पश्चिम की संस्कृतियों के सम्मिश्रण के बिना हम उस समस्या को हल नहीं कर सकते। नवीन युग की नवीन कठिनाइयाँ आधुनिक वैज्ञानिक तरीकों से ही दूर की जा सकती हैं, और फिर उन तरीकों के आविष्कर्ता हैं कौन? हमारे ही बिछुड़े हुए आर्यबन्धु तो। उस अतीत में सिन्धु नदी के किनारे जब वे अपने पूर्वजों से अलग हुए तो बुजुर्गों का ख़ज़ाना अपने साथ लेते गये। उन्होंने जो कुछ खोज की है, वह भी उसी ज्ञानमार्ग का अङ्ग है। ईश्वर की महान् कृपा समझिये कि जो आज उनके पुरुषार्थ के फल से पूर्व और पश्चिम की दो विचारधारायें हज़ारों वर्षों के बाद सङ्गम पर आने

लगी हैं और उस ज्ञान-गङ्गा में सारा विश्व स्नान करने की तैयारी कर रहा है ।

बस, मेरे सामने यह बात पूर्णतया स्पष्ट होगई कि पूर्व और पश्चिम का मिलन ही हमारे रोगों की एकमात्र औषध है । प्रातःस्मरणीय स्वामी रामतीर्थजी तथा ख्यातनामा स्वामी विवेकानन्दजी महाराज यदि नई दुनियाँ मे न आते और पश्चिमी विचारधारा से प्राचीन ज्ञान-रत्नों को न धो डालते तो भला वे उनमें वह चमक-दमक ला सकते थे ? वे प्रभाहीन रत्न पश्चिम के मिलने से जगमगाने लगे और संसार प्राचीन आर्यों की संस्कृति का प्रशंसक बन गया । विश्वविद्यालय की शिक्षा ने मेरी साम्प्रदायिकता के मल को धोकर मुझे सत्यज्ञान का सच्चा अन्वेषक बना दिया और स्वतन्त्र भारत के उस ज्ञानमार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया । मुझे जान पड़ा कि मेरे लिए महान् कर्तव्य यही है कि मैं इस भीषण खाई को पाटकर इस मार्ग को प्रशस्त करूँ ताकि भारतीय जनता स्वाभाविक विकास का पथ पकड़ सके और अपना संस्कृति-सन्देश संसार को दे सके ।

मैंने जब यह देखा कि स्वाधीन वातावरण के कारण अमरीकन नवयुवकों में कैसी निर्भयता, कैसा आत्मविश्वास, कैसी इरादे की दृढ़ता, बाधाओं से लड़ने की कैसी उमङ्ग और पारस्परिक सहयोग जैसे सद्गुणों का कैसा सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है तो मेरा हृदय अपने देशवासियों की दुर्दशा पर आँसू बहाने लगा । मुझे अवश्य ही अपना कर्तव्य पालन करना चाहिये, यह बात रह-रहकर मेरे मन में आने लगी । सफलता की कुञ्जी क्या है, इसका रहस्य भी मुझ पर उस रोज खुला जब अमरीका का एक धनकुबेर हमारे विश्वविद्यालय में आया । विद्यार्थियों के आग्रह पर उसने अपनी ज़िन्दगी की कुछ बातें बताईं । वह एक ग़रीब माँ-बाप का लड़का था और उसका नाम था पुलमैन । अपनी छोटी उम्र से ही उसने यह सीख लिया कि किसी काम को भी बेगार के तौर पर नहीं करना चाहिये । जो भी कोई काम उसके सामने आता, उसे वह अपनी

पूरी शक्ति लगाकर करता। अभ्यास ने उसे सिखला दिया कि मन की एकाग्रता सफल जीवन बनाने की एकमात्र कुञ्जी है। व्याख्यान हाल के बड़े कमरे में सैकड़ों विद्यार्थियों के सामने उस प्रसिद्ध धनी ने अपने अनुभव कहे। उसने कहा—

"मैं प्रायः गृहस्थों के यहाँ लकड़ियाँ फाड़ा करता था। जब कोई सद्-गृहस्थ मुझे मज़दूरी के लिए बुलाता तो मैं एक घण्टे में इतनी लकड़ियाँ काट देता था जो किसी भी नौजवान को लजा देतीं। मेरी आयु उस समय चौदह-पन्द्रह वर्षों से अधिक न थी, लेकिन मुझ पर काम करने की मस्ती सवार रहती थी। छोटे से छोटे काम को भी मैं ख़ूब मन लगा कर करता था। उस आदत ने मेरी प्रसिद्धि फैला दी और इर्द-गिर्द के लोग जान गये कि पुलमेन बड़ा परिश्रमी और ईमानदार लड़का है। मुझे निर्दोष काम करने की आदत पड़ गई और पूर्णता (thoroughness) मेरे चरित्र का अंग बन गई। बस फिर क्या था, मुझे मानो कारूँ का ख़ज़ाना मिल गया। चारों ओर मेरी माँग होने लगी। एक धनवान् व्यक्ति ने मुझे अपनी दुकान में भागीदार बना लिया। बढ़ते-बढ़ते लक्ष्मी महारानी की मुझ पर बड़ी कृपा हुई और मैं करोड़पति बन गया। सच बात तो यह है कि हिन्दू लोग जिसे योग कहते हैं, वही मेरी सफलता की कुञ्जी है—जिस काम को करना, अन्त तक मन की एकाग्रता से योग देना। मैं सब विद्यार्थियों को यही बात बतलाना चाहता हूँ कि अच्छी तरह से पढ़ी हुई एक पुस्तक बड़े बेगारी अध्ययन से हज़ार गुना अच्छी है। जो लोग इस तथ्य को समझ गये हैं, जिनके हृदय पर बेगार काम करने के दोष प्रगट हो चुके हैं, वे अपने जीवन में सदा सुखी रहेंगे और कोई बाधा उन्हें सता न सकेगी।"

मैं भी श्रोताओं में से एक था। उस दिन मुझे "योगः कर्मसु कौशलं, अर्थात् काम में कौशल ही सच्चा योग है" की सच्चाई मालूम होगई। योग का व्यापक स्वरूप मेरे सामने खड़ा होगया। मैंने जान लिया कि हिमालय की कन्दराओं में बैठकर प्राण को ऊपर-नीचे ले जाने वाले ही

योगी नहीं हैं, बल्कि कर्मयोग के क्षेत्र में मन को एकाग्र कर कठिन समस्याओं को हल करने वाले भी वैसे ही योगी होते हैं। विश्वविद्यालय के स्वाधीन वातावरण में सत्य की सर्वाङ्गतापूर्ण महत्ता का ज्ञान मुझे होने लगा और मैंने समझ लिया कि भारतवर्ष की राजनीतिक गुलामी दूर हुए बिना भारतीय आर्य अपने बज़ुर्गों की सांस्कृतिक सम्पत्ति के हकदार नहीं बन सकते।

वह राजनीतिक स्वाधीनता भारतवर्ष को कैसे मिल सकती है ? मैं इस जटिल प्रश्न पर विचार करने लगा। एकान्त में बैठकर घण्टों इस सवाल के भिन्न-भिन्न पहलुओं पर मैंने अपनी बुद्धि लड़ाई। सन् १९०७ में जब लाला लाजपतरायजी को बर्मा-निर्वासन मिला था तो मैंने अपनी डायरी में यह प्रतिज्ञा लिखी थी—"भारतवर्ष को आज़ाद करने में मैं अपनी सारी शक्तियों को लगा दूँगा"; उसे मैंने नये सिरे से दोहराया। यद्यपि मैं इतिहास का विद्यार्थी था और मैंने आधुनिक योरुप के उत्थान की कथा को इसी वर्ष विश्वविद्यालय में पढ़ा था, तो भी भारतवर्ष की राजनीतिक समस्या उन शिक्षाओं से नितान्त भिन्न प्रतीत हुई। योरुप में जब आज़ादी की लहरें चलने लगीं तो वहाँ गुप्त समितियों का जन्म हुआ, जिनकी शाखायें योरुप के प्रत्येक देश में फैल गईं। उनका उद्देश्य था प्रजा को शासकों के विरुद्ध खड़ा करना और शस्त्रास्त्र जुटाकर प्रजातन्त्र राज्य स्थापित करना। इटली ने आस्ट्रिया के विरुद्ध ऐसा ही संगठन किया था और वहाँ के नवयुवकों ने वीर गेरीबाल्डी के नेतृत्व में स्वाधीनता की लड़ाइयाँ लड़ी थीं। इसी प्रकार योरुप के छोटे-बड़े सभी देशों में प्रजा ने बलप्रयोग द्वारा अपने अधिकार प्राप्त किये थे। योरुप है छोटे-बड़े देशों का एक समूह, जहाँ एक दूसरे से सहायता मिल सकती है और शस्त्रास्त्र भेजने के साधन सुगम हैं। वहाँ छोटे-छोटे देश हैं, जिनकी आबादी भाषा, रक्त और धर्म में समानता रखती है। इसी कारण वहाँ ऐसे राजनीतिक आन्दोलन आसानी से सफल हो सकते हैं और बीस-पच्चीस लाख की जनसंख्या के भूखण्ड में स्वतन्त्रतापूर्वक रह

सकते हैं। मगर भारतवर्ष ठहरा एक महाद्वीप--रूस के बिना योरुप के बराबर--और उसकी भौगोलिक स्थिति इस प्रकार की है जहाँ बाहर से सहायता का मिलना नितान्त असम्भव है।

मैं इस समस्या पर गम्भीरता से विचार करने लगा। तीस करोड़ की आबादी का देश, जिसमें सात करोड़ मुसल्मान हैं जिन्हें कोई भी धर्मान्ध मौलवी बहका सकता है और छोटी सी बात पर हिन्दुओं से लड़ा सकता है--ऐसा भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषाओं से लदा हुआ, सम्प्रदायों के भयंकर जंगलों से घिरा हुआ, शस्त्रहीन देश--ब्रिटिश सिंह के पञ्जे से कैसे छूट सकता है? असम्भव! असम्भव!! यह तो रेत से तेल निकालने वाली बात है। किसी एक प्रान्त को क्रान्ति के लिए संगठित किया जा सकता है, भला इतना बड़ा देश कैसे शस्त्र-क्रान्ति कर सकता है? तो क्या भारत के टुकड़े किये जाये और उसे भी योरुप जैसा बनाया जाये? ऐसी भावना तो मेरे हृदय के विरुद्ध थी। मैंने बचपन से ही संयुक्त भारत के स्वप्न देखे थे, विशाल भारत के गीत गाये थे और चक्रवर्ती राज्य की गाथायें पढ़ी थीं। भला मैं किस प्रकार भारत का हृदय विदीर्ण करने का पक्षपाती बन सकता था! भारत को तो सीलोन से लेकर हिमालय तक और अफगानिस्तान से लेकर बर्मा तक एक महाराष्ट्र में बद्ध होना ही चाहिये; तभी इसका सांस्कृतिक मिशन पूरा हो सकता है। यदि भगवान् की इच्छा इसके टुकड़े करने की होती तो फिर अंग्रेजों के यहाँ आने की आवश्यकता क्या थी? टुकड़े तो इसके हो ही चुके थे। सात हजार मील के फासले के छोटे से द्वीप में बसे हुए सुसंगठित आर्यों का इस विशाल देश पर साम्राज्य स्थापित करना इस बात को स्पष्ट सिद्ध करता है कि भारत का स्वाभाविक विकास संयुक्त राज्य अमरीका की तरह एक महान् राष्ट्र स्थापित करने में है और तभी वह पूर्ण बलशाली और समृद्धिमान् हो सकता है।

लेकिन प्रश्न तो इस स्वप्न को सिद्ध करने का था। किस प्रकार विशाल भारत महाराष्ट्र संयुक्त और अखण्ड अवस्था में राजनीतिक

स्वाधीनता प्राप्त कर सकता है ? मैंने फिर सोचना प्रारम्भ किया। हमारी जनता गुप्त समितियाँ नहीं चला सकती और ऐसा ढंग हमारी संस्कृति के विरुद्ध जायेगा। इक्के-दुक्के अंग्रेज अधिकारियों को मारकर हम बहादुर ब्रिटिश जाति को डरा नहीं सकेंगे और वे ऐसे मूर्ख नहीं जो इतने से भयभीत होकर ऐसी उपजाऊ जिमींदारी दूसरे लुटेरों के लिए छोड़ जायें। वे ऐसा करेंगे ही क्यों जब देश की प्रजा उन्हें अपना मां-बाप मानती है। मुट्ठी भर अंग्रेज प्रजा की मर्जी और सहयोग से ही तो चैन की बाँसुरी बजा रहे हैं। फिर हमें क्या अधिकार है प्रजा के प्रतिनिधि बनने का और उसकी शान्ति मे विघ्न डालने का ? यदि हममें से कोई उन्हें अंग्रेज अधिकारियों के विरुद्ध करने का प्रयत्न करेगा तो प्रजा स्वयं जाकर अधिकारियों से कह देगी और हम नाहक में मारे जायेंगे। यह तो मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त वाली बात होगी। मैं इसीलिए पेसेफिक कोस्ट पर फैले हुए हिन्दुस्तानी क्रान्तिकारियों के प्रयत्नों को व्यर्थ समझता था और सियेटल विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थियों की शस्त्रास्त्र सम्बन्धी योजनाओं का विरोधी था। मुझ पर यह बात स्पष्ट होगई कि सबसे पहला काम प्रजा को चैतन्य करना है। हमें चाहिये कि जनता को दासता की बुराइयाँ समझावें, स्वाधीनता की महिमा बतलावें और प्राचीन स्वतन्त्र भारत की गौरवगाथा सुनावें। अपने भाग्य का फैसला तो जागरूक जनता ही कर सकती है; हम कौन हैं उनके भाग्यविधाता ? हमें यह अधिकार किसने दिया है कि उनके सहयोग द्वारा स्थापित और सहायता द्वारा शासित राज्य-प्रबन्ध को उलटने की कोशिश करें ? हमारा कर्तव्य है प्रजा को शिक्षा देना, उसमें बुराई-भलाई की तमीज करने की योग्यता लाना, उसे जीवन का यथार्थ स्वरूप समझाना, उसे स्वतन्त्र जातियों की नीरोग बातें बतलाना। हमारा काम है जनता के मस्तिष्क को परिवर्तन करने का। जब जनसाधारण अपना हित-अहित सोचने लग जायेंगे, तब वे स्वयं अपने राजनीतिक साधनों के प्रश्न पर विचार करेंगे। मेरा पहला और सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य यह

है कि मैं इन बम बाज क्रान्तिकारियों से दूर रहकर जनता में ठोस काम करूँ और उसमें दासता के प्रति घृणा और आजादी के प्रति प्रेम पैदा करूँ। यही मेरा पहला और सर्वोत्तम प्रोग्राम होना चाहिये। यह काम मैं बड़ी आसानी से अपने अमरीकन अनुभवों द्वारा, इतिहास के उदाहरण देकर, कर सकता हूँ। बस, मेरा प्रोग्राम बन गया। राजनीतिक स्वाधीनता की जटिल समस्या का हल मुझे मिल गया।

हम क्यों चाहते हैं राजनीतिक स्वाधीनता ? इसलिए नहीं कि हमारा भी एक राष्ट्रीय झण्डा हो जाये और हमारी भी गणना पाँच सवारों में होने लगे; इसलिए नहीं कि हम खायें, पीयें और मौज करें; बल्कि इसलिए कि हमारा जीवन स्वाभाविक हो सके और हम अपनी संस्कृति के आधार पर, अपने पूर्वजों के लाखों वर्षों के किये हुए अनुभवों का लाभ लेकर ज्ञानमार्ग को आगे बढ़ावें और अनन्त की खोज करें। हमारे राष्ट्रीय जीवन का यही उद्देश्य है, जो वर्तमान दासता की अवस्था में कदापि पूरा नहीं हो सकता। उद्देश्य और साधन, दोनों सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट होने चाहियें ताकि उनकी प्राप्ति के लिए विशुद्ध प्रयत्न किये जा सकें। विश्वविद्यालय की उच्च शिक्षा के प्रकाश से मुझे अपने भावी जीवन की सब गलियाँ, उसकी सब सड़कें साफ़ दिखाई देने लगीं।

उस शिक्षा ने मुझे और क्या दिया ?

उसने दिये मुझे सङ्गठन, सहयोग और अनुशासन के तीन अमोघ शस्त्र। भारत से नई दुनियाँ जाने वाले विद्यार्थी को पहली बात जो अमरीकन लोगों में खासतौर से दिखलाई देती है, जिसका प्रभाव उसके हृदय पर तत्काल पड़ता है, वह है अमरीकन लोगों का सामाजिक संगठन। संगठन के अद्भुत चमत्कार उसे चारों ओर दिखलाई देते हैं। जब वह व्यापार की ओर दृष्टि डालता है तो उसे करोड़ों रुपये की पूँजी रखने वाली कम्पनियों की दुकानें प्रत्येक बड़े शहर में दिखलाई देती हैं। शिकागो के मार्शल फ़ील्ड की दुकान तो जगतप्रसिद्ध है ही, परन्तु इसके अतिरिक्त प्रत्येक व्यवसाय का संगठनबल देश के व्यापार को दिनदूनी रात

चौगनी तरक्की दे रहा है। जब वह समाचारपत्रों और पत्रिकाओं की ओर दृष्टि डालता है तो उसके अश्चर्य्य की सीमा नहीं रहती। दैनिक पत्रों की लाखों प्रतियाँ छपती हैं, सुन्दर सचित्र पत्रिकाओं की ग्राहक-संख्या भी कई लाख तक पहुँच जाती है और उपयोगी पुस्तकों की बिक्री का तो कहना ही क्या! धार्मिक सोसाइटियों की शाखाएँ वृक्ष की टहनियों की तरह सारे देश में फैली हुई हैं। सारांश यह कि जिस काम को अमरीकन लोग अपने हाथ में लेते हैं, उसे वे संगठनबल से बहुत शीघ्र लोकप्रिय बना देते हैं।

अब यहाँ पर यह प्रश्न स्वाभाविक उठता है कि इस प्रकार के सामाजिक संगठन की शिक्षा अमरीकन सन्तान को किस प्रकार दी जाती है? इसका उत्तर सुनिये। जब बच्चे स्कूल में पढ़ने के लिए जाते हैं तो उन्हें वहाँ पर स्कूल की वफ़ादारी की शिक्षा मिलती है। बच्चे वहाँ पर यह सीखते हैं कि उनका स्कूल उनकी अपनी संस्था है और उसका हानि-लाभ उनका अपना हानि-लाभ है। स्कूल की यदि कोई टीम फ़ुटबाल या बेसबाल खेलने के लिए दूसरे किसी स्कूल की टीम के मुक़ाबले में जाती है तो अपने स्कूल की टीम का पक्ष—वफ़ादारी—विद्यार्थियों के लिए कर्त्तव्य समझता जाता है। प्रत्येक स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय की अपनी-अपनी जयध्वनि होती है और विद्यार्थी लोग प्रत्येक उचित अवसर पर अपनी जयध्वनि कर हर्षनाद करते हैं। विद्यार्थियों में आपस का संगठनात्मक एक खास नियम रहता है और वह यह है कि कोई विद्यार्थी किसी दूसरे विद्यार्थी की चुग़ली अध्यापक के पास जाकर न करे। श्रेणी में यदि किसी विद्यार्थी से कोई अनुचित काम होजाए तो अध्यापक भले ही अपनी स्वतन्त्र कोशिश से उस बात को मालूम कर ले, लेकिन अगर कोई भी विद्यार्थी अध्यापक के पास जाकर खुफ़िया का काम करे तो उससे बढ़कर नीचता दूसरी नहीं समझी जाती। ऐसे विद्यार्थी को उसके साथी अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते हैं, उसे छूते तक नहीं और अपने खेलों में उसका बहिष्कार कर देते हैं।

सामाजिक संगठन में मनुष्यत्व की बड़ी प्रतिष्ठा है। अमरीकन विद्यार्थी कायर से बड़ी नफ़रत करते हैं। जब कोई विद्यार्थी अपनी टीम में किसी भी बड़े विद्यार्थी से अपमान सह लेता है तो उसे दूसरे विद्यार्थी बड़ा नपुंसक समझते हैं, इसलिए उस विद्यार्थी को अपनी मानरक्षा के हित लड़ाई करनी पड़ती है। वह भले ही मार खा जाये, इसकी कुछ परवाह नहीं की जाती। उसे यह साबित कर देना चाहिए कि वह अपमान को चुपके से सहन नहीं कर सकता। जब कोई बड़ा मज़बूत विद्यार्थी अपने से कमज़ोर विद्यार्थी पर हमला करता है, या कई एक विद्यार्थी किसी अकेले विद्यार्थी को सताते हैं, तो लोगों में उनके दुष्कर्म की बड़ी निन्दा होती है। अमरीकन लोगों ने अपने समाज को ऐसे नियमों पर ढाल लिया है कि वहां कायरता और अत्याचार के लिए कोई गुञ्जायश ही नहीं रह गई। बालकपन से ही माता-पिता और आचार्य बच्चों को संगठन के मूल तत्वों की शिक्षा देते हैं।

एक बार आरेगन यूनीवर्सिटी में एक भयङ्कर घटना होगई। विश्वविद्यालय के समीप ही बिलामेट नदी से निकली हुई एक बड़ी रमणीक नहर बहती है, जिसके दोनों किनारों पर सायेदार वृक्षों की क़तारें हैं। फ़ुरसत के समय विश्वविद्यालय के छात्र अपनी प्यारी युवतियों के साथ नौका में बैठकर इस नहर में जलक्रीड़ा का आनन्द लेते हैं। एक दिन एक लड़की एक नवयुवक के साथ नौका में बैठकर बिलामेट नदी के सुन्दर दृश्य देखने गई। शाम को वह अपने घर नहीं लौटी। माता-पिता ने अधिक सन्देह नहीं किया। दूसरे दिन लड़की का पिता विश्वविद्यालय के प्रेसीडेण्ट के पास आया और लड़की के गुम होने की बात कही। प्रेसीडेण्ट महोदय ने फ़ौरन भयसूचक घण्टा बजवा दिया। सब लड़के एक बड़े हाल में एकत्रित हुए। विश्वविद्यालय में छुट्टी कर दी गई और छात्र दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह लड़कों के दल बना कर उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम चारों तरफ़ तलाश करने के लिए भेजे गये। शाम को यह पता लगा कि वह लड़की अकेली नहर के जल पर नाव खे रही थी। आख़िर रात के

दस बजे उस लड़की की लाश नहर के अन्दर से मिली। ऐसा जान पड़ा कि बिलामेट नदी से जिस समय नौका नहर की ओर मुड़ी तो जल की तीव्र गति के कारण वह लड़की उसे संभाल न सकी और नाव एक पत्थर से टकरा जाने के कारण टूट गई और उसमें पानी आने लगा। इसी से वह नौका डूब गई और लड़की भँवर में फंस गई। नहर के अन्दर जो झाड़-झंकाड़ उगे हुए थे, उन्हीं में लाश फँसी हुई मिली। दूसरे दिन विश्वविद्यालय में शोकसभा मनाई गई और प्रेसीडेंट साहब ने उस लड़की के गुणों का बखान कर उसके माता-पिता के साथ हार्दिक सहानुभुति प्रकट की। इस प्रकार अमरीका में सामाजिक संगठन और पारस्परिक सहयोग की शिक्षा विद्यार्थियों को मिलती है।

ऐसे ही वाशिंगटन विश्वविद्यालय में एक बार विद्यार्थी-सभा के अधिकारियों का चुनाव होने लगा। हमारे बोर्डिंग हाउस के एक विद्यार्थी का नाम सभापति के लिए पेश हुआ। जब वोट देने का समय आया तो कई विद्यार्थी मेरे पास वोट लेने के लिए आए और उन्होंने मुझसे उस विद्यार्थी के हक़ में वोट देने को कहा। जब मैंने कुछ आनाकानी की और दूसरे बाहर के विद्यार्थी का नाम पेश किया तो वे सब मुझ पर ख़ूब बिगड़े। आख़िर मैंने उनका कहना मान लिया और उस दिन से यह बात मेरी समझ में आगई कि सामाजिक अनुशासन के लिए दल के साथ चलना जरूरी हो जाता है और वहाँ "Give and take" अर्थात् "देना और लेना" का व्यावहारिक सिद्धान्त अत्यन्त आवश्यक है। समाज में सब बातें हमारी ही मर्ज़ी के अनुकूल नहीं हो सकतीं। हमें दूसरों की सम्मति तथा उनके हार्दिक भावों का अवश्य ख़याल करना होगा। मर्ज़ी के विरुद्ध कोई बात हो जाने के कारण हम समाज के अनुशासन को भङ्ग नहीं कर सकते––ख़ासकर व्यक्तिगत स्वार्थों का बलिदान सामाजिक सङ्गठन के लिए नितान्त आवश्यक है। इसकी रक्षा करने वाले लोगों को इतनी जानकारी अवश्य चाहिए कि कहाँ पर व्यक्तिगत बातों का अन्त और सामाजिक हितों का प्रारम्भ होता है। जो समाज इस

सिद्धान्त को समझ लेता है, जिसके सदस्य इस सिद्धान्त को सामने रख कर अपनी सन्तान को इसके अनुसार शिक्षा देते हैं, उस समाज का संगठन पहाड़ की चट्टान की तरह सुदृढ़ हो जाता है।

सामाजिक संगठन की इस शिक्षा का प्रत्यक्ष प्रमाण अमरीका में बाजार, स्टेशन, स्कूल, कालेज---सभी स्थानों पर जाज्वल्यमान दिखलाई देता है। कोई भी स्त्री या पुरुष जब किसी काम को करने लगता है तो वह फ़ौरन पहले यह देख लेता है कि उसके काम से दूसरे व्यक्ति को कोई कष्ट तो नहीं पहुँचता। अतएव पठित समाज में "Pardon me" अर्थात् "क्षमा कीजिये" ये शब्द स्त्री-पुरुषों के मुख से बराबर सुनाई देते हैं और शिक्षित व्यक्ति की पहिचान इस बात से की जाती है कि उसका स्वभाव विनयी अर्थात् obliging हो। दूसरे को सेवा से प्रसन्न करना, उसकी कठिनाई को आसान करने में सहायता देना, किसी की हार्दिक वेदना में हिस्सा बटाना---ये गुण अमरीकन समाज में प्रायः पाए जाते हैं। जो विद्यार्थी अपना घरबार छोड़कर अमरीका में पढ़ने जाते हैं, वे वहाँ के गृहस्थों में ऐसे दैवी गुणों को देखकर उन पर मोहित हो जाते हैं। वे देखते हैं कि उनकी अशुद्ध अंग्रेज़ी को सुनकर अमरीकन लोग बड़े प्रसन्न होते हैं और उत्साहपूर्ण शब्द कह कर उन्हें बढ़ावा देते हैं। यूनिवर्सिटी में प्रोफ़ेसर लोग उन्हें बड़े प्रेम से अपने घर बुलाते हैं और उनसे उनके देश की बातें पूछते हैं। इस प्रकार अमरीका में गये हुए हमारे विद्यार्थी विश्वविद्यालयों की शिक्षा द्वारा समाज-सेवा का मधुर रस पान करते हैं।

एक और बड़ा क्रान्तिकारी लाभ मुझे इस उच्च शिक्षा से मिला---वस्तुओं को पहिचानने की इन्द्रिय की प्राप्ति। तुलनात्मक अध्ययन से भली-बुरी चीज़ों को पहिचानने का जो माद्दा पैदा होता है, वह व्यक्ति को जीवन-दौड़ में निश्चिन्त बना देता है। बड़े-से-बड़ा महापुरुष तथा दम्भी उसके व्यक्तित्व पर क़ब्ज़ा नहीं कर सकता। वह देख लेता है कि उसने इतने सद्गुण अमुक महापुरुष से लेने हैं और बाक़ी बातें उसके

काम की नहीं। गुण-ग्राहकता की शक्ति आ जाने की वजह से उसका हृदय मतभेद से क्षुब्ध नहीं होता और वह उस महापुरुष का मान उसके सद्गुणों के लिए वैसा ही करता है जैसा कि उसके अन्य प्रशंसक। भेद केवल इतना होता है कि अनुयायी अथवा प्रशंसक अपने गुरु के अवगुणों के प्रति अन्धश्रद्धा के कारण उदासीन से हो जाते हैं, लेकिन जिसमें वह क्रान्तिकारी इन्द्रिय आ जाती है वह वस्तुओं को बिलकुल स्पष्ट देखने लगता है। कहाँ मैंने क्या लेना है और किससे लेना है, इस पुस्तक में कौन सा उपदेश ग्राह्य है और कौन सा अग्राह्य—व्यतिरेक का यह गुण व्यक्ति में आ जाता है। विद्वानों के व्याख्यान सुनते समय उसकी चैतन्य इन्द्रिय उपयोगी वस्तुओं का संचय करती रहती है और उसकी ज्ञानवृद्धि उत्तरोत्तर होती जाती है।

महात्मा गाँधी जी के साथ मेरा पाँच वर्षों तक सम्बन्ध रहा—बड़ा घनिष्ठ—लेकिन मैंने कभी भी उन्हें निर्भ्रान्त नहीं माना। उनकी निर्बलतायें मुझसे कभी छिपी नहीं और सद्गुण सदा मुझ पर प्रभाव डालते रहे। मैं उनका जबर्दस्त पोषक रहा हूँ और मतभेद रखते हुए भी उनके गुणों का बखान करता हूँ। इस प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन की इन्द्रिय प्रत्येक जिज्ञासु और ज्ञानमार्ग के पथिक में होनी ही चाहिये, अन्यथा महापुरुषों का सत्सङ्ग उसके लिए विषवत् हो जाता है। उच्च शिक्षा का अभिप्राय यही है कि व्यक्ति अपने विवेक को विकसित करे। हमने बड़े-बड़े बी० ए०, एम० ए० तथा हाईकोर्ट के जजों को भेड़ों की तरह मूर्ख साधुओं के पीछे जाते हुए देखा है। वे अध्यात्मवाद की चाह में ऐसे उन्मत्त हो जाते हैं कि उनका विवेक भी उनसे दूर हो जाता है।

अन्त में, हम अमरीकन शिक्षा द्वारा प्राप्त उस सद्गुण का वर्णन करते हैं जिसने हमें आत्मविश्वास और आर्थिक स्वतन्त्रता के मधुर फल दिये। कहते हैं कि जिसे आर्थिक स्वतन्त्रता होती है, उसे ब्रह्मा भी डरा नहीं सकता। हमें भारतवर्ष में अपनी लड़ाइयाँ आप लड़नी पड़ी हैं।

जब हम अमरीका से विद्याध्ययन समाप्त कर अपने देश में पहुँचे तो यहाँ के किसी बड़े नेता ने हमें प्रोत्साहन नहीं दिया, किसी प्रकार की भी सहायता नहीं की, अलबत्ता हमारे मार्ग में रोड़े अटकाये। बड़े-बड़े राजनीतिक और धार्मिक लीडरों ने अपनी सभा-समाजों में हमारा बहिष्कार करवा दिया, क्योंकि हम अमरीका से आये थे स्वतन्त्र विचारों से भरे हुए और खुफ़िया पुलिस हमारे पीछे रहती थी। अमरीकन विश्वविद्यालयों की तालीम ने हमारी रीढ़ की हड्डी को ऐसा मजबूत कर दिया था कि किसी प्रकार की बाधा भी हमें विचलित न कर सकी। आर्थिक स्वतन्त्रा की कुञ्जी मुट्ठी में होने के कारण किसी सेठ-साहूकार का द्वार हमें खटखटाना नहीं पड़ा। ईर्ष्यालु लोगों ने डाह से यहाँ तक उड़ा दिया कि स्वामी सत्यदेव अमरीका से दो-तीन लाख रुपये लाया है। भगवान् उनका भला करे! इस प्रकार का असत्य प्रोपेगण्डा कर इन लोगों ने हमें प्रेमीजनों के सहयोग से भी वञ्चित कर दिया और हमें पग-पग पर कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। किसी से भय न खाने की वजह से हमारे पब्लिक जीवन में भी इन लोगों ने बहुत से काँटे बो दिये, पर उस दयालु प्रभु की कृपा से हम अपने मार्ग पर धीरे-धीरे चलते ही रहे और आज श्री गंगा जी की घाटी, ज्वालापुर में अपना स्वतन्त्र आश्रम——सत्यज्ञान निकेतन——बनाकर हम अपनी खोज में लगे हुए हैं। हम इन सब बन्धुओं को धन्यवाद देते हैं, क्योंकि रुकावटें व्यक्ति की परीक्षा लेती हैं और उसकी शक्तियों का विकास करती हैं। अमरीका का यह स्वावलम्बन का वरदान हमारा अनमोल धन है। हमने केवल आवश्यकतानुसार धनसञ्चय किया और मित-व्ययिता द्वारा उसका सदुपयोग करते रहे। हमारा है साहित्यिक जीवन और हमारी हैं अपनी विचारधारा। हमारे जैसे स्वतन्त्रता के अन्वेषक के लिए स्वावलम्बन एक रामबाण है, जो सब सिद्धियों को देनेवाला है। अतएव हम नम्रतापूर्वक उच्च शिक्षा की उस सरस्वती देवी को बड़ी श्रद्धा से बार-बार नमस्कार करते हैं।

पाठक, विश्वविद्यालय की हमारी पढ़ाई पूरी होगई। मई के अन्तिम सप्ताह तक हम परीक्षाओं से उत्तीर्ण होगये। उच्च शिक्षा का हमारा जीवन समाप्त हुआ। अब हम निकलते हैं पैदल अमरीका-भ्रमण के लिए। नई दुनिया के मेरे अद्भुत विद्यार्थी जीवन के संस्मरणों की यह गाथा है। अमरीका-भ्रमण प्रारम्भ करने के समय से लेकर बोस्टन पहुँचने तक नई दुनिया के हमारे विद्यार्थी-जीवन की अवधि पूरी हो जाती है, सो वहाँ तक होगा मेरी आत्मकथा का पहला भाग। राजनीतिक परिस्थितियों के कारण इन पुस्तकों के छपने के समय सब बातें लिखी नहीं जा सकती थीं; अब ईश्वर कृपा से सब बातें बतलाने का समय आ गया है। 'अमरीका-भ्रमण' में जो-जो स्थल मैंने जानबूझ कर छोड़ दिये थे, अब उनकी पूर्ति की जायेगी।

सारांश यह कि भावी सन्तान के लिए अमरीका के मेरे यह संस्मरण अत्यन्त रोचक और शिक्षाप्रद हों, इसका पूरा प्रयत्न किया गया है। मेरा कर्तव्य था कि मैं उन्हें सिलसिले-वार लिखकर राष्ट्र-भाषा द्वारा अपने देशवासियों की सेवा करता, सो उस अपने कर्तव्य का मैंने पालन कर दिया है। आशा है, मेरा यह प्रयास मेरे देशवासियों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा और भावी सन्तान इससे शिक्षा ग्रहण करेगी।

पच्चीसवाँ अध्याय

पैदल यात्रा द्वारा स्वतंत्रता देवी का सीधा दर्शन

मैंने अमरीका के विश्वविद्यालयों में मजदूरी द्वारा किस प्रकार विद्याध्ययन किया, इसका सविस्तर वर्णन पाठकों को पिछले चौबीस अध्यायों में मिल चुका है। मेरा सारा जीवन अनुभवों से परिपूर्ण है और मैंने सदा अपने ऊपर कष्ट सह कर सीधा ज्ञान प्राप्त करने का प्रयत्न किया है। काशी से केवल १५) लेकर अमरीका पहुँचना और वहाँ पाँच वर्ष निरन्तर विद्याध्ययन करना, घर वालों से किसी प्रकार की भी सहायता न लेकर आत्मनिर्भरता का जीवन व्यतीत करना—यह जबर्दस्त पाठ मुझे अमरीका ने पढ़ाया, जिसने सारी आयु मुझे आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त करने में बड़ी सहायता दी। इस अनमोल शिक्षा का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए मुझे अब इस विशाल देश में भ्रमण करने की आवश्यकता थी। काम था बड़ा कठिन, किन्तु उसके किए बिना मेरा अनुभव पूर्ण फलदायक नहीं हो सकता था। इसीलिए मैंने २३०० मील का पैदल भ्रमण कर अपने आपको भारत माता की सेवा करने के योग्य बनाया।

पाठकों के लाभार्थ अब मैं सबसे पहले संयुक्त राज्य अमरीका के विषय में कुछ पंक्तियाँ लिख कर उसका परिचय देना आवश्यक समझता हूँ। यद्यपि सुशिक्षित पाठक उन बातों से परिचित भी होंगे, किन्तु यह पुस्तक सब प्रकार के लोगों के फायदे के लिए लिखी जा रही है, इस कारण अमरीका भ्रमण की पृष्ठ-भूमि देकर तब मैं अपनी यात्रा को लिखना आरम्भ करूँगा।

× × × ×

पौने दो सौ वर्ष व्यतीत हुए कि नई दुनिया के उत्तरी भाग में

'यूनाइटेड स्टेट्स आव् अमेरिका' नामी एक नवीन राष्ट्र का प्रादुर्भाव हुआ। जिन वीर आत्माओं ने इस राष्ट्र का संगठन किया था उनकी संख्या केवल तीस लाख थी। 'स्वतन्त्रता देवी' के लिए जो भयंकर युद्ध उनको करना पड़ा था उसने उन्हें कंगाल तो अवश्य बना दिया, पर जो वरदान देवी ने प्रसन्न होकर उन्हें दिया, उसने इनके लिए अभ्युदय के द्वार खोल दिए। यूरोप की महाशक्तियाँ इन निर्धन देश-हितैषियों की ओर टकटकी लगाये देख रही थीं और अपनी निरंकुशता के मद में यह समझती थीं कि 'यूनाइटेड स्टेट्स आव् अमेरिका' का राष्ट्र केवल चार दिनों का पाहुना है। उन्हें स्वप्न में भी ध्यान नहीं था कि एक शताब्दी के अन्दर यह छोटी आबादी का राष्ट्र एक महाराष्ट्र बन जायगा और तीस लाख निर्धन देशहितैषी नागरिक करोड़ों की जनसंख्या वाले, धन-धान्यपूर्ण विशाल देश के स्वामी बन जायेंगे।

स्वतन्त्रता देवी की महिमा अपरम्पार है। वह राष्ट्र-संगठन जो केवल परीक्षामात्र के लिए किया गया था, संसार के लिए कैसा उन्नतिमूलक और सुखदायी सिद्ध हुआ ! जिस राष्ट्र को अपनी जन्मावस्था में माँगने पर ऋण नहीं मिलता था, आज उसकी साख सब सभ्य जातियों से बढ़-चढ़ कर है। जो जाति संसार की सब जातियों से निर्धन थी, आज वह अपनी समृद्धि से सबसे अग्रगण्य है। सभ्य संसार में आज तक जितने आविष्कार हुए है, उनमें से सबसे अधिक आविष्कार केवल अमरीकनों के बुद्धि-वैचित्र्य का फल हैं। जो देश अपनी दैनिक आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर निर्भर था वह आज सभ्य संसार के मुकाबले में सबसे अधिक गेहूँ, कोयला, सोना, पक्का माल, लोहा, मिट्टी का तेल, रुई और मक्का पैदा करता है। उसकी चीजें दुनिया की मण्डियों में बिकने जाती हैं और वहाँ के व्यापारी अरबों रुपये का लाभ प्रतिवर्ष उठाते हैं।

ऐसे धन-धान्यपूरित स्वतन्त्र देश में भ्रमण करने की मेरी बड़ी प्रबल अभिलाषा थी। १९०६ में जब मैं अमरीका पहुँचा तो सबसे पहले

मैंने अपने उद्देश्य विद्या-प्राप्ति की सिद्धि के हेतु शिकागो विश्वविद्यालय में प्रवेश किया। जून १९०६ से लेकर जून १९०७ तक में वहाँ पढ़ता रहा। जब-जब समय मिला, विद्यार्थियों के साथ इधर-उधर घूमकर सैर भी की। जून १९०७ से लेकर दिसम्बर १९०७ तक मैं मजदूरी कर रुपया जमा करता रहा। मजदूरी के लिए घूमता-घामता आयोवा, साउथ-डकोटा आदि उत्तर-मध्यवर्ती रियासतें देखता हुआ मैं आरेगन पहुँच गया और वहाँ के विश्वविद्यालय में जाकर भरती हुआ। वहाँ का साल पूरा कर फिर मजदूरी के लिए निकला। जब पढ़ने लायक रुपया होगया तो वाशिंगटन रियासत की प्रसिद्ध यूनीवर्सिटी में जाकर फिर विद्याध्ययन आरम्भ किया। यह विश्वविद्यालय सियेटल में है। यहाँ पर में फरवरी १९१० तक पढ़ता रहा। अपना अध्ययन समाप्त करने के बाद मुझे अमरीका-भ्रमण की धुन लगी।

यों तो यह धुन मुझे मुद्दत से थी पर हौसला नहीं पड़ता था कि ऐसा कठिन काम करूं। अमरीका अपने देश की तरह तो है नहीं, जहाँ एक भगवा कपड़ा पहिनने से मनुष्य सारे भारत का चक्कर सहज ही में लगा सकता है। दूसरे भारत की भांति वहाँ थोड़े-थोड़े फासले पर गांव नहीं हैं। बाज़-बाज़ रियासतों में तो पचास-पचास मील के अन्दर झोंपड़ी तक दिखाई नहीं पड़ती और किसी में मीलों बड़े-बड़े पर्वत चले गये हैं, जहाँ से अकेले पथिक का गुज़रना कठिन है। वह देश अभी तक बहुत वन्य है। सैकड़ों मील घने जंगल खड़े हैं, जहाँ रीछ-भेड़िया निर्भय होकर विचरते हैं। इसके अतिरिक्त अमरीकन कानून के अनुसार कोई भीख नहीं माँग सकता। पुलिस भिखमंगों को पकड़ कर जेल भेज देती है। मेरे पास कुल जमा आठ रुपये थे। इतने रुपयों से अमरीका-भ्रमण ?

ख़ैर, अपने इरादे को दृढ़ किया। दिल को समझाया; उसको रास्ते के भयंकर दृश्यों के चित्र खींचकर दिखाये; जंगलों, रेगिस्तानों की डरावनी तस्वीरें दिखलाईं। जब देखा कि अब इरादा पक्का है तो एक दिन

'भ्रमण' की तिथि नियत कर दी और अपना बोरिया-बिस्तरा गोल कर ठिकाने लगा दिया। जैसे पन्द्रह रुपये लेकर काशी से अमरीका जाने के इरादे से समुद्र में कूद पड़ा था, वैसे ही ईश्वर के भरोसे यह काम भी किया। प्रभु ने दोनों बार मेरी लाज रखी।

कई एक पाठक यह जानने की अभिलाषा रखते होंगे कि अमरीका-भ्रमण के विशेष कारण क्या थे? खाली 'भ्रमण' ही उद्‌दिष्ट था, या कुछ और भी? उत्तर में मैं निवेदन करता हूँ कि इस भ्रमण के चार मुख्य अभिप्राय थे--

(१) मुझे अमरीका में रहने से इस बात का तजुर्बा होगया था कि वहाँ के लोग भारत के सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक विषयों को बहुत कम जानते हैं और जो कुछ वे जानते हैं वह भी उन्हें पादरियों की रिपोर्टों से या भारतद्वेषी लेखकों के लेखों से मालूम हुआ है। इसलिए मेरा पहला उद्देश्य इस भ्रमण का यह था कि अमरीका के लोगों को भारत की वर्तमान दशा से वाकिफ करूँ।

(२) किताबों की विद्या और व्यावहारिक अनुभव में बड़ा भेद है। मनुष्य यदि किसी जाति के रहन-सहन तथा उसकी सभ्यता-संस्कृति का ज्ञान करना चाहे तो उसके लिए जरूरी है कि वह हर तरह के लोगों से खुद मिले और देश में पैदल भ्रमण करके हर बात की जाँच करे। अतएव मेरा दूसरा उद्देश्य यह था कि अमरीका की सामाजिक, राजनीतिक तथा वैज्ञानिक उन्नति का सच्चा हाल जानूँ और स्वतन्त्रता देवी का सच्चा स्वरूप अमरीकन जीवन में देखूँ।

(३) मेरी इच्छा हिन्दी साहित्य की सेवा करने की थी, अतएव मेरा पैदल भ्रमण का तीसरा उद्देश्य हिन्दी साहित्य की सेवा के लिए सामग्री एकत्रित करना था।

(४) इस भ्रमण में मेरे नौ मास खर्च हुए। ६ जून १९१० को मैं सियेटल से चला और फरवरी १९११ के अन्तिम सप्ताह में मैं न्यूयार्क

पहुँचा। इस भ्रमण में मैंने वाशिंगटन, आरेगन, केलेफोर्निया, अरीज़ोना, न्यूमेक्सिको, टेक्साज़, ओकलहामा, कन्साज़, मज़ूरे, इंडियाना, ओहाइओ, पेनसलवेनिया और न्यूयार्क---इन रियासतों की सैर की। पहली पाँच रियासतों में तो मैंने खूब ही पैदल भ्रमण किया। वहाँ की दशा को अच्छी तरह देखा-भाला। खूब सैर की। महान् कष्ट सहे। यह भ्रमण मैंने पैदल किया। यद्यपि कहीं-कहीं मौका लगने पर कूद-फांद कर ली पर वह बहुत कम। बाकी रियासतों में मैंने रेल द्वारा यात्रा की, उसका हाल भी इसी ग्रंथ में छपा है। भ्रमण करते समय मेरे पास जो डायरी थी उसी के अनुसार दिनचर्य्या रूप में मैंने यह पुस्तक लिखी है। आशा है कि मेरी यात्रा का यह विशद वर्णन मेरे पाठकों के लिए बड़ा मनोरंजक होगा।

प्यारे पाठक, 'यूनाइटेड स्टेट्स आव् अमेरिका' का नक्शा उठाइये। उसके उत्तर-पश्चिमीय किनारे पर 'सियेटल' नामी नगर की खोज कीजिए। मिला आपको ? अच्छा। यहीं से मैंने अपनी यात्रा आरम्भ की थी। आप पूछेंगे, भला सियेटल ही से इस भ्रमण का आरम्भ क्यों हुआ ? सुनिए। हमारे शास्त्रों में अपने उपास्यदेव की तीन बार प्रदक्षिणा लिखी है। यदि तीन बार न हो सके तो एक बार तो अवश्य ही करनी चाहिए। भारत से, जापान के रास्ते होकर, मैं अमरीका पहुँचा था। पृथ्वी माता की पूरी परिक्रमा तभी हो सकती थी यदि सियेटल से न्यूयार्क, न्यूयार्क से लन्दन, लन्दन से फ्रांस और इटली होता हुआ मैं भारत माता के चरण छूता। इसीलिए मैंने सियेटल से न्यूयार्क जाने का निश्चय किया। नौ महीने के बाद मैं न्यूयार्क पहुँचा। वहाँ से लन्दन, फ्रांस, इटली की सैर करते हुए अपने देश का दर्शन किया। मैंने माता वसुन्धरा की एक बार परिक्रमा कर ली, बस मेरा उद्देश्य सिद्ध होगया।

मैं निकला था घर से स्वतन्त्रता की खोज करने के लिए, सो अमेरिकन विश्वविद्यालयों में पढ़कर और स्वावलम्बन द्वारा धन कमा कर

मैंने सिद्धान्त रूप में स्वतन्त्रता देवी के दर्शन कर लिए, किन्तु अमेरिकन कस्बों, ग्रामों और नगरों में पैदल घूमे बिना उसका पूर्ण परिचय और सीधा ज्ञान मुझे नहीं मिल सकता था। इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए मैंने यह अत्यन्त कठिन कार्य करने का संकल्प किया।

अच्छा, अब मैं अपनी राम-कहानी आरम्भ करता हूं। ध्यान से सुनिए।

छब्बीसवां अध्याय

वाशिंगटन रियासत की प्रसिद्ध सियेटल नगरी

'सियेटल' वाशिंगटन स्टेट का सबसे बड़ा शहर है । भारत का ऐसा कोई नगर मैंने नहीं देखा, जिसके साथ इसकी तुलना की जा सके। समुद्र के तट पर बसा हुआ यह नगर अपनी ऊंची-नीची गलियों और सुन्दर-साफ़ झीलों के कारण मनोहारिणी छटा दिखाता है। इसके पश्चिम में चार मील लम्बी और दो मील चौड़ी इलियट नामक खाड़ी है । इसी खाड़ी द्वारा सियेटल की समुद्र सम्बन्धी तिजारत होती है । चीन, जापान, भारत तथा अन्य दूर देशों से लद्दू और यात्री स्टीमर इसी खाड़ी में आकर ठहरते हैं और यहीं से सियेटल का करोड़ों रुपये का माल देश-देशान्तरों में बिकने जाता है।

शहर के पूर्व में अठारह मील लम्बी और दो से चार मील चौड़ी वाशिंगटन नामी झील है। इसके किनारे-किनारे हरे-हरे वृक्षों और ग्रीष्म-घरों की कतारें सुन्दर दृश्य दिखाती हैं। नगर के आन्तरिक भाग में 'यूनियन-लेक' और 'ग्रीन-लेक' नामी दो और छोटी-छोटी झीलें हैं। इनके इर्द-गिर्द बड़ी-बड़ी अट्टालिकायें और बृहद् भवन धनिक पुरुषों के सुखभोग के लिए बने हैं । लकड़ी के रंगबिरंगे मकान देख कर चित्त बड़ा प्रसन्न होता है। सुबह शाम सियेटल के नवयुवक और युवतियां झीलों की स्वच्छ समीर का आनन्द लूटते हैं।

इसी सियेटल शहर की प्रसिद्ध स्टेट यूनिर्वासिटी में मैंने क़रीब दो साल विद्याध्ययन किया। शहर से बाहर झील के किनारे यह विश्वविद्यालय कैसे आनन्द का स्थान है! इसके रमणीक कुञ्जों की शीतल पवन का सुख भूल सकता है ? कदापि नहीं । वे स्वतंत्रता के दिन स्वप्नवत् बीत गये। वह विद्यार्थी जीवन क्या फिर कभी हाथ आवेगा ? यदि भारत

सनाथ होता तो मैं विद्यार्थी बन कर सारा जीवन अमरीका के विश्व-विद्यालयों में बिता देता, पर मातृ-भूमि की पुकार ने मेरा आसन हिला दिया। हज़ारों मील दूर बैठे हुए इस बालक ने माता का आर्त्तनाद सुना। फौरन सियेटल छोड़ने की तैय्यारी की। अपने पास भारत पहुंचने लायक रुपया नहीं था। विचार किया कि चलो 'अमरीका-भ्रमण' करें और घर पहुंचें।

एक छोटे से कमरे में मैं शय्या पर पड़ा हूं। रात के नौ बज चुके हैं। खिड़की के शीशे से बाहर की ओर दूर जो विद्युत् का प्रकाश है उसी को देख रहा हूँ। अपने कमरे का विद्युत् लैम्प मैंने पहले से ही बुझा दिया था जिससे अंधेरे में अच्छी प्रकार मन के घोड़े दौड़ा सकूं। मन में तर्क-वितर्क हो रहे थे—"कल 'भ्रमण' की तैय्यारी है। कहां सियेटल! कहां न्यूयार्क! जाना है; जरूर जाना है। अपने कर्तव्यपालनार्थ मनुष्य क्या कुछ नहीं करता! कल इस समय मैं कहां हूंगा? परसों कहां पहुंचूंगा? क्या करूंगा? कैसे गुज़ारा करूंगा? इतनी दूर पैदल!"

ये सङ्कल्प-विकल्प मेरे मन में उठ रहे थे। खिड़की से बाहर अपनी दृष्टि दौड़ाई दूर! दूर! अपनी माता का ध्यान किया। उसके नयनों से अश्रुपात हो रहा था। कातर स्वर से माता ने कहा—

"क्या अनाथ जननी को सनाथ करने के लिए कुछ भी तपस्या नहीं करोगे?"

लज्जा के मारे मैंने मुंह नीचा कर लिया। आंखें बंद होगईं। थोड़ी देर बाद उठ कर बैठ गया। तीन बार यह प्रतिज्ञा की—

"I will go! I will go!! I will go!!!"

बस अब क्या था, 'भ्रमण' का सङ्कल्प दृढ़ होगया। ईश्वर को धन्यवाद देकर सो रहा।

सत्ताईसवां अध्याय

रियासत वाशिंगटन की सैर

जून ५, १९१० ईसवी। आज मैंने अमरीका भ्रमण का दृढ़ निश्चय कर लिया है। सियेटल से टकोमा तक स्टीमर में जाऊंगा। वहां से पोर्टलैण्ड पैदल रवाना हूंगा। "वाशिंगटन डेली" हमारे विश्वविद्यालय का दैनिक पत्र है। उसके सम्पादक मिस्टर राय डी० पिङ्करटन से आज सुबह में मिलने गया। मिस्टर पिङ्करटन का सम्बन्ध टकोमा के प्रसिद्ध दैनिक पत्र "टकोमा लेज्जर" से है। उसमें मेरे भ्रमण विषय पर लेख छापने की आवश्यकता थी।

मैं वाशिंगटन विश्वविद्यालय के पास ग्यारहवीं गली के ४१२३ नम्बर वाले मकान के एक कमरे में रहता हूं। किराया २४) रुपया महीना देता हूं। यह मकान तिमंजिला है। इसमें सब तरह का आराम है। इस घर के मालिक का नाम मिस्टर लिटलफील्ड है। उनकी स्त्री का स्वभाव बहुत अच्छा है। यहाँ मैं घर की तरह रहा और सब प्रकार का आराम पाया।

दोपहर को मैं शहर गया। अपना बड़ा बक्स अपने मित्र मिस्टर जार्ज स्वान, वाई. एम. सी. ए. सियेटल के मन्त्री के यहां रख दिया। न्यूयार्क पहुंचने पर उसे मँगवा लूंगा। छोटा बेग अमरीकन एक्सप्रेस कम्पनी द्वारा टकोमा से पोर्टलैंड भेज दिया जायगा।

अपना सब सामान ठीक कर लिया है। कल सुबह होते ही यहां से टकोमा के लिए कूच करूंगा। परमात्मा को स्मरण कर सोने की तैयारी की। जेब में इस समय तीन डालर पचास सेन्ट हैं।

जून ६। सियेटल से टकोमा को दो रास्ते जाते हैं—एक जल द्वारा, दूसरा स्थल द्वारा। यदि रेल से कोई जाय तो किराया अधिक लगता है।

स्टीमर में किराया कम है, इसलिए प्रायः सियेटल से टकोमा अथवा टकोमा से सियेटल जाने-आने वाले लोग स्टीमर द्वारा ही जाते-आते हैं।

प्रातःकाल के स्टीमर से मैं न जा सका। ज़रा देरी होगई। इसलिए दूसरे स्टीमर की राह एक बजे तक देखनी पड़ी। टकोमा के स्टीमर पर सवार होने के लिए बन्दरगाह पर मैं ११ बजे ही पहुंच गया। वहां मैं एक हिन्दी पुस्तक पढ़ने में लग गया। बहुत से यात्री वहां बेंचों पर बैठे अपने-अपने स्टीमरों का मार्ग देख रहे थे।

यहां एक नया यंत्र देखने में आया। इसका काम इश्तिहारबाजी करना था। सियेटल की कई एक प्रसिद्ध कम्पनियों के नाम, धाम तथा काम आदि बिजली भरे हुए अक्षरों में छपे थे। धीरे-धीरे वे, बारी-बारी से, दर्शकों के सामने आते और उनको अपना गुणानुवाद सुना कर कुछ काल के लिए लोप हो जाते थे। बस दिन भर इस कल का यही काम था।

इसी के पास ही एक पिआनो रक्खा हुआ था। उसके एक ओर छोटा सा सूराख था। इस सूराख में रसिक यात्री ढाई आने का एक सिक्का डाल देते थे। तब पिआनो मीठे राग अलाप कर यात्री का दिल खुश करता था। इस पिआनो का दिन-रात यही काम था—अपने स्वामी के लिए धन पैदा करना।

आखिर टकोमा जाने वाला स्टीमर आया। मेरे पास टिकट पहले से ही था। टिकट दिखा कर मैं उस पर चढ़ गया।

आज बदली थी। शीत के कारण यात्री प्रायः अन्दर ही बैठे थे। मैं भी अन्दर ही घुस गया और कुरसी पर बैठ कर अपनी पुस्तक पढ़ने लगा। एक घंटे के बाद जी उकताया तो बाहर निकल कर घूमने लगा। देखता क्या हूं कि दो सिक्ख खाकी जीन की पोशाक पहने एक बेंच पर बैठे हैं। दूसरे यात्री उनको देख-देख कर हंस रहे हैं, क्योंकि उनके सिरों पर पगड़ियां थीं और इधर पगड़ी वालों को लोग बहुत घृणा से देखते हैं।

मेरे सिर पर टोप था। मेरा रंग भी ऐसा काला नहीं। देखने वाला शीघ्र पहचान नहीं सकता कि मैं भारतीय हूं। मुझे इन लोगों ने नहीं पहचाना। मैं इनके पास बैठ गया। मैंने इनसे कुछ हिन्दी में पूछा। एक आदमी थोड़ी अंग्रेजी जानता था। वह टूटी-फूटी अंग्रेजी में उत्तर देने लगा--हालांकि मैंने हिन्दी में प्रश्न किया था। आखिर, मैंने ठेठ पंजाबी में उनसे पूछा तो मालूम हुआ कि वे नये ही अमरीका में आए हैं। फिलिपीन द्वीप के मनीला नगर से इन्होंने सियेटल का टिकट लिया था। इसी से बिना किसी रोक-टोक के ये सियेटल पहुंच गये।

ये लोग अमरीका के धूर्तों से नावाकिफ़ थे। इसलिए सियेटल पहुंच कर स्टीमर से उतरते ही ये लोग उनके जाल में फंस गये। ज्योंही ये लोग स्टीमर से बाहर निकले, गाड़ी वालों ने इनको देखा। किस रूप में? खाकी जीन की पोशाक पहने, पगड़ियाँ बाँधे और उन पगड़ियों पर बड़े-बड़े गट्ठर रक्खे हुए! बस, फिर क्या था! गाड़ी वालों ने समझ लिया कि आज चिड़िया फँसी।

दोनों को पकड़ कर उन्होंने गाड़ी में बिठा लिया। असबाब अन्दर लाद लिया, और ले चले कहाँ? एक बहुत बढ़िया, पाँच रुपये रोज के, होटल के आगे ले जाकर उन्होंने गाड़ी खड़ी की और इन बेचारों को अन्दर से निकाला। पहले पन्द्रह रुपये फ़ी आदमी गाड़ी का भाड़ा लिया। फिर होटल में इनकी खूब दिल्लगी उड़ाई। जब इनकी यहाँ से नजात हुई और ये दोनों नौकरी की तलाश में निकले तो नौकरी दिलाने वाली कम्पनियों के जाल में फँस गये। वहाँ पाँच रुपये देने की जगह दस रुपये देकर टकोमा की तरफ़ नौकरी ढूंढने चले थे। इस बदकिस्मती को तो देखिये!

मैंने इनकी सारी कथा सुनी। दुख के सिवा और क्या हो सकता था! सियेटल में काम की कमी न थी। इन लोगों को आसानी से वहाँ काम मिल सकता था, यदि ये लोग किसी वाक़िफ़कार हिन्दुस्तानी से

मिलते। खैर, मैंने इनसे कहा कि अब जिस जगह का कागज़ तुम्हारे पास है वहां जाओ। यदि वहाँ काम न मिले तो फिर सियेटल लौट कर "मिडवे नम्बर कम्पनी" में जाना। वहां अपने यहाँ के लोग बहुत हैं। वे काम दिला देंगे।

अब एक और तमाशा देखिये। अमरीका में प्रायः सभी लोग फैशन के गुलाम हैं। काली पोशाक चाहे सर्ज की हो, चाहे बनात की, चाहे गहरे नीले रंग की, साधारणतया सब लोग उसे पसन्द करते हैं। पोशाक में अधिकतर असूल यह रक्खा गया है कि ऊपर का कपड़ा जल्द मैला न हो। अन्दर सब कोई बनियान पहनते हैं जो शीघ्र धुल सकती है। जहाँ फैशन का इतना ख्याल है और जहाँ कालर, टाई के बिना कोई बाहर नहीं निकलता, वहाँ हिन्दुस्तानी पोशाक में घूमना सचमुच एक स्वांग के सिवा और कुछ नहीं, और फिर अमरीका के उस प्रान्त में जहाँ 'हिन्दू' नाम से चिढ़ हो।

इस कारण टकोमा पहुंचते ही जब हम लोग उतरे तब सब कोई हम लोगों को देख कर घूरने लगे। वहां दो तीन टोपीवाले भारतीय मजदूर भी खड़े थे। उन्होंने मेरे साथ तो बातचीत की; पर पगड़ीवालों से वे बोले तक नहीं; कारण यह कि लोग उन पर भी हंसेंगे।

खैर, मैंने उन दो सिक्ख भाइयों को सब बातें बतला कर बिदा किया। सियेटल में दो एक मित्रों का नाम-धाम भी मैंने बतला दिया, जिससे यदि टकोमा में कार्य्य सिद्ध न हो तो सियेटल लौटकर ठिकाने पहुंच जांय। उनसे छुट्टी पाकर मैं 'यंगमैन क्रिश्चियन एसोसियेशन' में गया। यह एक बड़ी विशाल इमारत है। वहाँ बैठ कर दो चार आवश्यक पत्र लिखे। इस कार्य से छुट्टी पाने पर रात को सोने और खाने की खोज में चला।

टकोमा में उस समय एक लाख की बस्ती थी। आबादी दिनोंदिन बढ़ रही थी। समुद्र के किनारे होने के कारण लकड़ी लाने में बड़ा सुभीता

था। वाशिंगटन रियासत के जंगलों की बेहद लकड़ी यहाँ के कारखानों में आती और कटती है। कटकटा कर वह अनेक रूप में देश-देशान्तर को जाती है। शहर पहाड़ी के ऊपर बसा है। बिजली की गाड़ियां एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ती रहती हैं, परन्तु शहर में दुराचार बहुत होता है। मजदूर लोग जो पैसा पैदा करते हैं प्रायः उसको पानी की तरह बुरे कामों में खर्च कर देते हैं। शराब की दुकानें यहां बहुत हैं। यह पाश्चात्य सभ्यता की महिमा है। यहां के भारतीय मजदूरों में से दो-एक मेरे परिचित थे, इसलिए सोने व खाने का कष्ट नहीं उठाना पड़ा। भाई चूहड़खां से मेरी जान पहचान बेंकोवर की थी। मुझसे मिलकर आप बहुत प्रसन्न हुए। यथाशक्ति मेरा आतिथ्य-सत्कार भी उन्होंने किया।

मुझे दूसरे दिन पैदल जाना था। इसलिए मैं स्टेशन पर टाइमटेबल लेने गया। वहां से जब लौट रहा था तब रास्ते में मुझे एक होबो (Hobo) मिला। इस शब्द का मेरे भ्रमण से बड़ा सम्बन्ध है, इसलिए मैं इसे यहां पर लिखता हूं। इसके विषय में आगे चलकर मैं सविस्तर लिखूंगा। अंधेरा हो जाने के कारण मैं बहुत सावधानी से चल रहा था। मुझे इस होबो ने देखा तो बोला—

"Hollo ! Bum !!"—कहो "मरभुखे राम !"

मैंने हंस कर कहा—"जी हां, आप अपनी कहिए।"

"मैं भी वैसा ही हूं।"

"अच्छा, तो खूब मिले। नंगम नंग चवाल सौ।"

इतना कह मैं जरा मुस्कराया और आगे बढ़ गया। चूहड़खां मेरा रास्ता देख रहा था। वहां पहुंच कर मैंने सोने की तैयारी की। मजदूर लोग मुझे बेवकूफ़ समझते थे, क्योंकि मैं पैदल सफ़र करने चला था। एक ने कहा कि हम लोग आपको यहां से पोर्टलैण्ड का किराया दे देते हैं। पर यहां तो धुन ही और थी।

चुपचाप बिस्तरे पर पड़ गया, पर नींद नहीं आई, यह क्यों ?

जिस मनुष्य को साफ़ सुथरे बिस्तरे पर सोने की आदत हो, जो खाने और पहनने में सदा स्पर्श और घ्राणेन्द्रिय की आज्ञानुसार चलता हो, जिसको सदा अच्छे कमरे मे सोने का अभ्यास हो, वह यदि मजदूरों के बिस्तरे पर पड़ा हो तो कैसे नींद आवे! घ्राणेन्द्रिय बार-बार उससे कहती है--"है! यहाँ तो खटमल ह।" संकल्प-विकल्पों की धूम मच रही है। अन्त मे एक जबरदस्त आवाज ने सबको चुप करा दिया।

"देखो, करोड़ों भारत-सन्तान मैले-कुचैले बिस्तरों पर सोती है। उनके दुःख का अनुभव तभी हो सकता है जब उनके बिस्तरों पर सोया जाय। अपढ़ भारत-सन्तानों के दुःख को शिक्षित भारतवासी इसलिए नहीं समझते, उनके साथ इसलिए हमदर्दी नहीं करते, क्योंकि उनको अपने अविद्या-अन्धकार में पड़े हुए भाइयों के दुःखों का अनुभवजन्य ज्ञान नहीं है। देखते नहीं, ये भारतीय मजदूर तथा भारत के अधिकाँश निवासी स्वदेश में ऐसे ही बिस्तरों पर सोते हैं, क्या उनको तुम्हारी तरह साफ़ सुथरे बिस्तरों की जरूरत नहीं? क्या वे आदमी नहीं? देखो, इस अन्याय का पहला अनुभव आज मैं तुम्हें करा रहा हूँ।" बस, तसल्ली हो गई और मैं सो गया।

जून ७। प्रातः काल परमात्मा का नाम लेकर मै चूहड़खाँ के घर से चला। टकोमा में ये मेरे आखिरी घंटे थे। इसलिए इसकी अच्छी तरह झाँकी लगाना मैंने उचित समझा। टकोमा एक खाड़ी पर बसा है। यह एक छोटी-सी पहाड़ी के ऊपर सुन्दर मकानों से विभूषित और बिजली की रोशनी से अलंकृत है। आधुनिक वैज्ञानिक रीति से बसा हुआ यह शहर किसी दिन बहुत बड़ा नगर हो जायगा, क्योंकि पानी पास है और उस पर जहाज आते जाते रहते हैं। टकोमा का सम्बन्ध समुद्र के साथ होने के कारण इसकी पैदावार चीन और जापान को सीधी जाती है। लकड़ी, अनाज, रुई और दूसरी चीजें यहां से एशिया मे अन्यत्र भी जाती हैं।

इस शहर में आटे की पाँच बड़ी चक्कियाँ हैं। उनसे लाखों मन आटा पिसता है और देश-देशान्तरों को जाता है। यहाँ पर लकड़ी के भी बड़े-बड़े कारखाने हैं। उनसे पिछले साल चालीस करोड़ फीट लकड़ी काट कर बाहर भेजी गई थी। यहाँ पर धातु शुद्ध करने के भी कारखाने हैं। उनमें एलास्का, केनेडा, आरेगन आदि की खानों से निकली हुई मिश्रित धातुयें शुद्ध की जाती हैं।

यहाँ के लोग मालदार हैं। यह बात शहर को देखने से ही मालूम हो जाती है। परन्तु पाश्चात्य सभ्यता की बुराइयां भी यहाँ मौजूद हैं, जिनके चिन्ह हर जगह देख पड़ते हैं।

खैर, मैंने झांकी लगा ली और अपना रास्ता पकड़ा। दिन चढ़ गया था। मेरे पास मेरा बैग था। उसे साथ कैसे ले चलता! इससे बेहतर यही समझा कि इसे पहले ही पौर्टलैंड भेजना चाहिये, इसलिए टकोमा स्टेशन पर जाकर उसे मैंने अमेरिकन एक्सप्रेस कम्पनी के हवाले किया और ४५ सेन्ट अर्थात् डेढ़ रुपये के करीब किराया दिया। अमरीका मे ऐसी कई कम्पनियाँ हैं जिनका काम पारसलों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रेल द्वारा पहुँचाना है। एक देश से दूसरे देश को भी वे कम्पनियाँ असबाब भेज सकती हैं और वहाँ से मंगा सकती हैं। लाखों करोड़ों रुपये का माल इन कम्पनियों के द्वारा दिसावर को जाता है और वहाँ से आता है। इनकी हुंडियाँ चलती हैं और इनकी साख दुनिया के क़रीब-क़रीब सभी सभ्य देशों में है।

अपने बैग को कम्पनी वालों के हवाले कर मैंने छुट्टी पाई। अब मेरे पास कुछ पैसे कम ढाई डालर रह गये थे। कुछ असबाब साथ नहीं था, केवल एक छाता और डायरी हाथ में थी। हाँ, मेरी जेबें ज़रूर भरी हुई थीं। आधे दर्जन रूमाल, एक उस्तरा, बाल ठीक करने की कंघी, साबुन की बट्टी, एक पेंसिल, रेलवे का टाइमटेबल—बस यही चीजें मेरी पाकटों में थीं। तमंचा या और कोई शस्त्र साथ लेना मैंने उचित न समझा। रामभरोसे रेल की सड़क-सड़क चला।

आज मौसम अच्छा न था। बादल घिर आये थे; बूंदाबांदी आरम्भ होगई थी। अपना छाता ताने मैं अकेला रेल की सड़क पर जा रहा था। सड़क के दोनों ओर हरे-हरे वृक्ष थे। उनमें से वर्षा का जल टप-टप करता सुनाई देता था। अपने सामने कुछ फासले पर मैंने एक पुल देखा। उसके नीचे एक आदमी खड़ा था। मुझसे ५०० गज के फासले पर वह होगा। मैं चुपचाप बढ़ता चला गया। पुल के पास पहुँचा तो मैंने देखा कि एक बूढ़ा आदमी अपना बोरिया-बिस्तर जमीन पर रक्खे एक शिला पर बैठा कुछ खा रहा है। उसने मेरी ओर देखा। मैंने उससे बोलना उचित न समझा और आगे बढ़ता चला गया।

जब मैंने सियेटल में अमरीका-भ्रमण का इरादा किया था तब अपने एक हितैषी अमेरिकन से पूछा था कि क्या मुझे रास्ते में लुटेरे तो नहीं मिलेंगे? उसने यह कहा था कि तुमको रास्ते में डाकू तो नहीं मगर होबो (Hobo)* मिलेंगे, मगर उनके मुंह न लगना; अपने रास्ते चले जाना; उनसे अधिक मिलना-जुलना नहीं। इसलिए मैंने इस बुड्ढे से बातचीत नहीं की। अपने रास्ते चला गया। पर मुझे यह मालूम नहीं था कि दैव मुझे कई रातें इन्हीं के साथ बिताने के लिए मजबूर करेगा, जिससे मैं मनुष्य-समाज के एक दूसरे परदे का नजारा भी देख लूं।

खैर, ग्यारह बजे के क़रीब मैं लेक व्यू (Lake View) नामक जगह में पहुँचा। भूख बहुत लगी थी। सुबह कुछ खाया न था। लेक

---

*अमरीकन परिभाषा में होबो उस मनुष्य को कहते हैं जो अपना जीवन सदा सड़क पर व्यतीत करे और घूमता-फिरता रहे। रेलगाड़ी के गार्ड से आँख बचाकर सफ़र करे, भूख लगने पर भीख माँग खाये या एक-आध दिन सख्त ज़रूरत पड़ने पर काम कर ले। मौका लगे तो अधिक भूख होने पर खाने की चीज़ भी चुरा ले। मुझको इनके साथ रहने का बहुत इत्तफ़ाक पड़ा है।

व्यू टकोमा से थोड़े ही फासले पर है। यह एक छोटा-सा क़स्बा है। घर गिनती के हैं, एक दूसरे से फासले-फासले पर। यहाँ लेक-व्यू होटल है। पर मुझे तो होटल से कुछ काम न था। मुझे तो सिर्फ दूध चाहिए था, इसलिए मैंने एक वृद्ध पुरुष से दूध के लिए पूछा। बुड्ढे ने उत्तर दिया--

"भला इस समय दूध कहाँ! जिनके पास गायें है वे प्रातःकाल दुह कर दूध बेच देते हैं। सायंकाल दुह कर रख छोड़ते हैं। उस समय कोई आ जाय तो चाहे भले ही मोल ले ले। बाद को नहीं मिलता।"

देहात में जिनके गायें हैं उनके पास बहुधा दूध, छाछ, मक्खन जुदा करने वाली कलें भी हैं। वे दूध दुह कर कल से मक्खन निकालते हैं और छाछ सुअरों को दे देते हैं। मक्खन और क्रीम वे गाड़ी वाले को बेच देते हैं जो प्रतिदिन शहर से गाड़ी लेकर आता है। गाड़ी वाला बड़े बनियों का नौकर होता है। बनिये इसी प्रकार देहात वालों से माल खरीदते हैं, इसी से देहात में ढूँढने पर भी दूध नहीं मिलता। शहर में अलबत्ता मिल सकता है। मुझे होटल से मिल सकता था; मगर वह आधा पानी और अधिक दाम पर। एक और बात है; होटल से मुझे नफरत है, पर सोने के लिए जाना ही पड़ता है।

जब दूध न मिला तब मैंने एक भले घर की स्त्री से रोटी मोल लेनी चाही। वह स्त्री एक दूसरे घर को काम पर जा रही थी। मुझ से उसने कहा--

"आप यहीं ठहरिये, मैं लौट कर आती हूँ।"

"बहुत अच्छा" कह कर मैं वहीं ठहरा रहा। थोड़ी देर बाद वह स्त्री आई और मुझे अपने घर ले गई। बड़े प्रेम से उसने ले जाकर बिठलाया।

वार्तालाप करने से मालूम हुआ कि वह सोशलिस्ट है और उसने मेरे विषय में अखबारों में पढ़ा है। "टकोमा लेज्जर" नाम के अख-

बार में मेरे भ्रमण के विषय पर एक लेख छपा था । उसे इस महिला ने भी पढ़ा था । इससे बहुत काम निकला । उस स्त्री की श्रद्धा मुझ पर बढ़ गई ।

भारत के विषय में बहुत कुछ बातचीत हुई । उस भद्रा नारी का भारतवर्ष-प्रेम देखकर मैं दंग रह गया । वह तो मेरे लिए खाने-पकाने के काम में लग गई और मैं वृक्ष के साये में बैठा सोचने लगा——

“कहाँ लेकव्यू, और कहाँ भारतवर्ष ! कितना फासला । यह स्त्री वृद्धा ! इसको मेरे देश से प्रेम कैसे ? यह केवल विद्या का प्रभाव है । स्त्री शिक्षित है । शिक्षा ने हजारों मीलों की दूरी को निकट कर दिया है । दुःखी भारत के इतिहास को इस महिला ने पढ़ा है, इसी से उस पर इसका प्रेम है, इसी से भारतवासियों के प्रति इसे इतनी हमदर्दी है और यह मेरे साथ माता के तुल्य सलूक कर रही है ।”

आहा ! सुशिक्षा में कितना बल है ! भारत की नारियाँ मूर्खा हैं, भारत-सन्तान अन्धकार में है; तभी तो उनके दिल तंग हैं । घर से बाहर की खबर नहीं, अखबार पढ़ने की लियाकत नहीं, देश-देशान्तरों का हाल मालूम नहीं । उन्नति कैसे हो, विचार शक्ति कैसे बढ़े ! घी पत्ते के ऊपर है या पत्ता घी के ऊपर——ऐसी वितण्डाओं में आयु गुजर रही है । दूसरे देशों में अधिकांश औरतें अखबार पढ़ती हैं, जिन्दगी का मजा लेती हैं । यह स्त्री सोशलिस्ट है । सोशलिज्म क्या है ? इसकी जानकारी पाठक अंग्रेजी पुस्तकें देखकर प्राप्त कर सकते हैं ।

खाना तैयार हो गया । मैंने उस देवी से कह दिया था कि मैं मांस और अण्डे नहीं खाता, इससे उसने फलाहारी खाना बनाया और मेरी क्षुधा-निवृत्ति हुई । करीब बारह बज गये थे । वृद्धा से रुखसत होकर मैं पैदल चलने लगा ।

धूप निकली हुई थी । सूर्य देवता प्रसन्न थे । मैंने रेल की सड़क-सड़क चलना ही उचित समझा । रास्ते में बिस्तरे पीठ पर रक्खे हुए

तीन और आदमी मुझे मिले। ये लोग भी उधर ही जाते थे जिधर मेरा रुख था। पर मैंने कदम बढ़ाया और इनसे आगे निकल गया। खुला मैदान सामने था। कहीं-कहीं वृक्षों की कुंजें भी मिलती थीं। तीन बजे के करीब मे राय (Roy) नाम के स्थान पर पहुँचा। टकोमा से राय बीस मील की दूरी पर है। आज यहीं ठहरने का मैंने इरादा किया।

राय तीन सौ की आबादी का गाँव है। यहाँ पर भी होटल है। शराबखाना भी है। एक अखबार "राय एन्टरप्राइज़" (Roy Enterprise) वहाँ से निकलता था, जिसके दो सौ पचास ग्राहक थे। मै यहाँ के पादरी मिस्टर हंट से मिलने गया। मेरा विचार यहाँ व्याख्यान देने का था। पर पादरी साहिब भला काहे को मानते ! पादरी साहिब का पहला सवाल हुआ—"क्या आप किरानी हैं ?"

मेरा यह अनुभव पहला ही न था। अमेरिका में मैंने यह अच्छी तरह आजमा कर देख लिया था कि ईसाई पादरी प्रायः तंगदिल होते हैं। इनको विशेष करके अपने हलवे मांड़े की ही फ़िक्र रहती है। व्याख्यान देने और बाइबलें बांटने में ये बड़े होशियार, पर किसी विभिन्न विचार वाले के साथ हमदर्दी करना ये बहुत कम जानते हैं। इसी से अमेरिका में ईसाई धर्म का ह्रास हो रहा है। पादरी लोग रुपये-पैसे और मान-प्रतिष्ठा के भूखे हैं; सब अपनी-अपनी भेड़ें बढ़ाने की फ़िक्र में पड़े हुए हैं।

पादरी महाशय से निपट कर मैं "राय एन्टरप्राइज़" के सम्पादक मिस्टर बीयर के पास गया। मिस्टर बीयर वृद्ध हैं, मगर हैं बड़े मजबूत। एक कमरे में इनका छापाखाना है। खुद ही अखबार लिखते और छापते हैं, दूसरे की जरूरत नहीं। आपकी हिम्मत देख कर मै बहुत प्रसन्न हुआ। आपसे वार्तालाप किया तो मालूम हुआ कि आप हिन्दू धर्म को सब धर्मों मे अच्छा समझते हैं और आवागमन पर विश्वास रखते हैं। मैंने

हंट का जिक्र किया और उनकी तंगदिली की शिकायत की तो आप हंस कर बोले--

"वे God is love अर्थात् ईश्वर प्रेममय है--इस सिद्धान्त के मानने वाले हैं। भला वे आपको व्याख्यान क्यों देने देंगे! हाँ, अगर आप ईसाई धर्म की तारीफ करें और हिन्दू धर्म को गालियाँ दें तो अलबत्ता वे कुछ करें। वह भी तब जब आप 'Gongregationalist'* हों।"

मैंने पूछा--"क्या यहाँ एक बड़ा व्याख्यान का प्रबन्ध हो सकता है?"

मिस्टर बीयर--"यहाँ एक बड़ा कमरा व्याख्यानों के लिए है। उसका मालिक उस (हाथ के इशारे से खिड़की के बाहर) शराबखाने का मालिक है। उसके पास आप जावें तो वह जरूर ही मंजूर कर लेगा। मैं आपके नोटिस मुफ्त छाप दूंगा। लोग इकट्ठे हो जायेंगे।"

मैं--"शराबखाने में मैं कभी नहीं गया और न मैं उसके मालिक के पास जाना ही चाहता हूँ। आप इतनी कृपा करें कि जो मैं कहना चाहता हूं उसका संक्षेप अपने अख़बार में छाप दें।"

मिस्टर बीयर--"बहुत अच्छा।"

कागज-क़लम लेकर मिस्टर बीयर ने मेरे विचार लिख लिए और वायदा किया कि वे अपने अख़बार में वह सब छाप देंगे।

अपने कर्तव्य से निपट कर मैं होटल में सोने के लिए गया। और दूसरी जगह सोने को न थी, इसलिए वहीं जाना पड़ा। बारह आने के पैसे एक रात के दिये। खाने के लिए डबल रोटी और शक्कर ले आया। वही खा कर सो रहा।

जून ८ को प्रातःकाल चार बजे उठ कर और नित्य कर्तव्य से

*ईसाई मजहब के एक फिरके का नाम है।

निवृत होकर मैंने प्रस्थान किया। इस समय पाँच बज चुके थे। ठंडी हवा चल रही थी। वाशिंगटन रियासत के घने जंगल के दृश्य अब शुरू होगये थे। ऊँची पहाड़ियों के बीच से रेल की सड़कें साँप की तरह बल खाती हुई पोर्टलैण्ड को गई हैं। पहाड़ियाँ वृक्षों से लदी हुई हैं। ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की चोटियाँ आकाश से बातें करती हैं। यत्र-तत्र झरनों का शब्द हो रहा था। उनके सोतों के पास टीन के बर्तन पड़े हुए थे, जो अमेरिकन घुमक्कड़ों ने प्यास बुझाने के लिए रक्खे थे।

सुबह की सैर से बड़ा आनन्द मिलता है। जंगलों के बीच से प्रकृति की शोभा देखता हुआ मैं चुपचाप जा रहा था। सब संसार शान्त था। हाँ, प्रकृति अपनी वाणी से इस शान्ति को भंग करती थी। ज्यों-ज्यों दिन चढ़ता गया, शब्द की महिमा बढ़ती गई। पक्षियों ने अपना राग आरम्भ किया; बन-बिलारों का चीत्कार भी पहाड़ियों में सुनाई देने लगा।

मैं बढ़ता गया। सड़क पर काम करने वाले मजदूरों की भरमार दिखाई देने लगी। कहीं पचास का दल काम करता दृष्टि पड़ता, कहीं सौ का। इनमें से शायद ही कोई अमेरिकन मजदूर हो, सभी परदेशी थे। हाँ, सब का जमादार अमेरिकन था। जापानियों के दल भी काम करते थे। आस्ट्रिया, इटली, हंगरी आदि देशों के मजदूरों की अधिकता थी। यहाँ नई सड़क बन रही थी। पोर्टलैंड से टकोमा को रेल का प्रबन्ध हो रहा था। इन मजदूरों में प्रत्येक को लगभग पाँच रुपये रोज मिलते थे।

इनके ठहरने, खाने-पकाने का प्रबन्ध इस प्रकार था--किसी छोटे स्टेशन पर एक और लाइन डाल कर मजदूरों की गाड़ियाँ खड़ी की गई थीं; उन्हीं में एक गाड़ी में खाना पकता था। वहीं सब खाते थे। जापानी बावरची जापानी लोगों के लिए रोटी बनाता था। थोड़े-थोड़े फासले पर स्टेशन है। जहाँ दस-पाँच घर हुए वहीं पड़ाव डाल दिया। भिन्न-भिन्न पड़ावों पर भिन्न-भिन्न दलों के मजदूर काम करते थे।

ये पड़ाव पड़ाव ही नहीं रहते। बहुत शीघ्र ये शहर बन जाते हैं। जहाँ पानी की कमी है, या अच्छा पानी नहीं है, या बहुत दूर तक खोदने पर पानी मिलता है, वहाँ बर्फिस्तानी पर्वतों से सौ-पचास मील की दूरी से पानी लाया जाता है। एक बड़े सोते के पास तालाब खोद कर उसमें बड़े-बड़े नल लगा दिये जाते हैं। उनका सम्बन्ध छोटी नालियों से कर दिया जाता है। इस प्रकार पर्वतों के बीच मीलों दूरी पर से पानी आता है—सुन्दर, स्वच्छ, मीठा जल शहरों और गाँवों के रहने वालों को मिलता है। जहाँ पानी की किल्लत दूर हुई, वहाँ लगी बस्ती बढ़ने।

एक गुण अमेरिकन लोगों में बहुत बड़ा है। ये लोग दिक्कतों के दूर करने में बड़े निपुण हैं। सड़क-सड़क जाता था। पानी लाने के लिए लोहे के नलों को देखता था, काम करने वाले मजदूरों से बातें करता था और सोचता था—क्या हमारे देश में ऐसे प्रबन्ध नहीं हो सकते? क्या हमारे भारतीय लोग पर्वतों का शुद्ध स्वच्छ जल नहीं ला सकते? परन्तु वे अभागे गन्दे तालाबों का पानी पीते हैं, सड़े हुए कुंडों का जल काम में लाते हैं। उसी जल में उनकी गायें और भैंसें नहाती हैं, उसी जल में वे लोग कपड़े धोते हैं और उसी को पीते भी हैं। हे नाथ भारत-सन्तान को इन दुःख-मालिकाओं को दूर कीजिए। ऐसे ही जल के इस्तेमाल से महामारी और प्लेग आदि का भयानक कोप होता है, उससे लाखों के प्राण हर वर्ष जाते हैं। परमात्मा ने हमें ऐसा सुन्दर देश दिया है, जहाँ उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सब कहीं प्राकृतिक पदार्थों की बहुलता है। पर्वतों, सोतों, नदियों और खानों की कमी नहीं। यदि कमी है तो उद्योग की। कवि ने ठीक कहा है—

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्य्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

हमारे देश में कहीं भी पानी की कमी नहीं हो सकती। राजपूताना भी वर्षा ऋतु के जल को रोक लेने से बड़े-बड़े तालाबों से विभूषित हो सकता है, जिनके द्वारा लाखों एकड़ भूमि मजे में सींची जा सकती है। हमारे देश में जगह-जगह नलों द्वारा पानी लाया जा सकता है। सब लोग आनन्द और सुख से रह सकते हैं। पर उद्योग कौन करे!

खुदा ने यहां मक्खियां मारने को,
बनाये हैं खुशम जवां कैसे-कैसे ॥

सचमुच ही उद्योग बड़ी चीज है। अमेरिका में जंगलों को साफ करके घर बसाये गये। बड़े-बड़े गांव, कस्बे और शहर आबाद हो गए। कहीं गायों के झुंड के झुंड खेतों में चर रहे हैं, कहीं बैलों के; और कहीं शूकरों की मंडलियां धूप का आनन्द ले रही हैं और जो सामने आता है उसी को चट कर जाती हैं। अकेले-दुकेले किसानों के घर मीलों के घेरे में दृष्टि पड़ते हैं।

भूख लगी हुई थी, सुबह कुछ खाया नहीं था और बारह बजने पर थे। रेल की सड़क के पास ही घोड़े-गाड़ी की सड़क भी आरम्भ होगई थी, क्योंकि मैं अब पर्वतों से निकल आया था। रेल की सड़क छोड़ कर मैंने दूसरी सड़क ली। एक किसान का बारह वर्ष का लड़का घोड़े-गाड़ी पर सवार कहीं जाने को तैयार था। मैंने उससे पूछा—

"क्या यहाँ दूध मिलेगा?"

"हाँ, मिलेगा। आप उस सामने वाले घर में (हाथ से इशारा करके) जाइये और कहिए कि 'जो' (Joe) ने मुझे भेजा है। आपको दूध मिल जायगा।"

लड़के को धन्यवाद देकर मैं खेत का द्वार खोल अन्दर गया। वहाँ एक आदमी खेत पर काम खत्म करके खाना खाने जा रहा था।

मैंने उसके पास पहुँच कर दूध के लिए पूछा और 'जो' की सिफारिश भी सुनाई। वह आदमी कोई पैंतीस वर्ष का होगा। उसने मुझे आदर-पूर्वक एक वृक्ष के नीचे बिठलाया और आप अन्दर दूध लेने गया। कुछ देर बाद दूध, मक्खन और रोटी एक बर्तन में रक्खे वह बाहर आया और मुझे दिया। मैंने धन्यवाद देकर पाँच आने के पैसे उसके हाथ में दिये। यह किसान अच्छा मालदार था—नये सुन्दर घर में रहता था। दो बड़े-बड़े कुत्ते बँधे थे, जो रक्षकों का काम देते थे। बन्दूक और तमंचे तो वहाँ सभी के पास होते हैं क्योंकि स्वत्व-रक्षा मनुष्य का धर्म है।

खाने से निश्चिन्त हो, कुछ देर विश्राम कर, मैं फिर सड़क पर पहुँचा और चला। राप से सेन्ट्रेलिया नामक स्थान तीस मील था। मैं १८ मील आ चुका था। रास्ते में दो-चार जगह ठहरने से मुझे देरी हो गई थी। इसलिए अब मैंने कहीं ठहरना उचित न समझ चलने की ठानी और पाँच बजे शाम के सेन्ट्रेलिया पहुँच गया।

सेन्ट्रेलिया खासा गाँव है। बस्ती यहाँ की घनी है। कारखाने खुल रहे हैं। बहुत शीघ्र यह शहर बन जायगा। यहाँ एक अच्छा हाई स्कूल है, जहाँ शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध है।

मैं थका हुआ था, इसलिए होटल में जाकर मैंने एक कमरा लिया। १२ आने देकर मैं अपने कमरे में गया। कपड़े उतारे। फिर खटिया की शरण ली। सारी रात मुझे दीन-दुनियाँ की कुछ खबर नहीं रही।

जून ९ को सुबह छः बजे मैं उठा। हाथ-मुंह धोकर हजामत बनाई। ईश्वर का नाम लेकर कपड़ा पहना और फिर अपना रास्ता लिया।

सेन्ट्रेलिया से थोड़ी दूर पर चहेलस नाम का एक पाँच हजार की आबादी का अच्छा कस्बा है। मैं आठ बजे वहाँ पहुँच गया। इस

गाँव से दो साप्ताहिक अखबार "बिग निगेट" (Big Nigget) और "एडवोकेट" (Advocate) निकलते हैं। गलियाँ भी पक्की बन रही हैं। हाई स्कूल और बंक भी हैं। यह गाँव भी बढ़ रहा है। लोग अच्छे मालदार हो रहे हैं। जमीन की कीमत दिन-प्रति-दिन बढ़ती जा रही है।

यहाँ मैं कुछ देर घूमता रहा। एक रोटी की दूकान पर जाकर रोटी ले आया। उसको एक जगह बैठ मैं खाने लगा, जब जरा भूख शान्त हुई तो फिर कमर कसी और चला।

रेल की सड़क आज जरा खराब थी। मीलों कंकड़ों के ऊपर से चलना पड़ा। नई लाइन बनने के कारण मजदूर लोग कंकड़ बिछाने में लगे थे। छाता लिए हुए मैं उनके पास से गुजरता तो वे बहुत हँसते। क्योंकि यहाँ मर्द धूप में छाता नहीं लगाते, स्त्रियाँ ही लगाती हैं। एक मजदूर ने मेरी हँसी उड़ाते हुए कहा--

"देखना, कहीं धूप से रंग काला न हो जाय।"

मैं कुछ न बोला, अपने रास्ते चलता गया। असल में छाता धूप की वजह से नहीं लगाया था, बल्कि सूर्य की रोशनी से आँखों को बचाने के लिए छाते का उपयोग किया था। खैर, मैं बढ़ा चला गया। धूप सख्त थी। जहां जंगलों के कारण छाया मिल जाती वहीं ठंडी हवा के कुछ झकोरे मिल जाते।

चौबीस मील का सफर तै करके पाँच बजे मैं लिटिल फाल्ज़ पहुँचा। मेरे पैरों में छाले पड़ गये और थकान का क्या कहना! जब से टकोमा छूटा था, एक वक्त भी पेट भर खाने को नहीं मिला था। भला डबल रोटी और चीनी से कहीं पेट भरता है! कहीं जरा सा दूध मिल गया तो क्या हुआ! पर क्या किया जाता, मांस मुझे खाना न था।

राय में किसी ने मुझसे कहा था कि लिटिल फाल्ज़ में हमारे

भारतीय मजदूर कारखानों में काम करते हैं, सो वहाँ उनको मैंने ढूँढा। भूख सख्त लग रही थी और मिठास से मुंह बिगड़ रहा था। मैंने मन में कहा कि यदि भारतीय बन्धु मिल जायं तो खूब रोटी-तरकारी उड़े। मैंने कारखानों में जाकर बहुत देखा-भाला, मगर कहीं नहीं मिले। बाद में पोर्टलैंड जाकर पता लगा कि वे इस गाँव से कुछ मील दूर काम करते थे।

अब मैं क्या कर सकता था! पाँच आने में बिस्कुटों का एक डब्बा लिया। उन्हें खाकर तीन गिलास पानी पिया और अपने कमरे में जाकर सो रहा।

जून १० को बहुत सवेरे उठा और साढ़े चार बजे ही सड़क पर हो लिया। भूख बहुत लगी हुई थी पर उसकी कुछ भी परवा न करके बराबर चलता ही गया।

पहाड़ियाँ फिर आरम्भ होगई थीं और वृक्षों की सघनता भी थी। सात बजे के करीब कैसिल राक (Castle Rock) नामी एक छोटे से कस्बे में मैं पहुँचा। वहां एक दुकान वाली से रोटी मक्खन और नारंगियां खरीदीं। इससे भूख निवृत्त की। अब मैंने रेल की सड़क छोड़ दूसरी सड़क पर चलना आरम्भ किया। एक घर के सामने कुछ वृक्ष थे। उनकी छाया में दम लेने को मैं खड़ा होगया। उस घर की मालकिन और उसकी लड़की बाहर बरामदे में बैठी हुई पुस्तकें पढ़ रही थीं। मैं अहाते के बाहर सड़क पर खड़ा था। उस स्त्री ने मेरी ओर देखा और मुझसे पूछा--

"आप कहां से आते हैं?"

"मैं टकोमा से आता हूँ।"

"क्या पैदल सफ़र कर रहे हो?"

"जी हां।"

"आप इस देश के वासी नहीं जान पड़ते!"

"नहीं, मैं इस देश का वासी नहीं। मेरा घर भारतवर्ष में है।"

"आइए, अन्दर आकर कुछ सुस्ता लीजिए।"

महिला का आदेश पाकर मैं अन्दर चला गया और बरामदे की सीढ़ियों पर जाकर बैठ गया। उस देवी ने मुझ से भाँति-भाँति के प्रश्न किये——

"आपके देश में अकाल बहुत पड़ता है?"

"जी हाँ। भारत अकाल से बहुत पीड़ित रहता है।"

"इसका कारण क्या है? मैं ख्याल करती हूं, बहुत आबादी इसका कारण है।"

"नहीं, आबादी के कारण नहीं। देश में पैदावार तो काफी होती है पर वहाँ रहने नहीं पाती।"

"अच्छा बेरियाँ (Cherries) तो खाइए। दरख्त पर चढ़ जाइए और खाइए।"

आज्ञा पाकर मैं दरख्त पर चढ़ गया और खूब पेट भर फल खाए। इसके बाद पेड़ से उतरा और उस स्त्री से विदा होकर मैंने सड़क का रास्ता लिया।

जंगल फिर आरम्भ होगया था। पहाड़ों के दृश्य भी मनोहर थे। पहाड़ों से पानी लाने का काम यहाँ खूब हो रहा था। सैकड़ों मजदूर इस काम में लगे हुए थे, जिनको साढ़े सात रुपया रोज मजदूरी मिलती थी। छोटी-छोटी नदियों के नजारे देखता हुआ मैं दो बजे के करीब प्रसिद्ध कोलम्बिया नदी के किनारे पहुँचा। धूप की अधिकता होने के कारण मैं पसीने से तर था। चित्त ने कहा कि इस नदी में स्नान करो। फिर क्या था, कपड़े उतार किनारे रक्खे और नदी में कूद पड़ा। अच्छी तरह मल-मल कर स्नान किया। इसके बाद बनियान आदि को धोकर सुखाया भी। इस नदी के उस पार कारखानों की चिमनियों से धुंआ निकल रहा था। ये लकड़ी काटने के पुतलीघर हैं। यहाँ

लाखों फ़ीट लकड़ी प्रति वर्ष कटती है। मैंने जंगलों में कई जगह खेमें देखे। यहीं से लकड़ी काट-काटकर इन पुतलीघरों में लाई जाती है। लकड़ी के व्यवसाय से वाशिंगटन रियासत को करोड़ों रुपये की आमदनी होती है।

चार बजे मैं कलामा पहुंचा। यह कस्बा बहुत साफ़ सुथरा है। इसकी आबादी भी दिनोंदिन बढ़ रही है। आज मैंने ३० मील का सफ़र किया। कलामा होटल में एक कमरा किराये पर लेकर सोने की तैयारी की और रात सुख से काटी।

जून ११ को प्रातःकाल पाँच बजे उठ सफ़र के लिए तैयार हुआ। आज बादल घिरे हुए थे, मगर चलना अवश्य था। चल दिया। वर्षा आरम्भ होगई। मैंने भागना शुरू कर दिया। तीन घंटे खूब ज़ोर की बारिश होती रही। मेरी पतलून सब भीग गई, क्योंकि बौछाड़ जोर की लगती। पर क्या करता, लाचारी थी।

नौ बजे के क़रीब मैं बुडलान पहुँचा। वहाँ रोटी तलाश की, मगर न मिली। भूख के मारे जी घबरा रहा था, पर लाचार होकर आगे बढ़ा।

रिजफील्ड पहुँचा तो मैंने परमेश्वर को धन्यवाद दिया कि यहाँ खाने को रोटी तो मिलेगी। गाँव की ओर जाने ही को था कि किसी ने आवाज़ दी--

"हेलो, देवा !"

हैरान हो मैंने घूम कर देखा। सामने ईस्टरडे खड़ा था। मैंने आगे बढ़ कर उससे हाथ मिलाया और पूछा--

"तुम कहाँ ?"

"तुम कहाँ ?"

मैंने हंस कर कहा--"पहला प्रश्न मेरा है।"

"मुझे यह बताओ कि तुमने यह क्या शक्ल बनाई है ?"

"क्यों, क्या बुरी है ?"

"खूब अच्छी है ! सच कहो, तुम्हें रुपये की जरूरत है ?"

"बस, तुम्हारी मेहरबानी चाहिए। मैं तो सैर करने निकला हूँ।"

"भूखे रह कर सैर कैसे करोगे ? तुम्हारे चेहरे से जान पड़ता है जैसे दस दिन से रोटी नसीब नहीं हुई।"

"दस दिन तो नहीं, हां पाँच-चार दिन से पेट भर खाने को नहीं मिला।"

"अच्छा आओ, आज तुम्हें पेट भर खिलावें।"

ईस्टरडे भी वाशिंगटन के विश्वविद्यालय सियेटल में पढ़ा करता था। वहाँ से पढ़ाई अधूरी छोड़ रुपया कमाने की धुन में बाहर निकल गया था। यहां इंजिन चलाने का काम करता था। मेरी इससे अच्छी वाकफ़ीयत थी । बहुत हँसमुख और मिलनसार लड़का था, पर था खाने-पीने वाला।

मुझको साथ ले जाकर उसने अपने कमरे में बिठाया। फल खाने को दिये, बाद को भोजन तैयार करवाया। मैंने पेट भर खाना खा कर परमात्मा को धन्यवाद दिया। ईस्टरडे के साथ कुछ देर घूम फिर कर मैं चलने को तैयार हुआ। ईस्टरडे ने मेरी डायरी अर्थात् दिनचर्या में अपने घर का पता लिख दिया जिससे मै न्यूयार्क पहुंच कर उसको समाचार दूं।

अब मैंने कदम उठाया। पुतलीघरों के सिवा और कुछ देखने का न था। कोलम्बिया दरिया साथ-साथ पोर्टलैण्ड की ओर से आता है और गोबल होता हुआ अस्टोरिया पहुंचता है। वहाँ समुद्र देवता की मुलाकात करता है।

शाम को छः बजे के करीब में वेनकोवर पहुंच गया। यह गांव कोलम्बिया के किनारे बसा हुआ है। यहीं वाशिंगटन रियासत की हद पूरी

होती हैं। कोलम्बिया से उस पार आरेगन रियासत की हद है। आज भी मैं तीस मील चला था।

मुझे मालूम था कि यहां भारतीय कुलियों के घर हैं। उनकी तलाश की। दो घंटे तलाश करने पर उनका पता मिला। उनके घर पहुंचा तो उन लोगों ने आदर-सत्कार किया। मेरी रुचि के अनुकूल भोजन बनाया और सोने का भी प्रबन्ध कर दिया। ये लोग यहाँ कारखानों में काम करते हैं। साढ़े छः रुपये रोज मिलता है। हजार-बारह सौ रुपया हर साल घर भेजते हैं। बीस के करीब मजदूर यहां हैं। जिनके यहां आज मैं ठहरा था, वे सब मुसलमान थे। हिन्दू लोग दूसरी जगह रहते हैं, पर अपने तो सभी भाई हैं। भारतीय चाहे हिन्दू हों चाहे मुसलमान——भारत-सन्तान होने से देशबन्धु हैं। इसी बात की चर्चा हम लोग रात को देर तक करते रहे। बाद में मैं सो गया।

जून १२ को प्रातःकाल नाश्ता करके मैं एक मुसलमान भाई के साथ सिक्खों के घरों में गया। यहां वेंकोवर में कोई तीस आदमी काम करते हैं——आधे मुसलमान हैं, आधे हिन्दू——पर इनको हमें भारतीय ही कहना चाहिए, क्योंकि भारत माता की सन्तान होने से सभी भारतीय अपने बन्धु हैं। ये सब लोग कारखाने में काम करते हैं और पास-पास ही रहते हैं।

एक बड़ा भारी दोष मैंने इन लोगों में पाया। ये ही क्या, जो लोग पंजाब से आते हैं वे सभी सफ़ाई से मानो दूर भागते हैं। यद्यपि यहाँ इन लोगों को छः छः रुपये रोज मिलते हैं, पर इनके रहने का ढंग वही है जो भारत में था। एक कोठरी में दस-दस बारह-बारह आदमी सोते हैं और मैले कपड़े पहनते हैं। बाहर सैर करने के लिए सिर्फ अच्छा जोड़ा रखते हैं, पर नीचे के कपड़े जिनका शरीर के साथ स्पर्श रहता है प्रायः मैले होते हैं। इनको चाहे जितना समझाओ, इन पर बहुत थोड़ा असर होता है। असर हो कैसे? ये बातें बचपन से सीखनी चाहिएं। पर बचपन इन लोगों का कैसे गुजरता है, यह पाठक जानते ही हैं।

देश में अनिवार्य्य शिक्षा का प्रबन्ध हुए बिना कोई काम नहीं हो सकता। देश के बच्चों को सब प्रकार की शिक्षा देनी चाहिए। उनको सफ़ाई का महत्त्व बहुत अच्छी तरह सिखलाना चाहिए।

भाई रत्नासिंह से मेरी पहले से ही मुलाकात थी। आप मुझसे मिलने सियेटल गये थे। मैं उनके घर गया। उन्होंने मेरा बहुत आतिथ्य-सत्कार किया। वहां दोपहर तक मुझसे अनेक प्रकार की बातचीत हुई। आसपास जो देशबन्धु रहते थे वे भी मेरा आना सुनकर वहां इकट्ठे होगये। इन लोगों में किसी के भी सिर पर बाल न थे। सभी ने टोपियाँ पहनी थीं। वार्तालाप अधिकांश शराब के विषय में हुआ। ये लोग शराब पीते थे। केवल मुसलमान भाई ही इससे बचे हुए थे। मैंने इनके सामने शराब की बुराइयों का चित्र खींचा और समझाया कि भारत-माता को कैसे पुत्रों की आवश्यकता है। एक भाई ने प्रश्न किया——

मुन्शीराम——"थोड़ी सी शराब पी लेने में कोई हरज नहीं। हां, ज्यादा पीना नुकसान करता है।"

मैं——"प्यारे भाई, एक पैसे की चोरी करने वाला भी चोर है और एक सौ डालर की चोरी करने वाला भी चोर है।"

मुन्शीराम——"चोरी में और शराब में फ़रक है। चोरी से हम दूसरे की चीज़ चुराते हैं, शराब से किसी की हानि नहीं करते।"

मैं——"अच्छा देखिए, मैं आपको थोड़े में इसकी हानियां समझाये देता हूँ।" सब लोग ध्यान से मेरी ओर देखने लगे। क्योंकि मुन्शीराम इन सबमें पढ़ा-लिखा था, और उसका इन पर अच्छा प्रभाव था, इसलिए ये लोग यह जानना चाहते थे कि मेरा कहना ठीक है या मुन्शीराम का।"

मैंने कहा——"आप इस देश में रुपया कमाने के लिए आए हैं। आपकी स्त्री है, माता-पिता हैं। आपका फ़र्ज है कि एक पैसा भी फ़जूल ख़र्च न करें। सभी बचाकर घर भेजें जिससे घर का दरिद्र दूर हो। शराब में आपके

दो-चार डालर महीने में खर्च हो जाते है । देश में दस-बारह रुपये से महीने भर का खर्च चलता है ।

"दूसरे, शराब से शारीरिक हानि होती है । पहले आप थोड़ी पियेंगे, फिर चस्का लग जाने से अधिक पीना आरम्भ करेंगे । हर बुराई का आरम्भ थोड़े मे ही होता है । वृद्धि धीरे-धीरे होती है ।

"तीसरे, आप पढ़े-लिखे हैं । आपका सम्बन्ध बीस-पच्चीस अनपढ़ लोगों से है । वे आपको अपना आदर्श समझते ह । एक आपकी मिसाल से बीस-पच्चीस लोगों का आचार बिगड़ता है, क्योंकि ये लोग समझते हैं कि जब पढ़ा-लिखा मुन्शीराम शराब पीता है तब हमें क्या डर है ! आप शायद इतने संयमी हों कि थोड़े में ही आपकी तृप्ति हो जाती हो, पर इन अनपढ़ों को दो-दो, चार-चार बोतलें चाहियें । देखिए, आपकी बदौलत कितनी हानि हो रही है ।

"चौथे, आप ऐसे देश के रहने वाले हैं जहां ९३ फी सदी लोग अनपढ़ हैं । देश के बच्चों को शिक्षा नहीं मिलती, काफी स्कूल नहीं हैं । आप यहाँ बीस-पच्चीस आदमी मिलकर दो-तीन सौ रुपये की शराब हर महीने पीते है । आपका दिल पत्थर का है जो देश की वर्तमान दशा को देख कर भी नहीं पसीजता । इस दो-तीन सौ रुपये महीने से कई गाँवों के स्कूल चल सकते हैं । वहाँ हजारों बालकों को विद्यादान मिल सकता है । उनकी आँखें खुल सकती हैं ।

"पांचवें, आपमें से कौन ऐसा है जिसको देश के दुर्भिक्ष का ज्ञान नहीं ? वहां लाखों आदमी भूख से मर जाते हैं । क्या यह लज्जा की बात नहीं है कि हमारे देशबन्धु तो भूखों मरें और हम यहां शराब के प्याले उड़ावें ?"

इस वार्तालाप का बहुत अच्छा असर हुआ । एक भाई ने अपने घर से शराब की बोतलें निकाल कर उनको चकनाचूर कर दिया । इसी प्रकार दूसरे दो-तीन भाइयों ने भी किया और देश-सेवा का प्रण किया ।

दोपहर को खाना खाकर मैं सेन्ट जान चला गया।

बेंकोवर वाशिंगटन रियासत की हद है। आरेगन और वाशिंगटन को कोलम्बिया नदी विभक्त करती है। उत्तर-पश्चिम में वाशिंगटन की रियासत है और दक्षिण-पूर्व में आरेगन की।

कोलम्बिया नदी का भी हाल सुन लीजिए।

यह महानदी उत्तरीय राकीज पर्वत-श्रेणियों से आती है। पर्वतों, पहाड़ियों, मैदानों से होती हुई पैसेफ़िक महासागर में जा गिरती है। करोड़ों रुपये का फायदा इस नदी की बदौलत आरेगन और वाशिंगटन वालों को होता है। इसके किनारे-किनारे पुतलीघरों, कारखानों और पनचक्कियों की भरमार है। इस नदी द्वारा बड़े-बड़े स्टीमर आते-जाते हैं। अमरीका वालों ने लाखों रुपये खर्च करके इस नदी पर पुल, फाटक, बंद आदि बना लिये हैं, जिससे स्टीमरों के आने-जाने में रुकावट नहीं होती। सौ मील तक इसमें बड़े-बड़े सामुद्रिक स्टीमर आ-जा सकते हैं, इस कारण माल लाने में बड़ा सुभीता है। इसके पानी की गति खूब तेज है। जब बड़े-बड़े जहाज लकड़ी, अनाज, फलों आदि से लदे हुए दीखते हैं, तब बड़ा आनन्द आता है। कहते हैं, किसी समय हमारी पुण्यतोया जाह्नवी में भी ऐसे दृश्य दीख पड़ते थ।

कोई दो सौ मील तक यह नदी आरेगन और वाशिंगटन रियासतों की हद का काम देती है। इसके किनारे दौड़ती हुई रेलगाड़ियाँ सुबह-शाम दिखाई देती हैं। जब सन् १९०७ ई० में मैं शिकागो से पौर्टलेंड आया था तब इसी रास्ते से कोलम्बिया नदी के किनारे का दृश्य खूब देखा था।

इस नदी से एक और बड़ा भारी लाभ है। सामन मछली की पकड़ से भी करोड़ों रुपये की आमदनी यहाँ के लोगों को है।

बेंकोवर से सेन्ट जान जाने के लिए पहले अग्निबोट द्वारा नदी पार करनी पड़ती है। फिर बिजली की गाड़ियों पर सवार होकर पोर्टलेंड या

मेन्ट जान जा सकते हैं। रेल द्वारा जानेवाले वेंकोवर स्टेशन से टिकट लेकर जाते हैं। जैसा जिसको सुभीता हुआ वह वैसा ही करता है।

मेन्ट जान भी एक छोटा सा कस्बा है। यहाँ भी बड़ी-बड़ी मिल हैं। इन मिलों में लाखों फ़ीट लकड़ी कटती है और दिसावर को भेजी जाती है। यहीं भारतीय कुलियों का गोरे कुलियों से झगड़ा हुआ था।

मैं शाम को वहाँ पहुंचा। रविवार होने के कारण सबको छुट्टी थी, इसलिए सब लोग घर पर ही मिले। मिस्टर काशीराम यहाँ सबके मुखिया थे। उनसे मेरी पहले की जान-पहिचान थी। मुझे देखकर बड़े प्रसन्न हुए।

रात को भोजन कर मैं सो रहा।

यहां वाशिंगटन रियासत का छोर है। अच्छा होगा यदि इस रियासत के विषय में कुछ अधिक लिखूं, क्योंकि फिर इस पथिक को पीछे फिर कर देखने का अवसर नहीं मिलेगा।

वाशिंगटन रियासत यूनाइटेड स्टेट्स के उत्तर-पश्चिम में है। इसके उत्तर में ब्रिटिश-कोलम्बिया, दक्षिण में आरेगन रियासत, पूर्व में इडाहो रियासत और पश्चिम में प्रशान्त महासागर है।

इस रियासत में कैसकेड नाम की पर्वत-श्रेणियां उत्तर से दक्षिण को चली गई हैं। उनका कुछ-कुछ रुख पश्चिम को होने से यह रियासत दो भागों में विभक्त होगई है। इन पर्वत-श्रेणियों में मौन्ट रेनियर १४,३६३ फ़ीट, मौन्ट आदम्स १२,४७० फ़ीट, मौन्ट बेकर १०,८७२ फ़ीट और ग्लेशियर पीक १०,४३३ फ़ीट ऊंची हैं।

इन पर्वत-श्रेणियों और प्रशान्त महासागर के प्रभाव से इस रियासत के पूर्वी और पश्चिमी भागों की आबोहवा में बड़ा भेद है। कहीं बहुत गर्मी होती है, कहीं बहुत सर्दी। पश्चिमी भाग में वर्षा बहुत होती है। यह पश्चिमी भाग उपजाऊ भी बहुत है; खेती यहां खूब फलती-फूलती है। पूर्वी भाग में आबपाशी के बिना काम नहीं चलता।

वाशिंगटन रियासत में अधिकांश खानें कोयले की हैं जिनसे सन् १९०७ में ३६,८०,५६२ टन कोयला निकला था। इसकी कीमत २,३०,३९,४०३ रुपया समझिए। कोयले के सिवा सोने, चाँदी, तांबे और जस्ते की भी खानें यहाँ हैं। लोहे की खानों का भी पता चला है।

जंगल तो इस रियासत में बहुत ही बड़े-बड़े हैं। कैसकेड पहाड़ों के पूर्वी भाग में तथा कोलम्बिया नदी के उत्तर में देवदार आदि के घने जंगल हैं। इन पर्वतों के पश्चिमी भाग में फर (Fir) के जंगल ४,००० फ़ीट की ऊंचाई तक चले गये हैं और प्रायः समुद्र तक फैले हुए हैं।

इस रियासत को मछलियों के व्यापार से बड़ा लाभ है। सन् १९०४ में इस व्यापार में १,५९,५७,६०३ से अधिक रुपया लगा हुआ था और नौ हज़ार मज़दूरों की रोज़ी इससे चलती थी। उस साल कोई ३० लाख डालर की मछलियां बिकीं। एक डालर उस समय तीन रुपये के बराबर समझकर हिसाब लगा लीजिये। मछलियां टीनों में बन्द करके बाहर भेजी जाती हैं।

खेती का तो कहना ही क्या है! यह रियासत सारी दुनिया में खेती के लिए प्रसिद्ध है। १९०८ में मकई, गेहूं, जौ, आलू आदि सब मिला कर कोई १३ करोड़ रुपये की उपज हुई। कुछ ठिकाना है! अमरीका के आदमियों को देख कर तबियत खुश हो जाती है। सभी हट्टे-कट्टे, सुन्दर, सुडौल। क्यों न हों? जब खाने पहनने को इतना मिलता है तब क्यों न वे हृष्ट-पुष्ट हों! एक हमारा देश है जहाँ किसान भूखों मरते हैं!

गेहूं की यहाँ दो फ़सलें होती हैं—एक सरदी में, दूसरी वसन्त में। स्नेक नामक नदी के दक्षिण भाग में तथा स्पोकेन नाम की नदी के आस-पास गेहूं की फ़सल बिना सींचे ही होती है। अलफ़ालफ़ा नाम की घास बिना सींचे नहीं होती है। इस घास के विषय में मैं फिर कभी लिखूँगा, क्योंकि इसकी पैदावार से भारतीय कृषकों को बहुत लाभ हो सकता है।

अमेरिका में घोड़ों से खेती होती है। गाय दूध के लिए और बैल मांस के लिए पाले जाते हैं। खेती के लिए घोड़ों ही की अधिक जरूरत

होने के कारण किसान लोग घोड़े भी पालते हैं, पर बैलों, भेड़ों और सूअरों की खपत अधिक होने से इनको वे ज्यादा पालते हैं। इनसे भी लाखों रुपये की आमदनी होती है।

वाशिंगटन रियासत में कल-कारखाने भी बहुत हैं। जहां जल-प्रपात से कलें चलाने का सुभीता है अथवा जहां कहीं नदियाँ पास हैं, वहीं कारखाने खोल दिये गये हैं।

अब जरा शिक्षा का भी वृत्तान्त सुन लीजिये।

रियासत की ओर से एक स्टेट सुपरिन्टेन्डेन्ट शिक्षा विभाग के लिए चुना जाता है। वह चार बरस तक रहता है। रियासत के गवर्नर तथा सेनेट की ओर से उसके चार सहायक मुकर्रर किये जाते हैं। इन पांचों की मण्डली को स्टेट बोर्ड आफ् एजुकेशन (State Board of Education) कहते हैं। हर एक कौन्टी* में अपने-अपने सुपरिन्टेन्डेन्ट का चुनाव लोगखुद करते हैं, जो दो वर्ष तक अपने पद पर रहता है। हर जिले में तीन वर्ष के लिए तीन डाइरेक्टरों का चुनाव होता है। यह सब यहाँ वालों के ही हाथ में है। जिले के डाइरेक्टर उचित शिक्षा का प्रबंध करते हैं। साल में कम से कम छः महीने स्कूल जरूर खुले रहते हैं। ६ वर्ष के बच्चे से लेकर २१ वर्ष तक के युवक यहाँ शिक्षा पाते हैं। ८ वर्ष की उम्र से १५ वर्ष की उम्र वाले बच्चों को स्कूल जाना लाजमी है। बड़े कस्बों में हाई स्कूल खोले गए हैं।

इस सुप्रबंध का यह फल हुआ कि सन् १९०० की मर्दुमशुमारी में दस वर्ष की उम्र वाले बालकों में केवल ३ फी संकड़ा अनपढ़ निकले। १९०७ में ६ वर्ष से लेकर २१ वर्ष तक के विद्यार्थियों की संख्या २,३५,०६१ थी। शिक्षकों की संख्या ६,२०९ थी, जिनमें ४,९५२ स्त्रियाँ थीं। रियासत की ओर से शिक्षा में कुल ५५,०३,८९६ डालर खर्च किया गया था।

*कई जिलों को मिलाकर एक कौन्टी बनती है।

रियासत की ओर से एक बड़ा भारी विश्वविद्यालय सियेटल में है और एक कृषि कालेज पुलमेन नामक शहर में है। इन दो भारी विद्यालयों के अतिरिक्त और भी कई कालेज भिन्न-भिन्न शहरों में हैं जो चन्दे और दान से चलते हैं।

और भी सुन लीजिये। दान का भी यहाँ एक महकमा है। यह नहीं कि आंख बन्द करके पंडे जी महाराज के नाम संकल्प पढ़ दिया कि अमुक-अमुक पुण्यक्षेत्र में, अमुक यजमान ने, अमुक तिथि को इतना दान दिया; बस होगया, और दाता ने छुट्टी पाई; पहुंच गए वैकुंठ !

यहाँ दान के महकमे के अधिकारी योग्यायोग्य कार्यों का विचार करके दान का उपयोग करते हैं। उसके द्वारा पागलों के अस्पताल, उद्दण्ड लड़कों के सुधार के स्कूल, लंगड़े-लूले नौजवानों के लिए शिक्षणालय आदि कई एक उपयोगी शाखाएं खोली और चलाई जाती हैं।

वाशिंगटन रियासत में सियेटल, टकोमा, स्पोकेन और बालावाला आदि प्रसिद्ध नगर हैं।

१३ जून सोमवार से मैंने आरेगन रियासत का भ्रमण आरम्भ किया। पहले चार-पांच हफ्ते मैं पोर्टलैन्ड शहर मे रहा। क्यों रहा ? कैसे रहा ? क्या किया ? क्या देखा ? इन सब प्रश्नों का उत्तर आगे चल कर मिलेगा।

अट्ठाईसवां अध्याय

रियासत आरेगन के मनोहर दृश्य

१३ जून सोमवार से २४ जुलाई रविवार तक मैं पोर्टलैण्ड में रहा। इतने दिनों तक मैं क्यों एक स्थान में रहा, इस प्रश्न का उत्तर मैं अपने इतने दिनों की दिनचर्य्या में दूंगा। इस दिनचर्य्या को जुदा जुदा तिथि देकर न लिखूंगा; पांच-पांच, छः-छः दिनों के हालात इकट्ठे लिखकर पाठकों का मनोरञ्जन करूंगा। हां, खास-खास दिनों की दिनचर्य्या अपने पिछले ढंग के अनुसार लिखूंगा।

सबसे पहले मैं पोर्टलैण्ड शहर तथा उसके इर्द-गिर्द के क़स्बों का हाल बतलाता हूं। इससे पाठकों को मेरी दिनचर्य्या समझने में आसानी होगी।

पोर्टलैण्ड आरेगन रियासत का प्रधान नगर है। इसकी आबादी ढाई लाख से ऊपर है। मेरी राय में यह शहर प्रशान्त महासागर के किनारे बसे हुए सब शहरों से खूबसूरत और अच्छा है। यह ऐसी जगह बसा है जहां बड़े-बड़े जहाज़ समुद्र से आते जाते हैं। प्रशान्त महासागर इस जगह से १२० मील है। पर पोर्टलैण्ड के निवासियों के लिए वह उनके द्वार पर ही है। गहरे पानी की नदी के किनारे के कारण इस शहर को वैसा ही सुभीता है जैसा समुद्र-तट पर बसे हुए नगर को प्राप्त होता है। जिसको जापान, चीन या भारत जाना हो वह पोर्टलैण्ड से स्टीमर पर सवार होकर अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच सकता है। यहां दुनिया की चीज़ों की ख़रीद व फरोख्त होती है। प्रायः सब जातियों के स्टीमर इस शहर के बन्दरगाह में अपने-अपने झंडे उड़ाते हैं।

इस नगर की उन्नति बहुत शीघ्र हुई। सन् १९०० में इसकी

आबादी नब्बे हजार थी । दस बरस बाद अढाई लाख के ऊपर हो गई है ।

इतनी उन्नति का कारण यह है कि पोर्टलैण्ड का सम्बन्ध दो नदियों--विलामेट और कोलम्बिया--के साथ होने के कारण 'इसका सम्बन्ध उन नगरों से भी होगया है जो इन नदियों के किनारे बसे है। जो पैदावार उन नगरों मे होती है या वहाँ आती है वह शीघ्र ही थोड़े किराये में पोर्टलैंड पहुंच जाती है और वहां से दिसावर को भेजी जाती है । इससे दुकानदार और किसान दोनों ही अधिक खर्च से बचते हैं । दूसरे यह कि पोर्टलैंड रेलवे का बड़ा भारी जक्शन है; न्यूयार्क, शिकागो, सेंटपाल, ओहामा, साल्ट लेक सिटी, बेंकोवर बी० सी०, सनफ्रांसिस्को आदि से रेल द्वारा इसका सम्बन्ध है । सदर्न पैसेफ़िक कम्पनी का यह अड्डा है; मुसाफिरों को सब तरह का सुभीता हे । इन कारणों से इसकी आबादी दिन प्रतिदिन बढ़ती गई ।

शहर में गली-गली बिजली की गाड़ियाँ दौड़ती है। इर्दगिर्द के कस्बों से भी इसका सम्बन्ध है, जहाँ दो चार आने देने से आदमी जल्द पहुँच जाता है ।

नगर की खूबसूरती देखने लायक है। सुन्दर-सुन्दर ऊँचे भवनों से सुसज्जित, साफ़-सुथरी, चौड़ी, पक्की गलियाँ दर्शकों का मन मोह लेती हैं। शहर के इर्दगिर्द पहाड़ों के दृश्य बड़े ही मनोहर हैं । बर्फ से ढकी हुई पर्वतों की चोटियाँ शहर से दीख पड़ती है । इन पर्वतों तथा समुद्र की वायु के कारण पोर्टलैण्ड की आबोहवा बहुत स्वास्थ्यकर है ।

शहर में शिक्षा का प्रबन्ध भी बहुत उत्तम है । कई अच्छे-अच्छे हाई स्कूल हैं, अस्पताल हैं, दो-चार कालेज भी है । हर साल जून में यहाँ एक बड़ा भारी मेला होता है, उसको गुलाबोत्सव (Rose Festival) कहते हैं । इसम गुलाब की भरमार रहती है । घर, द्वार, हवेलियाँ, दुकाने, गाड़ियाँ, सड़क सभी गुलाब के फूलों से सुसज्जित होती हैं । दूर-दूर से लोग मेला देखने आते हैं । बड़ा आनन्द आता है ।

जब मैं पोर्टलैण्ड पहुँचा तब मेला ख़त्म हो चुका था, इससे देखने में नहीं आया। हाँ, मैंने मेले के पोस्ट कार्ड ख़रीद लिए थे। उनसे इस मेले के दृश्यों का बहुत कुछ आनन्द मिला।

जून १३ से जून १८ तक। इस सप्ताह में सेंट जान मे रहा। इन दिनों सेंट जान वाले मुक़दमे की पेशियां पोर्टलैण्ड में होती थीं अतएव मुक़दमे की बहस सुनने के लिए में पोर्टलैण्ड भी चला जाया करता था। भारत-वासी और गोरे कुलियों से इस मुक़दमे का सम्बन्ध था। गोरों ने भारतीय लोगों पर ज्यादती की थी। जज महोदय ने पक्षपातरहित होकर अपना काम किया। पोर्टलैण्ड के ब्रिटिश कौंसल ने भी हमारे आदमियों के साथ बड़ी महानुभूति प्रकट की और यथाशक्ति उनकी सहायता भी की। सेंट जान वासी अमेरिकन सज्जनों ने भी हमारे आदमियों को निर्दोष प्रकट किया और गोरे मजदूरों के अगुवा डिक्की की उद्दण्डता सप्रमाण सिद्ध की।

शहर के दैनिक पत्र हमारे आदमियों के विरोधी थे क्योंकि वे पक्षपाती थे। उनको अपने अख़बारों की बिक्री अभीष्ट थी। प्रान्त के जन-साधारण का मत-प्रवाह भारतीय मजदूरों के प्रतिकूल था, इसलिए दैनिक पत्र भी उसी के साथ-साथ बहते थे।

शहर में इस मुकदमे की बड़ी चर्चा थी। बहुत लोग पेशी के दिन मुकदमे की कार्रवाई देखने आया करते थे। इस तरफ समुद्र तट पर दूसरी-दूसरी जातियों के लोग आकर अधिक बस गये हैं। अपने देश में ये लोग निर्धन थे, अब यहां आकर धनी हुए हैं। यही लोग अफ़लातू के नाती बन बैठे हैं। हम लोगों को ये परदेशी (Foreigners) बतलाते हैं और आप अमेरिकन बनते हैं। ऐसे ही लोग अधिकतर हमारे मजदूरों से झगड़ा करते हैं क्योंकि इन लोगों के दिल छोटे होते हैं। पहले कभी अच्छे दिन देखे नहीं थे, अब एक ऐसे धन-धान्य-पूरित देश में आ गये हैं जहां सब तरह की सुभीता है, इससे अपने आपको बहुत बड़ा समझते हैं; अपने से कम-

ज़ोर और सहायहीन पर अत्याचार करते हैं। ऐसे ही लोगों के भड़काने से यहां इस तरह के झगड़े होते हैं। मैं इन लोगों के साथ रहा हूं। मैंने कारखानों में इन लोगों के साथ काम किया है। जब तक इन लोगों को पता नहीं था कि मैं भारतीय हूँ तब तक तो कुछ नहीं, सब ठीक था; ज्योंही इनको पता लगा कि मैं एक ऐसे देश का हूँ जिसका कोई माई-बाप नहीं है, त्योंही ये मेरे पीछे पड़ गये।

मैं अधिक समय तक सेंट जान ही में रहा। श्रीयुत काशीराम ने मेरे साथ बहुत अच्छा वर्ताव किया, जिसके लिए मैं उनका बड़ा कृतज्ञ हूँ।

शनिवार, जून १८। आज का सारा दिन मेरा इधर-उधर लोगों के पास आने जाने में ही खर्च हुआ, क्योंकि मेरा इरादा भारतीय मजदूरों को एकत्र करके एक सभा करने का था। हमारे देशवासियों को अभी तक एक जगह बैठना नहीं आता। उनके हृदय मे मत-मतान्तरों के झंझट घुसे हैं; धार्मिक सहनशीलता उनमें नहीं; इसीलिए हिन्दू अपने को मुसलमान से पृथक् और सिक्ख भी अपने को मुसलमान से पृथक् समझता है। इन लोगों में अभी तक जातीयता का भाव नहीं। सब मिला कर कोई दो सौ भारतीय बन्धु यहाँ कारखानों में काम करते थे।

सभा के लिए जगह दरकार हुई। मैंने पोर्टलैण्ड में यंगमेन क्रिश्चियन एसोसियेशन के मंत्री महोदय से आज्ञा लेकर उनके सभा-भवन में सभा करने का प्रबन्ध किया और सब लोगों को सूचना दे दी कि रविवार, १९ जून को शाम के छः बजे सब लोग पोर्टलैण्ड पहुंच जायें।

रविवार, जून १९। प्रातःकाल मैं वेंकोवर गया और वहाँ सब भाइयों से सभा में आने की प्रार्थना की।

नियत समय पर लोग आने लगे। अच्छी-अच्छी पगड़ियाँ बांधे 'मानर्क लम्बर कम्पनी' के सिक्ख भाई बड़े शौक से आये। सेंट जान और वेंकोवर से भी कुछ लोग आये। भजन-कीर्तन के बाद मैंने सभा का उद्देश्य समझाया।

सेंट जान वाला मुकद्दमा लोगों के दिलों पर ताज़ा था। इसलिए उनसे कहा गया कि इस झगड़े में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख सभी एक होकर न रहे तो गोरे कुली सारे आरेगन प्रान्त मे भारतीय कुलियों को मार कर निकाल देंगे। एक माता के पुत्र होने से सभी भाई-भाई हैं। सब भाइयों को एक होकर रहना चाहिए। हम लोग परदेश में हैं, अतएव यहाँ हमारे देशवासी ही हमारे बन्धु हैं। यदि हम लोग यहाँ भी मजहब-सम्बन्धी पक्षपात में डूबे रहेंगे तो इसका परिणाम बहुत बुरा होगा।

फिर सबसे प्रार्थना की गई कि सप्ताह में एक बार अवश्य सब लोग मिला करें, जिसमे सब के दिलों मे मतमतान्तर के गोरखधंधे निकल जायं और जातीयता के भाव उत्पन्न हों।

२० जून से ३ जुलाई तक। कोई विशेष बात नहीं हुई। लोगों से मिलने और कल-कारखाने देखने में मेरा समय गया।

जुलाई ४। आज का दिन अमेरिकन लोगों के लिए बड़े गौरव का है। आज ही के दिन अमेरिका की विजय-पताका उड़ी थी। आज ही के दिन, १७७६ मे, अमेरिका के प्रतिनिधियों ने स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र दिया था। इस दिन को अमेरिकन लोग अपनी जाति का जन्म-दिन मानते हैं; आज वे खूब उत्सव मनाते हैं। मैं भी एक मित्र के साथ प्रातःकाल ही भोजनादि से निवृत होकर बाहर निकला। हम दोनों ४ जुलाई की महिमा देखने चले। बाजार, दुकानें, घर सब अमेरिका के जातीय झंडों से सुशोभित थे। श्वेत तारागणों के समूह को नीले आकाश में चमकते देख किसका मन प्रसन्न नहीं होता! ऐसा सुन्दर झंडा दूसरी जाति का नहीं है। अमीर लोगों ने अपनी गाड़ियों और टोपियों को भी क़ौमी झडियों से सजाया था। बाजारों में बड़ी भीड़ थी। लड़के, लड़कियाँ, वृद्ध, बालक, स्त्री-पुरुष सभी आज बन-ठन कर बाजारों में घूमने निकले थे। कोई-कोई रामदुलारे अपनी प्रियाओं का हाथ पकड़े हँसते-बोलते जा रहे थे।

गाड़ियाँ आज खचाखच भरी हुई थीं। सभी यह आनन्दोत्सव मनाने के लिए घर से निकल पड़े थे। उत्सव के प्रोग्राम सप्ताहों पहले बना लिए गए थे।

हम दोनों मित्र भी पोर्टलेंडवासियों के आनन्द से आनन्दित होते चले जाते थे। हमने विचार कर लिया कि आज वेंकोवर चल कर जलसा देखेंगे। उधर कोलम्बिया के किनारे कई तरह के खेल-तमाशे होने वाले थे।

धकापेल में हम भी गाड़ी पर चढ़ गये; पर इधर के धक्के गँवारी धक्के नहीं, सभ्यता के धक्के होते हैं। इनमें "I beg your pardon" (क्षमा-प्रार्थी हूं) का आनन्द मिलता है। हृष्ट-पुष्ट, सुन्दर नौजवान, कोट पतलून पहने, अपने मित्रों से हँस-हँस बातें करते थे। उनको देखकर मेरे दिल में न मालूम क्या-क्या तरंगे उठने लगीं! मै विचार-सागर में डूब गया, मेरी अन्य सारी ज्ञानेन्द्रियां मन में घुस गईं; मेरे मित्र को इसकी कुछ भी खबर न थी। स्टेशन आ गया। उन्होंने मुझे जोर से पकड़ कर हिलाया, और कहा "चलो उतरो, नदी पार करें।"

तीन-तीन पैसे देकर हम लोग छोटे स्टीमर पर चढ़ गये। बड़ी भीड़ थी। स्टीमर लदा हुआ था। आज हब्शी जानसन और गोरे जेफ़री की घूंसेबाज़ी होने वाली थी। इसलिए कितने ही जोशीले जवान जेफ़री के नाम पर करतलध्वनि करते थे।

वेंकोवर पहुंच कर मैं और मेरे दोनों मित्र इधर-उधर टहलने और जगह-जगह लोगों की रंगरलियाँ देखने लगे। कई जगह तमाशों की धूम थी। कहीं बाजा बज रहा था। एक जगह नाच की तैयारी हो रही थी। लड़के-लड़कियाँ अपना-अपना साथी चुन कर नाचने की धुन में लगे थे।

कैसा शान्त समागम था! हमारे देश के मेलों की तरह यहाँ शोरोगुल का नाम नहीं था। सब चुपचाप अपनी-अपनी धुन में लगे थे। स्त्रियों के झुण्ड के झुण्ड घूम रहे थे। किसी प्रकार की असभ्यता देखने में नहीं आई।

मैंने मित्र से कहा, "चलो अपने देश-बन्धुओं से मिलें।"

मैं उनका घर जानता था। वहाँ पहुँचे तो देखते क्या हैं कि चार पाँच आदमी शराब के नशे में चूर हैं। एक-दो कुछ-कुछ होश में थे। उनसे मालूम हुआ कि सुबह से ही इन लोगों में शराब का दौर चल रहा है। एक आदमी शराब के कारण हवालात भी पहुँच चुका था। सिवाय उन भाइयों के जिन्होंने शराब छोड़ने का प्रण किया था, और सब इस इल्लत में मुब्तला थे। सोहबत का बड़ा असर होता है। यार-दोस्त आ गये, उनके अनुरोध से इन्होंने इस तरह चार जुलाई का दिन मनाना आरम्भ किया।

दुःखी होकर हम दोनों उस तरफ़ से निकले। हमारे साथ एक शराबी आदमी चला आता था। वह ऐसी वाहियात बातें करता था कि मेरा कलेजा मुंह को आने लगा। बड़ी मुश्किल से हम लोगों ने उससे पीछा छुड़ाया। उस समय मेरी कोई भी नसीहत काम न कर सकी।

यहाँ सोचने के लिए बहुत मसाला था। एक तरफ़ तो हज़ारों शिक्षित लोगों का मेला है। कोई झगड़ा-फ़साद नहीं, सब आनन्द से उत्सव मना रहे हैं। दूसरी तरफ़ बीस-पच्चीस अनपढ़ों की मंडली है, जिसमें से एक हवालात की सैर कर रहा है, बाक़ी शराब के नशे में गाली-गलौच कर रहे हैं। वृक्षों के नीचे बैठे हुए हम लोग घंटों इस बात पर विचार करते रहे।

मित्र के साथ मैं फिर पोर्टलैंड वापस आया। यहाँ सैकड़ों झुंड के झुंड लोगों को दैनिक पत्रों के दफ़्तरों के पास खड़े पाया। ये लोग हब्शी जानसन और गोरे जेफ़री की घूंसेबाज़ी का परिणाम जानने के उत्सुक थे। आख़िर तार खड़का। गोरों के चेहरे फ़क़ होगये। हब्शी जीत गया, गोरे की हार हुई। यह क्या हुआ! गोरा काले से हार गया, गोरों पर मानो वज्रपात हुआ। उनका अभिमान चकनाचूर हो गया। ईश्वर अन्यायी नहीं, उसके लिए गोरे-काले सभी बराबर हैं; जो जिस

विद्या में अधिक परिश्रम करेगा उसमें उसी की जीत होगी। बाजारों में सन्नाटा-सा छा गया। रंग में भंग पड़ गया। किसी को भी जेफ़री के हार जाने की उम्मीद न थी। हब्शी का पराक्रम जान कर गोरे बहुत ही लज्जित हुए।

इधर काले के साथ सहानुभूति रखने वाले उसकी जीत के मारे खुशी से फूले नहीं समाते थे। यह सब देखते हुए हम लोग भी अपने-अपने स्थान को चले गये।

५ जुलाई से २४ जुलाई तक। इतने दिन मैं पोर्टलैंड में और रहा। मेरे इतने दिन ठहरने का यह कारण था कि मैं अपने भारतीय बन्धुओं की शिक्षा का प्रबन्ध करना चाहता था। अमेरिका में जो भारतीय मजदूर हैं वे सभी पंजाब प्रान्त के हैं; उनमें अधिकांश सिक्ख ही हैं; ये लोग विद्याहीन हैं। अशिक्षित होने के कारण ये बहुधा धोखा खाते हैं। कोई चालाक आदमी मिल गया तो वह अनायास ही इनको फुसला कर इनसे रुपये ठग लेता है। कई एक ने तो इन अनपढ़ों के द्वारा हजारों रुपये के वारे-न्यारे किये हैं।

पांच सप्ताह पोर्टलैंड में रह कर मैंने इन लोगों को सचेत किया। उनको समझाया कि यदि तुमसे कोई देश के कामों के लिए रुपया मांगे तो उसके जाल में मत फंसो। यदि रुपया भेजना हो तो देश भेजो। वहाँ स्कूलों, अनाथालाओं आदि में धन की बड़ी आवश्यकता है।

२४ जुलाई को मैंने पोर्टलैंड से पैदल चलने का निश्चय किया। यहाँ से सनफ्रांसिस्को की ओर जाने का इरादा पक्का ठहरा। रात को मित्रों से विदा हुआ और सेंट जान में ही सो रहा।

अब यहाँ पर एक नई बात लिखना अत्यावश्यक है। मैं अपने अमरीका भ्रमण के लेख प्रयाग की 'सरस्वती' मासिक पत्रिका को भेजा करता था। उन लेखों से भारतीय नौकरशाही को मेरी हलचलों का पता लगता रहता था। जब अमरीका-भ्रमण सम्बन्धी पहिला लेख सरस्वती में छपा

तो नौकरशाही के खुफिया विभाग में सब सूचनाएँ पहुँच गयीं और उसने वहाँ से अमरीका में काम करने वाले अपने टिकटिकियों को हिदायतें भेज दीं कि सत्यदेव का अच्छी तरह से पीछा करना चाहिए। भारतीय मजदूरों में यह सत्यदेव, भारतीय सरकार के विरुद्ध जो कुछ आन्दोलन करे, उसकी सूचना भारतीय केन्द्र में भेजी जानी चाहिए।

ऐसी हिदायतें पाते ही सियेटल में ठहरे हुए जो खुफिया पुलिस के दूत थे, ब्रिटिश कौंसिल की सलाह से, उन्होंने सब से पहिले मेरे उस जापानी सूटकेस को Y. M. C. A. (सियेटल) के स्टोर रूम से उड़ा लिया जिसमे मेरी डायरी और दूसरा सामान था। परिणामस्वरूप उन्हें मेरे अमरीका-भ्रमण सम्बन्धी प्रोग्राम का ब्योरेवार पता लग गया और उन्होंने कलकत्ता पुलिस-अधिकारी लड़के शर्मन को मेरे पीछे लगा दिया।

जब तक मैं पोर्टलेंड में रहा, जो-जो प्रचार मैंने वहाँ किया, भारतीय मजदूरों में जो कुछ जागृति पैदा की, शर्मन ने उन सब की रिपोर्ट भारत भेज दी और काशीराम के विरुद्ध एक लम्बी-चौड़ी फाइल तैयार कर उस बिचारे गरीब को फंसा दिया। यही काशीराम बाद में भारत लौटने पर पुलिस द्वारा मारा गया और उसका सारा रुपया जो साठ सत्तर हजार डालर के करीब था, सरकार ने जप्त कर लिया।

पोर्टलेंड से ही मेरे पीछे खुफिया पुलिस लगी। पाठक देखेंगे कि नौकरशाही के नये-नये दूत मुझे आगे चल कर मिलेंगे। जब पहिले अमरीका-भ्रमण छापा गया था तो उस समय मैं इन सब बातों को लिख नहीं सकता था क्योंकि प्रेस वाले ऐसी किताब छापने से इंकार करते थे। अब स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पहिली बार मैं नौकरशाही के अत्याचारों का वर्णन लिखने लगा हूं, जिनके कारण भारतवर्ष में मुझे महान् कष्ट सहना पड़ा और इसी जद्दोजहद में मैंने अपनी दोनों आंखें भी खो लीं।

पाठकगण! अमरीका-भ्रमण का यह खुफिया पुलिस का नाटक भी देखने योग्य है। यदि आपने यह पुस्तक पहिले से पढ़ी हुई है तो भी इस नाटक की खातिर इसका एक पारायण और कर लीजिए।

जुलाई २५--प्रातःकाल सब मित्रों से मिल-मिला कर मैं निकला। बिजली की गाड़ी पर सवार होकर पोर्टलैंड आया। इस समय मेरे पास छः डालर और पचहत्तर सेंट थे। सब से पहले एक्सप्रेस कम्पनी के दफ्तर में गया और पहनने के कपड़े का बैग सनफ्रांसिस्को रवाना किया। सनफ्रांसिस्को यहां से ७७३ मील दूर है। बैग का किराया एक डालर पच्चीस सेंट लगा।

आज का दिन खूब साफ़ था, बादल का नाम न था। पोर्टलैंड के बाजार में कुछ भीड़ देखने में आई। मैं भी उधर चला गया और एक किनारे खड़ा होकर देखने लगा। बहुत-सी मोटर गाड़ियाँ जा रही थीं जिन पर W. O. W. का चिन्ह था। पूछने पर पता लगा कि यह चिन्ह दुनिया के लकड़हारों का है। यहाँ उनकी एक सभा होगी। प्रत्येक रियासत के लकड़हारों के प्रतिनिधि अपनी-अपनी मोटर गाड़ियों पर बैठे जा रहे थे। उन्हीं को लोग देख रहे थे।

यहाँ से चल कर मैं अपने एक मित्र से मिलने गया। चलते समय उससे भेंट कर लेना उचित समझा, पर वे न मिले। एक कागज पर अपना प्रेमाभिवादन लिख कर कमरे में छोड़ आया।

इस समय साढ़े ग्यारह बज चुके थे। धूप तेज थी, पर मैंने ठहरना उचित न समझा। ईस्ट-मारीसन नाम की गली से निकल कर जल्दी-जल्दी मैंने कदम बढ़ाया। शहर से निकलने के लिए मैंने रेल की सड़क पकड़ना जरूरी समझा। पोर्टलैंड से कई तरफ गाड़ियाँ जाती हैं, इसलिए मैंने एक भलेमानस से सनफ्रांसिस्को वाली पटरी पूछी। ठीक उत्तर पाकर मैंने अपना रास्ता लिया।

शहर के दक्षिणी भाग को लांघता, गली-कूचों से होता हुआ मैं एक छोटी नहर के किनारे पहुँचा। वहाँ एक दस वर्ष का लड़का मछली पकड़ रहा था। हरियाली देखकर मैं खड़ा होगया और लड़के से पूछा--

"यह पटड़ी सेलम की ओर जाती है ?"

"हां।"

"तुम कभी सेलम गये हो ?"

"एक बार पापा (पिता) के साथ गया था।"

"कैसा शहर है ?"

"सेलम बड़ा खूबसूरत शहर है। वही हमारी राजधानी है। इसलिए वहां बहुत अच्छी-अच्छी इमारतें हैं।"

मैं (क़दम उठा कर)—"अच्छा, चलता हूं; मुझे दूर जाना है !"

"कहां ?"

"फ्रिस्को।"

"फ्रिस्को ! क्या ऐसे ही जाओगे ? गाड़ी पर क्यों नहीं चढ़ लेते ?"

मैं (ज़रा हंस कर)—"ऐसे ही घूमते-घामते चले जाएंगे।"

"मैं आपसे एक बात कहता हूं। आप मालगाड़ी पर क्यों नहीं चढ़ जाते। उससे जाने में पैसा नहीं लगता।"

"मालगाड़ी पर कौन चढ़ने देगा।"

लड़का (मुसकरा कर)—"मैंने बहुत दफ़े होबो लोगों को चढ़ने देखा है। जब गाड़ी चलने लगती है तब वे चढ़ जाते हैं।"

"अच्छा, देखूंगा।"

यह कह कर मैं चला। होबो—दुनिया का पहला सबक़ इस लड़के ने दिया। इस समय तक मुझे इन लोगों का कुछ भी पता न था। समय आने पर मुझे भी अमेरिकन होबो लोगों की हवा लगी, और उन सब बातों को देखने और करने की नौबत आई जिनको मैं उपन्यासों में पढ़ कर हैरान हुआ करता था।

आज बहुत कड़ी धूप थी। सारा बदन पसीने-पसीने हो रहा था। दो बजने पर हुए। मुझे भूख ज़ोर की लगी। एक छोटा सा गांव नज़र आया। मैं उसके पास पहुंचा। एक ग़रीब किसान के घर जाकर खाने को

माँगा। वह किसान जर्मनी का निवासी था। उसको अच्छी तरह अंग्रेजी बोलना नहीं आता था। उसकी स्त्री और बच्चे नीरोग और हृष्ट-पुष्ट थे। उसने मुझे आलू, रोटी, मक्खन और दूध दिया। मैंने इच्छानुसार भोजन किया। पैसे देने लगा तो उसने न लिये।

उस कृषक को धन्यवाद देकर मैं बाहर निकला। उसका घर बहुत साधारण सा था। एक पुराना दोमंजिला लकड़ी का मकान था, पर यही कृषक दो-चार साल के बाद धनी हो जायगा। अभी तो नया-नया इस मुल्क में आया है। अपनी पूंजी ज़मीन में लगा दी है और मेहनत करता है। धीरे-धीरे परिश्रम सफल होगा और यही भूमि इसके लिए स्वर्णमयी हो जायगी।

मैं नाना प्रकार के विचारों में मग्न चला जाता था। धूप के कारण कभी-कभी वृक्षों की छाया में दम ले लेता था। चलता-चलता शाम के पांच बजे मैं आरेगन सिटी में पहुंचा।

रेल की सदर्न पैसेफ़िक लाइन पर यह एक छोटा सा कस्बा है। यह पोर्टलैंड से १५ मील पर है। इस क़स्बे में भी बैंक, पुस्तकालय, वाचनालय और पानी साफ़ करने वाली एक फैक्टरी देखी। इससे इर्द-गिर्द के क़स्बों को शुद्ध जल मिलता है।

अमेरिका के क़स्बों में अच्छे ख़ासे बाजार रहते हैं। सड़कों के पार्श्व-पथ (side walks) पक्के होते हैं। ज्यों-ज्यों क़स्बे का शहर बनता जाता है त्यों-त्यों नई सड़कें और गलियां पक्की बनती जाती हैं। कहीं कहीं गलियों में लकड़ी के तख्ते जोड़ कर पार्श्वपथ बनाये जाते हैं। वर्षा में इन पर चलने में बड़ा सुभीता रहता है; पैरों में कीचड़ नहीं लगती। लोग इन पर चलते हैं और गाड़ी-घोड़े बीच सड़क पर। इस प्रकार सबके लिए सुभीता रहता है। घूमता-फिरता जब मैं पानी साफ़ करने वाली कम्पनी के कारखाने के पास पहुँचा और वहां खिड़कियों से देखने लगा तो किसी ने ऊपर से मुझे ललकारा। मैंने उधर देखा। मालूम हुआ कि ऊपर

की छत पर काम करने वाले मेरे इस ओर आने और देखने के विरोधी हैं और मुझको गालियाँ दे रहे हैं। ये लोग मजदूर थे। ये परदेशियों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। मैं तो उस समय साफ़ ही परदेशी मालूम होता था। सड़क से चला आता था, चेहरे और कपड़ों पर धूल जमी हुई थी। खैर, मैं वहाँ से गालियाँ खाकर लौट आया और कमरे की तालाश में लगा।

पच्चीस सेंट पर एक कमरा मिल गया। मुंह-हाथ धोकर खाने के लिए दस पैसे का कुछ ले आया। उससे क्या होता था ? पर लाचारी थी। वही खाकर सोने की तैयारी कर रहा था कि इतने में घर की मालकिन ने मेरा दरवाजा खटखटाया। मैंने दरवाजा खोला तो देखा कि आप ठंडे पानी की सुराही लिये खड़ी हैं। मैंने उन्हें बहुत धन्यवाद दिया। जब जाने लगीं तो उन्होंने मुझसे पूछा—

"आप खाना खाने नहीं जाएंगे ?"

"मैं फलाहारी हूं। मांस नहीं खाता। इसलिए होटल में जाकर क्या करूंगा ?"

"होटल में आलू और दूसरी तरकारियां भी मिल सकेंगी।"

"हां, पर वे सब चरबी में डूबी रहती हैं। मुझे उनसे घृणा है।"

"अच्छा, देखो मैं कुछ खाने को लाती हूं।"

मैंने बहुतेरा मना किया, पर वह भद्रा कब मानने वाली थी! झट कुछ आडुओं का मुरब्बा, रोटी, दूध और मक्खन ले आई और रख कर चली गई। मुझे धन्यवाद भी देने का अवसर न दिया।

मैंने घुटने टेक भूमि पर आसन लगाया और उस सर्वशक्तिमान् करुणासिन्धु प्रभु को धन्यवाद दिया जिसकी कृपा से मुझे ऐसी भद्रा महिला के दर्शन हुए। प्रार्थना से निश्चिन्त होकर मैंने भोजन किया। फिर शान्त-चित्त होकर शय्या पर लेटा।

जुलाई २६। प्रातःकाल साढ़े पाँच बजे उठकर मैंने हाथ-मुंह धोये और अपना रास्ता पकड़ा। ठंडे में भ्रमण करने से बड़ा मजा आया।

मकई, गेहूं आदि खेतों में लहलहा रहे थे । कहीं-कहीं घास के खेतों में गाय, बैल आदि चरते थे। कहीं शूकर देवता अपने परिवार के साथ विहार करते दीख पड़ते थे। बड़े आनन्द का समय था। आज अधिक धूप भी न थी। घूमता-फिरता मैं एक छोटी सी नदी के किनारे पहुंचा। वहाँ एक पेड़ की छाया में बैठ गया। बहुत देर तक वहीं बैठा-बैठा यहां के किसानों की अवस्था के साथ भारतवर्ष के किसानों की अवस्था का मिलान करता रहा। भारतीय किसानों की अवस्था पर बहुत अफसोस हुआ। परन्तु शीघ्र ही भाव बदल गया, और अपनी धुन में गाने लगा--

"सब दिन होत न एक समान, भारत ! क्यों रुदन मचावे।"

फिर वहाँ से उठ आगे बढ़ा। आज मैं घोड़े-गाड़ी की सड़क पर चल रहा था क्योंकि इधर के दृश्य मनोहर थे। गर्द को दबाने के लिए इन सड़कों पर अलकतरा (Coal Tar) छिड़का जाता है। उससे सड़कों की मिट्टी एकदम दब जाती है; गाड़ी, घोड़े चलने से भी धूल नहीं उड़ती।

आरेगन रियासत स्वाधीन है। यहाँ का हर एक प्रान्त मानो एक प्रतिनिधिसत्ताक राज्य है। लोग अपने आप बादशाह हैं। अपना प्रबन्ध आप करते हैं। अपने कानून आप पास करते हैं।

यहाँ से आगे बढ़कर मैंने होटो नामक एक आठ-दस घर का गाँव देखा। उस समय बारह बज चुके थे। वहाँ एक घर के इर्द-गिर्द लकड़ियों का अहाता था। उसका दरवाजा खोल मैं निधड़क अन्दर चला गया। घर के अन्दर नहीं, किन्तु अहाते के अन्दर। वहाँ घर के पीछे छाया में जाकर मैं एक लकड़ी पर बैठ गया। एक छोटा बालक खेल रहा था। मैंने उसे बुलाया।

लड़का एक छोटी गुड़िया से खेल रहा था। मुझे देखकर वह डरा नहीं, किन्तु हँसकर मुझसे कहने लगा--

"देखो मेरी गुड़िया।" ऐसा कहकर गुड़िया खींचता हुआ वह मेरे पास आया। कैसा प्यारा बच्चा था! गहरी नीली आँखें, बाल भूरे, हाथ-

पैर मजबूत, गालों पर लाली सफ़ेद कपड़े पहिन बहुत ही भला मालूम होता था। मैंने पास बुला कर पूछा—

"तुम्हारा नाम क्या है ?"

"मेरियन।"

थोड़ी ही देर में मेरियन मुझसे हिल गया। बहुत देर तक वह मेरे साथ खेलता रहा। कुछ देर बाद अन्दर से आवाज़ आई—"मेरियन ! मेरियन ! !"

मेरियन अन्दर गया और अपनी माता को साथ लेकर बाहर आया। उसे देखकर मैं खड़ा होगया और टोपी सिर से उतार ली। वह युवति बड़ी नम्रता से बोली—

"आप धूप में न खड़े रहिए, इधर आकर बैठ जाइए। मेरे पति आते होंगे, उनके आने पर भोजन कीजिएगा।"

देवी इतना कह कर अन्दर चली गई और मैं साए में बैठ गया। थोड़ी देर में मिस्टर डेडिक्सन, उस युवति के पति, आये। पहले अन्दर गये। फिर बाहर आकर मुझे लिवा लेगये और हाथ-मुँह धोने के लिए जल, साबुन और साफ अँगोछा दिया। मैंने मुँह धोया और अपनी कंघी से बाल साफ किये।

पीछे हम चारों (बालक मेरियन भी) मेज़ के इर्द-गिर्द कुरसियों पर खाने को बैठे। मेरियन के लिए एक खास तरह की ऊँची कुरसी थी जो बच्चों के लिए खाने के समय इस्तेमाल की जाती है। वह ऐसी होती है कि बालक गिर न सके।

मिस्टर डेडिक्सन खाना परोसने लगे तो मैंने उनसे अपना भोजन-सम्बन्धी निवेदन कर दिया। वे बोले—

"यद्यपि हम लोग कृषक हैं, तथापि हम मांस अधिक नहीं खाते। हाँ, न खाने की कसम नहीं खाई।" ऐसा कह उन्होंने मेरे लिए शाक-

तरकारी परोस दी और अपने सब के लिए शाक मांस मिला कर भोजन परोस लिया। हम लोग भोजन करने लगे और वार्तालाप भी आरम्भ हुआ।

मिस्टर डे०--"आप कहाँ से आते हैं ?"

मैं--"पोर्टलैंड से।"

मिस्टर डे०--"कहाँ जाने का विचार है ?"

मैं--"सनफ्रांसिस्को की ओर जा रहा हूं।"

जब इस प्रकार के दो चार और प्रश्न उन्होंने पूछे और मैंने साधारण उत्तर दिये तब वे चुप हो रहे। मैंने दिल में सोचा कि अपना परिचय देना ही ठीक होगा। इसलिए मैंने कहा--

"मैं भारतवर्ष से आता हूँ। इधर पैदल सफर करने के लिए निकला हूँ।"

युवति--"अच्छा ! आप इंडिया से आते हैं ! आपको इधर आये कितनी मुद्दत हुई ?"

मैं--"पांच वर्ष होगये।"

युवति (आश्चर्य से)--"और पाँच ही वर्ष में आपने ऐसी अच्छी अंग्रेज़ी बोलना सीख लिया ?"

मैं--"मैं यहाँ विश्वविद्यालय में पढ़ता रहा हूँ। पाँच वर्ष मैंने विद्यालय में लगाये हैं।"

युवति--"आपके देश में भी तो अंग्रेज़ी पढ़ाई जाती है ?"

मैं--"हाँ, मेरे देश में भी स्कूल-कालेज हैं, पर काफी नहीं।"

मिस्टर डे०--"यह क्यों ?"

अब इन लोगों की दिलचस्पी बढ़ी।

मैं--"वहाँ तीस करोड़ की तो आबादी है, पर पढ़े-लिखे लोग केवल छः फीसदी हैं। वे न होने के बराबर हैं। आपके देश में तो दस घरों के पीछे एक स्कूल है।"

युवति (हंसकर)--"तो आप हमारे देश को बहुत पसन्द करते हैं ?"

मैं--"हाँ, आपके देश में लोगों को हर प्रकार की उन्नति करने के साधन हैं। स्कूल हैं, कालेज हैं, विश्वविद्यालय हैं। इसके अतिरिक्त हर प्रकार के उद्यम-धंधे सिखलाने के लिए भी प्रबन्ध है।"

थोड़ी देर बाद मिस्टर डेडिक्सन ने पूछा--

"आपको हमारी गवर्नमेंट पसन्द है ?"

मैं--"आपकी गवर्नमेंट बहुत अच्छी है, यद्यपि उसमें भी कई तरह की त्रुटियाँ हैं, पर उनको दूर करने की शक्ति भी आप लोगों के हाथ में है।"

मिस्टर डे०--"आपका मतलब पूंजी वालों और मजदूरों के सम्बन्ध में है।"

मैं--"हाँ, उसके भी, और अन्य बातों के सम्बन्ध में भी।"

मिस्टर डे०--"प्रेजिडेण्ट रूजवेल्ट उन बुराइयों को दूर करने की कोशिश कर रहे हैं।"

मैं (जरा सिर हिला कर)--"उम्मीद नहीं कि प्रेजिडेण्ट रूजवेल्ट कामयाब हों।"

मिस्टर डे०--"क्यों ?"

मैं--"प्रेजिडेण्ट रूजवेल्ट साम्राज्य पद्धति (Imperialism) के पक्षपाती हैं। एक बात और है। खाली कानून पास कर देने से पूंजी वालों के पंख नहीं कट सकते। जो धनवान् हैं और जिन्होंने अन्याय पर कमर कसी है वे कानून बनाने वालों तथा कानून के अनुसार फैसला करने वालों को मोल ले लेते हैं। बस, होगया खातमा ! गरीब बेचारे मारे जाते हैं।"

मिस्टर डेडिक्सन थोड़ी देर चुप रहे। फिर युवति ने कहा--

"आपने तो हमारे देश की बहुत-सी बातें जान लीं। हम लोग भी इतना नहीं जानते।"

मैं (हंस कर)--"बहुत तो नहीं, थोड़ा अवश्य सीखा है। यही बातें मैंने विश्वविद्यालय में पढ़ी भी है--राजनीति-विज्ञान, समाज-विज्ञान और शिक्षण-विज्ञान।"

युवति--"अच्छा, आरेगन रियासत की गवर्नमेंट तो आपको पसन्द है?"

मं (हँस कर)--"क्या कहना है! यहाँ की गवर्नमेंट अलबत्ता गवर्नमेंट कही जा सकती है। यहाँ की गवर्नमेंट लोगों के ठीक हाथ में है।"

युवति--"यह देश नया है, धीरे-धीरे सब बुराइयाँ दूर हो जायेगी।"

मै--"बेशक, इस बात को मैं मानता हूँ।"

भोजन से निश्चिन्त होकर मैंने मिस्टर डेडिक्सन से उनके विषय में कुछ बातचीत की तो पता लगा कि उनके पूर्वज हालैंड से इस स्वतन्त्र देश में आए थे। पहिले ये पोर्टलैंड में कुछ काम करते थे। पीछे यह सोचा कि कृषि-कर्म सबसे अच्छा है। अपनी पूँजी से भूमि मोल ले ली। अब यहीं स्त्री सहित रहते हैं। ये खुद खेती का काम करते हैं। जरूरत होने पर मजदूर भी रख लेते है। मजे में काम चला जाता है।

खाना खा चुकने पर मिस्टर डेडिक्सन को काम करने जाता था। मुझे कह गये कि आप बाहर साये में कुरसी पर सुस्ता लीजिये और जी में आवे तो फल तोड़ कर खाइए। खूब आराम करके जाइयेगा।

वे तो चले गये। मं बाहर बरामदे में कुरसी पर बैठ कर आराम लेने लगा।

तीन बजे के करीब मैंने चलने की ठानी। कुछ फल तोड़ कर ले लिये। मिस्टर डेडिक्सन कुछ काम करने के लिए घर आये थे। मैंने उनसे बिदा माँगी और उन्हें धन्यवाद देकर अपनी राह ली। मेरियन और उसकी माता शायद सो गये थे, इसलिए उनसे जाते समय भेंट न हो सकी।

पाँच बजे मैं उडबर्न पहुंचा। यहाँ से सेलम थोड़ी ही दूर है। मैंन

सोचा कि प्रातःकाल उठ कर वहाँ जाऊंगा, इसलिए रात को सोने का स्थान ढूंढा। कमरे का किराया यहाँ पचास सेंट मांगते थे। मैंने दर्याफ्त किया तो मालूम हुआ कि यहाँ से बिजली की गाड़ी सेलम जाती है और उसका किराया भी कम है, इसलिए उस पर चढ़कर शीघ्र ही सेलम पहुंचा।

रात को सेलम की शोभा दर्शनीय थी। बाजारों में ऐसा मालूम होता था जैसे दीपावली हो। बिजली से शोभा-वृद्धि के काम खूब लिये जाते हैं।

घूमते-फिरते एक भद्र पुरुष मिस्टर ग्रेहम से भेंट हुई। उनकी सहायता से एक सस्ता कमरा प्राप्त किया। अपने पास जो फल थे उन्हीं को खाकर सो रहा।

जुलाई २७। प्रातःकाल हाथ-मुह धोने पर सबसे पहले भोजन की सूझी। एक जगह थोड़े में काम बनता था। वहाँ से दस पैसे में क्षुधा-निवृत्ति करके सेलम शहर देखने चला।

सेलम आरेगन की राजधानी है। विलामेट तराई के ऐन बीच में होने के कारण यहाँ नगर-वृद्धि के सब सामान मौजूद हैं। आबोहवा बहुत अच्छी है। इर्द-गिर्द की भूमि बड़ी उपजाऊ है और चारों ओर के दृश्य भी बड़े सुन्दर हैं। जिस दिन आकाश साफ रहता है उस दिन पर्वतों की पाँच चोटियाँ बर्फ से ढकी हुई दीख पड़ती हैं।

इस शहर की आबादी १८,००० आदमियों की है। सड़कें और गलियाँ चौड़ी तथा फलदार वृक्षों से शोभायमान हैं। कई एक गलियाँ सौ फीट चौड़ी हैं। घरों के आस-पास भी फलदार पेड़ हैं।

शहर की बड़ी-बड़ी इमारतें देखने लायक हैं। मैं सबसे पहले राजधानी की इमारत (Capital Building) देखने गया। कहते हैं, इसमें तीस लाख रुपये से अधिक खर्च हुआ है। बहुत भारी इमारत है। इसके भीतर एक विशाल पुस्तकालय है। मैंने घूम कर सब देखा। पुस्तकालय

की तत्वावधायिका (Lady-Superintendent) से कुछ पुस्तकें लेकर मैंने एक मित्र को भेजीं।

शहर में और भी कई अच्छी इमारतें हैं। एक का नाम है फेडरल बिल्डिंग (Federal Building) उसमें साढ़े तीस लाख रुपये खर्च हुए हैं। अदालत की इमारत में भी उतने ही रुपये लगे हैं। सिटी-हाल ढाई लाख के खर्च से बना है। एक बड़ा भारी हाई स्कूल है। उसकी लागत दो लाख पच्चीस हजार रुपये की है। दूसरे छोटे स्कूलों के लिए कई लाख रुपये खर्च किये गये हैं। एक विश्वविद्यालय है जिसको विलामेट-यूनिवर्सिटी कहते हैं। और भी कई एक उपयोगी पाठशालाएँ हैं जहाँ अन्धे, बहरे और गूँगे बालक तथा बालिकाएँ पढ़ती हैं। एक सुधारक शिक्षालय है, जहाँ उद्दण्ड बालक रक्खे जाते हैं। आरेगन के असली वाशिन्दों के लिए भी एक स्कूल है, जिसको 'Government Indian Training School' कहते हैं।

सेलम के इर्द-गिर्द फूलों-फलों की भरमार है। सेव, नाशपाती, बेर, करौंदा, अखरोट आदि खूब होते हैं। असल में सेलम को Cherry City कहते हैं। चेरी फल कई रंग के होते हैं। भारत में यह फल काश्मीर में होता है और इसे ग्लास कहते हैं। यह खाने में खट्टा-मीठा और मीठा दोनों तरह का होता है। यह आलूचे की शक्ल का होता है। इसकी गुठली भी वैसी ही होती है, मगर आलूचा इसमे जरा बड़ा होता है। चेरी के रंग में विभिन्नता है--लाल, सुरखी लिये हुए सफेद,काला--इसी तरह चार-पाँच प्रकार के चेरी के फल होते हैं।

फलों के अतिरिक्त यहाँ विलामेट तराई में हाप (Hop) नामक एक फूल की फ़सल होती है। यह बेलों की तरह लगाया जाता है। फसल पर फूल तोड़ लिये जाते हैं। इन्हीं फूलों की शराब बनती है, जिससे लोग करोड़ों रुपये कमाते हैं। आसपास की बस्तियों से हर साल तीस हजार से अधिक मजदूर हाप चुनने के लिए यहाँ आते हैं। उनको सेरों के हिसाब

से मजदूरी मिलती है। एक सेर चुनने वाले को एक आने से लेकर डेढ़ आने तक मिलता है। कोई-कोई दिनभर में साढ़े तीन मन तक चुन लेते हैं। इस तरह वे आठ नौ रुपये रोज कमाते हैं। जापानी लोग इन दिनों खूब रुपया कमाते हैं। पर हाप चुनने का काम केवल छः सप्ताह रहता है। मैंने भी यह काम किया है।

राजधानी, पागलखाना आदि देख तथा और कामों से निवृत्त हो मैंने चलने की ठानी। सेलम से आगे कुछ दूरी पर रियासत का रिफ़ार्म स्कूल है। यह स्थान बहुत ऊंची पहाड़ी पर बना है। बारह बजे के बाद मैं वहाँ पहुंचा। दरवाज़े पर मुझे एक लड़का मिला। उसने अन्दर ले जाकर मुझे अपने प्रिंसिपल से मिलाया। उसकी आज्ञा से मैंने सारा स्कूल घूम कर देखा। यहाँ वे लड़के लिये जाते हैं जो अपने मां-बाप के वश के नहीं होते। कुल ९५ लड़के हैं। उनके लिए पढ़ाने-लिखाने, खेलने-कूदने आदि का बहुत अच्छा प्रबन्ध है। रियासत इसका सब खर्च देती है।

वहां से निकल कर मैंने आगे पैर बढ़ाया। आज मुझे बहुत दूर जाना था, इसलिए जल्दी-जल्दीचला। अलबनी शहर मे मेरा एक मित्र रहता है। यही बेहतर समझा कि आज की रात उसके यहां बिताऊं। न इधर देखा, न उधर, बस चलता ही गया। छः बजते-बजते टरनर से मेरियन होता हुआ जेफ़रसन पहुंच गया। ज़रा भी दम नहीं लिया, बराबर चलता ही गया और रात होते-होते अलबनी में दाखिल होगया।

मेरे मित्र, मिस्टर बोम, यहाँ रहते हैं। मैं उनके घर पहुंचा तो आप अपना औटोमोबील (मोटर गाड़ी) साफ़ करने में लगे थे। मुझे देख कर हैरान हो बोले--

"हेलो देवा! तुम यहां कहाँ?"

मैं (हंस कर)--"इसी तरह घूमता फिरता आ निकला। दिल में आया, चलूं, आज आपको कष्ट दूं।"

"कष्ट? अच्छा कहा। पर यह तो बताओ कहां से आते हो?"

"पोर्टलैंड से पैदल आता हूं।"

"ताज्जुब है कि हम लोगों ने तुमको नहीं देखा। मैं और मेरी स्त्री दोनों आज ही पोर्टलैंड से वापिस आये हैं। हम लोग औटोमोबील पर थे। क्या ही अच्छा होता यदि तुम रास्ते में मिल जाते।"

मैं (मुस्कुरा कर)--"मेरी ऐसी किस्मत कहां !"

मैंने फिर अपना लहजा बदल कर कहा--

"क्या इतनी जगह आपके औटोमोबील में थी ?"

"जगह करने से हो जाती है। हमने रास्ते में एक आदमी को इसी तरह बिठा लिया था और उसे दस मील ले आये थे। अच्छा आओ, अन्दर चलें। तुम थके हुए हो।"

चुपचाप मैं अपने मित्र के साथ हो लिया। उन्होंने पहले औटोमोबील को ठिकाने रक्खा। फिर मुझे घर के अन्दर ले गये।

उनकी स्त्री से मैं पहिले ही से परिचित था। बहुत ही नम्र स्वभाव वाली हैं। एक विश्वविद्यालय की ग्रेजुएट हैं। बड़े प्रेम से मुझे भोजन कराया। मैं पहले इन लोगों के यहां आ चुका था। मेरे खान-पान से ये लोग वाक़िफ़ थे, इसलिए मेरी इच्छानुसार भोजन दिया।

खाना खाने के बाद कुछ देर वार्तालाप हुआ। पीछे मेरे सोने का प्रबन्ध एक दूसरे कमरे में कर दिया गया। साफ-सुथरे बिस्तरे पर मैं मैले बदन कैसे सो सकता था! कपड़े उतार कर स्नानगृह में घुस गया और खूब मल-मल कर नहाया। फिर निश्चिन्त हो सो गया।

जुलाई २८। मेरे मित्र मिस्टर बीम ने मुझे एक-दो दिन रहने का अनुरोध किया। मेरी भी इच्छा कम से कम एक दिन ठहरने की अवश्य थी, क्योंकि कपड़े धोने थे। रास्ते की धूल से कपड़े मैले होगये थे। पसीने के कारण भीतर की बनियाइन बहुत मैली होगई थी, इसलिए प्रातःकाल के नाश्ते से फ़ारिग होकर मैंने धोने का काम शुरू किया।

यहां घरों में कपड़े धोने का सब सामान तैयार रहता है। एक अलहदा कमरे में दो कुण्ड होते हैं। उनमें ठण्डे और गरम पानी के नल रहते हैं। गरम पानी कहीं बाहर से नहीं आता, घर में ही उसका प्रबन्ध होता है। वह इस प्रकार है—रोटी पकाने के बड़े चूल्हे के भीतर से एक ठण्डे पानी का नल आता जाता है। उस नल का सम्बन्ध एक टीन के बड़े बोगदे से होता है। उस बोगदे मे पानी रहता है। जब चूल्हा गर्म होता है तब उसकी गर्मी से नल का पानी गरम होकर बोगदे में जाता है और वहां से दोनों कुण्डों के नलों द्वारा बाहर निकलता है। यह गरम पानी उस बोगदे में भरा रहता है। जब जरूरत होती है तब उसे काम में लाते हैं। सभी घरों में ठण्डे और गरम पानी का ऐसा ही इन्तजाम रहता है। बावर्चीखाने मे भी ठण्डे और गरम पानी के नल होते हैं, इससे बर्तन धोने में बड़ा सुभीता रहता है। नहाने के कमरे मे भी ऐसा ही प्रबन्ध रहता है। हमारे देश की तरह बर्तनों को घिसने में घण्टों समय खर्च नहीं करते। ईश्वरदत्त बुद्धि को काम में लाकर वे सारी रुकावटों को दूर करने का यत्न करते हैं। पाखाना ऐसा स्वच्छ और शुद्ध रहता है कि कहने की बात नहीं। नहाने का टब भी प्राय: पाखाने वाले कमरे में ही रहता है, इसलिए ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि दुर्गन्ध का नाम न रहे। सब मैला बड़े-बड़े नलों द्वारा नीचे से बाहर निकल जाता है और किसी बड़ी नदी या झील में जा गिरता है।

काशी में भी ऐसा ही इन्तजाम पुराने समय से चला आता है, परन्तु वह ऐसा भद्दा और निकम्मा है कि उससे लाभ के बदले उल्टे हानि होती है। क्या ही अच्छा हो यदि भारत के बड़े-बड़े शहरों की म्युनिसिपैलिटियां मल-मूत्र आदि दूर करने का ऐसा ही अच्छा प्रबन्ध कर दें जैसा कि अमरीका में है! ऐसा होने से सब बीमारियां दूर भाग जायं और लोगों में नई जान आ जाय।

बिजली की रोशनी का यहां घर-घर प्रबन्ध है। खाने-पकाने के लिए

गैस काम में लाते हैं । इस गैस से बड़ा आराम मिलता है । आंखें फोड़नी नहीं पड़तीं । हमारे देश में स्त्रियां बेचारी चूल्हा फूंक-फूंक कर हैरान होती हैं—आंखों से पानी बहता जाता है । गर्मी के दिनों में तो बेचारियां भुन सी जाती हैं, पर हमें कुछ उपाय उन अबलाओं के दुःख दूर करने का नहीं सूझता । यदि खाना समय पर तैयार नहीं होता तो कई धर्मात्मा उन पर अत्याचार करते हैं । यहां अमरीका की महिलाओं को घर के आराम का सारा सामान प्राप्त है; ज़रा सी दियासलाई लगाने पर गैस जलने लगती है, उससे ज़रा देर ही में खाना तैयार हो जाता है ।

घर को गरम रखने का भी यहां बहुत अच्छा प्रबन्ध है । यह काम रेडिएटर्स (Radiators) नामक कलों से होता है । हमारे यहां लोग ठिठुर-ठिठुर कर मरते हैं । यह दुःख थोड़े उपाय से दूर हो सकता है, कुछ लम्बी-चौड़ी साइन्स इसमे दरकार नहीं । साधारण सा स्टोव (Stove) लगा देने से कमरा गरम रह सकता है । स्टोव एक प्रकार का लोहे की चादर का ढक्कनदार चूल्हा होता है, जिसके ऊपर की तरफ़ दो बड़े सूराख़ होते हैं और एक छोटा सूराख़ हवा आने के लिए रहता है । ऊपर के बड़े सूराख़ द्वारा लकड़ी जाती है और दूसरा सूराख़ धुंआ बाहर निकलने के काम का होता है । इस सूराख़ में एक टीन का नल लगा रहता है जो धुएं को घर से बाहर ले जाता है । जिन कमरों में यह चूल्हे लगे रहते हैं वहां सर्दियों में बड़ा आराम मिलता है । हमारे यहां घरों में यह सब कुछ लगाया जा सकता है पर हम लोग इतने दरिद्री और आलसी हैं कि अपनी तक़लीफ़ को दूर करने के उपाय ही नहीं सोचते । हम लोग लकीर के फ़क़ीर हैं ।

बारह बजे के लगभग कपड़े धोकर में निश्चिन्त होगया । तब खाना खाया । खाने के बाद मैंने सोचा कि इन लोगों का भी कुछ काम करना चाहिए । अपने मित्र की स्त्री के मना करने पर भी में अपने इरादे से न हटा । घर को मैंने अच्छी तरह साफ़ किया; झाड़ा बुहारा, फिर गीले

कपड़े से फर्श को धोया। यहाँ के घर लकड़ी के होते हैं, फ़र्श भी लकड़ी ही का होता है, इसलिए हफ्ते में दो-एक बार फ़र्श को गीले कपड़े से धो डालते हैं, दूसरे-तीसरे दिन झाड़ बुहार देते हैं। इससे घर ऐसे साफ सुथरे रहते हैं कि देखकर तबीयत खुश हो जाती है।

चार बजे में इस काम से फ़ारिग़ हुआ, फिर पुस्तक पढ़ने लगा। पांच बजे के बाद मित्र भी आ गये। हम लोग घर के बाहिर घास पर बैठे हवा खाने लगे। आज गर्मी थी, लोग घरों से निकल-निकल कर अपने बच्चों को छोटी-छोटी गाड़ियों में बैठा कर घुमा रहे थे। बड़े लड़के और लड़कियां गली में खेल रहे थे। गेंद फेंक-फेंक कर वे पकड़ते थे, और हँसते जाते थे। यह दृश्य कैसा भला जान पड़ता था! करीब-करीब सभी लोग व्यायाम करते हैं। बच्चों से लेकर बड़ी उम्र के लोगों तक सभी को शरीर-रक्षा का ख्याल है। यदि अमरीका में मांस खाने का अधिक रिवाज न हो, यदि यहाँ के लोग प्रकृति की उपासना थोड़ी कम कर दें, तो अमरीका देवताओं का देश बन जाय।

मेरे मित्र के पास उनका एक पड़ोसी आ बैठा। मित्र ने उनसे मेरा परिचय कराया पड़ोसी ने मुझसे पूछा--

"क्या आप इस देश को पसन्द करते हैं?"

"आपका देश बहुत अच्छा है।"

"क्या आप अपने देश से इसको अधिक पसन्द करते हैं?"

मने सिर हिला कर कहा-"नहीं! मुझे अपना देश अधिक पसन्द है।" इस पर पड़ोसी महाशय को कुछ आश्चर्य हुआ और बोले--"आपके देश में सदा प्लेग रहता है। आपके देश में लाखों लोग अकाल से मरते हैं, खाने को नहीं मिलता, यहाँ सब प्रकार का आनन्द है। मैं हैरान हूँ, आप अपने देश को कैसे पसन्द करते है!" इस पर मेरे मित्र, जो यह बातचीत सुन रहे थे, उस पड़ौसी से मुस्कुरा कर बोले--"देवा हम लोगों की तरह धन-लोलुप नहीं, यह देश-हितैषी है। इसका देश चाहे

कैसा ही बुरा क्यों न हो, यह उसी को प्यार करेगा और इसी से मैं इसे चाहता हूँ।" मैं इसका क्या उत्तर देता, चुप रहा। थोड़ी देर बाद पड़ोसी महाशय फिर बोले—"मैंने यहाँ पादरियों से सुना है कि आपके देश में बुतपरस्ती बहुत है। औरतें गुलामों की तरह रखी जाती हैं। लड़की पैदा होने पर घर में शोक छा जाता है। क्या यह सब सच है?" उसके इस प्रश्न से मेरे जी पर बड़ा आघात हुआ। पादरियों की धूर्तता का फोटो मेरे सामने खिंच गया। हम लोगों में बुराइयाँ हैं, इससे कौन इन्कार कर सकता है! परन्तु यह क्या कि सारे सभ्य संसार में जाकर ये लोग हमारी बुराइयों को फैलाते हैं। यही कारण है कि गौरांग देशों के निवासी भारतवासियों को घृणा की दृष्टि से देखते हैं। अपने गुस्से और रंज को रोक कर मैंने उत्तर दिया—"सुनिये महाशय, हमारे यहाँ तीस करोड़ की आबादी में छः फीसदी पढ़े-लिखे लोग हैं, ९४ फीसदी अनपढ़ हैं। हमारे यहाँ मुफ्त शिक्षा का प्रबन्ध नहीं। हम लोग पराधीन हैं। इस दशा में यदि हमारे यहाँ कुछ बुराइयाँ हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? आपके यहाँ गाँव-गाँव में स्कूल हैं। सभी पढ़े-लिखे हैं। आपका देश स्वतन्त्र है। आपके देश में अपरिमित धन है। इन सब बातों के होते हुए भी मैं देखता हूँ कि आपका कोई गाँव शराब की दूकान से खाली नहीं, आपके अखबारो में प्रायः तलाक के झगड़े छपते हैं। आपके यहाँ आत्मघात की वारदातें दिन-ब-दिन बढ़ती जाती हैं। हमारे यहां जो बुराइयाँ हैं उनको हम लोग शीघ्र ही दूर कर दें यदि हम लोगों को अवसर दिया जाय। ईसाई पादरी हम लोगों की अच्छी बातें आपसे प्रायः नहीं कहते, यह बड़े अफसोस की बात है। इसमें शायद उनका फायदा है।"

पड़ोसी महाशय ने चुपचाप मेरे उत्तर को सुना। फिर आप हँस कर बोले—"मुझे आपसे मिल कर बड़ी प्रसन्नता हुई है। मैंने केवल सच बातें जानने के लिए आपसे यह सब पूछा था। क्योंकि आप पहले हिन्दु-

स्तानी हैं जिनसे मेरी भेंट हुई है। आइये, हाथ मिलाइये। ईश्वर आप की मनोकामना सिद्ध करे।"

मैंने उनसे हाथ मिलाया। उनके चले जाने के बाद हम लोग भी घर के भीतर आय। भोजन के बाद मैंने मित्र से कहा कि आइये, आपके मालिश कर दूं। उनके जोड़ों में दर्द था। जैतून के तेल से मैंने उनके मालिश की। मालिश मे उनको बहुत फायदा हुआ। मैंने सोचा यदि हमारे देश के कुछ लोग जिनको मालिश करने का अभ्यास है, इधर आकर दूकानें खोल लें तो बहुत रुपया कमा सकते हैं। ऐसी दूकानें हों जहाँ नहाने का भी सब सामान हो ताकि मालिश के कुछ देर बाद स्नान भी हो सके। यदि फ़ी मालिश एक रुपया भी लें तो भी खासी आमदनी हो सकती है। क्योंकि यहाँ के लोग शरीर-रक्षा को सबसे बढ़ कर समझते हैं और मर्द-औरतें बहुत सा रुपया अपनी खूबसूरती बढ़ाने में खर्च करते हैं, इसलिए इस काम में आशाजनक सफलता हो सकती है।

आज मैंने शीघ्र सोने की तैयारी की। सोने की चारपाई यहाँ भारतीय ढंग की नहीं होती, लोहे की छल्लेदार कमानियों की होती है। इसमें खटमल आदि पड़ने का डर नहीं रहता। लकड़ी के पलंग भी होते हैं। उनमें खटमल पड़ भी जायं तो औषधियों से दूर कर देते हैं।

खिड़कियों के पर्दे गिरा कर मैंने कपड़े उतारे। पहिले प्रभु को धन्य-वाद दिया, बाद में सो गया।

जुलाई २९। आज देर से चल सका। जब मैं सड़क पर पहुँचा तो दस बज गये थे। मित्र के साथ घूमने और उनकी स्त्री से विदा होने में देर होगई थी। आज गजब की धूप थी।

तीन बजे के करीब मैं एक घर के पास पहुंचा। बहुत भूखा था। दस पैसे देकर घर वाले किसान से मैंने कुछ खाने को लिया और बढ़ा चला गया। जब मड्डी नामक जगह के पास पहुंचा तो सूर्य अस्त होने पर था।

वहाँ बहुत से मजदूर सड़क पर काम कर रहे थे। मड्डी में कोई स्टेशन नहीं, खाली रेलगाड़ी खड़ी होने के लिए दूसरी पटरी डाली गई है। एक ओर छोटी सी पटरी पर कुछ और मजदूर-गाड़ियाँ खड़ी थीं। उन्हीं में ये लोग रहते थे। जब मैं मड्डी पहुंचा, ये लोग खाना खाकर सड़क पर बैठे हवा खा रहे थे। मैं भी इन्हीं के पास जा बैठा। ये लोग ग्रीक थे। इनमें से एक, जो थोड़ी अंग्रेजी जानता था, मुझसे बोला--

"क्या तुम भूखे हो ?"

मैंने कहा-"हां।"

तब उसने बावर्ची से कहा कि इस आदमी को कुछ खाने को दो। उसने मुझे रोटी, दूध और चाय दी। थोड़ी सी खांड भी मैंने मांगी और ज्यों-त्यों करके अपना पेट भरा। इससे निपट कर मैं सड़क पर आ बैठा। उस ग्रीक ने, जो अंग्रेजी जानता था, मुझसे मेरा हाल पूछा। मैंने थोड़े शब्दों में अपनी अवस्था कह सुनाई। तब बहुत से ग्रीक मेरे इर्द-गिर्द आ बैठे, क्योंकि उनके दुभाषिए ने उन्हें मेरी बातें बतला दी थीं। ये लोग अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजी में मुझ पर अपने दिल के भाव प्रकट करने लगे।

इस प्रकार कुछ देर तक वार्तालाप होता रहा। मुझसे दुभाषिये ने पूछा-"आप कहां सोयेंगे ?"

मैंने कहा-"यहीं सड़क पर सो जाऊंगा।"

उसे, न जाने क्यों, यह सुनकर बड़ा दुःख हुआ। वह उठकर कहीं गया। आधे घंटे बाद उसने कुछ लाकर मेरी जेब में डाल दिया और बोला-- "आपकी हम लोग कुछ भी सेवा नहीं कर सकते। आप यहां कहां सोवेंगे ? यह जगह आपके लायक नहीं। आप यूजीन जाइये, वहाँ किसी होटल में जाकर सोइयेगा।"

मैंने बहुत कहा, पर उस प्रेमी ने न माना। गाड़ी आने ही वाली थी। मुझे जबरदस्ती उसने गाड़ी में बिठा दिया। सब ग्रीक मजदूरों ने

रेल चलते समय प्रेम-पूर्वक टोपियाँ-रूमाल हिला-हिला कर मुझे बिदा किया।

"वाह रे प्रेम! इन लोगों के साथ मेरा क्या रिश्ता था! इनका देश यूनान, मेरी जन्मभूमि भारत! इनकी भाषा यूनानी, मेरी भाषा हिन्दी! ये लोग मेरी बात तक नहीं समझ सकते, तिस पर इतना प्रेम! यह क्यों? ये लोग गरीब हैं। सारे दिन मजदूरी करके सख्त धूप सहकर रुपया कमाते हैं। अपना देश छोड़कर यहाँ ये केवल रुपया कमाने आए हैं। इन्होंने मुझमें क्या बात देखी जो इतना प्रेम प्रकट किया।"—रेल चली जाती थी और मैं इन्हीं विचारों में मग्न था। मैंने इन लोगों से कहा था कि मैं अपने देश जाकर निर्धन लोगों में शिक्षा का प्रचार करूंगा। क्या इस बात ने इन पर असर किया? ये लोग परदेशी हैं, मैं भी परदेशी हूं। इनका मेरे देश के निर्धन लोगों से क्या सम्बन्ध? इस प्रकार तर्क-वितर्क करता हुआ मैं बैठा था कि टिकट वाले ने आकर टिकट माँगा। मैंने उसको टिकट के पैसे दे दिये। जेब देखने पर मालूम हुआ कि उन प्रेमी मजदूरों ने ग्यारह रुपये मेरी जेब में डाले थे। यूजीन थोड़ी ही दूर था। जब टिकट वाले ने "यूजीन! यूजीन!" पुकारा, तब मैं उठा और गाड़ी से निकल स्टेशन पर हो लिया। यूजीन में मैं पहले रह चुका था। १९०७ के दिसम्बर में मैं यहाँ आरेगन विश्वविद्यालय में भर्ती होने के लिए आया था और जून १९०८ तक मैं यूजीन में रहा था। आरेगन रियासत का विश्वविद्यालय यहीं पर है। यह छोटा सा कस्बा विलामेट नदी के किनारे बसा है।

इसकी शोभा क्या वर्णन करूं? मैंने जो दिन यहाँ काटे वे बड़े ही आनन्द के थे। यहाँ शराब बेचना कानूनन मना है, इसीसे यहाँ भद्र लोग बसते हैं। बारह हजार की आबादी के इस कस्बे में सब तरह के आराम हैं। बिजली की गाड़ियाँ गलियों में दौड़ती फिरती हैं। अच्छे-अच्छे हाई स्कूल हैं, पुस्तकालय हैं। साफ़-सुथरी गलियाँ हैं। यहाँ के मकान देख तबियत खुश हो जाती है।

विश्वविद्यालय के इर्द-गिर्द की वायु बहुत स्वच्छ है। विलामेट से निकली हुई एक नहर पास ही बहती है। उसके दोनों किनारों पर ऐसे सघन वृक्ष हैं कि उनकी डालियाँ आपस मे प्रेमपूर्वक हाथ मिलाती हैं। गर्मियों में छोटी-छोटी नौकाओं पर बैठे हुए प्रेमी युवक अपनी प्रियतमाओं के साथ क्या ही भले मालूम होते हैं! ठंडी-ठंडी हवा, पेड़ों का साया, जल में नाव, प्रेमपात्र सखा साथ––वाह रे जीवन! ये सब स्वतंत्रता के फल हैं। जहाँ शिक्षा-प्रचार से स्त्री-पुरुष दोनों विद्या का आनन्द लेते हैं, वहीं जीवन का सच्चा सुख प्राप्त होता है।

प्रकृति ने इस प्रान्त पर बड़ी कृपा की है। आरेगन का यह प्रान्त विलामेट की तराई (Willamette Valley) के नाम से प्रसिद्ध है।

यह तराई १६० मील लम्बी और ६० मील के करीब चौड़ी है। यह प्रान्त बहुत ही सरसब्ज़ है। पानी की कमी नहीं। वर्षा खूब होती है। सब तरह की फ़सल फूलती फलती है। छोटी-छोटी नदियाँ, पहाड़ियाँ, वृक्षों के कुंज और न अतिशीत, न अतिउष्ण जलवायु ने इस प्रान्त को स्वर्ग बना रक्खा है। हर तरह के फल-फूल यहाँ होते हैं। सर्दी बहुत नहीं पड़ती, जनवरी में थोड़ी बर्फ गिर जाती है। सब तरफ हरियाली ही हरियाली नजर आती है। कृषकों के लिए यह भूमि स्वर्णमयी है।

इस तराई के बड़े-बड़े शहर पोर्टलैण्ड, आरेगन सिटी, सेलम, अलबनी तथा यूजीन हैं।

अलबनी की आबादी सात हज़ार है। यह छोटा सा सुहावना कस्बा है। यहाँ से रेल की एक लाइन कारवालिस को गई है जो थोड़ी ही दूर पर है। यहीं आरेगन का कृषि कालेज है, जहाँ से हमारे कई एक भारतीय बन्धुओं ने उपाधियाँ प्राप्त की हैं।

घूमता-फिरता साढ़े नौ बजे के करीब मैं विश्वविद्यालय की इमारतों के करीब पहुंचा। आजकल छुट्टियों के दिन थे, इससे बहुत कम विद्यार्थी विद्यालय में रहते हैं। जो पढ़ाई गर्मियों में होती है उसीके छात्र इस

समय यहाँ रहते हैं। इस कारण मुझे पूरी आशा थी कि यहाँ सोने का प्रबन्ध हो जायगा। अपनी जान-पहचान का कोई न कोई छात्र अवश्य ही मिल जायगा, अतएव कमरा मिलने में और भी सुभीता होगा। यही सोचकर मैंने विद्यालय मे जाना उचित समझा था।

जाने पर पता लगा कि मेरा मित्र मिस्टर निकोलस यहीं पर है। पर वह कमरे में नहीं था, कहीं घूमने गया था। विद्यालय मे सिर्फ पाँच दिन पढ़ाई होती है। शनिवार को छुट्टी रहती है। आज शुक्रवार था, इस कारण किसी से मिलने के लिए मेरा मित्र बाहर गया था। मैंने बेहतर यही समझा कि जब तक वह आवे तब तक यहीं कहीं घूम-फिर कर समय काटना चाहिए। दस बज चुके थे। मैं टहलने के लिए पास की गली में हो लिया। थोड़ी दूर जाने पर किसी के पियानो बजाने और मीठा आलाप करने की आवाज़ आई। मैं उसी ओर बढ़ा। एक घर के नीचे के कमरे मे कोई गा रहा था। पास जाने पर खिड़की में से मैंने एक लड़की को पियानो के सामने बैठी हुई देखा। बिजली की रोशनी उसके दिव्य मुख पर पड़ रही थी और गाने के भाव उसके सुन्दर चेहरे पर लक्षित होते थे। उसकी उस समय की छटा देखने योग्य थी। क्यों न हो! शुद्ध पवित्र उच्च भावों के समान मनुष्य के मुख को कौन पदार्थ सुन्दर और उज्ज्वल कर सकता है! और गान भी क्या था? देशभक्तिपूर्ण फ्रांस देश का वह मर्मभेदी गान जिसकी धुन से उत्साहित हो फ्रांस वालों ने बड़े विकट समय मे अपनी स्वाधीनता की रक्षा के लिए अपना जीवन, अपना सर्वस्व मातृ-भूमि के अर्पण कर दिया था और अन्त में विजय पा अपने देश के उत्थान की नींव डाली थी। अच्छे गान का भी मनुष्य के चित्त पर विचित्र प्रभाव पड़ता है। क्या भारतवर्ष मे भी ऐसे पवित्र जातीय गान रास्ते-रास्ते कभी सुनाई देंगे? इस गाने ने मेरे हृदय पर जादू का असर किया। अपने देश का प्राचीन इतिहास मेरी आँखों के सामने आने लगा। अपनी प्राचीन मर्यादा और वर्तमान हीन दशा पर विचार कर दुःख उमड़ने लगा। हे ईश्वर! भारतवासियों को सुबुद्धि दो कि वे अपने देश के

बाहर निकल कर यहां आकर देखे कि किस प्रकार के राष्ट्रीय भाव यहां के लोगों को प्रोत्साहित कर रहे हैं।

एक मूर्ति की तरह मैं खड़ा रह गया। टकटकी लगाए उस देवी की ओर देख रहा था। उसके हृदय से जो भाव निकलते थे वे राग में जान डाल देते थे। उसके स्वर में जीती-जागती शक्ति थी। मीठे स्वर और करुण रस भरे हुए भाव अद्भुत असर पैदा करते हैं। मैं वहां से हटा और चुपचाप चल दिया। विश्वविद्यालय के निकट आकर एक पेड़ के नीचे बैठ गया। मुझ पर क्या गुजरी, रात कैसे कटी, परमात्मा ही जानता है।

जुलाई ३०। दूसरे दिन मित्र निकोलस से भेंट हुई। उसके अनुरोध से आज यूजीन में ही ठहर गया। सारा दिन घूमने-फिरने और अपने पुराने मित्रों से मिलने में ही कटा। प्रेज़िडेन्ट केम्बल के घर गया। उनसे वार्तालाप हुआ। उनकी स्त्री से मेरी पहले की जान-पहचान थी। उसने बहुत सी बातें पूछीं। फिर प्रोफेसर यंग के दर्शन किये। आज विद्यालय के बड़े दीवानखाने में विद्यार्थियों का नाचना-गाना था। मेरा मित्र उसी में फंसा रहा। ऐसी बातें मुझे पसन्द नहीं, इसलिए मैंने सोने की तैयारी की। मित्र ने सब प्रबन्ध कर दिया था। मैंने रात आराम से काटी।

जुलाई ३१। आज का दिन बहुत ठंडा था। प्रातःकाल ही मित्र निकोलस से बिदा हो मैंने सड़क पकड़ी। यूजीन के पास ही थोड़ी दूर पर स्प्रिंगफील्ड नामक गाँव है। उधर से ही मुझे जाना था। विलामेट नदी के किनारे प्रकृति का आनन्द लेता हुआ मैं चला। चारों ओर हरियाली थी। यहाँ साँप, बिच्छू आदि का नाम नहीं। घास पर कहीं भी बैठ जाइये, कुछ डर नहीं। स्प्रिंगफील्ड से थोड़ी दूर पर मेकंजी नाम की एक छोटी सी नदी बहती है। उसका पानी ऐसा स्वच्छ है कि जल में पैसा फेंकने से दीख पड़ता है।

आनन्द से मैं सड़क पर चला जा रहा था। किसान लोग अपने कामों में लगे थे। ये फसल के दिन हैं। इन दिनों कृषक अपने काम में मस्त रहते हैं। जहाँ पानी की अधिक जरूरत है वहाँ पवन चक्कियाँ लगी हैं। कैसा अच्छा इन्तजाम है! हवा से आप ही आप चक्की चलती है और पानी निकलता है। न बैलों की जरूरत, न हाँकने वाले आदमी की; आप ही आप सब काम हो रहा है। एक हमारा देश है, जहाँ वही चमड़े के चरसे, वही बैलों की जोड़ी, वही उतार-चढ़ाव, वही जहालत की टोकरी---ऐसी दशा में कैसे उन्नति हो सकती है! बेबस मेरे मुंह से निकला--

कब तक पीओगे प्याले, भारत के रहने वालो,
अब आंखें खोल देखो, हिन्दुस्तान वालो!
गैरों ने तुम को लूटा, सदियों में तुमको मारा;
अब बेखबर न हो, भारत के नौनिहालो!
कपड़ा रहा न तन पै, खाने को कुछ नहीं है;
करते मजूरी हो, गैरों के नाम वालो!
सुन्दर भवन कहाँ वे, पुरखों ने जो गढ़े थे;
उन का पता नहीं है, भारी गुमान वालो!
मजहब जो तुम्हारा, फिरता है मारा-मारा;
करनी है अब तैयारी, आपस के नाम वालो!
आपस की फूट भाई, जब पर यह रंग लाई;
तब ही तो मार खाई, उन्नति निशान वालो!

इस प्रकार अपने दिल के फफोले फोड़ता हुआ चला जाता था। दोपहर को मैं ताकर पहुंचा। वहाँ कुछ रोटी और खाँड मोल लेकर खाई, ठंडा पानी पिया और चला। रास्ते में एक आदमी मोटर में बैठा चला जा रहा था। मुझे देखकर वह बोला—"चढ़ोगे?" मैंने दिल में कहा—"अन्धे को क्या चाहिये, दो आंखें!" "जी हाँ, यदि आपकी मेहरबानी हो तो।"

उसने मोटर खड़ी कर दी और मैं चढ़ गया। फिर क्या था, मोटर मानो हवा होगया।

रास्ते में उस भद्र पुरुष ने मुझसे मेरा हाल पूछा। मैंने कहा, मैं यात्री हूं; यह देश देखने के लिए घूम रहा हूं। इस भले आदमी को आज रोज़-बर्ग पहुंचना था और मुझे भी वहीं जाना था। इस कारण मेरी बन आई, क्योंकि रोज़बर्ग यहाँ से फासले पर है।

विलामेट घाटी से निकल कर हम लोग उम्पका घाटी में आए। यह घाटी अभी अच्छी तरह आबाद नहीं हुई। जंगलों और पहाड़ियों में से हम लोग जा रहे थे। बड़े-बड़े पेड़ आकाश से बातें करते हुए भयंकर जान पड़ते थे। सड़क पहाड़ियों के बीच में ऊपर-नीचे चक्कर काटती हुई जाती है। कभी-कभी मैदान आ जाता है, जहां खेतों में पशु चरते दीख पड़ते है। उस भद्र पुरुष से मुझे मालूम हुआ कि तेईस अरब फीट से अधिक लकड़ी इसमें है। समय आवेगा जब यह सब कट-कटा कर २,३०,००,००,०००) रुपये के रूप में हो जायगी।

शाम को हम लोग रोजबर्ग पहुंच गए और उस भद्र पुरुष को मैंने अनेक-अनेक धन्यवाद दिए। उसकी बदौलत आज अच्छी सैर होगई। मैं कस्बे की ओर बढ़ा और होटल तलाश करने के लिए स्टेशन के पास पहुंचा। वहां एक गाड़ी को आते देखा। उससे झपट कर बचने की कोशिश में मेरे ठोकर लगी और मैं गिर गया। खैर हुई जो कटने से बच गया; तो भी सख्त चोट लगी। बड़ी मुश्किल से मैंने होटल तलाश किया। थोड़ा खाना खाकर बिस्तर पर जा पड़ा। रात को टांग में दर्द होने के कारण नींद नहीं आई।

अगस्त १। पोर्टलैण्ड से १९८ मील के फासले पर, उम्पका तराई में, रोजबर्ग एक अच्छा बड़ा कस्बा है। इसकी आबादी साढ़े पाँच हजार है। डगलस कौन्टी की इसे राजधानी समझिए। इस कस्बे में आधुनिक वैज्ञानिक भोगों के सब सामान हैं। स्वच्छ जल, अग्नि संरक्षक यन्त्र, मैला

ले जाने वाले नल, अच्छी पक्की गलियां, बिजली प्रकाशित घर, टेलीफोन—कहना क्या, सभी कुछ इस साढ़े पांच हजार की आबादी के कस्बे में विद्यमान है।

डगलस कौन्टी की पैदावार बतला देना भी अनुचित न होगा। इस तराई में गेहूं, ओट, मकई, अलफाल्फा घास, बादाम, अखरोट, सेव, नासपाती, प्रून, आडू, चेरी, अन्जीर, अंगूर पैदा होते हैं। यहाँ की भूमि अच्छी उपजाऊ है। वर्ष में ३५ इंच तक जल बरसता है। आबपाशी की आवश्यकता नहीं। गाय-बैल खब मोटे-ताजे होते हैं। दूध-मक्खन बढ़िया मिलता है। किसान लोग शहद की मक्खियाँ, मुर्गियां, सूअर, भेड़ पालकर भी बहुत लाभ उठाते हैं।

जाड़े में यहां अधिक शीत नहीं पड़ता। कभी थोड़ा बर्फ गिर गया, पर ठहरता नहीं। गर्मियों में न अधिक गर्मी। उन दिनों अगस्त में मैं कमरे के अन्दर कपड़ा ओढ़ कर सोता था।

मैं यहां अधिक नहीं ठहरा। सवेरा होते ही, इधर-उधर चक्कर लगा, शहर की वजह-कतह देख, आठ बजे के करीब मैं चल पड़ा। बारह बजे डोल नामक गाँव में जाकर पहुंचा। एक दुकानदार ने राह चलतों के लिए साधारण सा होटल खोल रक्खा है। उसको १५ सेन्ट देकर अपनी इच्छानुकूल भोजन किया। फिर चला। रेल यहाँ एक छोटे नाले के किनारे किनारे जाती है। अलफाल्फा घास के खेत ही खेत दिखाई देते हैं। बाग-बगीचे भी आरम्भ होगए थे।

साढ़े चार बजे मर्टल क्रीक जाकर पहुंचा। आज यहीं विश्राम करने की सलाह थी। दिन भर में २२ मील चला, शरीर में दर्द था। एक होटल सड़क के किनारे पर था। उसी में जाकर ठहर गया। २५ सेन्ट एक रात के दिए। रात को सो नहीं सका। नाक बन्द हो जाता था। सारी रात कष्ट रहा।

अगस्त २। मर्टल क्रीक में लकड़ी की मिलें है। बहुत से मजदूर इनमें काम करते हैं। ये ही लोग यहां रहते हैं।

नाक का कष्ट होने के कारण मैंने ग्रान्टस-पास तक रेल का टिकट खरीद लिया। १२ बजे की ट्रेन में चढ़कर दो बजे दोपहर को वहाँ पहुंचा। रास्ते में रिडल तक अलफालफा के खेत और उद्यान देखने में आए। रेल के किनारे के दृश्य मनोहर है। सदर्न पेसेफिक कम्पनी ने अपनी सड़क नदी-नालों के किनारे-किनारे बनाई है। जहाँ तक हो सका है, नैसर्गिक दृश्य छूटने नहीं दिए। दोनों ओर फलों से लदे हुए पेड़ दिखाई देते है।

'ग्रान्टस-पास' रोगरिवर तराई में है। इसकी आबादी भी ६००० की है। इसके इर्द-गिर्द की भूमि मेव, नाशपाती और अंगूरों के लिए बड़ी अच्छी है। पश्चिम के और कस्बों की तरह इसकी आबादी भी बहुत शीघ्र बढ़ रही है।

मेरे पास केवल ५० सेन्ट रह गए थे। एक दुकान से रोटी और प्रून खरीदे। कस्बे से बाहर थोड़ी दूर पर एक मालगाड़ी के साए में बैठ कर पेट पूजा में लग गया। दो मजदूर मालगाड़ी में लकड़ी भर रहे थे। उन्होंने मुझे होबो समझा। मेरी ओर देख-देख कर वे हंसते थे। पेट पूजा करके मैंने फिर सड़क पकड़ी। बुडविल नामक गाँव में पहुंचने का निश्चय था। यह गाँव यहाँ से १० मील की दूरी पर है। छः बजे शाम को मैं वहाँ पहुंच गया। बहुत दिनों से पेट भर खाना न मिलने के कारण तबियत जरा परेशान थी। इधर-उधर घूमकर भोजन की खोज की, पर कहीं काम न बना। मुझे सोने की अधिक चिन्ता थी। रात को कहाँ लागा लगेगा? यही फिकर हो रही थी। मालगाड़ी के आने का समय था, इसलिए मैं डिपो की ओर चला गया और स्टेशन के निकट टहलने लगा। जब गाड़ी आई तो उसमें से एक होबो उतरा। गाड़ी चली गई। वह होबो मेरी ओर आया, क्योंकि मेरे भी कपड़े मैले हो रहे थे। मेरे पास आकर कहने लगा—

"किधर जाओगे ?"

"केलीफोर्निया की ओर जाऊंगा।"

"मैं तो उधर से आता ही हूं। मेरा धावा पोर्टलैण्ड (आरेगन) की ओर है।"

"अच्छा ! आप उधर जाइये। लेकिन कुछ खाने-पीने की तजवीज़ बतलाओ।"

"वाह, खूब कही ! आओ मेरे साथ।"

मैं उसके पीछे-पीछे चला। गाँव के बाहर थोड़े फासले पर प्रूनों का बगीचा था। उसके पास जाकर वह बोला—

"लो, पेट भर प्रून खाओ।"

लोहे के तार फाँद कर वह बगीचे के अन्दर चला गया और प्रून तोड़ कर अपनी जेबें भरने लगा। जब उसकी मनोवाञ्छा पूरी होगई तो वह बगीचे से बाहर आया। रेल की सड़क पर बैठकर हम दोनों प्रून खाने लगे। फल अभी अच्छी प्रकार पके नहीं थे, पर हां क्षुधा की शान्ति कर सकते थे।

जब जरा पेट से छुटकारा पाया तो सोने की फिकर हुई। मैंने उस होबो से पूछा—

"अब कहीं सोने का भी बन्दोबस्त करो।"

होबो हँस कर बोला—

"वाह, इसकी क्या फिकर है ! वह सामने जो खलियान दिखाई देता है उसी में चल लेटेंगे।" परन्तु मैं अभी तक पक्का होबो नहीं बना था, मैं कभी घास में नहीं सोया था। इसलिए वहाँ से उठ कर मैं फिर गाँव की ओर चला। गाँव में जाकर मैंने होटल तलाश किया। पच्चीस सेंट एक रात के देने पड़े। भूखा ही सो रहा।

अगस्त ३। बुडविल भारतीय ढंग का गाँव है। बीच में एक वृक्ष,

उसके इर्द-गिर्द अर्धचन्द्राकार में घर बने हुए हैं। दुकानें भी साधारण ही हैं। वृक्ष के नीचे हल, सग्गड़ आदि पड़े थे और पास ही गैया बंधी हुई थी। इस गाँव को देखकर मुझे अपने यहाँ के ग्राम याद आ गये। इधर-उधर चक्कर लगा कर मैं सवेरे सात बजे बुडविल से निकला। अब मेरा धात्रा फीनिक्स की तरफ था, क्योंकि फीनिक्स में मेरे मित्र मिस्टर स्काट रहते थे। उनसे मिलने की बड़ी उत्कण्ठा थी, इसलिए कदम बढ़ा जल्दी-जल्दी चला। यहाँ से कई मील तक भूमि पंजाब के बार इलाके की तरह बिलकुल चौरस जमीन, उसमें छोटी-छोटी झाड़ियाँ चली गई हैं। दूर तक निगाह दौड़ाओ, कोई चीज दृष्टि को रोकने वाली नहीं है। दोपहर के करीब मैं मेडफोर्ड पहुँच गया। आरेगन रियासत की जेक्सन कौन्टी का यह सबसे बड़ा शहर है। इस प्रान्तिक भूमि को रोग-रिवर-वैली (Rogue River Valley) कहते हैं। मेडफोर्ड की आबादी ग्यारह हजार के करीब है। इसकी सड़कें ऐस्फाल्ट (Asphalt) की बनी हैं और अठारह मील के पार्श्वपथ इस छोटे से शहर की शोभा बढ़ाते हैं। मैला ले जाने वाले नलों का इन्तजाम बहुत अच्छा है। लाखों रुपये की कीमत के होटल बने हैं। बहुत अच्छे-अच्छे हस्पताल भी बने हैं। कारनेगी महाराज ने यहाँ भी एक लायब्रेरी बनवा दी है। नगर के बच्चों के लिए बड़े अच्छे स्कूल बने हैं। कहना क्या, मेडफोर्ड एक आधुनिक वैज्ञानिक ढंग का बना हुआ उन्नत नगर है। इसके इर्द-गिर्द की भूमि बढ़िया सेब और नाशपाती पैदा करने के कारण बहुत लोगों को इधर आकर्षित करती है।

चलते-चलते रास्ते में एक बगीचे के पास खड़ा होगया। वहाँ माली लोग वृक्षों को स्नान करा रहे थे। मेरे पूछने पर मालूम हुआ कि वे तम्बाकू के रस को वृक्षों पर छिड़क रहे हैं, इससे फलों के कीड़े शीघ्र ही मर जाते हैं। अपनी गवर्नमेण्ट को ये लोग अढ़ाई डालर एकड़ सालाना सिंचाई का लगान देते हैं।

सत्ताईस मील चल कर छः बजे के करीब मैं फीनिक्स पहुँच गया।

मिस्टर स्काट का घर मालूम नहीं था। उसकी पूछताछ में भटकते-भटकते संध्या होगई। वे शहर से दो-ढाई मील के फासले पर रहते थे। मैंने बहुतेरा यत्न किया कि उनके घर का पता लग जाय, परन्तु कार्य-सिद्धि न हुई। पहाड़ियों में भटकते-भटकते अंधेरा होगया। दूर तक कहीं मकान दिखाई न देता था। मैं घबरा गया कि अब कैसे गुजारा होगा। पहिले सलाह हुई कि पेड़ पर बैठ कर रात काटूँ। इतने में टन! टन! की आवाज मेरे कान में पहुँची। अंधेरे में दिखाई तो कुछ नहीं देता था, परन्तु जब-जब टन-टन की आवाज मेरे कान में पहुँचती, मुझे धैर्य हो जाता था कि मैं किसी घर के निकट हूँ, क्योंकि यह आवाज पशुओं की गर्दनों में पड़ी हुई घंटियों से आती थी। धीरे-धीरे मैं उधर चला। पौन मील के फासले पर जाकर मुझे एक घर दिखाई दिया। बाहर खलियान में गैया बंधी थीं। उन्हीं की गर्दनों में घंटियाँ लटक रही थीं। मकान के निकट जाकर मैंने एक किसान को अपने परिवार के साथ बाहर कुर्सियों पर बैठे देखा। मेरा इन लोगों ने बड़ा सत्कार किया। खाने को दिया और सोने के लिये खटिया का भी प्रबन्ध कर दिया। यह किसान दक्षिणी रियासतों का रहने वाला था। प्रायः ये लोग बड़े आतिथ्यसेवी होते हैं। रात को यहीं सो रहा।

अगस्त ६ से ७ तक। सवेरे उठ कर मैं फिर मिस्टर स्काट की तलाश में चला। आखिर मकान मिल गया। मेरा मित्र मुझे देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसके छोटे से मकान में सब प्रबन्ध ठीक-ठीक था। एक जापानी नौकर अपनी स्त्री सहित मिस्टर स्काट के यहाँ काम करता था। ये दोनों जापान से मेरे मित्र के साथ आये थे। इस मकान के कुल पाँच कमरे थे। बैठक, रसोईघर, शौचगृह, शयनागार और एक कमरा जापानी नौकर और उसकी स्त्री के लिए था। मिस्टर स्काट ने शिक्षा-विभाग की नौकरी छोड़ कृषकों का जीवन अख्तियार किया था।

अठारह हजार रुपये लगाकर यह सब भूमि खरीदी थी और दिन-रात उसकी उपज बढ़ाने में दत्तचित्त थे।

नहा-धोकर मैंने खाना खाया। इसके बाद मिस्टर स्काट का बगीचा देखने चला। इनके बगीचे में सेव, नाशपाती और आड़ुओं के वृक्ष अधिक हैं। तीन प्रकार के सेव--स्पिटज़नवर्ग, न्यू टाउन, जोनाथन--इस प्रान्त में अधिक होते हैं। पहिला स्पिटज़नवर्ग गहरे लाल रंग का सेव होता है। सात वर्ष की उमर में इसमें फल लगने लगते हैं और मण्डी में इसका दाम बहुत अधिक पड़ता है। दूसरा न्यू टाउन कुछ जर्दी लिये हुए रंग का सेव होता है। इसमें छः वर्ष की उमर में फल लगते हैं। तीसरा जोनाथन भी लाल रंग का सेव होता है। इसमें चार वर्ष की उमर में ही फल लगने लगता है।

अब जरा नाशपातियों की भी सुनिये। पहिली किस्म वार्टलेट बहुत लाभदायक होती है। बाजार में इसके दाम पौने दो डालर से दो डालर एक सन्दूक के पड़ते हैं और एक सन्दूक में एक सौ बीस से लेकर एक सौ पचासी तक नाशपाती आती हैं। दूसरी किस्म का नाम न्यू-रेड-ऐंजों है। यह सितम्बर में फलती है परन्तु वार्टलेट की तरह अधिक नहीं फलती। बाजार में इसकी कीमत दो से लेकर तीन डालर तक एक सन्दूक की पड़ती है। तीसरी किस्म का नाम विन्टर-मैलिस है। यह अक्तूबर में फलती है। पहिली दो किस्मों से यह फल छोटा होता है। इसका दाम घटता-बढ़ता रहता है। इन वृक्षों को पाँचवें वर्ष में फल लगते हैं।

अब थोड़ा-सा हाल आड़ुओं का भी सुन लीजिए। इसकी पहिली किस्म का नाम अर्ली-एलेक्जेन्डर है। यह जुलाई में फलने लगता है और इसका गूदा गुठली से चिपटा रहता है। यह तिजारत के लायक नहीं होता। दूसरी किस्म का नाम हेलज-अर्ली-क्राफोर्ड है। यह मध्य जुलाई से पकने लगता है। इसका गूदा गुठली से नहीं चिपटता।

तीसरी किस्म अर्लो-क्राफोर्ड है। यह पीलापन लिये हुए देखने में बहुत अच्छा होता है। इसका गूदा भी बीज से नहीं चिपटता और देश-देशान्तर जाने के लिए भी बहुत अच्छा है। चौथी किस्म का नाम कारमेन है। यह भी जर्दी मायल बहुत बड़ा आड़ू होता है। इसका गूदा भी गुठली से नहीं चिपटता। दूर-दूर मण्डियों में घूमने के लिए यह बड़ा काम का फल है। आड़ुओं के वृक्ष में तीसरे साल फल लगता है। इन वृक्षों के बीच की जमीन में टुमाटो और मकई बोते हैं। साल में छः बार वृक्षों को स्नान कराया जाता है। पहिला स्नान चूना गंधक (Lime sulphur) से कराते हैं जब कि वसन्त ऋतु में वृक्षों की कलियाँ खिलती हैं। इस स्नान का प्रभाव यह होता है कि वृक्षों को कोई बीमारी अथवा छोटे कीड़े नहीं लगते। इसके बाद मई, जून, जुलाई और अगस्त के महीनों में चार स्नान सीतालित (Lead arsenate) से करवाते हैं। इससे बदर पतंग (Codling moth) नाम का कीड़ा वृक्षों को नहीं लगता। आखिर का स्नान दिसम्बर में फल चुन लेने के बाद करवाते हैं। इससे रहे-सहे शिलीन्ध्र, तरुपूका आदि (Fungus, aphis eggs) और शल्क सम्बन्धी कीट भी (Scabb) नष्ट हो जाते हैं। यह आखिरी स्नान भी चूना गन्धक से करवाते हैं।

स्काट के साथ में उनके बगीचे में गया और हम लोग दिन भर सेव के वृक्षों को सीतालित (Lead arsenate) स्नान कराते रहे। मिस्टर स्काट के एक दोस्त का लड़का वेंडलगैमल भी यहां आया हुआ था। मजदूरों के कपड़े पहिन यह भी हमारे साथ काम करता था। आठ वर्ष का यह लड़का मेहनत-मजदूरी के काम से बिलकुल नहीं घबराता था। वह और मैं दोनों एक दिन घर के सामने की पहाड़ी पर गए। उस पहाड़ी से इर्द-गिर्द का दृश्य भली प्रकार दिखाई पड़ता था। ऐशलेण्ड नामी शहर बिलकुल पास ही मालूम होता था।

अपने मित्र के साथ मेरी कई एक विषयों पर बातचीत हुई। स्काट

के विचार वेदान्त की ओर झुकते थे। वे यह चाहते थे कि मैं वेदान्त धर्म के प्रचार करने में अपना जीवन व्यतीत करूं। मैंने उनसे कहा कि जब तक मेरे देश की राजनीतिक दशा नहीं सुधरती तब तक हम लोगों का कोई हक नहीं कि हम पाश्चात्य देशों के लोगों को धर्म की शिक्षा द, क्योंकि पाश्चात्य देशों के सर्वसाधारण लोगों के दिलों में भारतवर्ष के लिए कोई इज्जत नहीं है। जब तक हम अपने धर्म को अमली जामा पहिना कर कुछ करके नहीं दिखला देते तब तक वेदान्त की फिलासफी का प्रचार करना व्यर्थ का बकवास मात्र है। मेरे मित्र मुझे यही प्रेरणा करते थे कि मैं भारतवर्ष की राजनीतिक सेवा के काम को छोड़कर वेदान्त उपदेश का ही काम करूं।

अगस्त ७ को रविवार था। आज का दिन सब मैले-कुचैले कपड़े धोने में गुजरा। थोड़ी फुरसत मिलने पर विर्जिनियन नामक उपन्यास पढ़ता रहा। इसके बाद सो गया।

अगस्त ८। आज सवेरे ही शौचादि से निवृत्त होकर खाना खाकर आठ बजे के करीब मैं, गैमल और मिसेज़ स्काट फिटन म बैठकर टेलेन्ट की ओर चले। स्काट की तबियत अच्छी नहीं थी, इस कारण वे मेरे साथ न चल सके। टेलेन्ट एक छोटा सा गाँव है और मिस्टर स्काट के घर से थोड़ी दूर के फासले पर है। मैडम स्काट मुझे वहाँ तक पहुंचाने गईं। टेलेन्ट पहुंच कर मैंने उनसे बिदा माँगी और ऐशलेण्ड की ओर पैदल चला। दस बजे के करीब में ऐशलैण्ड पहुंच गया। वहाँ डाकखाने में जाकर अपनी चिट्ठियों के विषय में पूछताछ की। एक चिट्ठी में पाँच डालर का मनीआर्डर था जो कि पोर्टलैण्ड के मिस्टर किम ने भेजे थे। पोस्ट आफिस से निपट कर मैं शहर देखने चला। ऐशलैण्ड भी रोग रिवर घाटी में है। इसकी आबादी सात हजार से अधिक है। यहाँ अच्छे-अच्छे मकान बने हैं। बड़ी-बड़ी चौड़ी गलियाँ और पक्की सड़कें इस छोटे से नगर की शोभा बढ़ाती हैं।

आरेगन रियासत का यह भाग भी सेव, नाशपाती और आड़ुओं के लिए प्रसिद्ध है। यह शहर आरेगन रियासत की हद समझिए। यों तो रियासत की असली हद कोल तक है जो ऐशलैण्ड से बीस-बाईस मील के फ़ासले पर है, परन्तु हम अपने पाठकों को यहीं पर ठहराना चाहते हैं और कैलिफोर्निया रियासत में दाखिल होने से पहले आरेगन के विषय में कुछ विस्तार से बतलाना उचित समझते हैं। क्योंकि अब हम दुबारा इस तरफ नहीं लौटेंगे, इसलिए इस रियासत को आखिरी प्रणाम करने से पहिले इससे जी भर बातें कर लेना अच्छा होगा।

आरेगन रियासत का क्षेत्रफल छियानवे हजार वर्गमील है। इसकी आबादी सात लाख के करीब है। इंग्लैण्ड, स्काटलैण्ड और वेल्ज़ का रकबा इस एक रियासत से कम है और वहाँ पर तीन करोड़ सत्तर लाख की आबादी है। इससे समझ सकते हैं कि आरेगन में कितनी अधिक जनसंख्या के लिए घर बन सकते हैं।

यहाँ की आबोहवा न तो बहुत गरम और न अधिक सर्द है। जाड़ों में थोड़ी बर्फ गिर जाती है, परन्तु ठहरती नहीं। गर्मियों में दिन को धूप कड़ी होती है लेकिन रात को बड़ा आनन्द रहता है, पर यह बात समुद्री तट के निकटस्थ जिलों में ही है। अधिक अन्तरीय भाग में गर्मी खासी पड़ती है पर लोग अन्दर सोते हैं। आँधी-तूफान भी इधर नहीं होते। भूमि बहुत ही उपजाऊ है। प्राकृतिक दृश्य अति मनोहर हैं, जिधर देखो उधर हरियाली ही हरियाली नजर पड़ती है।

प्रकृति ने इस रियासत के साथ खास-खास रियायतें की हैं। बरफ से ढके हुए पहाड़, बड़ी-बड़ी नदियाँ, पहाड़ी वेगवान् नाले, सुन्दर झरने और मनोहर झीलें यात्री के मन को मोहित करती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि आरेगन के नैसर्गिक दृश्य संसार में अपना स्थान उच्च रखते हैं।

पश्चिमी आरेगन का भाग तीन सौ मील तक खासा उष्ण है।

पैसेफिक महासागर अपनी उष्ण वायु तरंगों से इस भाग को वनस्पति के लिए अधिक उपयोगी बना देता है। बड़े-बड़े जंगल इस भाग में हैं। कृषि, दुग्ध, व्यवसाय और फलों की वृद्धि के लिए यह भाग बड़े ही काम का है।

विलामेट घाटी चार हजार वर्गमील के करीब है। इसकी आबादी चार लाख है, तो भी इसमें अभी बहुत आदमियों की खपत हो सकती है। अन्य घाटियों में अभी बहुत थोड़ी आबादी हुई है। आरेगन रियासत में कम से कम दो करोड़ आत्मायें आनन्द से रह सकती हैं। इस रियासत के पूर्वीय भाग की भूमि दूसरी प्रकार की है। पैसेफिक महासागर का इस पर प्रभाव नहीं पड़ता। कैस्केड पर्वतश्रेणियों के पूर्व में जो भूमि है वह गेहूं की उपज के लिए बहुत अच्छी है। यहाँ ऊँची-नीची पहाड़ियाँ दिखाई नहीं देतीं। बड़े-बड़े चौरस मैदान गेहूँ की खेती के लिए बड़े काम के हैं। सूर्य देवता भी इस भाग पर अधिक कृपा रखते हैं और जाड़ों में बर्फ भी पड़ जाती है। इस भाग से गेहूं, बैल, भेड़ आदि बिकने को बाहर जाते हैं। यदि इस भाग में सिंचाई का प्रबन्ध हो जाय तो इस भाग की उपयोगिता बहुत बढ़ जायगी। स्टेट गवर्नमेन्ट इस बात का उद्योग कर रही है। रेलों की कम्पनियाँ भी इधर अपना फण्ड बढ़ा रही हैं। धीरे-धीरे रेलों के बन जाने से उपज को मण्डी में लाने का सुभीता हो जायगा और आमदनी चौगुनी-पचगुनी हो जायगी।

युनाइटेड स्टेट्स गवर्नमेन्ट के विद्वान् प्रोफेसर विथकूम्ब का यह कथन है कि आरेगन की छः करोड़ साढ़े पन्द्रह लाख एकड़ जमीन लोगों के वास्ते बड़ी लाभदायक है। इस समय चालीस लाख एकड़ से कम भूमि काम में लाई जाती है। बाकी की जमीन खाली पड़ी है। कृषि के लिए यहाँ की जमीन बहुत बढ़िया है और जब सब भूमि को काम में लाया जायगा तो आरेगन की उपज पचास करोड़ डालर सालाना हो जायगी। यदि आरेगन के दक्षिणी और पूर्वी भाग को अच्छी तरह

से काम में लाया जाय और बुद्धिमत्ता से सिंचाई की जाय तो लाखों गृहस्थियों के लिए यह रियासत स्वर्गधाम बन सकती है।

गवर्नमेन्ट के पास कई हजार एकड़ जमीन देने के लिए है। दिन-प्रतिदिन यूरोप और पूर्वी अमरीका से लोग पैसेफिक कोस्ट पर आकर बस रहे हैं। आरेगन की आबादी भी बढ़ रही है। आरेगन के सेब इंग्लैण्ड और स्काटलैण्ड तक बिकने जाते हैं। जापान और चीन के लोग भी आरेगन के फलों को खाते हैं। इससे पता लग सकता है कि जब यहाँ पर काफी आबादी हो जायगी तो यहाँ के मेवे संसार की मण्डियों में बिकने लगेंगे।

फलों के अतिरिक्त इस रियासत में लकड़ी की तिजारत भी बहुत होती है। करीब दो करोड़ इकतीस लाख डालर की लकड़ी यहाँ पर सालाना कटती है और चार खरब फीट लकड़ी अभी तक मौजूद है। पोर्टलैण्ड की मिलों में बाईस लाख पचास हजार फीट लकड़ी रोज कटती है। संसार के किसी भी शहर में इतनी लकड़ी नहीं कटती। आरेगन की पैदावार संसार की मण्डियों में शीघ्र बिक जाती है। यहाँ की फर (देवदारू) लकड़ी दूर-दूर तक बिकने जाती है। फर एक प्रकार की लकड़ी है, जिसको आसानी से काट-छांट सकते हैं परन्तु जो बहुत पोढ़ी और मजबूत होती है। अमरीकन गवर्नमेन्ट ने आरेगन रियासत के बड़े-बड़े जंगलों को अपनी रक्षा में ले लिया है।

इस रियासत में सोना, चाँदी, ताँबा और कोयले की खानें हैं और यह व्यवसाय भी दिन-ब-दिन बढ़ रहा है। रियासत को करीब तीस लाख डालर की सालाना आमदनी इस व्यवसाय से है।

थोड़ा मछलियों का भी हाल सुन लीजिए। इस रियासत को करोड़ों रुपयों का फायदा मछलियों द्वारा होता है। करीब चालीस लाख डालर की सामन मछली कोलम्बिया नदी से पकड़ी जाती हैं। गवर्नमेंट की ओर से ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि कभी भी इस मछली का टोटा

न हो। रियासत में बड़ी-बड़ी कंपनियाँ हैं जो इन मछलियों को डिब्बों में डाल अपने-अपने लेबल लगाकर देश-देशान्तरों को भेजती हैं। करीब पच्चीस लाख डालर हर साल मजदूरी आदि में खर्च होते हैं और कुल पचास लाखडालर की पूंजी इन कंपनियों में लगी है। अमरीकन गवर्नमेंट ने अपने योग्य प्रबन्धकर्ताओं के द्वारा इन मछलियों की वृद्धि काकाम अपने हाथ में लिया हुआ है। इसलिए यह आशा रहती है कि रियासत को सदा इस प्रकार की आमदनी होती रहेगी।

अब हम दो-चार शब्द आरेगन के "हाप्स" के विषय में कहेंगे। हाप्स एक प्रकार का फूल होता है। यह शराब बनाने के काम में आता है। करीब एक लाख बीस हजार थैले हाप्स के हर साल यहाँ पैदा होते हैं और दिनोंदिन बढ़ते ही जायेंगे, क्योंकि इसकी फसल अच्छी लाभदायक होती है। भेड़ों से भी यहाँ खूब काम लिया जाता है। करीब दो करोड़ पौंड ऊन हर साल भेड़ों से उतारी जाती है। रियासत की आबोहवा इस व्यवसाय के लिए भी वे बड़े काम की है। बहुत सी मिलें इसका पक्का माल तैयार करती हैं। ऊन-विद्या-विशारदों का मत है कि यह रियासत ऊनी पक्का माल तैयार करने में आदर्श रूप है।

पश्चिमी आरेगन में बकरियाँ बहुत होती हैं। किसानों को इनसे बड़ा लाभ होता है। इनके बालों से भी वे अच्छा खासा लाभ उठाते हैं।

आरेगन में स्टेट विश्वविद्यालय के अतिरिक्त कई और विश्वविद्यालय और कालेज हैं। उनमें से प्रसिद्ध ये हैं—पैसेफिक विश्वविद्यालय, विलामेट विश्वविद्यालय, कोलम्बिया विश्वविद्यालय, वेनिडिक्टन कालेज, पैसेफिक कालेज, मेक्मिनव्हिल कालेज, अलबनी कालेज तथा रीड इन्स्टीट्यूट। रियासत की तरफ से एक वैज्ञानिक कृषि कालेज कारवालिस में स्थापित है जहाँ पर कृषि के अमली ढंग सिखाए जाते हैं।

हमने आरेगन के सम्बन्ध में खास-खास बातों का जिक्र कर दिया है। केवल एक बात और कहनी है। आरेगन की शासन-प्रणाली

तमाम युनाइटेड स्टेट्स आफ अमरीका में श्रेष्ठतम है। यहाँ पर लोग अपना शासन आप करते हैं। यहाँ पर आस्ट्रेलियन वोट प्रथा तथा वोट देनेवालों की रजिस्ट्री की शैली प्रचलित हैं। इसके अतिरिक्त Initiative and Referendum, Direct Primary Election, Corrupt Practices Act, Recall, आदर्श शासन-प्रणाली के ये चार प्रसिद्ध राजनीतिक शस्त्र भी लोगों के हाथों में हैं। हमारे अधिकांश पाठक इन राजनीतिक परिभाषाओं के अर्थ नहीं जानते होंगे, इसलिए सबसे पहले हम इन राजनीतिक शब्दों की व्याख्या करते हैं।

आस्ट्रेलियन वोट प्रथा उस मत पद्धति का नाम है जिसके द्वारा वोट देने वालों को राय देने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है, जिसमें किसी को रिश्वत खाने का अवसर नहीं मिलता। साथ ही बाहरी आदमियों को यह भी पता नहीं लगता कि कौन पुरुष किसके लिए वोट देता है, ताकि धूर्त लोग अपनी चालाकियों द्वारा भीरु मनुष्यों पर कोई हथकण्डे न जमा सकें। यह कानून आरेगन रियासत में १८९७ में पास किया गया था।

दूसरी बात वोट–रजिस्ट्री के सम्बन्ध में है। इस कानून के अनुसार हर एक राय देने वाले को वोट देने से पहिले अपना नाम रजिस्टर्ड कराना पड़ता है। चुनाव होने से एक महीना पहिले वोट देने वालों की रजिस्ट्री होती है, और प्रारम्भिक चुनाव से दस दिन पहिले रजिस्ट्री कराना बन्द हो जाता है। प्रारम्भिक चुनाव के चार दिन बाद फिर रजिस्ट्री आरम्भ हो जाती है और जनरल चुनाव के बीस दिन पहिले तक बराबर जारी रहती है। वोट देने वाला या तो ख़ुद रजिस्ट्री-दफ्तर में जाये या किसी मजिस्ट्रेट के सामने रजिस्टर फार्म पर हस्ताक्षर करके रजिस्ट्री-दफ्तर में भिजवा दे। रजिस्ट्री की पुस्तकों पर वोट देने वाले का पूरा नाम, उसका रजिस्ट्री नम्बर, रजिस्ट्री होने की तिथि, उसका पेशा, आयु, जन्म स्थान, अमरीकन बनने की तिथि तथा उसका निवास-स्थान लिखा

रहता है और साथ ही उसके मकान का नम्बर, गली का नाम तथा कमरे की संख्या भी दर्ज रहती है। इन सब सावधानियों का अभिप्राय यह है कि कोई पुरुष एक से अधिक बार वोट न दे सके। वोट देते समय क्लर्क को वोट सम्बन्धी प्रश्न वोटर से करने का पूरा अख्त्यार है और इस प्रथा के अनुसार धूर्त लोग कोई बदमाशी नहीं कर सकते। नहीं तो यह होता था कि एक-एक आदमी दस-दस, बीस-बीस बार भिन्न-भिन्न स्थानों में जाकर वोट दे आता था और इस प्रकार दुष्ट लोगों के नाम से वोट इकट्ठे किये जाते थे। इन सब बुराइयों को रोकने के लिए आरेगन के लोगों ने १८९९ ई० में रजिस्ट्री होने का कानून पास कर दिया।

तीसरा, Initiative and Referendum राजनीति विज्ञान में बड़े महत्त्व की प्रथा है। इसके अनुसार कानून बनाने की शक्ति प्रतिनिधियों की पंचायत को दी जाती है, परन्तु सर्वसाधारण कानून के मसविदे को पेश करने और उसके सुधारने की शक्ति अपने हाथों में रखते हैं। साथ ही यह भी कि कानून को मंजूर करने व रद्द करने में भी ये प्रतिनिधि पंचायत से स्वतन्त्र होते हैं और उनको यह भी शक्ति होती है कि वे पंचायत के किसी काम को रद्द व स्वीकार कर सकते हैं। यदि आठ फी सदी वोट देने वाले एक अर्जी पर हस्ताक्षर करके किसी खास कानून के मसविदे को पंचायत के सामने पेश करें तो पंचायत को जनरल चुनाव में उस विषय को लोगों के सामने लाना पड़ेगा। इस विधि को Initiative कहते हैं। जनमत-संग्रह (Referendum) के अनुसार केवल पाँच फी सदी वोट देने वाले एक अर्जी पर हस्ताक्षर करके किसी पासशुदा कानून पर पुनः विचार करने के लिए पंचायत को मजबूर कर सकते हैं। रियासत का गवर्नर लोगों का केवल सेवक है। उसको यह अधिकार नहीं कि वह सर्वसाधारण द्वारा पास किये हुए किसी कानून को रद्द कर सके।

चौथा शस्त्र प्रत्यक्ष चुनाव (Direct Primary Election) का है। इसके अनुसार प्रत्येक अफसर का चुनाव लोग करते हैं। जिस-जिस हिस्से में

जो-जो अफसर होता है उसको वहीं के सर्वसाधारण बहुमतानुसार चुन लेते हैं। कोई भी मनुष्य किसी बड़े पद के लिए अपने नाम को लोगों के सामने पेश कर सकता है। उसको केवल कुछ फीसदी वोट देने वालों के हस्ताक्षर करवा कर एक अर्जी दफ्तर में भेज देनी चाहिए। मतलब केवल यह है कि कोई भी योग्य आदमी, जिस पर लोगों का विश्वास हो, अफसर चुना जा सकता है और होनहार, विद्वान्, न्यायशील पुरुष अपनी हिम्मत से इच्छानुकूल पद को पा सकता है। किसी प्रकार का पार्टी सिस्टम इसमें नहीं रहता। प्रत्येक मनुष्य स्वतन्त्रता से अपनी योग्यतानुसार देश-सेवा कर सकता है।

पांचवाँ कानून गवर्नमेन्ट को दोषों से रहित करता है। इसके अनुसार उम्मीदवार अपनी आमदनी का केवल पन्द्रह फी सदी भाग उच्च पद की प्राप्ति के लिए खर्च कर सकता है। परिणाम यह होता है कि रिश्वत द्वारा कोई भी व्यक्ति किसी भी ओहदे को नहीं ले सकता। और न कहीं धनिक कम्पनियों द्वारा कोई उम्मीदवार किसी ओहदे को हासिल कर सकता है। रियासत का मन्त्री अपनी ओर से एक पुस्तिका ऐसी छपवा देता है जिसमें उम्मीदवार की योग्यता का वर्णन हो और, साथ ही, जो कुछ पौलिसियाँ उम्मीदवार की हों, उनका भी ब्योरेवार वर्णन उसमें दिया जाता है। ऐसे-ऐसे ट्रैक्ट वोट देने वाले नागरिकों की सुविधा के लिए छपवाये जाते हैं जिनसे उनको उम्मीदवारों की योग्यता पर विचार करने का अवसर मिले। यह ट्रैक्ट चुनाव से एक सप्ताह पहिले सब वोटर लोगों के पास पहुँच जाते हैं। प्रत्येक पार्टी के उम्मीदवारों के गुणों का वर्णन इनमें रहता है। इन सबको पढ़ कर राय देने वाला अपनी बुद्धि अनुसार राय दे सकता है। इन ट्रैक्टों की छपाई का खर्च उम्मीदवार लोग देते हैं।

आरेगन की गवर्नमेन्ट ने रियासत को धूर्तों से बचाने के लिए बहुत से प्रतिबन्धक नियम पास कर दिये हैं। लोग यह चाहते हैं कि कोई

चालबाज आदमी शासनकर्त्ताओं के ओहदे को ग्रहण ही न कर सके, इसलिए बड़े-बड़े कठिन कानून पास कर दिये हैं।

अब अन्त में हम एक बात और बतला कर आरेगन शासन-प्रणाली के विषय को पूरा करेंगे। आरेगन के लोगों ने एक ऐसा नियम बनाया है जिसके द्वारा वे उस अधिकारी को जो जनता की इच्छा के अनुकूल काम नहीं करता उस पद से हटा सकते हैं। इसके अनुसार किसी जिले के पच्चीस फी सदी वोट देने वाले किसी अफसर के विरुद्ध एक अर्जी पर हस्ताक्षर करके उसको उस पद से च्युत करा सकते हैं। इस ढंग को पदच्युत करना (Recall) कहते हैं। उस अर्जी पर वोट देने वालों को अपने कार्य्य की पुष्टि में युक्तियां भी देनी पड़ती हैं। वह अधिकारी कि जिसके विरुद्ध अर्जी दी गई हो यदि इसको अन्याय समझे तो वह भी अपनी जवाबदेही कर सकता है। यदि उसकी युक्तियाँ प्रबल हों तो उसका न्याय जिले के सब वोट देने वालों पर छोड़ दिया जाता है और एक नियमित दिन सब वोटर लोग उसके भाग्य का फैसला करते हैं।

सारांश यह है कि आरेगन रियासत की शासन-प्रणाली अमरीकन रियासतों में सबसे अच्छी है और वहां के लोग आनन्द से अपना जीवन निर्वाह करते हैं।

उनत्तीसवाँ प्रकरण

स्वर्णमयी कैलेफोर्निया के उपवनों में

अगस्त ८। ग्यारह बजे तक इधर-उधर शहर में घूमता रहा। डबल रोटी लेकर खाई। जब स्टेशन के पास पहुँचा तो गाड़ी के घंटे की टन-टन कानों में पड़ी। अमरीकन रेलगाड़ियों के इंजिन देवता की पीठ के ऊपर एक बड़ा घंटा लटका रहता है। पुजारी महोदय उस घंटे को बजाकर अपने देवता को प्रसन्न करते हैं, तब देवता महाराज फप्-फप् करते हुए गाड़ियों को खेंच ले जाते हैं।

न जाने क्यों, मुझे धुन समाई, चलती गाड़ी पर झट से मैं भी चढ़ गया और वह भी बिना टिकट के। जब टिकट कलेक्टर ने आकर टिकट माँगा तो उसे शास्ता-स्प्रिंग्स से डन्समोर तक के तीन डालर पैंसठ सेन्ट देने पड़े। अमरीका में बहुधा मुसाफिर लोग रेल में ही टिकट खरीद लेते हैं। भारतवर्ष में तो दौड़-दौड़ कर गार्ड की मिन्नतें करनी पड़ती हैं, टिकट बाबू के सामने हाथ-पैर जोड़ने पड़ते हैं, तिस पर भी यह डर बना ही रहता है कि शायद छुटकारा हो या न हो।

एशलैण्ड से थोड़ी दूर पर कोल है, इसे आरेगन और कैलेफोर्निया की हद समझिए। कोल से आगे कैलेफोर्निया की दीर्घकाय रियासत आरम्भ हो जाती है। इसका क्षेत्रफल १,७८,३६० वर्गमील है। न्यूयार्क, न्यजरेसी, मसचूसट्स, रोड-आइलैण्ड, वरमान्ट, मेन, न्यूहैम्पशायर, कानक्टीकट, ओहाइओ---इन नौ अमरीकन रियासतों का क्षेत्रफल १,७५,८७८ वर्गमील है। कैलेफोर्निया की एक रियासत इन नौ रियासतों से भी बड़ी है। इस कुम्भकर्णी कैलेफोर्निया में अब मैं घुसा हूं। सिसिक्यू और शास्ता पर्वतों में मैं पहुंच गया। गाड़ी ऊंचे-ऊंचे जा रही है। शास्ता के झरनों के पास होटल बने हैं। सुन्दर, सुहावने बंगले बने

हुए हैं। उनमें सैलानी अमरीकन आनन्द ले रहे हैं। पर एक बात बड़े भारी स्वार्थ की यहाँ देखने में आई। शास्ता के झरनों का पानी बिकता है। उस पर किसी पुरुष का अधिकार है। ईश्वरदत्त पदार्थ पर मनुष्य-मात्र का न्यायानुकूल अधिकार होना चाहिए, किसी व्यक्ति विशेष का क्यों ?

यही सोचता-विचारता डन्समोर पहुंच गया। इस समय संध्या हो गई थी। भूख के कारण बेचैन था। बाजार में घूम कर कुछ खाना तलाश करने लगा। सभी मेरी ओर देखते थे। कई सज्जन घूरते भी थे। यह क्यों ? यह कैलेफोर्निया है। यहाँ के मजदूर हिन्दुओं से घृणा करते हैं। और मुझमें हिन्दुत्व की यह पहचान थी कि मैं झट से होटल में नहीं चला गया। मैं मांस के लोथड़ों तथा शराब की बोतलों को देखकर मुंह फेर लेता था। भला हिन्दू सभ्यता कहीं छिप सकती है ? थक-थका कर एक बेंच पर बैठ गया। लोगों का तमाशा देखने लगा। तमाशा क्या था, प्रकृति की गुलामी के दृश्य थे। एक भलामानस मेरे पास ही बैठा तमाखू की बट्टी चबा रहा था और पास ही थूकता जाता था। अपने दांतों से बट्टी का टुकड़ा काट, बाकी बट्टी मेरी ओर कर, कहने लगा—

"लो चबाओ—Take a chew."

मैं जानता था कि यहाँ के मजदूरों का यह आम दस्तूर है। एक-दूसरे के हाथ से बट्टी ले ये लोग चबाया करते हैं और इसी से इनका पारस्परिक प्रेम बढ़ता है। अब अगर मैं हिन्दू न होता तो फौरन ही बट्टी उससे ले चबाने लगता और जरा सी देर में मेरी उसकी गहरी छनती, पर मुझसे यह कैसे हो सकता था ! मुझे बचपन से सब प्रकार के नशों से घृणा है और तिस पर झूठा लेकर खाना ! झट से मैं वहाँ से उठ कमरा तलाश करने लगा। २४ सेन्ट देकर कमरा लिया और भूखे पेट ही शय्या पर पड़ रहा।

अगस्त ९। प्रातःकाल सात बजे डन्समोर से चला। आज गजब की

गर्मी थी। धूप कड़ाकेदार पड़ रही थी। पर्वत-श्रेणियों के बीच रेल की सुरंगों को पार करता हुआ जा रहा था। एक बड़ी सुरंग के बाहर कुछ ग्रीक लोग काम कर रहे थे, उनके बावर्ची के पास जाकर कुछ सूखी रोटी लेकर खाई और कहवा पिया। उस सुरंग को पार कर सेक्रेमेन्टो नदी के किनारे पहुँच गया। रेल की सड़क यहाँ इस नदी के किनारे-किनारे गई है। पहाड़ों के दृश्य बड़े रमणीक हैं। जगह-जगह जंगलों में वृक्षों के काटने-छांटने की आवाज आती थी। आजकल जंगलों में पड़ाव (Logging Camps) डाले जाते हैं और करोड़ों फीट लकड़ी काट-काट कर नीचे मैदानों में लाई जाती है। केसल क्रीक के पास पहुँच कर नदी में स्नान किया। बड़ा आनन्द आया, परन्तु भूख सख्त लगी हुई थी। आज २५ मील की यात्रा बड़ी कठिनता से हुई। संध्या को पाँच बजे डेल्टा पहुँचा। परन्तु जूते में छेद होगये। सड़क के कंकड़ों ने इस को छलनी कर दिया था।

डेल्टा एक छोटा-सा गाँव है। मजदूरों के दो दल यहाँ काम करते थे—एक जापानियों का और दूसरा ग्रीक लोगों का। प्रत्येक दल का खाना पकाने का प्रबन्ध जुदा-जुदा था। मजदूरी इनको एक डालर साठ सेन्ट रोज के हिसाब से मिलती थी। मैंने यहाँ काम तलाश किया, पर नहीं मिला। भूख के मारे परेशान था, टांगें थक गई थीं। स्टेशन के पास सोने की कोई जगह न देख टहलने लगा। रात के दस बज गये। सब लोग अपने-अपने किवाड़ बन्द कर सो रहे। केवल होटल का दरवाजा जगमगा रहा था। उसके अन्दर से शराबियों के हंसने-खेलने की आवाज आती थी।

ग्यारह बज गये। चारों ओर अंधेरा था। मालगाड़ी के आने की तैयारी थी। मैंने आज इसी पर चढ़ने का संकल्प किया। मुझे आज होबो बनने की धुन समाई। गाड़ी धीरे-धीरे आ रही थी। जब डेल्टा के पास पहुँची तो एक डिब्बे के सीखचे पकड़ मैं उसकी छत पर जा

बैठा । गाड़ी पहाड़ों के बीच में से जा रही थी । ठंडी-ठंडी हवा से मेरा शरीर काँपने लगा । जब कोई सुरंग दिखाई देती तो मैं झट अपना सिर झुका छत से लगा लेता । यदि ऐसा न करता तो अवश्य ही किसी पत्थर से टक्कर खाकर सिर फट जाता । चार बजे के करीब गाड़ी एन्डरसन पहुँची । पर्वतमाला अब पीछे रह गई थी । सामने चौरस मैदान था । कुकड़ूँ कूँ की ध्वनि सुनाई देती थी । गाड़ी से उतर मैं सड़क पर हो लिया ।

अगस्त १० । मैंने एन्डरसन में ठहरना उचित न समझा और बढ़ा ही चला गया । अब बहुत बड़े-बड़े खेत देखने में आये । मीलों लम्बे-चौड़े खेतों में सैकड़ों-हजारों पशु चरते दिखाई देते थे । पशुपालनार्थ यह भाग प्रसिद्ध है । गर्मी इधर गजब की पड़ती है । लू भी चलती है । भारत छोड़ने के बाद आज फिर लू का सामना हुआ । प्यास के मारे दम निकलने लगा । दस बजे के करीब काटनवुड नामी कस्बे में पहुँचा । यह बड़ा रद्दी और भद्दा कस्बा है । इसका डीलडौल, इसकी वजह्-कतह पुराने ढर्रे की है । ऐसा मालूम होता है मानो इसे नई दुनिया की हवा ही नहीं लगी, शायद रवि की उग्र रश्मियों का प्रभाव हो । डाकघर में जाकर मैंने कुछ पोस्टकार्ड खरीदे और अमरीकन मित्रों को चिट्ठियाँ लिखीं । तदनन्तर एक डबल रोटी खरीद कर खाई और चला ।

चलते-चलते बड़े जोर की नींद लगी । सड़क के किनारे एक ऊँचे स्थान का सहारा ले मिट्टी में लेट गया । आँख लगी ही थी कि गर्दन पर किसी ने काटा । झट ही उठ खड़ा हुआ । गर्दन पर हाथ फेरा तो चींटियाँ ! वाह री किस्मत ! मेरी गर्दन में भला क्या रस भरा था ! मालूम हुआ कि मेरे सिर से जो पसीना आ रहा था उसी की गन्ध उनको खींच लाई थी । इन रक्त-वर्ण चींटियों को देख मुझे अपने देश की चींटियों का स्मरण हो आया । यहाँ से उठ फिर सड़क की राह ली ।

इस कड़ाकेदार धूप में चलना कठिन होगया। प्यास से दम निकलने लगा। दूर एक विशाल भवन दिखाई दिया। विचार किया कि वहीं चलकर जल तलाश करना चाहिये।

उस भवन के पास पहुँच कर वहाँ के कुएँ से डोल खेंच कर जल पिया। फिर पास ही एक वृक्ष के साये में बैठकर अपनी डायरी लिखने लगा। इस समय एक बजने को था। उस भवन के अन्दर से गाने की आवाज आ रही थी। कौन गा रहा था? क्या गा रहा था? कुछ समझ नहीं पड़ा। मैं भी अपनी धुन में कुछ गाने लगा—

जमीं आर्य्यों की गैरों ने दबा ली;
पड़ी वाल्मीकों की कुटियाँ हैं खाली।
वशिष्ठों की सन्तान दर-दर सवाली;
है इस हाल में उनका ईश्वर ही वाली।
था प्रख्यात विद्या में जो देश सारे;
उसी के ही बालक फिरें मारे मारे।
खुदा यह पलटी है कैसी खुदाई;
बता दे जुरम वह सजा जिस दिलाई।

जब चित्त कुछ शान्त हुआ तो फिर चलने की ठानी। रेल की पटड़ी-पटड़ी चला। धूप ने आज गजब ढाया। दूर तक पानी न मिलने से तबियत बड़ी परेशान हुई। इर्द-गिर्द वृक्षों की बड़ी कमी है और आबादी भी फासले पर है। मेरा गला सूख गया, मानों प्राण निकलने लगे। पांच बजे के करीब में एक किसान के घर के पास पहुंचा। वहाँ जाकर पेट भर पानी पिया। चित्त चाहता था कि पानी पीता ही जाऊँ पर जब पेट फटने लगा तो लाचार होगया। अब चलना मुश्किल था। खैर, कुछ सुस्ता कर धीरे-धीरे चला। रेडक्लफ के निकट पहुँच गया था।

थका-हारा छः बजे शहर में पहुँचा। मजदूर लोग मिलों से लौट रहे थे। कोई-कोई मेरी ओर घूरता भी था। मैं भी एक होटल में पहुँचा

और उसका बटन दबाया। होटल का स्वामी जो एक जरमन था, घंटी सुन कर बाहर आया और मुझ से पूछा--

"आप क्या चाहते हैं ?"

"मुझे एक कमरा सोने के लिए चाहिये।" मैंने धीरे से कहा।

"बहुत अच्छा" यह कह वह मुझे अपने साथ ले गया। ऊपर ले जाकर एक अच्छा कमरा दिखला दिया। साफ़-सुथरे कमरे में पलंग सजा था। उस पर सफेद चद्दर बिछी थी। दो कुर्सियाँ रक्खी थीं। पेशाब करने का बर्तन धरा था। एक जल की सुराही में पानी भरा रक्खा था, पास ही शीशे का गिलास भी था। हाथ-मुंह पूँछने के लिए एक शुभ्र तौलिया भी लटक रहा था। इन सबके २५ सेन्ट अर्थात् बारह आने देने पड़े। यह इन्तजाम यात्रियों के लिए बड़ा ही सुखदायी है। साथ-साथ बोझा लादे फिरने की कोई जरूरत नहीं। जिस जगह जाइये, वहीं साफ़-सुथरा कमरा और बिस्तरा मिलता है। हाँ, इसमें खर्च जरूर पड़ता है। बेचारे भारत-वासी, जिनको पेट का ठिकाना नहीं, १२ आने के पैसे कहाँ से दें ? यह ठीक है, पर धनिक मारवाड़ियों की दशा देखिये, जो खर्च कर सकते हैं। यहां तो शिक्षा की कमी है। बिना सर्वसाधारण में शिक्षा फैले, बिना राष्ट्र-संगठन हुए, ये सब उन्नत बातें हमारे यहाँ नहीं आ सकतीं।

हाथ-मुंह धोकर खाने की तैयारी की। होटल वाले की एक युवति कन्या ऊपर खड़ी थी। उससे मैंने अपना निवेदन कर दिया। बड़ी प्रसन्नता से उस कुमारी ने मेरे लिए निरामिष भोजन मँगवा दिया। मैं खाना खाने लगा। वह भी पास बैठ गई और पूछने लगी--

"आप कहां से आते हैं ?"

"मैं भारतवर्ष (India) से आया हूँ।"

"क्या ? इण्डिया से ? नहीं, नहीं, आपकी शक्ल तो वैसी नहीं है।"

हँस कर मैंने कहा--

"क्यों, मेरी शक्ल वैसी क्यों नहीं ?"

ज़रा मुस्कराकर वह बोली—

"इण्डिया में तो हिन्दू लोग रहते हैं। वे बड़े असभ्य जंगली लोग हैं, सिरों पर बड़ी-बड़ी पगड़ियां बांधते हैं और लम्बी-लम्बी दाढ़ियां रखते हैं।"

मैंने पूछा—

"आपने कहां देखे हैं ?"

वह बोली—

"यहीं पर। यहीं केलेफोर्निया में बहुत हैं। इधर-उधर झुण्ड के झुण्ड घूमा करते हैं। वे औरतों को घूरते हैं।"

मैंने थोड़े में उसको समझा दिया। भारत में शिक्षा के न होने का जो मुख्य कारण है, उसकी व्याख्या समझाई। भोजन करने के बाद मैं और वह फिर बातें करने लगे। मैंने उससे पूछा—

"आपके इस भाग में तो बड़ी गरमी पड़ती है। मैं आज एन्डरसन से पैदल आया हूँ। गरमी ने मुझे तो झुलस दिया।"

"हाँ, आजकल दिन के समय कड़ी धूप पड़ती है पर फिर भी आपको कमरे के अन्दर ही सोना पड़ेगा। यहां की रातें ठंडी होती हैं। केलेफोर्निया के इस भाग को सेक्रेमेण्टो की तराई (Sacramento Valley) कहते हैं। यहां सर्दी भी अच्छी होती है। सन्तरा, अञ्जीर, जैतून, खजूर, नीम्बू यहाँ खूब फलते हैं; आड़ू, अंगूरों की भी कमी नहीं है; चावल भी पैदा होता है।"

चावल का नाम सुन कर मैं बड़ा विस्मित हुआ। मेरा ख्याल था कि चावल केवल दक्षिणी रियासतों में ही होता है, इधर केलेफोर्निया में चावल का होना असम्भव होगा।

मैंने पूछा—

"क्या यहां भी चावल होता है ?"

उसने हँस कर कहा--

"हाँ। जो गरमी आज आपको लगी थी वही चावल को पैदा करती है।"

मैंने कहा--

"पर इसके लिए पानी भी तो चाहिये। मैं तो रास्ते में पानी बिना प्यासा मर गया।"

युवति बोली--

"कैलेफोर्निया में पानी की क्या कमी है! सेक्रेमेण्टो नदी बहती है। बड़े-बड़े पर्वत हमारे निकट हैं। फ्लूम्स (Flumes) के द्वारा दूर-दूर से जल लाते हैं।"

मैं--"यह फ्लूम क्या चीज है?"

युव०--"रेडब्लफ के निकट ही एक फ्लूम है। कल आप स्वयं उसे देखने जाइये।"

"अवश्य ही जाऊँगा।" यह कह कर मैं अपने कमरे की ओर चला। युवति की माता ने उसे बुलाया था, इसलिए वह भी मुझसे विदा हो नीचे च ी गई।

मेरे पाँवों में छाले पड़ गये थे। जूते ने आज उन्हें घायल कर दिया था। बिस्तरे पर लेटा हुआ था पर नींद नहीं आती थी। आधी रात के समय नाक में से रुधिर बहने लगा। झट से उठ कर मैंने नाक धोयी। सुराही के ठंडे जल को सिर पर डाला तो कुछ शान्ति हुई। फिर लेट गया। अब मेरी आँख लग गई।

अगस्त ११। रेडब्लफ सेक्रेमेन्टो नदी के किनारे बसा है। यह छोटा-सा कस्बा अन्य पश्चिमी कस्बों की भाँति मिलों और फैक्टरियों पर अवलम्बित है। इसकी आबादी अधिक नहीं। पुतलीघरों में काम करने वाले मजदूर ही इसकी आबादी समझिये। उनकी संख्या फसल के अनु-

सार बढ़ती-घटती रहती है। इसके इर्द-गिर्द नाशपाती तथा आड़ुओं के बाग बहुत हैं।

प्रातःकाल हाथ-मुंह धोकर मजदूरी की तलाश में चला। अब मेरे पास एक पैसा भी न था; सब खर्च होगया। आधा डालर जो बच रहा था वह इस होटल के स्वामी के अर्पण कर दिया। कस्बे से बाहर नदी के पार जो मिलें हैं उन्हीं की तलाश में चला। रास्ते में फ़्लूम देखने में आया। फ़्लूम क्या है? यह बात भी बतला देना जरूरी है। फ़्लूम एक प्रकार की छोटी नहर है। फर्ज करो किसी नदी से पानी लाकर दूर-दूर के खेतों को सींचना है, अथवा उसके द्वारा लकड़ी के कुन्दों को किसी मिल में पहुँचाना है। इसके लिए आवश्यक है कि नहरें खोदी जाएं। परन्तु उनके लिए बहुत रुपया चाहिए, साथ ही एक कठिनाई यह भी है कि बाज़ ज़मींदार अपनी भूमि नहर के लिए देना पसन्द नहीं करते। अब क्या उपाय करना चाहिए? भारतीयों की भाँति अमरीकन लोग शुष्क ब्रह्मज्ञानी तो हैं नहीं, वे झट कम्पनी खड़ी कर अपनी दिक्कतों के दूर करने का उपाय कर लेते हैं। कम्पनी वाले नदी में पम्प लगा कर जल को एक ऊँचे तालाब में भर उसको लकड़ी की छोटी-छोटी नहरों द्वारा दूर-दूर के खेतों में पहुँचाने का ठेका लेते हैं। बस, अब काम बन गया। ये लकड़ी की नहरें खेतों के ऊपर से होकर जाती हैं। विरोधी ज़मींदारों को कम्पनी वाले कुछ किराया देकर राज़ी कर लेते हैं। ज़मीदारों की इससे कुछ हानि नहीं होती, क्योंकि नहरें भूमि के ऊपर आकाश से होकर जाती हैं। बड़े-बड़े ऊँचे स्तम्भ गड़े हैं, जिन पर वे स्थित हैं। इन्हीं नहरों को फ़्लूम कहते हैं।

फ़्लूम के साथ-साथ एक दो आदमियों के चलने लायक पटरियों की पगडण्डी भी रहती है। दो-दो मील के फ़ासले पर स्टेशन बने रहते हैं, उनमें आदमी तैनात हैं। वे नहर की रक्षा करते हैं। कभी कोई कुन्दा रुक जाए, या किसी और कारण से पानी का वेग कम हो जाय, तो फ़ौरन उसकी दुरुस्ती की जाती है।

ख़ैर, मैं नौकरी की तलाश में फ़्लूम के किनारे-किनारे चला। अभी डेढ़ मील ही गया था कि एक बाग़ दिखाई दिया। उसमें आडुओं के वृक्ष थे। फलों से लदे हुए पेड़ अपनी मस्ती में झूम रहे थे। बाग़ का स्वामी एक सायेदार तरु के नीचे आरामकुर्सी पर बैठा था। मुझे देख कर उसने पुकारा--

"कहाँ जाते हो?"

"मैं नौकरी की खोज में हूँ।"

"आओ, नीचे आओ।"

मैं फ़्लूम से नीचे उतर उनके पास आ गया। उसने मुझे बड़े आदर से कुरसी दी और मेरा हालचाल पूछा। मैंने भी अपनी रामकहानी सुना दी। अपनी हार्दिक सहानुभूति दिखला कर वह बोला--

"आज कुछ खाया कि नहीं?"

मैंने सिर हिलाकर 'न' में उत्तर दे दिया। "आओ, आड़ू खिलावें।" यह कह कर वह सज्जन मुझे अपने साथ ले चला। सात आठ पके आड़ू तोड़ कर उसने मुझे दिए। आड़ू क्या थे मानो अमृत फल थे। ऐसे मीठे, रसीले, सुरख़ीले और स्वादिष्ट फल मैंने कभी न खाये थे। पंजाब में आड़ू बहुत होते हैं पर वे केलेफोर्निया के इन आडुओं के सामने तुच्छ हैं।

फलों से अपना पेट भर अब मैं और मिस्टर ह्वाइट लगे बातचीत करने। सच है जब पेट खाली हो तो कुछ भी नहीं सूझता! किसी ने ठीक कहा है--

पेट जले तो धर्म न सूझे। मन विचलित हो पाप में जूझे ॥
धर्म कर्म यदि करना चाहो। भारत की तुम क्षुधा बुझाओ ॥

ये वचन अक्षरशः सत्य हैं। आज मैं कैसा अधीर हो रहा था! चित्त परेशान था। जब पेट में खाना पहुंच जाता है, क्षुधा निवृत्त हो जाती है, तो चाहे किसी कठिन विषय पर बातचीत कर लीजिए। भोजनरूपी

ईंधन की कमी से शरीररूपी इञ्जन ढीला पड़ जाता है ; उसकी वाहक शक्ति नष्ट हो जाती है । भूखे पुरुष की शारीरिक उन्नति होना असम्भव है, बिना शारीरिक उन्नति के मानसिक उन्नति हो नहीं सकती । जो दशा एक व्यक्ति की है वही जाति की समझिये । जो नियम मनुष्य शरीर के लिए व्यापक है वही नियम जाति के लिए घटता है ।

मिस्टर ह्वाइट ने मुझ से भारत की अशांति के कारण पूछे । मैंने सविस्तार सब कुछ समझा दिया । वे मेरे इस परिश्रम की मजदूरी देने लगे और बोले--

"लीजिए, आपने दो घण्टा मेरे साथ सिर-खप्पन किया है, इसकी कुछ तो उजरत मुझे देनी चाहिए ?"

मैंने हँसकर कहा--

"आपने मुझे फल खिला दिए हैं, बस यही काफी है । हां, यदि आप मुझे एक निकल पोस्टकार्ड खरीदने के लिए देंगे तो मैं आपका बड़ा कृतज्ञ हूंगा ।"

बड़ी प्रसन्नता से उस वृद्ध ने मुझे एक निकल (अढ़ाई आने का सिक्का) निकाल कर दिया और कहा--

"आप एक-दो दिन यहीं ठहरें । आपके रहने-खाने का प्रबन्ध मेरे लड़के कर देंगे । आप मजदूरी तलाश कीजिए, मिस्टर स्टाइस के पास जाइए । वह बड़ा ज़मींदार है । शायद उसके पास आपको काम मिल जाय ।"

"अच्छा । मैं शहर के डाकखाने में जाता हूं । चिट्ठियां डालकर आ जाऊंगा । रात को आप के यहां ही रहूंगा ।"

"जाइये ।"

डाकखाने से निपट कर मैं शीघ्र लौट आया । मिस्टर ह्वाइट के दोनों लड़के भी शहर से आ गये थे । उन्होंने मेरे सोने तथा खाने का प्रबन्ध

कर दिया। छोटा लड़का, जिसकी उम्र २० वर्ष की होगी, बहुत देर तक मेरे साथ वार्तालाप करता रहा। बाग़ में एक तम्बू गड़ा था, उसी में मेरे लिए बिछौना बिछा दिया गया। वहीं इस यात्री की रात कटी।

अगस्त १२। प्रातःकाल का नाश्ता कर मैं मिस्टर स्टाइस की खोज में निकला। फ्लूम के रास्ते अढ़ाई मील पर, उसका खेत था। वहीं पहुंचा। वहां जाकर एक अच्छा दृश्य देखने में आया। एक बड़े ऊंचे सायबान के नीचे तीन सौ के क़रीब औरत-मर्द, लड़के-लड़कियां आड़ू चुनने में लगे हैं। टोकरे के टोकरे भरे हुए आ रहे हैं। उनकी छाँट-बाँट, धरने-भरने में इतने मजदूर लगे थे! सब काम मशीन की तरह हो रहा था। कोई हल्ला-गुल्ला नहीं था। एक चीनी मजदूर को भी काम करते देखा। बीस-पचीस अमरीकन मज़दूर उसके आधीन काम कर रहे थे। मैंने भी इधर पूछताछ की। मालूम हुआ कि एक-दो दिन इन्तज़ार करने पर काम अवश्य ही मिल जायगा। मैं एक-दो दिन खाली कैसे ठहरता! मेरे पाँव में तो शनिश्चर है। यहाँ जमकर मज़दूरी करने का तो विचार था ही नहीं, केवल दो-चार दिन लगाकर आगे चल देना था। इसलिए बेहतर यही समझा कि आगे बढ़ते ही चले जाना चाहिये। लौटते हुए रास्ते में फ्लूम के एक स्टेशन पर क्लेरन्स नामी लड़का मिला। वह नहर की रखवाली पर नियुक्त था। इस काम के उसको दो डालर चालीस सेन्ट अर्थात् साढ़े सात रुपये रोज़ मिलते थे। गर्मियों की छुट्टियों में धन कमाने के लिए यह लड़का इधर आया हुआ था। तीन-चार महीने में काफ़ी रुपया जमा कर फिर स्कूल में भरती हो जायगा।

उससे विदा हो मैं रेडब्लफ गया। रास्ते में पुल के नीचे बहुत से लड़के सेक्रेमेन्टो नदी में तैर रहे थे। पास के एक पेड़ से झूला बंधा था। उस पर चढ़, झूल-झूल कर लड़के नदी में कूदते थे। बहुत देर तक मैं उनका तमाशा देखता रहा। वहां से लकड़ी की मिल देखने चला गया। देख-भाल कर संध्या को मिस्टर ह्वाइट के बगीचे में पहुंचा। आज भी यहीं सोया।

अगस्त १३ । सुबह सात बजे उठकर तेहामा की राह ली। रेडब्लफ से तेहामा १५ मील है । साढ़े ग्यारह बजे के करीब में वहां पहुंचा । रेल की पटड़ी-पटड़ी जा रहा था । कुछ मजदूर गाड़ियाँ भरते दिखाई दिए । जब मैं उनके पास पहुंचा तो मातृभाषा के शब्द मेरे कान में पड़े । चित्त प्रसन्न होगया । ये मेरे भारतीय बन्धु भी मुझे देख बड़े खुश हुए । बारह बजे उनको छुट्टी मिली । एक गाड़ी के नीचे साये में बैठ कर सबसे पहले उन्होंने मुझे भोजन कराया और फिर कुशल-क्षेम पूछी । उन्होंने मेरा नाम पहले से ही सुन रखा था । मेरा उनसे भारतीय नाता था ही । जब से पोर्टलैण्ड छूटा था, भारतीय भोजन के दर्शन नहीं हुए थे । बहुत दिनों के बाद आज रोटियां खाने को मिलीं ।

संध्या हो गई । छः बज गये । काम से फुरसत पाकर भारतीय बन्धु अपने तम्बुओं की ओर चले । श्री मुन्शीराम जी के अनुरोध से मैंने आज यहीं ठहरना निश्चित किया । रात को स्नान के बाद भोजन कर अपने बन्धुओं को राजनीति-विज्ञान की शिक्षा दी । तदुपरान्त सुख की नींद सोया ।

अगस्त १४ । प्रातःकाल उठ कर अपने भाइयों की सेवा में लग गया । आज रविवार था । उन्हें बहुत सी चिट्ठियां लिखवानी थीं । यहाँ दस पंजाबी मजदूर थे । इनमें से एक भी शिक्षित न था । अपनी चिट्ठी-पत्री तक नहीं लिख सकते थे । मुन्शीराम को अमरीका आये दो-तीन साल होगये थे, इसलिये वह थोड़ा अंग्रेजी बोलना सीख गया था । इसी से यह दल "मुन्शीराम की मण्डली--Munshi Ram's Gang" के नाम से पुकारा जाता था । मुन्शीराम को मजदूरी भी अधिक मिलती थी । रेल की सड़क पर कस्बे से दूर ये लोग काम करते थे ।

साढ़े नौ बजे मैंने इन भारतीय बन्धुओं के काम से छुट्टी पाकर चीको का रास्ता लिया । आज धूप तेज थी । गर्मी के मारे सिर घूम गया । जब साढ़े तीन बजे के करीब 'वीना' पहुँचा तो मुँह सूख रहा था । एक

गृहस्थ के घर से जल माँग कर पिया और पेड़ के नीचे साये में लेट रहा। एक छोटी-सी लड़की अपने घर से निकल कर मेरे पास आ बैठी। उसकी प्यारी सूरत देखकर मेरे सब दुःख दूर होगये। उठकर बैठ गया और उसके साथ खेलने लगा।

आहा! बचपन भी कैसा अमूल्य समय है! कोई चिन्ता नहीं, कोई मैल नहीं, शुद्ध अन्तःकरण, शुद्ध मन, सब प्रकार की बुराइयों से रहित शरीर, उस परमात्मा की रचना का अद्भुत नमूना है! यही समय है, चाहे इसमें ब्रह्म से जीव बन जाय, अथवा जीव से ब्रह्म; चाहे इसमें दैवी गुण सम्पन्न हो जाओ, अथवा पाशविक वासनाओं के कीड़े बन जाओ। यह बनाना और बिगाड़ना किसके हाथ में है? बच्चों के? कदापि नहीं। यह उनके हाथ में है जिनका बच्चों के साथ सम्बन्ध है। वे जरा-सी भूल से उनके भविष्य को बना अथवा बिगाड़ सकते हैं। करोड़ों बिगड़ गये, लाखों नष्ट होगये, हजारों जीते मृत्यु को प्राप्त होगये, लाखों उसी पिशाच––सामाजिक अन्याय––के हाथ में पड़े तड़प रहे हैं और ठंडी आहें भर कर कहते हैं––

"क्या वह बचपन का समय फिर भी हाथ आयेगा?"

वह बालिका अपने घर चली गई और मैं उठकर इधर-उधर गाँव में घूमने लगा। बीना पचास-साठ घरों का छोटा-सा ग्राम है। इसके इर्द-गिर्द की भूमि में बहुत अंगूर होता है इसलिए इसका नाम बीना अर्थात् अंगूर की लताओं का घर पड़ गया है। मैंने दो-चार गुच्छे तोड़ कर खाये पर वे अभी पके नहीं थे। मैं सड़क पर जा रहा था। दोनों ओर अंगूरों की लतायें फैल रही थीं। कैसी स्वर्णमयी यह भूमि है! कैसी अच्छी ऋतु है! जिधर देखो फलों से वृक्ष लद रहे हैं। जिसके पास दस एकड़ भूमि है वह भी राजाओं की भाँति रहता है–स्वतन्त्र और मस्त!

इसी प्रकार देखता-भालता शाम के समय एक किसान के घर के पास पहुँचा। मुझे सख्त भूख लग रही थी। घर में एक लड़का और कुछ नौकर थे। मैंने उस लड़के से कहा--

"मुझे आज रहने के लिए कोई जगह दोगे ?"

"क्यों ?" लड़के ने झिड़क कर कहा।

नम्रता से मैंने उससे निवेदन किया--

"मैं थका-हारा भूखा हूँ। रात को यहाँ रहने दो। सवेरे मैं चला जाऊँगा।"

"जाओ ! जाओ, यहाँ से ! क्या यहाँ कोई होटल है ?"

अपना-सा मुंह लेकर मैं वहाँ से लौटा। आज रात कहाँ कटेगी ? यही सोचता था। अंधेरा होने के कारण कुछ सुझाई न देता था। बड़ी मुश्किल से मैंने रेल की पटड़ी तलाश की और आगे बढ़ा चला गया। दो मील जाकर मैंने दूर से आदमियों की आवाज़ सुनी। चित्त को धैर्य्य हुआ कि आबादी के निकट आ गया हूँ। जब स्टेशन के पास पहुँचा तो जिधर आग जल रही थी उधर ही चला गया। वहाँ पहुँच कर क्या देखता हूँ कि चालीस के करीब सिक्ख बन्धु बैठे रोटियाँ खा रहे हैं। फिर क्या था, मैं तो मानों घर में आ गया। जो भाई रोटी बनाता था, मैं उसके पास जा बैठा। मैंने उससे कहा--

"कुछ रोटी मुझे दीजियेगा ?"

उसने शायद समझा नहीं, वह बोला--

"रोटी ! नो, नो नो !"

यह विचार कर कि वह मुझे पहचान जाये मैंने हिन्दी में उससे रोटी माँगी थी। उसनें अंग्रेजी में झिड़क कर जवाब दिया कि रोटी नहीं मिलेगी, चले जाइये। तब मैंने हँस कर कहा--

"क्यों खालसा, सानूं रोटी नहीं देओगे ?"

अब वह मेरे मुंह की ओर देखने लगा। मेरे सिर पर अमरीकन टोपी थी, इसी कारण उसने मुझे अमरीकन समझ ऐसा उत्तर दिया था। अब जब मैंने पंजाबी भाषा बोली तो वह समझ गया कि यह तो अपना ही आदमी है। खिले चेहरे से उसने कहा--

"मैं पहले समझिआ सी कि तुसीं कोई गोरे हो। ऐथें दे गोरे साडियां रोटियाँ खान रोज आउन्दे हन। तुसीं वी ओनां विच्चों ही होओगे, एही समझ के मैं तुसानूं झिड़किया सी। तुसीं ताँ साडे भाई हो। आओ, खाओ रोटियाँ।"

जो सिक्ख बैठे रोटियाँ खा रहे थे उनको भी मेरा पता लग गया। अब क्या था, सभी बड़े प्रसन्न हुए। कोई आचार ले आया, किसी ने खाँड लाकर दी, एक भाई दूध ले आया। सब लोग मेरे इर्द-गिर्द आकर बैठ गए। मैंने पेट भर भोजन पाया और बातें भी करता जाता था। इस मण्डली का नायक सरदार महांसिह था। उसको शराब पीने की लत थी। आज रविवार था। शराब की बोतलें मंगा कर रक्खी हुई थीं। जब मैं भोजन कर चुका तो महांसिह जी अपनी करतूत दिखाने लगे। मुझे बड़ा रंज हुआ। वह सबको बुलाकर जबर्दस्ती शराब पिलाता था। मैंने उसको बहुत समझाया। मेरे आने से इतना होगया कि कई बेचारे अन्य बन्धु, जिनके साथ जबर्दस्ती हो रही थी, बच गए। महांसिह भला कब मानता था, उसने पेट भर शराब पी। बहुत देर तक मैंने इन भारतीय मजदूरों को मदिरा की बुराइयाँ बतलाईं। लेकिन असल में बात यह है कि इन लोगों का इसमें कोई अपराध नहीं। अपने देश से हजारों मील दूर ये लोग पड़े हैं, अशिक्षित हैं, यहाँ फुरसत के समय कोई दिल बहलाने का सामान नहीं, दिन भर बेचारे मजदूरी करते हैं। रविवार की छुट्टी होती है, उस दिन करें तो क्या करें! जवानी की उम्र है, इस दशा में यदि शराब पीकर ये लोग अपना दिल बहला लेते हैं तो इसमें इनका क्या अपराध है! यह तो उस देश के समाज अथवा गवर्नमेंट

का दोष है जिसने उन बच्चों को मूर्ख और अशिक्षित रक्खा, जो इनकी बेहतरी का कोई उपाय नहीं करती, जो इनको सुयोग्य और सुशिक्षित नहीं बनाती। ये बेचारे क्या करें! जो लावारिस बच्चे होते हैं उनकी यह दशा हुआ ही करती है। जिस भूमि का कोई रक्षक माली नहीं होता, वहाँ झाड़-झंकाड़, घास-फूस शुतुर बे मुहार की तरह बढ़ा ही करते हैं।

अपना कर्त्तव्य पालन कर मैंने सोने की ठानी। गाड़ी के एक कोने में मेरा बिस्तर बिछा दिया गया था। वहाँ रात काटी।

अगस्त १५। आज यहीं नोर्ड में ही रहा। रोटी बनाने वाले भाई बुद्धसिंह बड़े प्रेमी सज्जन निकले। अन्य बन्धु तो आज काम पर चले गए, मैं और बुद्धसिंह दोनों डेरे पर रहे। महासिंह का दल यहाँ रेल की सड़क पर काम करता था---ऐसे काम को अंग्रेजी में section work कहते हैं। प्रत्येक मजदूर को एक डालर ७५ सेन्ट रोज मिलता था। यह काम कुछ ऐसा कठिन नहीं है। भारतवर्ष में रेल की सड़क पर ट्राली में बैठे हुए मजदूरों को बहुत से पाठकों नें देखा होगा, बस यही सेक्शन वर्क है। जो काम ये मजदूर करते हैं वही काम अमरीका की सड़कों पर हमारे सिक्ख मजदूरों को करना पड़ता है। फर्क केवल मजदूरी का है। यहाँ पेट भर खाने को नहीं मिलता, वहाँ सवा पाँच रुपये रोज मिलता है। एक सिक्ख मजदूर का ३० रुपये मासिक से अधिक खर्च नहीं होता, बल्कि इससे भी कम होता है। करीब-करीब सभी अपने हाथ से भोजन बनाते हैं।

आज बुद्धसिंह ने मेरी बड़ी सेवा की। उसकी रामकहानी भी बड़ी विचित्र थी। दोपहर के साए में आराम किया। लसाड़ा के भाई भगवान सिंह भी घूमते-घामते आ निकले। वे वीना नौकरी की तलाश में जा रहे थे। नेवादा में इन्होंने कुछ महीने काम किया था। इनका किस्सा भी बड़ा दिलचस्प है। दो अमरीकन नवयुवक उधर से गुजरे। मुझे देखकर पास आ बैठे। उन्होंने अपनी गाथा सुनाई, वह भी बड़ी मनोरंजक थी।

यह सब स्मरणार्थ लिख देता हूं । कभी कोई नई पुस्तक रचनार्थ सामग्री मिलेगी ।

रात को एक पटवारी बन्धु से वार्तालाप होता रहा । आप कट्टर आर्यसमाजी थे । उन्होंने मेरा दिमाग चाटने में कोई कसर बाकी न रक्खी । खैर, उनकी तसल्ली भी होगई । आखिर नींद ने मेरी तसल्ली कर दी ।

अगस्त १६ । प्रातःकालीन कर्मों से निवृत्त हो नाश्ता कर बुद्धसिंह जी से बिदा हो मैंने चीको का रास्ता लिया । नोर्ड से चीको दस मील होगा । ग्यारह बजे मैं वहाँ पहुंचा । रास्ते में आड़ू और बादामों की भरमार है । मैंने आज अपने जीवन में पहली बार बादामों के वृक्ष देखे । हरे-हरे बादाम तोड़कर मैंने अपनी जेबें भर लीं । खूब खाए, बड़ा मजा आया । इधर के उपवनों के इर्द-गिर्द बाड़ें कम हैं । लोगों को घेरा बाँधने की अभी फुरसत नहीं । फल इतना होता है कि पथिक भी आनन्द से खाते हैं । बागों के स्वामी इससे कुछ विशेष हानि नहीं समझते । पर हाँ, कई एक दुनियादारों ने काँटेदार तारों के घेरे बाँध दिए हैं और राह चलतों को फल खाने से मना करते हैं ।

चीको में मैंने भारतीय मजदूरों के एक दल को सड़क पर खड़े देखा । पूछने पर मालूम हुआ कि वे सेक्रेमेन्टो काम की तलाश में जा रहे थे । इन्होंने मुझे अपने साथ चलने का अनुरोध किया । यद्यपि मैंने मान तो लिया, पर मुझे बाद में बड़ा पश्चात्ताप हुआ । सेक्रेमेन्टो घाटी का यह भाग दर्शनीय है । यह अंगूरिस्तान है । प्रकृति ने इसे बहुत उपजाऊ बनाया है । यहाँ आबादी बड़ी शीघ्रता से बढ़ रही है । भूमि की कीमत दुगनी-चौगनी हो रही है । तीन बजे मोटरगाड़ी जाती थी । अभी बारह ही बजे थे । घूम फिर कर मैंने चीको की सैर की । यह खासा बड़ा कस्बा है । यूनाइटेड स्टेट्स गवर्नमेंट ने यहाँ एक उद्यान (Plant Garden) ऐसा बनाया है जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के पौधे रक्खे जाते

हैं। उनकी परीक्षण, अन्वेषण, प्रयोगादि विधियों से जाँच की जाती है। यह उस गवर्नमेंट के परिश्रम और उद्योग का ही परिणाम है कि यहाँ की भूमि ऐसी फलदायक है। वैज्ञानिक आविष्कारों के द्वारा फलों को स्वादिष्ट बनाने के उपाय किये जाते हैं।

तीन बजे हम सब चीको से चले। रास्ते में कई स्थानों में भारतीय मजदूरों को काम करते देखा। एक जगह दस-बारह पठान खड़े सड़क कूट रहे थे। मेरिसबिल में भी अपने बहुत से बन्धु हैं। इस ऋतु में यहाँ काम की अधिकता रहती है। चुकन्दर (Sugar-beats) के खेतों में सैकड़ों भारतीय काम करते हैं। चुकन्दर की खाँड बनती है। इसके द्वारा लाखों रुपये का फायदा यहाँ के लोग उठाते हैं।

रात को सेक्रेमेन्टो पहुंच गए। इसी नाम की नदी के किनारे यह शहर बसा है। यही कैलेफोर्निया की राजधानी है। यहीं पर रियासत का गवर्नर रहता है। हम लोग एक यूनानी के होटल में जाकर ठहरे। इसको होटल नहीं कहना चाहिए, यह एक प्रकार की सराय थी। एक चौड़े कमरे में जमीन पर मैले-कुचैले गद्दे बिछे थे। उन्हीं पर भारतीय मजदूर अपने-अपने बिस्तरे बिछाए पड़े थे। उनका ऐसा रहन-सहन देख कर मुझे बड़ा शोक हुआ। भला इन लोगों को अमरीका में रहने से क्या लाभ है? भारत की भाँति इनका जीवन यहाँ भी पशु तुल्य है। बदबू के मारे मेरा सिर दर्द करने लगा। सराय में बहुत से भारतीय इधर-उधर से आए हुए थे; सेक्रेमेन्टो घाटी में इनका अड्डा यहीं पर है। गंगाराम नामी एक नवयुवक अपने मजदूरों के दल के साथ यहीं पर टिका हुआ था। जब उसको मेरे आने की खबर हुई तो वह दौड़ा-दौड़ा आया। सराय से बाहर मुझे ले जा कर उसने कहा—

"भला आप यहाँ कहाँ सोयेंगे! चलिए, मैं आपको एक होटल में ले चलूँ।"

मैंने कहा—"भाई मुझे तो बड़ी भूख लगी हुई है, कुछ खिलाइये।"

"चलिए होटल में।"

"होटल में तो मैं न जाऊंगा।"

"अच्छा आइये, बाजार चलें। जो चीज आपको पसन्द हो बतलाइये।"

बाजार में जाकर हमने एक बड़ा तरबूज खरीदा। गंगाराम ने तो मुझे बहुत मना किया कि रात को तरबूज खाना अच्छा नहीं, पर मैं भला क्यों मानने लगा था! मैंने हँस कर कहा--

"मेरा बीमारी में विश्वास नहीं, बीमारी कोई चीज नहीं, यह सब निर्बल आत्माओं के चोचले हैं।"

गंगाराम बेचारा चुपका हो रहा। उस तरबूज को मैंने ही खाया। जब पेट से छुट्टी हुई तो सोने के लिए होटल तलाश किया। गंगाराम ने मुझसे बिना पूछे ही कमरे का सब ठीक-ठाक कर लिया। ७५ सेन्ट एक रात के फी आदमी देने पड़े। अब जब सब तय होगया तो मैं क्या करता! वह कमरा मेरी पसन्द का नहीं था। खैर, मैं अपने पलंग पर सो रहा और गंगाराम अपने पर।

थोड़ी देर के बाद मेरा तो खटमलों से युद्ध आरम्भ होगया। इतने खटमल! मोटे-मोटे! फौज की फौज घूम रही थी। गंगाराम बेचारे को सुध भी न थी, पलंग पर पड़ा खुर्राटे भर रहा था। मेरा सोना कठिन होगया। मेरी रात युद्ध करते बीती। जब चार बज गये तो मैंने गंगाराम को उठाया, दोनों जने होटल से बाहर हुए।

अगस्त १७ को सेक्रेमेन्टो की तरुवर-सुशोभित गलियों में घूमते रहे। यहाँ के घर एक दूसरे से जुड़े हुए नहीं होते, बल्कि बीच-बीच में जगह छोड़ कर बगीचा लगा रहता है। प्रत्येक घर के इर्द-गिर्द छोटी वाटिका है और वह बाड़े से सुरक्षित है। फलदार पेड़ों के नीचे पर्ण-शालायें बनी हैं। उनमें कुरसी, मेज मौजूद हैं। एक ओर झुलई शय्या टंगी है। आहा! क्या जीवन है! आजकल के दिनों में दोपहर के समय

इन्हीं पर्णशालाओं में मातायें अपने बच्चों के साथ विश्राम करती हैं। ठंडी-ठंडी पवन के झकोरे, पल्लवान्वित विटपों की मन्द-मन्द मुस्कान, चिड़ियों का स्वतन्त्र आलाप और नीरोग बालकों का हँसना-खेलना, इन महिलाओं को कैसा आह्लादित करता होगा ! स्वतन्त्रता देवी ! ये सब सुख तेरी ही पूजा के फल हैं । तेरी आराधना से ही सब कामनाओं की सिद्धि होती है। तेरे भक्तों के लिए ही यह संसार है । जो तुझसे विमुख हैं, जो तेरी पूजा नहीं करते, उनका जीवन नरक सम है। उनके लिये ठोकरें हैं, धक्के हैं, गालियाँ हैं । संसार में सुख के इच्छुकों को तेरी शरण में आना चाहिए, तेरी पूजा करनी चाहिए, तेरी खातिर सर्वस्व अर्पण करने के लिए उद्यत रहना चाहिये। जिन्होंने ऐसा नहीं किया, हा ! उनकी आज क्या दशा है !

गंगाराम को तो अपने आदमियों के लिए काम तलाश करना था इसलिए उसको तो मैंने छुट्टी दे दी। मेरा समय शहर के भवन देखने में बीता। दोपहर के समय गंगाराम मुझे फिर मिल गये। उनके साथ मैं डेविस चला गया । डेविस में बख्तावरसिंह का दल चुकन्दर के खेत पर काम करता था । गंगाराम तो वहाँ से अपने काम पर चले गये, मैं वहीं पर एक रात ठहर गया। इन बन्धुओं को कुछ शासन-सम्बन्धी शिक्षा देनी थी। रात को दो घण्टे यह काम किया, बाद में हम सब लोग तम्बू के नीचे जमीन पर सो रहे ।

अगस्त १८ । भोर होते ही मैं तो सेक्रेमेन्टो की ओर चला । बख्तावरसिंह और उसके साथी अपने काम पर चले गये। सेक्रेमेन्टो में मुझे पता लगा कि गुप्त जी की मण्डली रोजविल में काम करती है । यह कस्बा भी सेक्रेमेन्टो के पास ही है। घूमता-घामता साँझ को यहाँ पहुंच गया। भारतीय मजदूर वहाँ काम करते थे। उनसे मालूम हुआ कि गुप्त जी एक दिन पहले अपने साथियों को लेकर कहीं दूसरी जगह बादामों के ठेके पर चले गए हैं। खैर, मैं रात को यहीं रहा और यथाशक्ति अपनी ड्यूटी बजाई।

अगस्त १९। तीन बजे ही उठकर मैं रोजविल से सेक्रेमेन्टो वापस चला। घटाटोप अंधेरा था, रास्ता सुझाई नहीं देता था। रोजविल रेलवे स्टेशन के अहाते में से होकर मुझे गुजरना था। मैं उसी ओर बढ़ा। अहाते के ऐन बीच में किसी ने लालटैन का प्रकाश मेरे मुंह पर डाला। मैं खड़ा होगया। एक अमरीकन पुलसमैन मेरे पास आया और गर्ज कर बोला——

"यहां क्यों घूम रहे हो ?"

"मैं सेल्समैन (फेरीवाला) हूं। पुस्तकें बेचता हूं।"

"कहां है तुम्हारी पुस्तकें ?"

मेरी जेब में लिबरेटर्स (Liberators) नामक उपन्यास था, उसको निकालकर मैंने कहा——

"देखो ! मैं इस पुस्तक का एजन्ट हूं।"

मेरे हाथ से लेकर उसने देखा-भाला। थोड़ी देर बाद बोला—— "अच्छा जाओ।"

जब मैं सियेटल से 'भ्रमण' के लिए निकला था तो मेरा विचार पुस्तकों की सेल्समैनी करने का था। इसी हेतु मैंने बोस्टन की प्रसिद्ध पत्रिका 'ट्वेन्टीयथ सेंचरी' के मैनेजर से पत्र-व्यवहार किया। उन्होंने मुझे लिबरेटर्स नामक उपन्यास तथा अपनी पत्रिका की कुछ प्रतियां भेज दीं जिससे मैं उनके ग्राहक बढ़ाऊं। इसके लिए उन्होंने मुझे चालीस फी सदी कमीशन देने का वायदा किया। उसी उपन्यास की प्रति मेरे पास थी। मैंने पहरेदार को वह कापी दिखला दी। इससे उसकी तसल्ली होगई और उसने जान लिया कि मैं घुमक्कड़ होबो नहीं हूं।

खैर, अब तो पौ फटने लगी थी। पूर्व दिशा में सूर्य्य भगवान् के दूत अपने प्रभु के आगमन की घोषणा दे रहे थे। मन्द-मन्द समीर का आनन्द

लेता हुआ मैं सेक्रेमेन्टो की ओर बढ़ा। आज सैर का बड़ा लुत्फ आया। नदी के किनारे शौचादि से निवृत्त हो हाथ-मुंह धोया और दस बजते ही सेक्रेमेन्टो पहुंच गया।

सराय में जाकर पता लगा कि भारतीय मजदूरों की मंडलियां साढ़े सात रुपये रोज पर हाप् चुनने के लिए चली गयीं हैं। नई मंडलियां और आ गई थीं। यहां के सभी भारतीय मजदूर प्रायः पंजाब प्रांत से आते हैं। उनमें सिक्ख अधिक हैं। सेक्रेमेन्टो बड़ा शहर है। यहां पर मजदूरी दिलाने वालों के अड्डे हैं, इसलिए चारों ओर के मजदूर यहां आकर इकट्ठे होते हैं। यहाँ से भरती होकर वे दूर-दूर जाते हैं। अमरीका के सभी बड़े-बड़े नगरों में ऐसा हाल है। "नौकरी दिलाना" यह भी एक बड़ा भारी रोजगार है। बहुत लोग इसी द्वारा मालामाल हो जाते हैं।

सेक्रेमेन्टो में बहुत देर नहीं ठहरा। भोजन करके डेविस की ओर चला। रास्ते में खूब आड़ू खाये। तीन घण्टे में डेविस पहुंच गया। वहां एक भारतीय मजदूर से भेंट होगई। वह मुझे बड़े अनुरोध से अपने साथ ले गया। उसका दल पास के गांव में अंगूर चुनने पर नियत था। वहीं मैं रात को रह गया और भारतीय बन्धुओं की सेवा में रात कटी।

अगस्त २०। प्रातःकाल उठते ही नित्य कार्यों से निवृत्त हो भोजन कर वेकाविल का रास्ता लिया। यह कस्बा एक पहाड़ी के दामन है और फलों के लिए प्रसिद्ध है। रास्ते में पवन-चक्कियां स्थान-स्थान पर देखने में आईं, शायद ही कोई घर इनसे खाली हो। किसान लोग बड़े प्रसन्न हैं। फलों से लहलहाते वृक्ष चारों ओर दिखाई पड़ते हैं। बहुत सी भूमि खाली भी पड़ी है। एक जगह लड़कों का झुण्ड देखने में आया। ये लोग पास के किसी हाई स्कूल की टीम के साथ फुटबाल खेलने जा रहे थे। जवान तन्दुरुस्त लड़के, सेव जैसे सुर्ख गाल, हाथ-पैर

सुडौल, सुन्दर वर्दियां पहने क्या भले प्रतीत होते थे ! कैसे प्रसन्न ! न चिंता, न गम ! बस मस्त हैं। इनके लिए जीवन के चारों द्वार खुले हैं, कोई बाधा नहीं, कोई रुकावट नहीं, जैसा चाहें बन जायें, जो रुचि हो सो करें, इनको काम करने की स्वतन्त्रता है।

अलमीरा एक जङ्क्शन है। यहां से वेकाविल थोड़ी दूर है। भूख ने तंग करना शुरू किया। २२ मील का धावा हो चुका था और अभी पांच मील बाकी थे। जब अलमीरा से वेकाविल की सड़क पकड़ी तो प्रूनों का बाग़ दिखलाई पड़ा। घेरा फांदकर मैंने प्रून तोड़े और जेबें भर लीं। फल पके थे, शीघ्र क्षुधा निवृत्ति होगई। छः बजे के बाद मैं वेकाविल पहुंचा। यह सचमुच फलों का घर है। इर्द-गिर्द बाग़ ही बाग़ लगे हैं। बादाम, नाशपाती, आड़ू, प्रून, अंगूर खूब ही फलते हैं। फलों से लदी हुई गाड़ियां स्टेशन पर खड़ी थीं।

छोटा सा यह कस्बा हज़ारों मन फल बाहर की मण्डियों में भेजता है। फलों की ऋतु में प्रायः सभी जातियों के मजदूर यहाँ के बागों में देखे जाते हैं। यद्यपि वे भिन्न-भिन्न भाषायें बोलते हैं पर एक उद्देश्य की सिद्धि के लिए सब मिलकर कार्य्य करते हैं।

एक बाग़ में जापानी मजदूर बादामों को तोड़कर धूप में सुखा रहे थे। उनके पास जाकर मैंने एक जापानी बूढ़े से पूछा—

"क्या आप यहां किसी हिन्दू मजदूर का पता बतला सकते हैं ?"

मुस्कराकर, अपनी आंखें मीचते हुए, उसने उत्तर दिया—

"मी नो सावी इंगलिस।"

अर्थात् "मैं अंगरेजी नहीं समझता हूं"। उसका यह उत्तर पाकर मैं बड़े पसोपेश में पड़ गया। उस बाग़ का मालिक अपने घर के बरामदे में बैठा चुरुट पी रहा था। उसके पास जाकर बड़े अदब से मैंने कहा—

"क्या यहां किसी धनिक के पास हिन्दू मजदूर भी काम करते हैं ?"

वह बोला--

"हाँ करते तो थे, लेकिन अब मजदूरों की ज्यादा जरूरत न होने के सबब वे यहां से सनफ्रांसिस्को की ओर चले गये हैं। कस्बे में शायद किसी के यहां दो-चार हिन्दू अभी काम करते हों। आप पोस्ट आफ़िस से दरयापत कर लीजिए।"

मैं वहां से लौटा। सामने एक बड़ी इमारत दिखाई पड़ी। उधर चला। पास जाकर उसकी सीढ़ियों पर बैठ गया। यह यहां का हाई स्कूल था। इसमें इस कस्बे के लड़के-लड़कियां पढ़ते हैं। सामने फुटबाल खेलने के लिए ज़मीन है। एक गिरजाघर भी निकट ही बना हुआ है।

जरा सुस्ताकर मैं क़स्बे की ओर बढ़ा। रास्ते में गृहस्थियों को अपने-अपने घरों के बाहर कुर्सियों पर बैठे देखा। गर्मी की ऋतु है, हवा खाने के लिए बाहर कुर्सियां डाली हुई हैं। एक या दो मंजिले घर हैं। उनमें वैज्ञानिक सुखों के सारे सामान हैं। यह सब इनके पुरुषार्थ का फल है।

वेकाविल के डाकखाने में जाकर मैंने एक भारतीय बन्धु का पता दर्याफ्त किया पर कुछ मालूम नहीं हुआ। आज शनिवार होने के कारण मजदूर लोग बाजार घूम रहे थे। इनको आज के दिन तनख्वाह मिलती है। शराबखानों के पास इनकी भीड़-भाड़ थी। कई शराब पीने में व्यस्त थे, कुछ बेंचों पर बैठे चुरुट पी रहे थे और साथ ही हँस-हँस कर बातें भी करते जाते थे। बहुतसे दुकानों के बाहर खड़े वार्तालाप में मशगूल थे। कई एक दैनिक पत्र बाँच रहे थे। प्रायः सभी कोट, पतलून, टाई, कालर लगाये पूरे जेन्टलमैन बने हुए थे, पर हां कोई-कोई ऐसे भी थे जो मिलों में छुट्टी होने के बाद सीधे बाजार में ही चले आये थे। ये अपने ओवरालों के साथ ही इधर-उधर घूम रहे थे। 'ओवराल' से टांगें, छाती और पीठ अच्छी तरह ढक जाते हैं और मजदूरी करते समय इससे बड़ा सुभीता रहता है। यह प्रायः गहरे नीले रंग के मजबूत

कपड़े का बनाया जाता है। नीचे का हिस्सा पाजामे की तरह और ऊपर दो खुले टुकड़े—एक पीठ के लिए और दूसरा छाती के लिए—साथ ही तीन तीन बटन पार्श्व भागों को बन्द करने के वास्ते और एक-एक हुक उन टुकड़ों को कन्धों पर मिलाने के लिए लगी रहती है। साफ़-सुथरे कपड़ों के ऊपर उसे पहन कर मजदूरी कीजिये, कपड़े मैले नहीं होंगे। पहले पाजामे की तरह उसे पहन कर फिर आगे और पीछे के दोनों टुकड़ों को खेंच कर कन्धे पर ला हुक लगा लेते हैं, फिर दोनों बगलों के बटन बन्द कर दिये जाते हैं। कपड़े बेचने वालों की दुकानों पर ये ओवराल बने-बनाये बिकते हैं।

बाज़ार में घूम फिर कर मैंने कई दुकानदारों से भारतीय बन्धुओं का पता लगाने की कोशिश की, पर सफलता नहीं हुई। अन्त को हार कर मैंने विश्राम-गृह (Rooming House) तलाश किया। अमरीका के सभी क़स्बों में बिजली का प्रबन्ध है। बाज़ार, गलियाँ, दुकानें, घर सभी या तो बिजली द्वारा प्रकाशित हैं या गैस के जरिये। इस छोटे से कस्बे में भी बिजली व्यापक हो रही है। जिस कमरे में मैं सोया था उसमें भी विद्युत् की कन्दील लगी हुई थी। बचे-बचाये प्रून जो मेरी जेब में थे उन्हीं से क्षुधा निवृत्ति कर सो रहा।

अगस्त २१। आज रविवार है। वेकाविल में सब मजदूरों को छुट्टी है। वे रविवार का आनन्द मनाने की तैयारियाँ कर रहे हैं। हाथ-मुंह धोकर जब मैं गली में निकला तो कुछ मज़दूरों को साफ़-सुथरे वस्त्र पहने हुए घूमते देखा। धीरे-धीरे सभी नागरिक घरों से निकलेंगे और अपने-अपने गिरजों में जाकर उपदेश सुनेंगे। जिनको इंजील में श्रद्धा नहीं है वे बागों में जाकर रंगरलियाँ मनायेंगे। सभी छुट्टी का मजा उठायेंगे।

पर मुझे तो दूर जाना था। भूखे पेट सड़क पर हो लिया। नौ बजने वाले थे, दस बजे अलमीरा जंक्शन पर पहुँच गया। पांवों में दर्द था, क्या किया जाय! बराबर चलता ही गया। रास्ते में एक स्टेशन पर दम

लेने के लिए ठहर गया। स्टेशन के हाते में एक आडुओं का पेड़ था। उसकी एक टहनी से बोर्ड लटका हुआ देखा, लिखा था "pick no peaches" आड़ू मत तोड़ो। खूब ! बड़े बढ़िया पके हुए आड़ू लगे थे। मैं भूख से आतुर था, पर क्या करता ! चुपचाप चलता ही गया। आखिर किसी प्रकार थका हारा विनिशिया पहुंचा। वहाँ एक दुकान से बिस्कुट तथा रोटी खरीद कर पेट पूर्ति की और होटल में जाकर सो रहा।

अगस्त २२, सोमवार। सेक्रेमेन्टो नदी यहाँ पर बड़े वेग से बहती है। इसका पाट भी खासा चौड़ा है। विनिशिया इसी के किनारे पर एक छोटा सा कस्बा है। अमरीका के पश्चिमोत्तर कस्बों की तरह यह भी है। नदी के किनारे होने के कारण इसकी आबादी शीघ्र बढ़ रही है। कल-कारखाने भी बढ़ रहे हैं। सेक्रेमेन्टो नदी पर पुल नहीं बंधा है, रेल बड़े-बड़े स्टीमरों द्वारा इस पार से उस पार पहुंचाई जाती है। यात्रियों को रेल में से उतरने की जरूरत नहीं, कोई भय नहीं, बैठे बिठाये, आराम से उस पार पहुंच जाते हैं। किराया देकर मैं भी स्टीमर पर चढ़ बैठा और पार होगया। विनिशिया से रिचमाण्ड १६ मील है, मुझे वहीं जाना था, इसलिए मैंने शीघ्र पांव बढ़ाये। रास्ते में एक स्थान पर वृक्षों का कुंज देखा। पास जाने पर मालूम हुआ कि यह शिकारियों का विश्राम-गृह (Hunter's Retreat) है। जिन दिनों इधर अमरीका के जंगली लोग बसते थे, उन दिनों अमरीकन गोरे वन्य पशुओं का शिकार करने आते होंगे। यह कुंज उनके आराम करने का नियत स्थान होगा। यहाँ एक लकड़ी का पुराना घर बना हुआ देखा। उसमें कोई बीमार खखार रहा था। मकान के इर्द-गिर्द निर्धनता छा रही थी।

यहां से निकल कर आगे बढ़ा। मिट्टी के तेल के कूप दिखाई दिये। रोडियो नामी कस्बे के पास इनकी भरमार है। मिट्टी का तेल जमीन से खींचने के लिए कलें लगी हुई हैं। दूर तक मैदान में तेल के कुंए हैं। रोडियो के स्कूल में इस समय छुट्टी थी। मैंने घूम कर स्कूल को भी

देखा। बालक-बालिकाओं के विहार के लिए हरी-भरी बेलों के नीचे स्टूल-बेंचें लगी हुई थीं। व्यायाम के सभी साधन मौजूद देखे। क्यों न हों, क्या मिट्टी का तेल भरने वालों के बच्चों को शिक्षा नहीं चाहिये ? अवश्य। सड़क के किनारे जा रहा था, उधर से रेल आ रही थी, रेल घूम कर जो आई तो मैं गिरते-गिरते बच गया। यह रेल की सड़क टेढ़ी घूमती हुई गई है। ऊँचाई पर होने के कारण मैं उसके वक्रपन को न जान सका। खैर, प्रभु रक्षक हैं। उसने बचा लिया।

चार बजे रिचमाण्ड पहुँच गया। यहां से ओकलैण्ड को बिजली की गाड़ी जाती है। किराया देकर मैं उस पर चढ़ गया। जेन्टलमैन और लेडियां मेरी ओर देख रही थीं। मुंह पर गर्द, पांओ पर धूल, कपड़े मैले ! उन्हें क्या मालूम था कि यह भारत का परिव्राजक है !

ओकलैण्ड होता हुआ मैं साढ़े पांच बजे सन्ध्या के समय सनफ्रांसिस्को पहुँच गया। बहुत दिनों के बाद एक बड़े शहर के दर्शन हुए। सियेटल छोड़ने के बाद, यद्यपि पोर्टलैण्ड और सेक्रेमेण्टो रास्ते में पड़े थे, पर वे फिस्को के मुकाबिले में कुछ भी नहीं। गलियों में वही भीड़-भड़क्का, पर हमारे भारतीय नगरों जैसा नहीं। अमरीका सभ्य देश है। यहाँ के निवासी भीड़ होने पर भी असभ्य व्यवहार नहीं करते। फ्रिस्को की गलियों में घूमता-घामता मैं यंगमैन क्रिश्चियन असोसियेशन (Y.M.C.A.) के भवन में पहुंचा। यहां से अपनी डाक लेकर हिन्दू-मन्दिर की खोज में निकला। खोजते-खोजते बड़ी कठिनाई से उसके दर्शन हुए। मठधारी स्वामी त्रिगुणातीत जी से भेंट हुई। उनके सहकारी स्वामी प्रकाशानन्द जी से भी परिचय हुआ।

पाठक, आप इस हिन्दू-मन्दिर के विषय में जानने को बड़े उत्सुक होंगे। स्वामी विवेकानन्द जी के मिशन को जारी रखने के लिए अमरीका के बड़े नगरों में वेदान्त सोसाइटियां स्थापित हैं। बोस्टन, न्यूयार्क, पिट्सबर्ग, शिकागो, वाशिंगटन डी० सी०, सनफ्रांसिस्को आदि

नगरों में हिन्दू-मिशनरी अपने धर्म का प्रचार करते हैं। स्वामी विवेकानन्द चूंकि बंगाली थे इसलिए वेदान्त सोसाइटियों के अधिष्ठाता प्रायः बंगाली संन्यासी ही हैं। फिस्को की वेदान्त सोसाइटी के अधिष्ठाता* स्वामी त्रिगुणातीत जी थे। अपने अमरीकन भक्तों की मदद से उन्होंने यह मन्दिर बनवाया है, जिसमें पाश्चात्य सभ्यता के सब आराम मौजूद हैं। व्याख्यानों के लिए एक गैलरी सी भी बनी है। प्रेस भी इस में ही है। मन्दिर के ऊपरी भाग में भारतीयता के नमूने मौजूद हैं। मन्दिर के ढंग की छतरी भी है। अमरीकन और भारतीय कारीगरी को मिलाकर इस मन्दिर की रचना की गई है। अमरीकनपन तो प्रधान है ही पर भारतीयता को चोटी का स्थान मिला है। मन्दिर का रंग-ढंग मठों जैसा है, बूढ़े और जवान ब्रह्मचारी इसमें रहते हैं। एक भाग में स्त्रियां रहती हैं। उन्हें nuns अथवा संन्यासिनें समझिये। मुझे उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ।

अच्छा, अब ब्रह्मचारियों का नाम सुनिये--मिस्टर ब्रौन, बुल्वार, क्रुगर, एन्डरसन, हूवर और पेज, इतने ब्रह्मचारियों को मैंने यहां देखा। ये सब सज्जन दिन में नौकरी करते थे, रहते-खाते मन्दिर में थे। अपने रहने-खाने का खर्च स्वामी त्रिगुणातीत जी को देते थे। ऐसी आमदनी से मन्दिर का खर्च चलता है। स्वामी जी इनको धर्मोपदेश देते हैं।

स्वामी प्रकाशानन्द जी ने बड़े प्रेम से भोजन बनाया। आज बहुत दिनों के बाद भारतीय खाना मिला। मैंने खूब पेट भर कर खाया। रात को ऊपर सबसे ऊपरवाली छत पर सो रहा। लेकिन नींद नहीं आई।

* स्वामी त्रिगुणातीत जी को बाद में, कुछ वर्षों के अनन्तर, उनके ही किसी उद्दंड शिष्य ने गोली मार दी।

अगस्त २३ से अगस्त २५ तक। स्वामी विवेकानन्द जी के इस बेदान्त मन्दिर में स्वामी रामकृष्ण परमहंस जी के सिद्धान्तों का प्रचार होता है। प्रत्येक रविवार को अमरीकन स्त्रियां और पुरुष मन्दिर में उपदेश सुनने के लिए आते हैं। धार्मिक सहनशीलता यहां खूब देखने में आई। यदि मर्द किसी ईसाई चर्च का मेम्बर है और स्त्री है वेदान्त सोसाइटी की भक्तनी, तो पति रविवार के दिन अपनी स्त्री को इस वेदान्त मन्दिर में छोड़ कर स्वयं अपने गिरजे में चला जाता है। मन्दिर में धार्मिक विषयों की पुस्तकें बिकती हैं। यह मन्दिर भारतवर्ष की प्राचीन संस्कृति के नई दुनिया में प्रचार करने का बड़ा सुन्दर साधन है। यदि अनुभवी, सच्चरित्र और विद्वान् संन्यासी यहां प्रचार करने के लिए आवें तो बड़ा उत्तम हो।

मैं फ्रिस्को में पहिली दफा आया था इसलिए इधर-उधर घूमा-फिरा। अमरीका के पश्चिमी भाग में पैसेफिक महासागर के किनारे पर यह सबसे बड़ा शहर है। इसकी आबादी पाँच लाख के करीब होगी। यों तो अमरीका के प्रत्येक बड़े शहर में भिन्न-भिन्न जातियों के लोग दिखाई देते हैं पर फ्रिस्को तो इस बात में न्यूयार्क से टक्कर मारता है। संसार की सभी जातियों के लोग यहाँ दिखाई देते हैं। यद्यपि भेष में कोई बड़ा फर्क नहीं, सब एक ही तरह के सूट-बूट पहिनते हैं, पर उनके चेहरों की ओर देखने से सूर्य की कारीगरी का चमत्कार दिखाई देता है। बाजार में घूमते समय मुझे व्यापार द्वारा उत्पन्न विश्वबन्धुत्व का चित्र देखने में आया। फ्रिस्को से सारे एशिया को जहाज जाते हैं। आस्ट्रेलिया, फिलिपाइन द्वीप तथा अमरीका की दक्षिणी रियासतों से भी खूब व्यापार होता है। ये जहाज कैलेफोर्निया के मधुर फलों को द्वीप-द्वीपान्तरों और देश-देशान्तरों में ले जाते हैं। सनफ्रांसिस्को की खाड़ी का दृश्य ऊँची पहाड़ी से बड़ा मनोहर दिखाई देता है। जहाजों के लिए प्रकृति ने यहाँ बड़ा अच्छा बन्दरगाह बनाया है, इसीलिए इसका नाम सुनहरी फाटक (Golden Gate) पड़ गया है। शहर में बड़े सुन्दर बाग-बगीचे हैं और

आकाशचुम्बी भवनों का तो कहना ही क्या ! यह तो अमरीका का इस बीसवीं सदी में एक खास आविष्कार है।

२४ अगस्त। आज मैं बर्कले यूनीवर्सिटी देखने के लिए गया। यहाँ कई भारतीय विद्यार्थियों से मेरी भेंट हुई। यह विश्वविद्यालय भारतीय विद्यार्थियों को विद्याध्ययनार्थ बड़ा अनुकूल पड़ता था, क्योंकि यहाँ वे मजदूरी करके विद्याध्ययन कर सकते हैं और कृषि की शिक्षा का यहाँ बड़ा अच्छा प्रबन्ध है। यहां मेरी भाई बैनर्जी, दत्त और गुप्त से भेंट हुई, जिनके साथ भारतीय मजदूरों के सम्बन्ध में मेरा वार्तालाप हुआ।

फ्रिस्को से आगे जाने के लिए मेरे पास कुछ भी पैसा नहीं था। विचार यह किया कि कुछ दिन यहाँ मजदूरी कर पैसा जमा करूँ। २५ अगस्त को दिन भर फ्रिस्को की गलियों में खाक छानता रहा। इस समय यहाँ भारतीय मजदूरों के प्रति घृणा का भाव फैला हुआ होने के कारण जल्द मजदूरी नहीं मिलती थी। दिन भर घूमने से थक कर, चूर होकर, मन्दिर में पहुंचा। रात को स्वामी त्रिगुणातीत जी के पास तारकनाथ दास अपने साथी को लेकर आये। स्वामी जी ने तारकनाथ दास से भारतीय मजदूरों के दिए हुए रुपयों का हिसाब पूछा। भाई तारकनाथ ने हिसाब देने से इनकार किया। इस पर कहा-सुनी होगई और तारकनाथ जी खफा होकर चले गये।

२६ अगस्त शुक्रवार। आज का दिन अत्यन्त खराब निकला। नौकरी की तलाश में १५ मील तक जूते चटखाता फिरा। पहिले यूनियन औयल वर्क्स (Union Oil Works) नाम के बड़े कारखाने में गया। वहां के प्रबन्धक से मिला, पर कुछ सफलता न हुई। दूसरे कई स्थानों में भटकता फिरा, लेकिन कुछ नतीजा नहीं निकला। जिस अमरीकन ने नौकरी देने का वायदा किया था, उसने अपना वायदा पूरा न किया। घूमते-घूमते पैरों में छाले पड़ गए। भूखा-प्यासा

शाम को मन्दिर में पहुंचा। यहां स्वामी त्रिगुणातीत जी मुझ अभागे से नौकरी न मिलने के कारण बुरी तरह पेश आये और मन्दिर से चले जाने को कहा। मैं कहां जाता! जाने को कोई स्थान नहीं था। सारी रात रंज में कटी।

२७ अगस्त शनिवार। सवेरे उठ कर बिना कुछ खाये-पीये ही मन्दिर छोड़ने का निश्चय कर लिया और लास एञ्जलस की ओर रवाना होने की ठानी। जेब में एक दमड़ी नहीं थी पर और चारा ही क्या था! स्वामी त्रिगुणातीत जी के शब्दों ने मुझे जख़्मी कर दिया था। जब सवेरे चलने के लिए मन्दिर से बाहर निकला तो मिस्टर बर्ट से भेंट हुई। उन्होंने मुझ से नौकरी के विषय में पूछा। जब मैंने अपने दुःख की कथा कही तो उस दयालु पुरुष ने मुझे नौकरी दिलाने वाली एजन्सी में जाने की सलाह दी, परन्तु मेरी जेब में तो एजन्सी वाले को देने के लिए फीस भी नहीं थी। मिस्टर बर्ट ने मुझे फीस के पैसे दे दिये। मैंने एजन्सी में जाकर नौकरी ले ली। फ्रिस्को से ठीक उत्तर की ओर १५० मील के फासले पर एक नई रेल की सड़क बन रही थी, वहीं मुझे जाना था। इस स्थान का नाम शेरवुड है। मैंने वहां जाने की तय्यारी कर ली और मन्दिर में लौट कर स्वामी जी को इसकी सूचना दे दी। क्योंकि मुझे नौकरी मिल गई थी और सोमवार को मुझे चले जाना था, इसलिए स्वामी प्रकाशानन्द जी की सिफारिश से स्वामी त्रिगुणातीत जी ने मुझे दो रातें ठहरने की स्वीकृति दे दी।

२८ अगस्त रविवार। आज रविवार होने के कारण मन्दिर के अमरीकन ब्रह्मचारियों को छुट्टी थी। स्वामी प्रकाशानन्द जी ने आज अच्छे खाद्य पदार्थ तैयार किये। भोजनोपरान्त मैं ब्रह्मचारी बुलवार के साथ गोल्डन पार्क में घूमने के लिए गया। बुलवार जी आर्यसमाज के विषय में कुछ बातें जानना चाहते थे, सो मैंने उनको अच्छी प्रकार

तसल्ली कर दी। फ्रिस्को के इस सुनहले उद्यान में आज खूब भीड़ थी। स्त्री, पुरुष और बच्चे सभी मस्तानी चाल से सुन्दर सड़कों पर घूम रहे थे। यहां के चिड़िया-घर में मैंने अमरीका के उन भैंसों की सन्तति देखी जिनके विषय में बहुत-कुछ पढ़ा था। फ्रिस्को से न्यूयार्क तक, इस विशाल देश में, लाखों भैसे झुण्ड के झुण्ड बांध कर स्वतन्त्र घूमा करते थे। यहां के पुराने निवासियों की यही मुख्य सम्पत्ति थी; आज वे सब खत्म हो गये और उनके वंशज अमरीकन नगरों के चिड़ियाघरों में कैदी बन कर नई सभ्यता के लोगों के लिए कौतूहल की चीज़ बन गए हैं। पार्क में घूमने के बाद हम लोग इम्पोरियम (बड़ी मंडी) में गये। यहाँ सब प्रकार की बिक्री की चीजें देखने में आईं। नये फैशन की टोपियों पर फ्रिस्को की औरतें टूटी पड़ती थीं। सच है, धनवानों के चोंचले भी विचित्र होते हैं।

रात को मन्दिर में आकर सोया। सवेरे शेरवुड जाना था, इस लिए यह रात अच्छी तरह बीती।

२९ अगस्त सोमवार। ईश्वर का नाम ले कर जलपान किया और नौकरी दिलाने वाली एजन्सी में पहुंचा। वहाँ से पाँच रुपये देकर शेरवुड जाने वाली रेलगाड़ी का टिकट तथा नौकरी का आज्ञापत्र प्राप्त किया। और भी कई अमरीकन मज़दूर उसी गाड़ी से मेरे साथ शेरवुड जाने वाले थे। उनके साथ ३ बजे शेरवुड पहुंचा। गुलाम जाति के बच्चों का तिरस्कार यहाँ देखने में आया। कैलेफोर्निया के गोरे मज़दूर हिन्दुओं से बड़ी नफ़रत करते हैं, इसका परिचय यहाँ खूब मिला। मोहार्ट नाम का एक फ्रान्सीसी गोरा मेरा मित्र बन गया था, उसके साथ पहाड़ी से उतर कर मै नीचे पहुंचा। यहाँ एक नाले के किनारे रेल की सड़क बन रही थी। शाम को बड़ा रद्दी खाना खाने को मिला और घास में लेट कर रात बिताई।

३० अगस्त से १ली सितम्बर तक। इस रेल की सड़क को बनाने

वाले मजदूरों को कर्मचारी लोग खूब लूटते थे। पहिले तो पाँच रुपये एजन्सी वाले को देने पड़े, फिर यहां तीन रुपये रोज डाक्टरी के कट गये और दो रुपये चार आने भोजन के अलग कटे। इस प्रकार कट-कटा कर मुश्किल से चार रुपये रोज मजदूर को बचते थे और काम भी कैसा! मेरे हाथों में छाले पड़ गये। दिन भर १२ घण्टे से अधिक रोड़े-मिट्टी इधर से उधर ले जाने में बीतते थे। मेरे पास मजदूरी लायक कपड़े नहीं थे, केवल एक सूट था जिसको पहने हुए था। मिट्टी और गर्द के मारे कपड़ों का नाश होगया। खैर, तीन दिन मैंने यहाँ काम किया। जो कपड़े यहां ओढ़ने को मिले उनमें जूयें चलती थीं। मोहार्ट के साथ यहाँ किसी प्रकार तीन रातें काटीं और दूसरी सितम्बर को विलेट्स जाने का निश्चय किया।

२ सितम्बर, शुक्रवार। अपनी मजदूरी के ३ डालर और ७५ सेन्ट लेकर मैं तीन दूसरे मजदूरों के साथ विलेट्स को रवाना हुआ। पहाड़ के रास्ते जंगल के बीच से होते हुए हम लोग जा रहे थे। रेलवे लाइन की नयी शाख इधर खुली है, उसी के सबब से जगह-जगह मजदूरों के कैम्प लगे हुए थे। मजदूर बराबर आ-जा रहे थे। फ्रिस्को की एजन्सियों वाले ऐसे ढंग रचते हैं कि जिससे मजदूर ठहर न सकें। रेलवे और रेलवे कर्मचारियों को मजदूरों की जरूरत बराबर बनी रहे, इससे एजन्सियों वाले अच्छे हाथ रंगते हैं और कम्पनियों के नौकर भी खूब पैसा बटोरते हैं।

मैंनें विलेट्स से अपना छोटा सा सूटकेस लास एञ्जलस की तरफ मुसाफिर गाड़ी से रवाना कर दिया, क्योंकि मैं तो अब पैदल फ्रिस्को होता हुआ लास एञ्जलस की तरफ जाने वाला था। तीन बजे दिन के हम लोग फ्रिस्को की तरफ पैदल चले। पहाड़ों में एक चश्मे के पास हम लोगों ने रात बिताई।

३ सितम्बर, शनिवार। सवेरे उठ कर देखा कि एक साथी रात

को ही अगले स्टेशन पर चला गया है। आज कोहरा था, मगर तीन-चार घंटे बाद साफ होगया। चलते-चलते अगले स्टेशन पर पहुंचे, जहाँ रात वाला साथी भी मिल गया और हम लोग फिर चार जने होगए। यहाँ एक राबर्टसन नाम के बढ़ई से भेंट हुई, जिसने एक विचित्र कथा सुनाई।

कैलेफोर्निया में जिन दिनों सोने की खान की धूम थी, पूरब के रहने वाले एक अमरीकन मजदूर ने कैलेफोर्निया आने का निश्चय किया। इधर आकर उसने खासा पैसा कमाया और जमीन खरीद कर बड़ा भूमिपति बन बैठा। ७४ वर्ष की उम्र में उसकी एक सुन्दर युवति से भेंट हुई, जिस पर वह मोहित होगया। उस युवति ने धन के लोभ में आकर उस बुड्ढे से विवाह कर लिया। वह तो कुछ ही समय बाद परलोक को सिधार गया, पर उसकी स्त्री अट्ठारह हजार एकड़ उपजाऊ भूमि की स्वामिनी बन बैठी और एक पति की जगह तीनसे पुरुषों सम्बन्ध कर लिया। बुढ़ापे में जवान औरत के साथ शादी करने का परिणाम इसके सिवाय और क्या हो सकता है!

यहाँ हम चारों साथियों ने जलपान किया, फिर एक छोटी पहाड़ी नदी के किनारे चले गए। वहाँ खूब जल-क्रीड़ा की, तत्पश्चात् आगे रवाना हुए। संध्या के ६ बजे उकिया पहुंचे। यहाँ इन दिनों हाप की फसल थी। मुझे सोमवार से हाप चुनने का काम मिल गया। रात को जंगल में एक छोटे पहाड़ी नाले के किनारे डेरा किया। पेट भर भोजन मिला और खूब सोए।

४ सितम्बर, रविवार। सवेरे उठकर हम लोग उकिया कस्बे में घूमने के लिए गए। वहाँ मेरी मि० जान ई० हैरिस नाम के एक हब्शी अध्यापक से भेंट हुई। आप यहाँ के इंडियन डे स्कूल नाम के मदरसे में पढ़ाते थे। अमरीकन सरकार की ओर से यहाँ पर अमरीका के असली बाशिन्दों के लिए एक स्कूल खुला हुआ है, जहाँ अमरीकन इंडियनों के बच्चे तालीम पाते हैं। हैरिस महाशय से मिलकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ।

उनसे शिक्षा-सम्बन्धी विषय पर बहुत देर तक बातचीत होती रही। उन्होंने बतलाया कि अमरीकन इंडियनों के बच्चे पढ़ने-लिखने में ऐसे तेज नहीं होते जैसे कि गोरे बच्चे। वे खेल-कूद में बड़े होशियार होते हैं, क्योंकि सदियों से उनके बुजुर्गों की जिन्दगी घुमक्कड़ों की रही है।

चूंकि मेरे पास नकद पैसा नहीं था, कम्पनी के एजेन्ट का दिया हुआ चेक था, इसलिए मुझे खाने-पीने की बड़ी दिक्कत हुई। अपने साथियों से मैंने उधार भी नहीं माँगा, भूखे ही रात काट दी।

५ सितम्बर, सोमवार। कैलेफोर्निया में आज का दिन श्रमजीवियों के लिए बड़े महत्व का समझा जाता है। आज के दिन को 'Labour Day' कहते हैं। कैलेफोर्निया की सारी रियासत में मजदूर लोग आज के दिन खूब जलसे मनाते हैं। उकिया के इर्द-गिर्द के इस इलाके में हाप नामक फूल के चुनने की फसल थी। खेतों में स्त्री और पुरुष मधु-मक्खियों की तरह काम कर रहे थे। प्रातःकाल साढ़े पाँच बजे से मैं भी काम पर जुट गया और लगा हाप चुनने। शाम तक मुश्किल से दो-तीन रुपये कमाए, क्योंकि हाप चुनने का मुझे अभ्यास नहीं था। आध सेर चुनने के दो पैसे मिलते थे, जितने सेर कोई चुन लेता था उसी के हिसाब से उसे पैसे मिलते थे। जापानी मजदूर इस काम में सबसे बाजी मार ले जाते हैं, क्योंकि वे छोटे कद के और फुर्तीले होते हैं। छोटे-छोटे लड़के-लड़कियाँ भी बड़े शौक से हाप चुन रहे थे। दिन बड़ा साफ था। शाम को रोज मजदूरी मिल जाती थी।

अपनी मजदूरी लेकर मैं यहाँ से चल पड़ा, क्योंकि मुझे तो खाने लायक पैसे दरकार थे और पैदल आगे जाना था, इसलिए मैं फ्रिस्को की तरफ चला। रात को उकिया के होटल में जाकर सुन्दर सुथरे बिछौने पर सोया।

६ सितम्बर, मंगलवार। सवेरे ७ बजे उकिया से चल पड़ा। उकिया से हापलैण्ड तक हाप ही हाप के खेत दिखाई देते हैं। इसके बाद अंगूर

की लहलहाती लताएं दोनों ओर लहराती हुई दूर तक चली गई हैं। क्लोवरडेल तक अंगूर ही अंगूर हैं। मैंने आज अंगूरों का ही भोजन किया और खूब पेट भर खाए। आज इस पहाड़ी रास्ते में रेल की पटरी-पटरी मैं ३० मील चला। दो बोगदे (Tunnels) पार किए। एक १२८४ गज लम्बा, रेता नामक गाँव के पास है और दूसरा १७७२ गज लम्बा है। इन बोगदों को पार करते समय रेलगाड़ी अथवा इंजन के आने का भय लगा रहता है। संध्या के ७ बजे क्लोवरडेल में पहुंचा और वहाँ नौकरी की पूछ-ताछ की। खोजते-खोजते पता लगा कि मिस्टर शलफ्रेड को अंगूर चुनने वाले मजदूर की जरूरत है। मैं उस महाशय के घर पहुंचा और दरवाजे पर जाकर घंटी बजाई। एक अधेड़ उमर की स्त्री ने दरवाजा खोला। जब मैंने अपना अभिप्राय उससे कहा तो वह हँसती हुई वापस चली गई और अपने पति को बुला लाई। कानों में सुनने की मशीन लगाए हुए पति महाशय आए। उनकी उम्र लगभग ५५ वर्ष की होगी। वे मेरे साथ बड़ी अच्छी तरह पेश आए और मुझे अंगूर चुनने के लिए नौकर रख लिया। रात को उनके अस्तबल में घोड़ों के पास घास के अन्दर सो रहा।

७ सितम्बर से ११ सितम्बर तक। पाँच दिन मैं क्लोवरडेल में रहा। मिसेज शलफ्रेड बड़ी नेक स्त्री निकली। उसकी दो लड़कियों ने मेरे साथ भाइयों जैसा बर्ताव किया। मेरे लिए बाग में अलग छोलदारी लगवा दी और रोटी बनाने के लिए कमरा दे दिया। मैं इनके यहाँ अंगूर चुनने का काम करने लगा। पहिले कभी ऐसा काम करने का अवसर नहीं पड़ा था, इसलिए मैं अनुभवी मजदूर की तरह काम न कर सका। वाशिंगटन और आरेगन रियासतों में लकड़ी की मिलों का काम किया था और उसका ही अनुभव मुझे अधिक था। लकड़ी की मिलों का काम बड़ा सख्त होता है, उसमें शारीरिक बल की आवश्यकता अधिक है। हाप और अंगूर चुनने में शरीर की फुर्ती और आँखों की तेजी दरकार है। साथ ही अभ्यास चाहिए। मैं जब अंगूर चुनने के लिए खेत में पहुंचा तो

वहाँ मेरे साथ हेनरी नाम का एक १७-१८ वर्ष का लड़का काम करने के लिए आया। वह अंगूर चुनने में बड़ा होशियार था। उसने दिन भर में ४८ सन्दूक भर डाले और मैंने केवल २१ सन्दूक ही भरे। दिन भर टेढ़ी कमर कर, सिर झुका कर अंगूर चुनना मेरे लिए बड़ा मुश्किल था। कमर में दर्द होने लगा, लेकिन मैंने काम नहीं छोड़ा, क्योंकि मिस्टर शलफ्रेड महाशय का बर्ताव मेरे साथ बड़ा अच्छा था।

शुक्रवार के दिन सवेरे मैंने खूब जल्दी-जल्दी काम करना शुरू किया। सन्दूक को अंगूरों की बेलों के बीच के रास्ते में थोड़े-थोड़े फासले पर रख कर चाकू हाथ में ले मैं अंगूरों के गुच्छे काट-काट कर बक्स में फेंकने लगा। एक तो चाकू जल्दी चलाने का अभ्यास नहीं था, दूसरे आँख की बिनाई बहुत अच्छी न थी। परिणाम यह हुआ कि चाकू मेरे हाथ में घुस गया। शर्म के मारे मैंने जमीन की मिट्टी लगाकर लहू बन्द करने की चेष्टा की, बहुत यत्न करने पर भी रक्त की बूँदें जमीन पर जगह-जगह पड़ गईं। जब हेनरी काम करता-करता उधर से निकला तो लहू के चिन्ह देखकर विस्मित होगया। वह दौड़ कर मेरे पास आया और जबर्दस्ती मेरा हाथ देख कर बोला—

"आज आप काम न कीजिए, आपका हाथ कट गया है। मैं आपको अपने सारे सन्दूक दे दूंगा।"

मैं लज्जित होकर बोला—

"ऐसा कभी नहीं हो सकता।"

और उसका धन्यवाद कर अँगूर चुनने लगा।

कतारों की चौमुहानी पर मेरे अंगूरों से भरे हुए दस बक्स रक्खे हुए थे। हेनरी ने चुपके से अपने भरे हुए १५ बक्स लाकर मेरे बक्सों में मिला दिए। मुझे इसका कुछ भी पता नहीं था। संध्या समय जब मैं अपने बाकी भरे हुए बक्सों को लाकर चौमुहानी पर रखने लगा

तो मुझे हेनरी की सहृदयता और प्रेम का ज्ञान हुआ। मेरा हृदय गद्गद हो उठा। मैंने बड़े स्नेह से हेनरी को आलिंगन कर कहा--

"तुमने अपने इस प्रेम से मुझे अत्यन्त बाधित किया है। मैं तुम्हारा हृदय से कृतज्ञ हूं, पर मैं आपके ये बक्स नहीं ले सकता।"

हेनरी के अत्यन्त आग्रह करने पर भी मैं राजी नहीं हुआ। इस नवयुवक के साथ मेरा अत्यन्त स्नेह होगया। मुझे आज तक उसकी प्रेम-मयी मूर्ति स्मरण है।

रविवार के दिन काम से छुट्टी थी। मैं चिट्ठियाँ लिखता रहा। आज हिन्दुस्तानी ढंग का भोजन बनाकर हेनरी और सेठ की लड़कियों को खिलाया। शाम को गाना हुआ। मैंने दूसरे दिन सोमवार को यहाँ से चलने का निश्चय कर लिया था। ऐसे प्रेमी जनों को छोड़ने को जी तो नहीं चाहता था, मेरी इच्छा होती तो यहीं बस जाता, पर प्रभु ने मेरी ड्यूटी भारत जननी की सेवा में लगा दी थी, उसी कर्तव्य सूत्र में बंधा हुआ मैं भारत की ओर खिंचा चला जा रहा था।

१२ सितम्बर, सोमवार। आज मैंने मिस्टर शलफ्रेड तथा उनकी धर्मपत्नी से छुट्टी ले ली। भाई हेनरी तथा मिस्टर शलफ्रेड की दोनों लड़-कियों से प्रेमपूर्वक विदा लेकर सड़क का रास्ता लिया। रास्ते में बराबर अंगूरों के बगीचे मिले। उन्हीं से पेट-पूजा करता हुआ जा रहा था। सड़क पर रास्ते में एक जर्मन कैमिस्ट से भेंट हुई। अंग्रेजी बोलने में इसका उच्चारण बिलकुल जर्मन होने के कारण मैंने समझ लिया कि वह नया ही अमरीका में आया है। वार्तालाप करने पर मेरा अनुमान ठीक निकला। १८ मील तक हम दोनों बातें करते हुए चले गये। यह जर्मन साम्यवादी निकला, वह समाज के प्रचलित अत्याचारों के बड़ा विरुद्ध था। हमारी साम्यवाद पर खूब बातें हुईं। सेन्टा रोजा पहुँचते-पहुँचते बहुत अंधेरा हो गया। आठ बजे के बाद रात को मैं सेन्टा रोजा पहुंचा। शहर के निकट रेल की सड़क पर जाते हुए मैंने घरों में पियानो और फोनोग्राफ के

आलाप सुने। एक मकान के पास खड़ा होकर मैं पाँच-चार मिनट तक संगीत सुनता रहा। मेरी थकान दूर होगई और मैं धीरे-धीरे शहर की ओर चला।

सेन्टा रोज़ा खासा बड़ा कस्बा है। यहाँ से गाड़ियाँ सेक्रेमेन्टो की ओर जाती हैं। रात को मैं यहाँ होटल में चला गया। फल और रोटी खाकर मजे से सो रहा।

१३ सितम्बर, मंगलवार। सेन्टा रोजा से सवेरे ७ बजे निकला। सनफ्राँसिस्को यहाँ से बावन मील है, इसलिए मै तेजी से बढ़ा चला गया। शाम को ७ बजे थका-हारा चूर नवाटो में पहुंचा। रास्ते में एक घुमक्कड़ 'होबो' मिल गया था. उसी के साथ गाँव से बाहर घास के एक ढेर में मैं भी लेट रहा, पर नींद नहीं आई। अब सर्दी पड़नी आरम्भ होगई थी।

१४ सितम्बर, बुधवार। रात को बड़ा जाड़ा लगा। घास से बाहर सिर निकाल कर कई बार आकाश को देखा। आकाश बड़ा निर्मल था। नभमंडल में तारागण मुस्करा रहे थे। जब आकाश-गंगा बिलकुल मेरे सिर पर आ गयी तो मैं माता भागीरथी का नाम लेकर घास में से निकला। प्रातःकाल चार बजे का समय था। मैं सड़क पर हो लिया और फ्रिस्को की तरफ चला। घूमता हुआ आठ बजे के करीब एक रोमन केथोलिक अनाथालय के पास पहुंचा। इसका नाम सेन्ट विसेन्ट असाइलम है। इसकी इमारत ऊंची भूमि पर बनी है। यहां के अध्यक्ष ने मुझे अपना अनाथालय दिखलाया। लड़कों के चेहरे उदास और मुरझाये हुए थे, मालूम होता था कि यहां खाने-पीने का अच्छा प्रबन्ध नहीं है। बावर्ची का स्वभाव भी बड़ा कमीना देखने में आया। अनाथों के साथ उसका व्यवहार अच्छा नहीं था। अनाथालय की ऐसी अवस्था देखकर मुझे दुःख हुआ।

एक घंटा यहां ठहरने के बाद मैंने फिर पैर बढ़ाया और मध्याह्न के समय सेन्ट रिफायल पहुंचा। यहां से फ्रिस्को को बिजली की गाड़ी जाती है। उसमें बैठकर बर्कले पहुंचा, वहां कुछ देर तक भारतीय विद्यार्थियों से

बातें की। वहाँ से निपटकर स्वामी त्रिगुणातीत जी के मन्दिर की ओर चला।

रात के ग्यारह बजे में मन्दिर में पहुंचा। स्वामी त्रिगुणातीत जी की आज्ञा के विरुद्ध स्वामी प्रकाशानन्द जी ने बड़े प्रेम से मेरा स्वागत किया और मेरे सोने का प्रबन्ध कर दिया।

१५ सितम्बर, बृहस्पतिवार। हिन्दू मन्दिर के स्वामी प्रकाशानन्द जी बड़े सज्जन पुरुष हैं। उन्होंने मेरे साथ भाइयों जैसा बर्ताव किया। मिस्टर बर्ट से जो ऋण मैं ले गया था उसे चुकाकर मैंने फ्रिस्को से चलने की ठानी। मन्दिर के सब ब्रह्मचारियों से प्रेमपूर्वक विदा होकर मैं पहले भाई गुरुदत्तसिंह के यहाँ गया। वहीं मेरी भेंट भाई विशनसिंह अमली से हुई। ये महाशय भी नौकरी की खोज में थे। आज की रात मैंने ओकलैण्ड सिटी में बिताई।

१६ सितम्बर, शुक्रवार। ओकलैंड सिटी से स्टाकटन जाने का निश्चय किया। वहाँ अपने बहुत से सिक्ख बन्धु रहते हैं। उन्हीं से भेंट करने की इच्छा थी। भाई केहरसिंह स्टाकटन जा रहे थे। उनका मेरा परिचय बैन्कोवर से था। उनके साथ अग्निबोट में बैठ कर स्टाकटन की तरफ़ चला। रात बोट में ही कटी। सवेरे स्टाकटन पहुंचे।

१७ सितम्बर, शनिवार। स्टाकटन से विशनसिंह अमली के साथ काम की तलाश में तथा सिक्ख बन्धुओं की दशा जानने के लिए पर्यटन करना शुरू किया। स्टाकटन में भारतीय बन्धु फलों के ठेकों का काम करते हैं। अपना-अपना पन्द्रह-बीस आदमियों का दल बाँध कर वे इर्द-गिर्द के बगीचों में फूलों की ऋतु में काम करते हैं। काम करने में ये लोग बड़े मुस्तैद हैं पर अपने रहन-सहन के व्यवहार में ये बड़े संकुचित हैं। वे अपने आपको अमरीकनों जैसा नहीं बना देते। यही कारण है कि वे अमरीका में बिल्कुल अलग मालूम पड़ते हैं।

मैं और अमली आज लोडी गये। वहाँ भारतीय मजदूरों से भेंट होने

की आशा थी, पर वे वहाँ नहीं मिले। रात को हम दोनों जने स्टेशन के बरामदे में पड़े रहे। विशनसिंह अमली ने अपनी जीवनी के सम्बन्ध की कुछ बातें बताईं जिन्हें पाठकों के विचारार्थ यहाँ लिखता हूं।

विशनसिंह पंजाब के दुआबे का रहने वाला ग्रामीण है। अफ़ीम खाने का दुर्व्यसन होने के कारण लोग उसे 'अमली' नाम से पुकारते थे। अमली को अमरीका में आये कई वर्ष होगये। जब वह पंजाब में था तो वहाँ वह बुरदाफरोशी (स्त्रियों का क्रय-विक्रय) के धन्धे में लगा हुआ था। उसने दो स्त्रियों को जान से मार डाला था। एक बार अमली अपने एक साथी के साथ एक मिरासिन नौ-जवान लड़की को बेचने के लिए निकला। लड़की को उसके चाचा के यहाँ छोड़ने का बहाना बनाकर इन्होंने उसे घर से भगाया था। रास्ते में लड़की के मन में सन्देह होगया और उसने उनके साथ जाने से इनकार किया। बस, इसी पर इन दोनों राक्षसों ने उस बेचारी कन्या का गला घोट दिया और उसकी लाश को जंगल में फेंक कर चलते बने।

दूसरी घटना इस प्रकार हुई। जवाहरसिंह नाम के एक जमींदार की एक बहिन थी। वह बड़ी सुन्दरी थी। गाँव के रामचन्द्र नामी एक खत्री से उसका प्रेम होगया। दोनों को प्रेमालाप करते हुए किसी ने देख लिया। एक दिन जवाहरसिंह ने अपनी बहिन से कहा "चल बहिन, मैं तुझे मौसी के यहाँ छोड़ आऊँ।" लड़की बड़ी प्रसन्न हुई क्योंकि उसको अपनी मौसी से बड़ा स्नेह था। अमली को साथ लेकर जवाहरसिंह मौसी के गाँव को चले। रास्ते में बीहड़ जंगल पड़ता था। एक पोखर के किनारे तीनों जने ठहरे और स्नान किया। स्नान के बाद इन दोनों नर-पिशाचों ने भीगी चादर को उस लड़की के गले में डाल कर दोनों तरफ से दोनों ने पकड़ कर निचोड़ना शुरू किया। लड़की बेचारी बहुत रोई, हाथ-पैर जोड़े, दम घुटने पर चिल्लाई, पर उस निर्जन वन में कौन सुनता था! जब लड़की के प्राण-पखेरू उड़ गये तो उसके गले में पत्थर बाँध कर पोखर में

डाल दिया। एक निरपराध सुन्दर पंजाबी लड़की काल का ग्रास बना दी गई।

इन हृदय-विदारक कथाओं को सुन कर मेरी आँखों में आंसू आ गये। मेरे देश में स्त्री जाति पर इतना अत्याचार ? यह करुणाजनक दृश्य मेरे हृदय को विदीर्ण करने लगा। मुझे ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानो मैं उस निर्जन वन में पोखर के किनारे खड़ा हुआ उस भीषण हत्याकाण्ड को देख रहा हूं। जिस देश में कन्याओं को अपनी इच्छानुसार पति चुनने का अधिकार नहीं, जहाँ प्रेम का ऐसा कठोर दण्ड स्त्री-जाति को दिया जाय, वह देश कैसा अभागा है और उसमें जन्म लेना भारी पापों का फल भोगना है।

अमली तो कथा कहते-कहते सो गया पर मैं उस निर्दयता की व्यथा से व्याकुल एक घण्टा भी नहीं सो सका।

१८ सितम्बर, रविवार। सवेरे उठ कर हम लोग सेक्रेमेन्टो चले गये। इस नगर का वर्णन मैं पहले कर चुका हूँ। कैलेफोर्निया रियासत की यह राजधानी है। भारतीय मजदूरों का यह अड्डा है। मैं अपने एक प्रेमी ईश्वरीसिंह के यहाँ चला गया और वहीं सो रहा।

१९ सितम्बर से २३ सितम्बर तक। इन दिनों मैं सेक्रेमेन्टो में ही रहा। चाइना टाउन में जुआ खेलते समय कुछ सिक्खों की आपस में खूब लड़ाई हुई। तीन जने जेल में ठूंस दिए गए। उनके लिए दौड़ धूप करनी पड़ी। जिस यहूदी के घर पर हिन्दुस्तानी मजदूर ठहरा करते थे उसकी स्त्री के साथ कुछ मजदूरों ने शराब पीकर छेड़खानी की थी, इसी लिये उससे भी झगड़ा होगया। अपने अशिक्षित देशबन्धुओं की ऐसी हरकतें देख कर मुझे बड़ा रंज हुआ। सेक्रेमेन्टो शहर इसी नाम की नदी के नाम पर बसा है। रियासत की राजधानी होने के कारण यहाँ भव्य भवन बने हैं। गलियाँ भी अच्छी चौड़ी बनाई गई हैं। विज्ञान से पूरी सहायता

लेकर नगर की रचना की गई है। बाग, बगीचे, उद्यानों का तो कहना ही क्या ! यह नगर इस घाटी में एक सुन्दर उद्यान है।

सिक्ख मजदूरों का एक दल नदी के उस पार काम करता था। मैं वहीं पहुंचा। यहाँ सरदार विशनसिंह से भेंट हुई, वे ही दल के नायक थे। दो रातें इनके ही कैम्प में बिताईं और राष्ट्र-धर्म का खूब प्रचार किया। ये लोग रेल की सड़क पर काम करते थे। मैंने यहाँ नदी के स्नान का आनन्द लिया।

२४ सितम्बर, शनिवार। आज हिन्दुस्तानी मजदूरों का दल बाँधने की योजना करते रहे। बड़ी मुश्किल से उसमें सफलता हुई। नौकरी दिलाने वाली एजेन्सी में जाकर सबने अपनी-अपनी फीस दी और नौकरी ले ली। हम सब लोगों को ट्रेसी जाना था। शाम की गाड़ी से हम सब लोग ट्रेसी की तरफ रवाना हुए। रात को ट्रेसी पहुंच गए और वहीं सड़क के किनारे बिछौने डाल दिए। रात को खुले में आकाश के नीचे सोए, अमली राम भी साथ थे।

२५ सितम्बर, रविवार। सबेरे ९ बजे हम लोग ब्रन्टउड पहुँचे। यह बहुत छोटा सा ग्राम है। दिन भर कपड़े धोने और सफाई करने में बीता। मेरा पैसा सब खत्म होगया था, इसलिए बड़ी दिक्कत हुई। अमली ने मेरी सहायता की और हम लोगों ने दक्षिण कैलेफोर्निया की तरफ जाने का निश्चय किया। मेरा तो वही रास्ता था क्योंकि मेरी इच्छा सदर्न पैसेफिक रेलवे के रास्ते से लास एंजल्स होकर अल्पासो जाने की थी। इसलिए हम लोग रात को गाड़ी के डिपो में ही सो रहे। यह मजदूरों के रहने की गाड़ियाँ होती हैं जिनमें वे घर सा बना कर रहते हैं।

२६ और २७ सितम्बर—ट्रेसी दो रात रहे। यहाँ भी भारतीय मजदूरों का दल काम करता था। रेल की सड़क के किनारे मजदूरों के कैम्प पड़े थे। अधिकांश रेल के डिब्बों में रहते थे। ट्रेसी लूटमार का कस्बा है। यहाँ जेब से पैसा निकालने के प्रपंच बहुत हैं। न जाने कहाँ-कहाँ के कठोर

लोग यहाँ इकट्ठे हुए हैं। चौगुना पंचगुना दाम वसूल किया जाता है। सीधे-साधे भलेमानस को कोई नहीं पूछता, सब एक दूसरे की खाल उतारने में व्यस्त हैं। अमली ने मुझे "टकोमा युद्ध" की कथा सुनाई, जिसका ब्यौरा इस प्रकार है :—

अक्टूबर का महीना था। पैसेफ़िक महासागर के किनारे पर स्थित अमरीकन रियासतों में हिन्दू मज़दूरों के विरुद्ध पक्षपात की प्रचंड ज्वालायें उठ रही थीं। वाशिंगटन रियासत के वेलिंघम नगर में हिन्दुस्तानी मज़दूरों के साथ बड़ा अन्याय हुआ था। वे वहाँ से बड़ी बुरी तरह निकाले गये। गोरे मज़दूरों ने अत्याचार पर कमर बांधी और स्थान-स्थान पर मिलों के मालिकों को हिन्दुस्तानी मज़दूरों के बहिष्कार के लिए मजबूर किया। टकोमा नगर इस समय भारतीय मज़दूरों का केन्द्र बन गया था। वाशिंगटन रियासत के दूसरे नगरों से निकाले हुए मज़दूर टकोमा में आकर इकट्ठे होने लगे। नगर में हिन्दुस्तानी मज़दूरों का एक खासा बड़ा दल बन गया। साझे दुःखों ने हिन्दू, मुसलमान, सिक्खों को भाई-भाई बना दिया और वे अच्छी तरह संगठित होकर रहने लगे। शहर के गोरे मज़दूरों को भारतीयों का टकोमा में रहना अत्यन्त अखरने लगा। वे हिन्दुस्तानी मज़दूरों को टकोमा से निकालने का षड़यंत्र रचने लगे।

खाड़ी के किनारे वाटसन की बड़ी भारी लकड़ी की मिल है। उस मिल में ऐन्डरसन नामी गोरे मजदूरों का सरदार काम करता था। आज सन्ध्या को रविवार के दिन उसने अपने यार-दोस्तों को भारतीय मजदूरों के विरुद्ध षड़यन्त्र रचने के लिए बुलाया था। लकड़ी के छोटे से घर में आज ऐन्डो की चंडाल-चौकड़ी इकट्ठी हुई थी। वहाँ निश्चय यह हुआ कि भारतीय मजदूरों के अड्डे पर हमला करके उनको मार-पीट कर शहर से निकाल दिया जाय। रिवाल्वरों के प्रयोग करने का भी फैसला हो गया। लेकिन तारीख और समय के फैसले का भार मजदूरों के नायक ऐन्डो (ऐन्डरसन) के हाथ में सौंप दिया गया। तय यह हुआ कि उप-

युक्त समय निश्चित कर सरदार गुप्त सूचना सब साथियों को दे दे और डेढ सौ चुने हुए लड़के लेकर हिन्दुस्तानियों के निवास-स्थान पर धावा किया जाय।

इन दिनों भारतीय मजदूरों में एक धीर-वीर व्यक्ति मौजूद था। उसका नाम था सरदार वीरसिंह। उसकी उम्र ३५ वर्ष की होगी। बड़ी सुन्दर काली-काली दाढ़ी, गौर वर्ण, चमकीली भूरी आँखें और ६ फीट का सुडौल शरीर मजदूरों पर बड़ा प्रभाव डालता था। अपने ऊपर कष्ट सहन कर सरदार वीरसिंह सदा अपने भाइयों की मदद किया करते थे और भारत-जननी का गौरव, उसकी मान-मर्यादा की रक्षा की भावना उनमें बड़ी दृढ़ थी। अमरीका में आए उन्हें सात वर्ष हुए थे और इन सात वर्षों में इन्होंने कई अन्यायी, दुश्चरित्र और हुड़दंगे गोरों को सीधा किया था। विलिंघम के झगड़े के समय वे सियेटल के पास एक मिल में काम करते थे। जब झगड़ा बढ़ने लगा तो वे अपने दस-पाँच साथियों के साथ टकोमा चले आए। यहाँ शेरसिंह की टोली एक मिल में काम करती थी। मिल का मालिक इन अत्यन्त परिश्रमी सिक्ख मजदूरों को निकालने के लिए तय्यार नहीं था। गोरे मजदूरों के अत्यन्त आग्रह करने पर भी मिल के मालिक ने भारतीयों को मिल से बाहर नहीं किया। परिणाम यह हुआ कि उस मिल के सब गोरे मजदूरों ने काम छोड़ दिया। मिल के मालिक के लिए बड़ी कठिनाई आ पड़ी। उसने गोरे मजदूरों के स्थान पर विलिंघम तथा अन्य स्थानों से आए हुए भारतीय मजदूरों को भर्ती कर लिया। मिल का काम बन्द नहीं हुआ, बेचारे दीन भारतीयों को नौकरी मिल गई। वीरसिंह लकड़ी के कारखाने के काम में बड़े निपुण थे, इसलिए उनके हाथ में प्रबन्ध का काम आया और वे सब हिन्दू मजदूरों के लीडर बनाए गए।

समय बड़ा खतरनाक था। गोरे मजदूर बुरी तरह चिढ़ गए थे। मिल के मालिक ने गोरे मजदूरों की इच्छा के विरुद्ध काम किया था,

अतएव गोरे मजदूर उनके जानी दुश्मन होगए थे। सरदार वीरसिंह ने आने वाले खतरे को भाँप लिया और अपने आदमियों को अत्यन्त सचेत कर दिया। सब भारतीय सावधान होकर रहने लगे और आने वाले युद्ध की प्रतीक्षा करने लगे। अपने निवास-स्थान पर उनके पहरेदार मुकर्रर थे। मिल के इर्द-गिर्द हिन्दू संतरियों का पहरा था। मिल ने मानो मिलिटरी कैम्प का रूप धारण कर लिया था।

इधर ऐन्डरसन भी सुस्त नहीं था। उसने डेढ़ सौ की बजाय तीन सौ मजदूरों का दल तैयार किया। कारखाने को आग लगाने का ख्याल उन्होंने छोड़ दिया क्योंकि इससे पब्लिक में गोरे मजदूरों के विरुद्ध आग भड़कने की सम्भावना थी। मिल का मालिक एक बड़ा सच्चरित्र, न्याय-परायण और प्रभावशाली अमरीकन था। उसके विरुद्ध, उसको नुकसान पहुँचा कर, काम करना जरा टेढ़ी खीर थी। ऐन्डरसन ने आसान रास्ता पकड़ने का निश्चय किया और भारतीय मजदूरों के निवास-स्थान पर रात के १२ बजे धावा करने की ठानी।

आज शनिवार था। वीरसिंह की खुफ़िया पुलिस के एक गुप्तचर ने अपने सरदार को धावे की सूचना दी। वह गुप्तचर महिला के वेष में होटलों की सैर करने गया था। पाउडर लगा कर उसने अपने गोरे रंग को और भी गोरा कर लिया था ताकि कोई पहचान न सके। अंग्रेजी उसे खासी आती थी। बस काम चल गया। मजदूरों के एक होटल में शराब पीने के बहाने से गुप्तचर महाशय घुसे। एक सुन्दर स्त्री को देखकर मजदूर प्रसन्न होगये, उन्होंने इस स्त्री को शराब पिलाई और स्त्री-रूपी गुप्तचर उनका भेद लेकर नौ-दो ग्यारह होगया।

आज भारतीय मजदूरों के निवास-स्थान में चुपके-चुपके खूब तैया-रियाँ हो रही हैं। संध्या से ही सब लोग सावधान होकर अपने-अपने मोर्चे ठीक कर रहे हैं। वीरसिंह जी ने सब को काम बाँट दिया है। सिक्ख बहादुरों के चेहरे आज प्रसन्न हैं। 'लड़ाई का मजा आयेगा', यह

भाव सब के मुख पर प्रकट होता था। सब लोग खा-पीकर निश्चिन्त हो गये और अपने अस्त्र-शस्त्र सम्भाल चौकन्ने हो बैठे। सरदार वीरसिंह ने कारखाने के मालिक को आने वाली लड़ाई की कुछ भी सूचना नहीं दी। उन्होंने यह सोचा कि भारत-जननी का गौरव इसी में है कि स्वावलम्बन से काम लिया जाय और गोरे मजदूरों को यह दिखला दिया जाय कि भारत माता के शेर मुकाबले पर अपना कर्तव्य कैसे पालन करते हैं। सो उन्होंने अपनी ही बुद्धि से लड़ाई की सब तैयारियाँ कीं, रिवाल्वर भी मंगा कर अपने कुछ साथियों को बाँट दिये।

रात के ठीक बारह बजे ऐन्डरसन के तीन सौ जवानों ने हिन्दुस्तानियों के निवास-स्थान पर हमला बोल दिया। इधर 'सत श्री अकाल' और 'वन्देमानरम्' की ध्वनि से आकाश गूँज उठा। मसालों की रोशनी फौरन होगई। भारतीय मजदूर अपने दुश्मन पर सिंहों की तरह टूट पड़े। गोरों ने समझा था कि हिन्दुस्तानियों को सोते हुए जा पकड़ेंगे और सब को भेड़ों की तरह घेर कर रेलगाड़ी में बिठला टकोमा से दफा कर देंगे। पर यहाँ तो भेड़ों की बजाय शेरों से पाला पड़ गया, उन्हें लेने के देने पड़ गये और ऐसी मार खाई कि अपने प्राण लेकर भागे। खूब घमासान युद्ध हुआ। रिवाल्वर कम चले लेकिन हिन्दुस्तानी डंडों और घूँसों ने गोरे मजदूरों के होश ठिकाने कर दिये और वे बेचारे खून से लतपथ होकर वहाँ से भाग गये।

दूसरे दिन रविवार था। शहर में इस लड़ाई की खबर बिजली की तरह फैल गई। दूसरे गोरे मजदूर अपने साथियों का बदला लेने के लिए एक बड़ी संख्या में भारतीय मजदूरों के निवास-स्थान की ओर हमला करने के लिए दौड़े। अब सिक्खों ने रिवाल्वर हाथों में लेकर आने वाले शत्रुओं का स्वागत करने का निश्चय किया। कारखाने के मालिक को जब इस बात का पता लगा तो उसने फौरन टेलीफोन द्वारा पुलिस बुलाई और स्वयं घटनास्थल पर पहुँचा। पुलिस के आते ही लड़ाई शान्त हो

गई। दोनों पार्टियों के लोग समझौते की चर्चा करने लगे। फैसला यह हुआ कि कारखाने में जो भारतीय मजदूर पहिले से काम करते थे वे ही करते रहें और गोरे मजदूर अपनी-अपनी जगह पर आकर फिर से काम सम्भाल लें। सरदार वीरसिंह को मिल के मालिक ने अपने यहाँ खास तौर से नौकर रख लिया।

इस प्रकार टकोमा का युद्ध शान्त हुआ। भारतीयों की वीरता और उनके अदम्य उत्साह की चर्चा चारों तरफ होने लगी, शत्रु भी उनका आदर करने लगे और हिन्दुस्तानियों का नये सिरे से मान होने लगा। उनको कल-कारखानों में फिर नौकरियाँ मिल गईं और गोरे मजदूर उनसे मित्रवत् व्यवहार करने लगे। अमरीका में भारतीय मजदूरों के इतिहास में टकोमा का युद्ध चिरस्मणीय रहेगा और भारत-जननी के गौरव की रक्षा करने वाले सरदार वीरसिंह का वीरत्व भी सदा अनुकरणीय रहेगा।

२८ सितम्बर, बुधवार। ट्रेसी में एक नवयुवक से भेंट हुई। वह भी हमारे साथ चलने के लिए तैयार होगया। अब हम तीन जने हो गये—मैं, अमली और चुन्नीलाल। हम लोग फ्रिजनो की तरफ चले। फ्रिजनो का इलाका द्राक्षा अंगूरों के लिए प्रसिद्ध है। इधर इनकी शराब बनाई जाती है। नौकरी की तलाश में हम लोग दिन के २ बजे फ्रिजनो की तरफ चले। दस मील चलने के बाद एक छोटा सा स्टेशन आया, उसी के ओसारे में रात काटने की ठानी। मेरे पास कोई कपड़ा नहीं था, इसलिए खूब सर्दी खाई। चुन्नीलाल और अमली दोनों मिलकर सो रहे।

२९ और ३० सितम्बर। सबेरे चार बजे उठकर हम लोग फ्रिजनो की तरफ चले। साढ़े दस बजे के करीब पेटरसन नामी कस्बे के पास पहुंचे। इस कस्बे को देखने से मालूम होता था कि यह बहुत जल्द अच्छा खासा शहर हो जायेगा। नए-नए मकान बन रहे थे। इर्द-गिर्द के ग्रामों

की यह मण्डी है, जहां फल, शाक, तरकारी आदि बिकने आते हैं। हम लोगों ने क़स्बे में घूम कर दिन बिताया। अमरीकन लोगों की चुस्ती देख कर विस्मित होगये। कैसे समय के पाबन्द, मेहनती और बुद्धिमान् ये लोग हैं; खाली नहीं बैठते; अपनी खेती से तरह-तरह के पदार्थ पैदा करने की योजना करते रहते हैं। इन्हें पुराना ढर्रा पसन्द नहीं; भूमि से नये प्रकार की फसलें उपजाने की तरकीबें सोचते रहते हैं और उन्हें अमल में लाते हैं। इसी से ये लोग मधु-मक्खियों की तरह मशगूल पाए जाते हैं। पेटरसन से हम लोग फ्रिजनो गए। कारमन से नये दृश्य आरम्भ हो जाते हैं। दोनों तरफ अंगूरों के ही पेड़ थे। इन अंगूरों को 'टेबल ग्रेप्स' कहते हैं। अंगूर सब चुने जा चुके थे। फिर भी कहीं-कहीं अच्छे गुच्छे हम लोगों की खातिर बच गये थे। फ्रिजनो में हम एक बजे पहुंच गये। सड़क से कुछ मील के फासले पर तारपी नामक स्थान में एक भारतीय मजदूर चौकीदारी करता था, उसी के पास चले गये और वहीं रात रहे।

अब यहाँ पाठकों की वाकफियत के लिए फ्रिजनो कौन्टी का थोड़ा सा हाल लिखता हूं। कैलेफोर्निया रियासत में कई बड़ी-बड़ी घाटियाँ हैं। सेक्रेमेन्टो की विशाल घाटी का वर्णन पहले आ चुका है। सेक्रेमेन्टो शहर उसी घाटी में मोती की तरह जड़ा हुआ है। उसी घाटी के खत्म होने पर सेनजोआकिन नाम की अत्यन्त उपजाऊ घाटी आरम्भ हो जाती है। घाटियों में ही बड़ी-बड़ी सभ्यताओं का जन्म हुआ है। अमरीका की पूर्वी रियासतों से हजारों सद्‌गृहस्थ कैलेफोर्निया की खिलखिलाती धूप में बसने के लिए चले आए। सेक्रेमेन्टो घाटी की शस्यपूर्ण भूमि में वे बस गये। उस घाटी में बीस-बीस हजार एकड़ भूमि के मालिक ये धन-कुबेर इस उपजाऊ भूमि का आनन्द ले रहे हैं। सेनजोआकिन की घाटी में इसी नाम की नदी बहती है, जो आगे चल कर सेक्रेमेन्टो नदी में मिल जाती है। इस घाटी की तीन कौन्टियों में से फ्रिजनो सबसे मुख्य है। इस कौन्टी में अंजीर फल खूब उत्पन्न होता है। पहले-पहल जब

अंजीर के पेड़ इस घाटी में लगाए गये तो फसल अच्छी नहीं हुई। तहकीकात करने पर पता लगा कि मध्य एशिया के स्मरना नामक प्रान्त में एक प्रकार का कीड़ा होता है, वह जब तक अंजीर के पेड़ों पर न पाला जाए तब तक बढ़िया अंजीर उत्पन्न नहीं हो सकते। अमरीकन गवर्नमेन्ट की सहायता से कीड़े मंगवाये गये। दो वर्ष के अन्दर सेनजोआकिन घाटी में उन कीड़ों की सहायता से बढ़िया अंजीर पैदा होने लगे। फ्रिजनो कौन्टी अंजीर, अंगूर, किशमिश, आड़ू, संतरे आदि फलों के लिए प्रसिद्ध है। सारे यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमरीका में जितनी किशमिश खर्च होती है उसमें की अस्सी फी सदी फ्रिजनो कौन्टी से आती है। इसी से समझ सकते हैं कि किशमिश किस बहुतायत से फ्रिजनो में पैदा होती होगी। टेबल ग्रेप्स और वाइन ग्रेप्स भी यहाँ खूब पैदा होते हैं। सारांश यह है कि यह कौन्टी अंगूरों का घर है। ऐसा मालूम होता है कि मानो प्रकृति ने इटली का एक टुकड़ा काटकर यहाँ रख दिया है।

१ अक्टूबर, शनिवार। फ्रिजनो से चलने का निश्चय कर लिया। जवाहरसिंह चौकीदार की इच्छा हम लोगों को कुछ दिन ठहराने की थी जिससे हमें इधर-उधर घूमने से काम मिल जाये। वे चाहते थे कि हम फ्रिजनो को अड्डा बनाकर निकट ही काम तलाश कर लें, पर मेरे सिर शनिचर सवार था। राम का नाम लेकर हम तीनों जने चले और पोर्ट्‌सविल का रास्ता लिया। रास्ते में एक डालर के अंगूर चुने। अब कैले-फोर्नियाँ रियासत का नया स्वरूप आरम्भ होने लगा। मुसम्बी और अंगूर के बगीचे चारों तरफ दिखाई देने लगे। किशमिश का तो कहना ही क्या, उसे इन इलाकों में स्वराज्य प्राप्त है। यह भूमि फलों के लिए अत्यन्त अनुकूल है; उसके साथ अमरीकन पुरुषार्थ की प्योंद लगी है। सड़क के किनारे खेत में किसी किसान का घास का कुप्प था, उसी के आश्रित होकर हम तीनों जने सो गये। मुझे बहुत थोड़ी नींद आई।

२ अक्टूबर, रविवार। अक्टूबर महीना आ गया। मेरे पास ओढ़ने

के लिए कोई कम्बल नहीं था। जो कपड़े बदन पर पहिरे हुए थे, बस वही मेरा कुल सामान था। अभी रात के अढ़ाई ही बजे होंगे कि हम लोगों ने सड़क का रास्ता लिया। चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ था, कभी अपनी पैरों की आहट से ही मालूम होता था मानो कोई पीछे से आ रहा हो। ठहर कर आवाज सुनते हैं पर कुछ नहीं सुनाई देता, केवल इर्द-गिर्द फासले पर कुत्तों के भूँकने की आवाज आती थी। ४ बजे के करीब एक पास के चौड़े मैदान में काली-काली चादर भूमि पर बिछी हुई मालूम हुई। निकट जाकर देखा तो पता लगा कि मुनक्का अंगूर सूख रहे हैं। हम लोगों ने भी जेबें भर लीं और खाते हुए चले गये। सवेरे ६ बजे के करीब सैंगर नाम के कस्बे में पहुँचे, वहाँ रोटी और मक्खन मोल लिया, उसे खाकर फिर चल पड़े। रेडले रेलवे स्टेशन के पास एक मालगोदाम के दरवाजे खुले हुए थे। वहीं रात बिताई।

३ अक्टूबर, सोमवार। सवेरे ४ बजे फिर चल पड़े। आज ३५ मील का सफर किया। ४॥ बजे के करीब एक्जीटर पहुँचे। इस तरफ आजकल ऋतु बहुत अच्छी है, धूप तेज नहीं। रेल की सड़क के दोनों तरफ बराबर बगीचे चले गये हैं। सन्तरे, अंजीर और अंगूरों की प्रधानता है। शाम को स्टूथमोर पहुँचे। एक मुसुम्बी के बगीचे के पास एक वृक्ष की छाया के नीचे भूमि पर पड़ रहे। रात को नींद नहीं आई।

४ अक्टूबर, मंगलवार। आज का दिन मेरे लिए बड़ा दुखदायी निकला। खाने के लिए तीनों के पास एक पैसा नहीं था। भूखे-प्यासे मीलों चले गए पर काम नहीं मिला। पोर्टसविल में टिल्स नामी एक बुड्ढे अमरीकन ने मुझे नौकर रखना चाहा, पर यहाँ तो खाने के लिए कुछ भी पास नहीं था, काम करता तो कैसे? हम लोगों के पास यदि एक सप्ताह के लिए खाने का ठिकाना होता तो यहाँ काम मिल जाता। सन्ध्या के समय अमली को अमल लगा और अफ़ीम के बिना उसके लगे प्राण निकलने! उसने मुझे भरपेट गालियाँ दीं और मैंने चुपचाप सहन कर

लीं। चुन्नीलाल के कानों में सोने की छोटी-छोटी बालियाँ थीं, उन्हीं को बेच कर अमली का अमल पूरा किया। मिस्टर टिलस के अहाते के अन्दर लकड़ी का एक छोटा-सा मकान था, उसी में हम लोगों ने रात बिताई। दुख के मारे मेरी आँख रात भर नहीं लगी।

५ अक्टूबर, बुधवार। दुःख की घड़ियों का अन्त नहीं हुआ था। पौ फटते ही फिर तीनों जने काम की तलाश में निकले। अमली और चुन्नीलाल पोर्ट सविल के उत्तरीय भाग में काम की तलाश में गये और मैं पूरब की तरफ निकला। यहाँ बहुत बड़े-बड़े फलों के बगीचे हैं। तीस से साठ और सौ एकड़ भूमि में संतरों के बगीचे देखने में आये। बगीचों के अन्दर बड़ी सफाई, सड़कें बनी हुई, जल सींचने के लिए नल लगे हुए, बड़ा सुन्दर प्रबन्ध देखने में आया। फलों के वृक्षों की ये लोग अपने बच्चों की तरह सेवा करते हैं, और उन्हें हानि पहुँचाने वाले सभी कारणों का इलाज करते हैं, तभी तो लक्ष्मी महारानी भी इनकी दासी बनी हुई है।

घूम-घाम कर, थके-हारे, हम तीनों जने एक टूटे-फूटे मकान के पास पहुंचे। यहाँ घोड़े की लीद पर सारी रात बैठ कर बिताई।

६ अक्टूबर, बृहस्पतिवार। राम-राम करते दिन चढ़ा और कस्बे से बाहर निकले। घूमते-घामते नदी के पुल के पास आये और उसके नीचे रेती में जाकर धूप में बैठ गये। दो दिन से मुंह में एक भी दाना नहीं गया था; आज तीसरा दिन था, फिर भी पास खाने को कुछ नहीं। कस्बे के दक्षिण की ओर एक बनिये की दुकान थी, उसके पास खाने की सब वस्तुयें मिलती थीं। लाचार होकर उसके पास गये और उससे अपनी दुःख की कहानी कही। उसने हम लोगों पर विश्वास कर खाद्य पदार्थ हमें उधार पर दे दिया। आटा, शाक, तरकारी, घी, नमक आदि चीजें लेकर हम नदी के किनारे आये और वहाँ पुल के नीचे दो पत्थर रखकर मोटे-मोटे टिक्कड़ बनाये और पेटपूजा की, तत्पश्चात् ईश्वर का धन्यवाद किया। मध्याह्न बाद कुछ काम भी मिल गया।

७ अक्टूबर से ११ अक्टूबर तक। रे वैगनर नामी एक जर्मन लड़का मेरा दोस्त बन गया। उसने भी हम लोगों के लिए काम तलाश किया। उसके द्वारा भारतीय मजदूरों का पता लगा। उजागरसिंह पोर्ट्सविल के निकट ही काम करता था। रविवार के दिन वह हम लोगों से मिलने के लिए आया। बासल्स में भारतीय मजदूर काम करते थे। हम लोग उनसे मिलने के लिए गये। चुन्नीलाल ने उजागरसिंह के साथ फ्रिजनो जाने का निश्चय किया और वह सोमवार को चला गया।

सेनजोआकिन घाटी की टुलारी कौन्टी में पोर्ट्सविल खासा बड़ा कस्बा है। इसकी आबादी पाँच हजार के क़रीब होगी। यह संतरे के बगीचों का केन्द्र है। जैसे फ्रिजनो में अंगूर बहुतायत से मिलते हैं उसी प्रकार यहाँ मुसम्बी और संतरे; हाँ, फ्रिजनो का मुकाबिला यह कदापि नहीं कर सकता। यहाँ हाईस्कूल तथा गिरजाघर बने हुए हैं, कस्बे की आबादी शीघ्र बढ़ रही है। साफ़ सुन्दर गलियाँ हैं। मिस्टर बोसवेल नामी एक धनी अमरीकन के यहाँ हिन्दू मजदूरों का एक दल निम्बू चुनने के लिए ठेके पर काम करता था। यह कस्बा शराबखानों से नितान्त मुक्त है। इस कस्बे की धर्मपरायण गवर्नमेन्ट ने शराब और व्यभिचार को कस्बे से दूर रक्खा है।

११ अक्टूबर को दिन भर मैं चिट्ठियाँ लिखता रहा। अपने भारतीय बन्धुओं का लिखने का काम किया। रात को बड़ी वर्षा हुई जिससे नदी में जल बढ़ आया।

१२ और १३ अक्टूबर। वर्षा होने के कारण मजदूर लोग घर में रहे। मैं उनकी चिट्ठियाँ लिखता रहा। इधर का पहाड़ी दृश्य बड़ा मनोहर है। नदी में बाढ़ आ जाने के कारण काम बन्द होगया। मैंने पोर्ट्सविल से आगे जाने का निश्चय किया और सबसे विदा हो शाम को ही चल पड़ा। सारी रात पोर्ट्सविल में घूमता रहा। जब बहुत थक गया तो सड़क के किनारे खेत में, जहाँ ईसाई धर्म के प्रचारकों का तम्बू था,

वहाँ चला गया । कैम्प के स्वयंसेवकों ने मुझे कुछ देर बैठने की इजाजत दे दी । दिन निकलते ही वहाँ से चल पड़ा ।

१४ अक्टूबर, शुक्रवार । पाँच बजे सवेरे सड़क पर जा रहा था । लाल, रेतीली और सख्त भूमि दिखाई देने लगी । सवेरे ८ बजे मैं टेराबेला पहुँचा । यहाँ मजदूरों की जरूरत थी । कस्बे में गलियों के नीचे नल डल रहे थे । नयी गलियाँ बन रही थीं । ९ घण्टे काम करने पर दो डालर पचास सेन्ट रोज मजदूरी मिलती थी । कस्बे की उन्नति करने के लिए एक कम्पनी की स्थापना की गई थी । उसी के आधीन सारा काम हो रहा था । वैज्ञानिक सुखों की सामग्री के सब साधनों का प्रबन्ध कस्बे के निवासियों के लिए हो रहा था । मैं भी यहाँ काम में जुट गया । साढ़े आठ घंटे खूब फावड़ा चलाया । यहाँ होटल भी बड़ा अच्छा है । खाने और कमरे के तीन रुपये रोज देने पड़ते थे । मुझे साफ़-सुथरा कमरा मिला और रात को मैं बड़े आराम से सोया ।

१५ अक्टूबर से १८ अक्टूबर तक । चार दिन मैंने यहाँ बराबर काम किया । गोरे मजदूरों के कप्तान का लड़का रौस मेरा दोस्त बन गया, इसलिए चार दिन अच्छी तरह कट गये । मैंने अपने कपड़े धुलवा लिए, सब सफाई कर ली, आदमी बन गया । पाँच दिन अच्छी नींद मिल जाने से चित्त अत्यन्त प्रसन्न हुआ ।

१६ अक्टूबर, बुधवार । आज दिन के दो बजे तक काम करना था । कम्पनी का लोहे का सामान खतम होगया था, इसलिए उन्होंने कुछ दिन के लिए काम बन्द कर दिया था । साढ़े सात डालर जेब में रखकर, पतलून की जेबों में दोनों हाथ डाल, मस्त होकर झूमता-झामता मैं टेराबेला से बेकर्सफील्ड की तरफ चला । एक ट्राली उधर जा रही थी । मैं भी उसी पर बैठ गया । इधर भी सन्तरों के बगीचे देखने में आये और संध्या के चार बजे मैं डुकर पहुँच गया । इस छोटे से स्टेशन पर गंदमी रंग के मेक्सीकन मजदूर काम करते हुए मिले । ये लोग थोड़ी तनख्वाह पर काम

कर लेते हैं, गोरे मजदूरों से थोड़ी कम मजदूरी इन्हें मिलती है। डुकर से मैं फमासो चला गया। यहाँ एक यहूदी फेरी वाले से भेंट हुई। इसकी उम्र ५५ वर्ष की होगी और वह घूम-घूम कर साम्यवाद की पुस्तकों का प्रचार करता था। अपनी घोड़ा-गाड़ी में पुस्तकें रख यह यहूदी कैलेफोर्निया के गाँव-गाँव में पुस्तकें बेचता और साम्यवाद का प्रचार करता था। इस बुड्ढे आदमी की दृढ़ता और अदम्य उत्साह को देखकर मैं दंग रह गया। मैंने चित्त में कहा—"धुन हो तो ऐसी हो।"

रात के साढ़े बारह बजे फमासो स्टेशन पर एक मालगाड़ी आ गई। मैंने आव देखा न ताव, झट उस पर चढ़ बैठा। गार्ड ने सीटी दी और ट्रेन चल दी।

२० अक्टूबर, बृहस्पतिवार। चाँद की धुंधली रोशनी में मैंने देखा कि मालगाड़ी बेकर्सफील्ड के पास की नदी के पुल पर खड़ी है। गार्ड के डर से मैं उतर कर एक तरफ खड़ा होगया और गाड़ी चल दी। मैंने सोचा कि रेल के पुल पर से नदी के उस पार चला जाऊंगा। यही सोचकर नदी के पुल की लकड़ियों पर चलने लगा। थोड़ी दूर जाने पर पीछे से इंजिन के आने की आवाज सुनाई दी। मैंने घूमकर जो देखा तो इंजिन को अपने बिलकुल निकट पाया। मैं फौरन पुल के नीचे की लकड़ी पकड़ नदी में कूद पड़ा। परमात्मा की मुझ पर असीम कृपा थी, यदि दस गज आगे बढ़ कर कूदता तो नदी के गहरे पानी में पड़ जाता और फिर सदा के लिए अन्त हो जाता।

मैं रेतीली भूमि पर गिरा और फौरन उठकर नदी से बाहर निकलने की चेष्टा करने लगा। मेरी घड़ी में उस समय सुबह के ३॥ बजे थे। बड़ी कठिनाई से मैं नदी की झाड़ियों में से निकला और नदी के किनारे पर आकर परमात्मा का बार-बार धन्यवाद किया।

खोजते-खोजते मुझे शहर का रास्ता मिला। कई मकानों के हातों

मे से गुज़र कर लोहे के तारों को पार कर मैं शहर की मुख्य सड़क पर आया और नगर की ओर चला । उस समय दिन निकलने लगा था, शहर के लोग जागने लगे थे। ६ बजे के करीब मैंने नगर में प्रवेश किया। दुकानें साफ हो रही थीं; धीरे-धीरे खुलने लगीं। धूप निकलने पर बाजारों में खासी रौनक होगई। मेरा जूता चलनी हो रहा था, इसलिए गुड इयर मार्के का बूट खरीदा और एक ऊनी स्वेटर भी खरीद लिया। इस काम से निश्चिन्त होकर मैं शहर घूमने निकला। बेकर्स फील्ड अच्छा-खासा शहर है। मिट्टी के तेल के कुंए यहाँ अधिक हैं। स्टेण्डर्ड आयल कम्पनी का यहाँ बड़ा भण्डार है। कुओं से तेल भरने की मशीनें लगी हुई हैं, जहाँ से तेल निकाल कर साफ किया जाता है और फिर टीनों में भर कर बाहर भेजा जाता है। मैंने यहाँ काम तलाश किया पर आजकल काम की कमी थी, इसलिए रोटी खा-पीकर दो बजे के करीब मैंने लास एन्जल्स की सड़क पकड़ी और चला। दस मील चलने पर शाम होगई। मैं खुश्क पहाड़ियों के पास खड़ा था। रात कैसे कटेगी? यही सोचता हुआ इधर-उधर घोंसला तलाश करने लगा। रेल की सड़क के पास स्लीपरों (रेल की सड़क पर डालने वाले मोटे तख्ते) के ढेर पड़े थ। उन्हीं की आड़ लेकर हवा का बचाव कर मैं सो गया। थका-हारा तो था ही, इसलिए निद्रादेवी ने मुझे गले से लगा लिया।

२१ अक्टूबर, शुक्रवार। सूखे पहाड़ों के पास, प्रातःकाल ६ बजे मैं ठंडी-ठंडी समीर का आनन्द ले रहा था। रात की नींद ने मुझे बिलकुल ताजा कर दिया और मैं पहाड़ों के बीचों-बीच रेल की पटरी-पटरी गाता हुआ चला--

सारे जहां से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा।
हम बुलबुलें हैं उसकी वह बोस्तां हमारा॥
मज़हब नहीं सिखाता आपस में बैर करना।
हिन्दू हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा॥

इस प्रकार गाता हुआ, खूब प्रसन्न में १७ मील चला गया। रास्ते में एक छोटे से स्टेशन पर मालगाड़ी खड़ी थी। गार्ड को कुछ पैसे देकर मैं पशुओं के डिब्बे में चढ़ बैठा। वह बिलकुल खाली था। रात इसी में बीती। सो नहीं सका। चित्त में पछताया कि रात बुरी भी बिताई और पैसे भी खोये, पर क्या करता! बेकर्सफील्ड से आगे बिल्कुल बियाबान है, पानी की बड़ी कमी है। पैदल चलने वाले को प्यास से मरने का ख़तरा है। ३० मील तक तो मैं पैदल आया। आगे मोयावी तक ३८ मील मालगाड़ी में चला गया। मोयावी से आगे रेगिस्तान है, इसलिये पैदल जाना अत्यन्त कठिन है।

२२ अक्टूबर, शनिवार। सबेरे जब मालगाड़ी से निकला तो एक बदमाश गोरा मुझे धमकाने लगा। उसकी इच्छा मेरे पैसे ठगने की थी, इसीलिये वह मुझे धमका डरा कर किसी एकान्त स्थान में ले जाना चाहता था, पर मैं तो था पुराना खुर्राट! दो मालगाड़ियों के बीच में हम लोग खड़े झगड़ रहे थे। उसकी बातों से अत्यन्त क्रोधित होकर मैंने उसे दो घूंसे लगाए और वहाँ से दौड़कर स्टेशन पर आ गया। स्टेशन के पास रेलवे कर्मचारियों के मकान बने हुए थे। उनके पीछे जाकर टहलने लगा। वहाँ तीन-चार होबो मालगाड़ी में चढ़ने के अभिप्राय से बैठे थे। धूप में उन्हीं के पास जा कर बैठ गया और आपस में बातें होने लगीं। मोयावी से लास एञ्जलस १०३ मील है और लास एञ्जलस से सनफ्रांसिस्को ४८४ मील है; पोर्टलैंड (आरेगन) से सनफ्रांसिस्को ७७१ मील है और सियेटल से पोर्टलैंड १८५ मील---कुल मिलाकर १४४० मील सियेटल से लास एञ्जलस तक हुए। जब मैं लास एञ्जलस पहुंच जाऊंगा तो मेरा पैदल सफर १४४० मील हो जायेगा। दो-चार बार जो मैंने मालगाड़ी के सपाटे बीच-बीच में ले लिये हैं वे शेरवुड से सनफ्रांसिस्को पैदल आने में कट जायेंगे और साथ ही कई बार जो इधर से उधर नौकरी की तलाश में पैदल यात्रा की वह भी मालगाड़ियों में घूमने की कमी को पूरा कर देगी।

खैर, मैं मोयावी स्टेशन पर मालगाड़ी की इन्तजार में खड़ा था। मालगाड़ी आ गई ; दूसरे होबो उसमें चढ़ गये, पर मैं रह गया। एक घंटे बाद दूसरी मालगाड़ी जानेवाली थी सो मैं इधर-उधर घूमने लगा। मोयावी बड़ी कठोर जगह है। छटे हुए बदमाश यहां इकट्ठे होते हैं, कत्ल की वारदातें भी प्रायः हो जाती हैं। मेरी जेब में केवल २५ सेन्ट अर्थात् बारह आने थे। फिर मालगाड़ी का रास्ता देखने लगा और ज्योंही गाड़ी प्लेटफार्म से चली मैं बाहर की तरफ भागा और थोड़ी दूर जाकर उस पर चढ़ गया। अगला स्टेशन लेन्कास्टर है, वहां जाकर उतर गया, २५ मील कट गये। लेन्कास्टर से रोटी लेकर खाई। यहां बहुत से पैदल-घुमक्कड़ (होबो) मालगाड़ी की फिराक में घूम रहे थे, मैं भी उनमें शामिल हो गया। और हम लोग रात पड़ते ही लेन्कास्टर से बाहर थोड़ी दूर पर इकट्ठे होगये। ९ बजे रात को मालगाड़ी स्टेशन से निकली और उसके इंजन की तेज बिजली की रोशनी ने अंधेरी रात में मानो दिन चढ़ा दिया। हम लोग पेड़ों की आड़ में छिप गये। यह बिजली की रोशनी इंजन के अग्रभाग में रहती है और अर्द्ध चन्द्राकार बिजली के मेज के पंखे की तरह घूमती रहती है। गार्ड इसकी सहायता से सामने की चीजें भली प्रकार देख सकता है। जब गाड़ी स्टेशन से बाहर आकर ठहरी तो गार्ड हाथ में लालटेन लेकर मालगाड़ी के डिब्बों की परीक्षा करने आया, जिससे कोई होबो उनमें छिपा हुआ बैठा न हो। हम लोग छिपे खड़े रहे। जब वह परीक्षा करके चला गया तो हम सब धीरे से आकर गाड़ियों के नीचे पहियों के पास लम्बी-लम्बी मोटी तीन लोहे की छड़ों पर बैठ गये। गाड़ी खड़ी थी ? मैंने कभी ऐसा भयानक तजरुबा नहीं किया था। मालगाड़ी के डिब्बों में, उसकी छत पर या उसके आगे के पार्श्व भाग में बैठ जाना और बात है लेकिन गाड़ी के नीचे पहियों के पास लोहे की छड़ों पर बैठना हंसी-मजाक की बात नहीं, जरा सी ग़फलत से आदमी कट जाय, जरा सी नींद की ऊंघ से आदमी पहियों के बीच में गिरकर चूर-चूर हो जाय, पर अमरीकन होबो-जीवन का यह भी अनुभव मुझे लेना था। जब होबो

ही बने तो फिर मौत से डरना क्या ! घोर अन्धकार में गाड़ी जा रही थी और मैं उन छड़ों पर घुटने सिकोड़, औंधा लेटा हुआ था। एक स्टेशन के पास जा कर गाड़ी ठहर गई। पहियों के बीच में से निकल कर मैं भागा और लोहे के तार फांद कर स्टेशन की सीमा से बाहर होगया जिससे गार्ड पकड़ न सके। दूसरे होबो तो पुराने बदमाश थे; उनको पता था कि मालगाड़ी वहां दो-तीन मिनट ही ठहरेगी। सीटी देकर मालगाड़ी चल पड़ी, घोर अन्धकार में मैं अकेला खड़ा रह गया।

मेरी जेब में दियासलाई की डिबिया थी, उसकी सहायता से मैंने रेल के दो स्लीपरों को आग लगा दी और सारी रात उसी आग के पास काटी। आज से मैं पक्का अमरीकन होबो बन गया।

२३ अक्टूबर, रविवार। सारा दिन पर्वतों में घूमता रहा। ये पर्वत बड़े खुश्क हैं। भूखा-प्यासा रात को सागस स्टेशन पर पहुंचा। मोयावी से यह स्टेशन ७० मील है और लास एन्जल्स यहां से ३३ मील। यहां एक मालगाड़ी का डिब्बा खड़ा था, घण्टा भर उसी में सोया, फिर सर्दी लगने के कारण लकड़ियों की तलाश में निकला। स्टेशन से मील भर फासले पर जाकर लकड़ी जलाई और उसके नज़दीक मिट्टी में लेट रहा।

२४ अक्टूबर, सोमवार। सबेरे उठ कर जो देखा उससे चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। फलों के बग़ीचे आरम्भ होने लगे, पहाड़ों पर हरियाली दिखाई देने लगी। मेरा जूता नया होने के कारण पैरों को काटने लगा। चलने में तकलीफ होती थी, तो भी पैदल जा रहा था। रास्ते में नागफणी नामक वन्य पौधे की भरमार देखी। धीरे-धीरे चल कर एक मेक्सीकन के यहां पहुंचा। उस बेचारे ने मुझे चार-पांच चपातियां खाने को दीं। मेक्सीकन लोग हम लोगों की तरह तवे पर चपातियां बनाते हैं और दाल-शाक के साथ खाते हैं। रात एक छोटी सी डिपो में गुज़ारी।

२५ अक्टूबर, मंगलवार। ५ बजे सबेरे उठकर सड़क का रास्ता पकड़ा। पहाड़ों के बीच रेल की सड़क पर जा रहा था। एकाएक सामने

पहाड़ी बोगदे का मुंह दिखाई दिया, जिसके सिर पर यह लिखा था--"इसके अन्दर मत जाना, जान का खतरा है।" मैं खड़ा होगया। सामने दोनों तरफ नागफणी से लदे हुए पहाड़ को देखा। पैदल जाने की पगडण्डी तलाश करने के लिए मैं पहाड़ पर चढ़ा। ऊंची चोटी पर चढ़ कर मैंने चारों ओर देखा तो पता लगा कि यह बड़ा भयावना पहाड़ है। 'तलाश करने पर भी इसके ऊपर से रास्ता जल्दी नहीं मिल सकेगा', ऐसा सोच कर मैं पहाड़ से नीचे उतरा और रेल की सड़क पर आकर उस बोगदे के अंधकार से आच्छादित मुंह के सामने खड़ा होगया। क्या करना चाहिये? यही सोचने लगा। रेल का यह बोगदा (टनल) तीन मील लम्बा है, इसमें घुसने की हिम्मत नहीं पड़ती थी, पर और दूसरा चारा ही क्या था! प्रभु का नाम लेकर मैं उस घटाटोप तीन मील लम्बी रेल की गुफा में घुस गया। कुछ दिखाई नहीं देता था। रेल की पटरी पर जा रहा हूं। आध मील जाने पर अपने पीछे रेल के आने का समाचार मिला। इंजन देवता ने सीटी दे कर बोगदे में प्रवेश किया। मैं घबरा कर पटरी से एक तरफ हट गया और पहाड़ की दीवार से चिपट कर खड़ा होगया। इंजन देवता गर्जना करते हुए गुज़र रहे हैं, गाड़ियां जा रही हैं, उनमें कुछ प्रकाश नहीं--पता लगा कि यह मालगाड़ी है। गाड़ी दूर चली गई; गुफा धुएँ से भर गई; मेरा दम घुटने लगा। अपनी जगह से हट कर मैं रेल की पटरी पर आया और लगा जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाने। एक मील अन्धकार में चला गया, बाद में थोड़ी धुंधली सी रोशनी दिखाई दी। उसके पास पहुंच कर देखता क्या हूं कि मज़दूर लोग रोशनी हाथ में लिये गुफा की सड़क को ठीक कर रहे हैं। मुझे देख कर वे बड़े हैरान हुए और बोले, "आपने इस टनल में घुस कर बड़ी भूल की। जहां तक जल्दी हो सके इससे बहार हो जाइये।" मोमबत्ती उनसे ले कर मैंने जल्दी पैर उठाया और टनल के बाहर होगया। उस भयंकर खतरे से निकल कर मैंने घुटने टेक प्रभु का धन्यवाद किया।

रेल की पटरी-पटरी जा रहा था। थोड़ी दूर जाते पर बायें हाथ

एक बगीचा दिखाई दिया। मुझे भूख लगी हुई थी । तार फांद कर अन्दर घुस गया और पेड़ों से फल तोड़कर जेबें भर लीं। जब सड़क पर आकर खाने लगा तो मुंह कड़वा होगया । थू ! थू !! मैंने खाया हुआ सब थूक दिया । ये फल जैतून (Olives) थे जिनका बड़ा अच्छा अचार बनता है और तेल भी निकलता है । जेब से सब फल निकाल कर फेंक दिए और आगे चला । बरबेंक कस्बे के पास दोनों ओर खेतों में जापानी कुंजड़े दिखाई दिए । तरबूजों की बेलें खूब फैली हुई थीं और उनके साथ बड़े-बड़े तरबूज मुझे भेंट करने के लिए बुला रहे थे । मुझसे रहा नहीं गया । एक बगीचे का दरवाजा खोल कर अन्दर घुस गया । मकान वाले अमरीकन के पास जाकर मैंने एक तरबूज का दाम पूछा । उसने हँस कर एक बड़ा अच्छा तरबूज मेरी भेंट कर दिया। उसको अत्यन्त धन्यवाद देकर मैं खुशी-खुशी बाहर आया और एक पेड़ के साए में बैठकर तरबूज खाने लगा । बड़ा मजा आया । पेट की ज्वाला बुझाकर तेजी से चला। लास एंजल्स अब अधिक दूर नहीं था । फल ही फल दोनों तरफ दिखाई देते थे। मध्याह्न बाद एक बजे के करीब मैंने शहर में प्रवेश किया ।

लास एंजल्स कैलेफोर्निया रियासत का दूसरा बड़ा शहर है । इसकी आबादी साढ़े तीन लाख के करीब होगी । पैसेफिक महासागर इस नगर से १८ मील की दूरी पर है । इसके भव्य भवन, विशाल इमारतें, बड़े-बड़े गिरजे और रमणीक उद्यान नगर की शोभा बढ़ाते हैं। इस नगर के धनकुबेरों के महल अद्भुत कारीगरी का नमूने हैं । होटलों का तो कहना ही क्या, ऐसे अच्छे होटल, जहाँ सब प्रकार के आराम मिलें, यात्रियों को बारबार इस नगर में बुलाते हैं । नगर के चारों तरफ बिजली की रेलगाड़ियाँ दर्शकों को मनमोहक स्थान दिखलाती फिरती हैं । समुद्र निकट होने के कारण नगर के निवासी सब सुखों को सहज में ही पा जाते हैं । मोटर-कार आध घंटे में समुद्र के किनारे पहुंचा देती है, बिजली की गाड़ियाँ घंटे भर में महासागर का दर्शन कराती हैं । बाई-

सिकलों वाले आनन्द से पैर हिलाते चले जाते हैं और मेरे जैसे होबो के लिए तो १८ मील कुछ भी नहीं। रविवार के दिन बिजली की गाड़ियाँ समुद्र की तरफ लदी चली जाती हैं। सड़कें सैलानियों से भरी रहती हैं। स्वतन्त्र देश के बच्चे जिन्दगी का पूरा मजा लेते हैं। जिन्हें काटलीना नामक द्वीप के मनोहर दृश्य देखने हों वे सनपीद्रो से अग्निबोट द्वारा रोज वहाँ जा सकते हैं। जिसे पासेडीना और रेडलैन्ड्स की सैर करनी हो, उसके लिए भी सहज साधन हैं। सचमुच लास एंजल्स देवताओं के रहने लायक स्थान है।

नगर में घुस कर मैंने भारतीयों को तलाश करना शुरू किया। पूछता-पूछता बाबा परमानन्द भारती के कृष्ण-मन्दिर में पहुंचा। वहां तारकनाथ मजूमदार से भेंट हुई। इस बिचारे ने मेरे खाने-ठहरने का अच्छा प्रबन्ध कर दिया। रात को गरम पानी से स्नान किया और पेट-भर भोजन कर आनन्द से सो गया।

२६ अक्टूबर, बुधवार। आज मैं मन्दिर में रहा और बाबा प्रेमानन्द जी भारती का सत्संग किया। मद्रास प्रान्त के वैष्णव धर्म-प्रेमियों के उद्योग से भारती जी को खासी रकम वैष्णव धर्म प्रचारार्थ मिली थी, उसमें से सत्ताईस हज़ार रुपये का यह मकान खरीदा गया, जिसमें भगवान् कृष्णचन्द्र जी की मूर्त्ति की स्थापना की गई। रोज सुबह-शाम घंटे-घड़ियाल बजाकर आरती की जाती थी और भगवान् को भोग लगता था; पाँच-सात अमरीकन लेडियां बाबा जी की चेलियाँ थीं, जिनके नाम मोहनी, राधिका, प्यारी आदि थे। यह मकान मन्दिर के रूप में नहीं था। भारती* जी की इच्छा थी कि इस मकान पर एक बड़ा दिव्य मन्दिर बनाया जाय। एक छोटी सी

---

* दुःख है कि श्री प्रेमानन्द जी भारती भी परलोक सिधार गये और उनकी दिल की बात दिल ही में रह गई।

मेगजीन भी भारती जी की ओर से निकलती थी, जिसमें गीता के संदेश छपा करते थे।

मैं रात को यहीं सोया। बाबा जी ने मेरे लिए अच्छा प्रबन्ध कर दिया था। उनकी चेली मोहनी बड़ी दयालु स्त्री थी।

२७ अक्टूबर, बृहस्पतिवार। गुजरात प्रान्त के नवयुवक परमानन्द जी मुझ से मिलने के लिए आए। हम दोनों काम की तलाश में शहर में गये। Y. M. C. A. के मन्त्री के पास जाकर काम की पूछ-ताछ की, पर कुछ नतीजा नहीं निकला। फिर अपने असबाब के विषय में दरयाफ्त करने के लिए हम वेल्जऐन्डफारगो नाम की ऐक्सप्रेस कम्पनी के दफ्तर में गये। वहाँ से पता लगा कि हिन्दुस्तान से सामान आ गया है। यह सामान क्या था? इसके विषय में भी कुछ लिखना चाहिये।

जब मैं सियेटल से पैदल चलने की सोच रहा था उस समय मैंने एक चिट्ठी पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी, सरस्वती-सम्पादक के पास जुही (कानपुर) भेजी थी, जिससे वे डेढ़ सौ रुपये के मूल्य के काशी के पीतल के बर्तन और रेशमी रूमाल मेरे पास न्यूयार्क के पते से भेज दें। भारत लौटने के लिए मेरे पास जहाज का किराया नहीं था, अतएव निश्चय यह किया कि डेढ़ सौ रुपये का भारतीय सामान न्यूयार्क में बेचकर छः सात सौ रुपया पैदा किया जाय। पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी जी ने बड़ी मुस्तैदी से काम किया और सामान भिजवा दिया। न्यूयार्क के अपने एक मित्र को मैंने असबाब के आने की सूचना दे दी। इससे निपट कर हम लोग एक होटल में गये और वहाँ डेढ़ रुपया रात का देकर सो रहे।

२८ अक्टूबर, शुक्रवार। प्रातःकाल काम तलाश करने के लिए निकले। पहिले बरबेंक पहुँचे। रास्ते में खूब तरबूज खाये। बरबेंक के पास एक ग्राम में नये रास्ते बन रहे थे और कम्पनी की ओर से मकान भी तैयार हो रहे थे। वहाँ जाकर काम की तलाश की। अमरीकन और मेक्सीकन

मजदूर यहाँ काम करते थे। शाम हो जाने के कारण इस समय मजदूर लोग अपने तम्बूओं में खाना खाने में मशगूल थे। हम दोनों मेक्सीकन मजदूरों के तम्बू में घुस गये। वहाँ खाने को भी मिला और सोने को भी।

२९ अक्टूबर, शनिवार। काम पर भर्ती होगये और लगे मिट्टी काटने। दिन भर मिट्टी काटते रहे। अमरीकन मजदूर हिन्दुओं से जलते हैं, इसलिए यहाँ अधिक काम न कर सके। शाम को अपनी मजदूरी लेकर हमने सबको नमस्कार किया और चल पड़े। रास्ते में एक खेत के अन्दर घास की गाड़ी भरी पड़ी थी। दोनों जने उसी में घुस कर सो रहे। रात अच्छी कटी।

३० अक्टूबर, रविवार। मैं और परमानन्द दोनों रैंसेडा नामक ग्राम में एक पेड़ के साये में बैठे रहे। उस ग्राम की एक स्त्री बेचारी बाहर से आई थी। थकी-हारी होने के कारण घबरा-सी रही थी। उसने कई बार ताली से अपना दरवाजा खोलने की चेष्टा की पर सफल मनोरथ न हुई। हम लोग दूर से यह सब देख रहे थे। जब उस स्त्री ने घूम कर इधर-उधर देखा और हम लोगों को सहायता के लिए पुकारा तो हम दोनों उठ कर उसके पास गये। मैंने ताली लेकर पहले दरवाजे के सुराख़ को देखा, फिर ताली को ठीक जमा कर उसे घुमाया, दरवाजा खुल गया। उस स्त्री ने बड़ी कृतज्ञता प्रकट की और हमें अन्दर ले गई। उसके घर में बड़े मोटे-मोटे शकरकन्द थे, हम लोगों ने उन्हें उबाल कर पेटपूजा की। क्षुधा शान्त होने के बाद दिन के तीन बजे के करीब एक मोटर में चढ़ कर हम लोग बरबैंक होते हुए लैंकरशन नाम के ग्राम में गये। विचार यह था कि वहाँ काम मिल जायगा, पर काम नहीं मिला, इसलिए पैदल बरबैंक लौट आये। रात होगई थी, एक पेड़ के नीचे सो रहे। भला सर्दी में कहीं नींद आती है, दोनों सर्दी खा गये।

३१ अक्टूबर, सोमवार। भोर होते ही फिर लास एंजल्स की तरफ चले। इन दिनों इधर ऋतु साफ रहती है। आकाश निर्मल होता है। नौ

बजे के बाद हम लोग बाबा भारती के यहाँ पहुँचे। हम दोनों की शक्ल देखते ही बाबा जी घबरा से गये। वे हम से जिरह करने लगे। हम लोगों पर जो बीती थी उसे हमने साफ-साफ़ कह सुनाया। बाबा जी को हम लोगों का मन्दिर में ठहरना अच्छा न लगा। उनकी बातों से हम सब भांप गये, पर यहाँ क्या चिन्ता थी! दोनों जने थियोसोफिकल सोसाइटी में गये। वहाँ परमानन्द जी के लिए नौकरी की पूछताछ की, लेकिन कुछ नतीजा नहीं निकला। रात को होटल में सो रहे।

१ नवम्बर, मंगलवार। आज मैं सवेरे ही मन्दिर में आया और दिन भर वहीं रहा। मन्दिर का मकान खासा बड़ा था। निचले हिस्से के बड़े हाल में बैठा रहा। बाबा जी की चेली मोहिनी ने मेरे साथ बड़ा अच्छा बर्ताव किया। मेरे लिए खाने का प्रबन्ध ठीक कर दिया। मोहिनी नौजवान अमेरिकन औरत थी। बाबा जी का सारा लिखने-पढ़ने का काम करती थी, इस आश्रम में इसी की तूती बोलती थी। परमानन्द बेचारा दिन भर काम की तलाश में दौड़धूप करता रहा। मेरी रात मन्दिर में कटी और परमानन्द की होटल में।

२ नवम्बर, बुधवार। पिछली रात उधेड़-बुन करते बीती। मैंने आगे जाने का निश्चय कर लिया। परमानन्द गुजराती को सब बातें मैंने भली प्रकार समझा दीं। आज लास एंजल्स से चल पड़ा और पूरब की तरफ मुँह कर लिया। सड़क के दोनों तरफ बगीचों की भरमार थी। पीली-पीली मुसुम्बियों से लदे हुए पेड़ बड़े भले मालूम होते थे। पैसेडीना की तरफ जाते हुए रास्ते में मैंने एक स्त्री को घर के दरवाजे के बाहर खड़ा हुआ देखा। उसके पास जाकर मैंने काम के विषय में पूछा। मुझे अजनबी देख कर उसने मुझ से दो-चार प्रश्न किये। जब उसकी तसल्ली हो गई तो उसने मुझे अन्दर घर में ले जाकर खाने के लिए रोटी, मक्खन और उबले हुए आलू दिये। जब पेटपूजा होगई तो मैंने फिर सड़क का रास्ता लिया और पैसेडीना की तरफ चला। रिचमान्ड स्टेशन पर पहुँच कर मैं स्टेशन

के लकड़ी के बरामदे में रात के दस बजे तक बैठा रहा और इसके बाद पैसेडीना की ओर बढ़ा। सारी रात चलता रहा, सोने को स्थान नहीं मिला। पैसेडीना के इर्द-गिर्द सन्तरे और मुसुम्बियों की भरमार है पर फल अभी कच्चे थे। पैसेडीना की गलियों में मुझे प्रभात होगया।

३ नवम्बर, बृहस्पतिवार। पैसेडीना कस्बे से निकला। इस तरफ भूमि अच्छी होने के कारण बस्ती निकट है। रात का जगा हुआ, भूखा-प्यासा मैं बढ़ा चला गया और मनरोबिया पहुँचा। नीले आकाश के नीचे सूर्य की रश्मियाँ घरों को जगमगा रही थीं, पक्षी भी किलोलें कर रहे थे, मुर्गों के बोलने की ध्वनि घरों से आ रही थी। सवेरे नौ बजे के करीब मैं घर के दरवाजे के सामने खड़ा था। एक वृद्धा स्त्री अपने मकान के अहाते के अन्दर के बगीचे में एक मजदूर से काम करा रही थी। हिम्मत कर मैंने धीरे से अहाते का फाटक खोला। भीतर जाकर उस स्त्री से पूछा—

"कृपा कर मुझे भी कुछ काम दीजिए।"

उस स्त्री ने मेरी ओर देखा। दया भरी आँखों में मातृ-स्नेह की ज्योति प्रकाशित हो रही थी। बड़े प्रेम से उसने घर के द्वार की सीढ़ियों के पास पड़ी हुई कुर्सी पर बैठने के लिए मुझे कहा। मैं कुर्सी पर बैठ गया और उस स्त्री की ओर देखने लगा। उसकी अवस्था ६० बरस से ऊपर होगी, शरीर बिल्कुल तन्दुरुस्त था। उसके सिर पर काली सुन्दर मखमली टोपी थी। सर्दी से बचने के लिए वह हलका गरम गहरे भूरे रंग का ओवरकोट पहिने हुए थी। उसके सिर के बाल तीन-चौथाई सफेद हो चुके थे।, चेहरा गोल और सुन्दर था। इस अवस्था में भी बालों की सफेदी के सिवाय उसके चेहरे से कोई बुढ़ापे का चिन्ह मालूम नहीं पड़ता था।

मजदूर को सब काम समझा कर वह देवी घर की तरफ आई। सम्मानार्थ मैं कुर्सी पर से उठ खड़ा हुआ। एक दूसरी कुर्सी पर वह देवी बैठ गई और मुझसे मेरी कथा पूछने लगी। मैंने अपना वृत्तान्त संक्षेप में

कह सुनाया। वहीं पेड़ के नीचे एक छोटी-सी गोल जापानी मेज पड़ी थी। उसे मेरे सामने रख कर वह माता घर के अन्दर चली गई और अन्दर से तश्तरियों में मक्खन, रोटी, मुरब्बा और एक दूध का प्याला लेकर बाहर आई। बड़े स्नेह से उसने वह भोजन मेरे सामने रख दिया। देवी को अत्यन्त धन्यवाद देकर मैंने जल-पान आरम्भ किया और पेट के भेड़िये को जरा शान्त किया। भूख मिटा कर मैं उस देवी के साथ पेन्टीकास्टल गिरजे में गया। वहाँ भद्र पुरुषों से भेंट हुई। उनके सत्संग से मुझे बड़ा आनन्द मिला। दोपहर का भोजन मिस्टर ऐडम्स के घर पर किया। गिरजे में मेरी भेंट मिसेज हैरड से होगई। वे मुझे अपने घर ले गईं। वहाँ उन्होंने एक कमरा मुझे रहने को दिया। माता हैरड के कहने से मैंने अपने मैले कपड़े उतार दिये और स्नान के बाद साफ़-सुथरा कपड़ा पहिन कर सन्ध्या से ही दरवाजा बन्द कर सो गया। सारी रात मुझे होश नहीं रही।

४ नवम्बर से ६ नवम्बर तक। मनरोबिया छोटा सा कस्बा है। इसकी आबादी डेढ़ हजार के करीब होगी। यहाँ पहली बार मेरी पेन्टी-कास्टल गिरजे के लोगों से भेंट हुई। यूनिवर्सिटी में पढ़ते समय तो मुझे कोई अधिक सम्बन्ध गिरजे वालों से नहीं पड़ा था, मैं मजदूरी कर अपना विश्वविद्यालय का खर्च चला लेता था; कभी-कभी व्याख्यान देने के लिए मैं किसी गिरजे में चला जाया करता था, सो वह भी बहुत कम। यहां पहली बार मेरा सीधा सम्बन्ध ईसाई धर्म के एक ऐसे सम्प्रदाय से हुआ जिसके सदस्य बड़े कट्टर, लेकिन सदाचारी, ईसाई होते हैं। इस सम्प्रदाय को 'पेन्टीकास्टल चर्च' कहते हैं। ये लोग अन्जील में लिखी हुई भविष्य-वाणियों और उसके मोजजों (Miracles) पर दृढ़ विश्वास रखते हैं और अपने प्रचार में बड़ा जोश, बड़ा कीर्तन और हल्ला-गुल्ला करते हैं। इनकी सभाएं रोज होती हैं जहाँ ईश्वर की प्रार्थना, अपने पापों की तोबा तथा अन्जील का पाठ होता है। ईसामसीह की प्रशंसा में गीत गाते वे प्रेमोन्मत्त हो जाते हैं और समझते हैं कि अधिक प्रेमोन्मत्त पुरुष या स्त्री

ऐसी भाषाएं बोलने लगते हैं जिन्हें उन्होंने कभी नहीं पढ़ा। ईसाई धर्म के प्रचार के लिए ये लोग अपने जीवन को सेवा-धर्म की भावना में रंगने का यत्न करते हैं। मनरोबिया में मेरा ऐसे ही लोगों से सम्बन्ध होगया।

इस कस्बे में मैं तीन दिन रहा। माता हैरड ने मेरी बड़ी सेवा की। मेरे मैले-कुचैले कपड़े सब धो दिए। इसका पति बड़ा व्यभिचारी होने के कारण इससे अलग रहता था तथा इनका लड़का लास एञ्जल्स में काम करता था तथा लड़की एक बगीचे की देख-भाल करती थी। भोजन के समय हम लोगों की खूब बातें हुईं। मेरे समझाने पर इन्होंने मांस खाना छोड़ दिया और परमेश्वर की दयालुता की महिमा को समझा। जितने पेन्टीकास्टल लोगों से मेरी यहाँ भेंट हुई उन्होंने मेरे साथ बड़ा अच्छा बर्ताव किया। अपने सद्व्यवहार से इन्होंने मेरे हृदय पर एक खासी छाप लगा दी जिसके कारण मेरे बाकी भ्रमण में मुझे इनसे बड़ी सहायता मिली।

७ नवम्बर, सोमवार। आज माता हैरेड के यहाँ भगिनी जैफरसन का आगमन हुआ। अधेड़ उम्र की, खूब मोटी ताजी तथा हँसमुख स्वभाव वाली यह भगिनी जैफरसन थी। अपनी गहरी नीली आँखों से जिस समय वह टकटकी लगाकर किसी की तरफ देखती थी तो उसका उस व्यक्ति पर विचित्र प्रभाव पड़ता था। धार्मिक विषयों पर मेरी इनसे खूब बहस हुई, खास कर कर्म के सिद्धांत पर। मेरा पक्ष यह था कि हिन्दू धर्म स्वतंत्रता का धर्म है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने कर्मों के अनुसार फल मिलता है। इसमें पूरा स्वावलम्बन है, जो जैसा करेगा वैसा ही वह पाएगा। हिन्दू धर्म में किसी वकील, किसी नबी या पैगम्बर अथवा किसी मसीहा पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं, किसी क्राइस्ट पर अन्धविश्वास करने की जरूरत नहीं। हिन्दू धर्म प्रत्येक व्यक्ति को अपने पैरों के बल, अपनी तपस्या के आधार पर खड़ा

रहने की शिक्षा देता है। हिन्दू धर्म संसार के प्रत्येक स्त्री तथा पुरुष को कर्म के सिद्धान्तानुसार बराबर अधिकार देता है। मेरी दलीलों को सुनकर भगिनी जैफरसन और माता हैरड की आँखें खुल गईं। इन्होंने कभी भी हिन्दू धर्म के इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त के विषय में नहीं सुना था। आश्चर्य से उन्होंने कहा—

"हमें कभी किसी ने हिन्दू धर्म के विषय में ऐसी सुन्दर बातें नहीं बतलाईं। हम लोग तो सदा यह समझते रहे कि हिन्दुस्तान में असभ्य लोग रहते हैं जो अपनी स्त्रियों के साथ बड़ा बुरा बर्ताव करते हैं और पेड़ों तथा साँपों को पूजते हैं।"

ठंडी साँस भर कर मैंने उत्तर दिया—

"मेरा देश गुलाम है। गुलाम देश की छोटी-छोटी बुरी बातों को विदेशी लोग बड़ा बना कर उनका प्रचार करते हैं। ईसाई मिशनरी अपने स्वार्थ वश हम लोगों को बदनाम करते हैं और हमारी सभ्यता के सद्‌गुणों को न बतला कर हमारी बुराइयों का चित्र सभ्य संसार के सामने रखते हैं। जब हमारा देश स्वतंत्र हो जाएगा तब संसार हमारी सभ्यता के अमूल्य रत्नों को वरण करेगा।"

भगिनी जैफरसन ने सहानुभूति भरे शब्दों में कहा—

"घबराइये नहीं, हम अमरीकनों की सच्ची सहानुभूति आपके साथ है। ईश्वर आपकी मनोकामना पूरी करेगा।"

मैंने आज चलने की तैयारी कर ली। माता हैरड ने मेरे लिए एक छोटी टोकरी में खाने-पीने का सामान रख दिया। सबसे प्रेमपूर्वक विदा होकर मैंने "गुड बाई" कहा और उन्होंने मुझे आशीर्वादपूर्वक "ईश्वर आपके साथ हो (God be with you)।" कह कर विदा किया। इनसे विदा होकर मैं दूसरे प्रेमी बन्धुओं—मिस्टर डेविस और मिस्टर एडम्स से विदा माँगने गया। उन्होंने भी मुझे बड़े स्नेह से विदा किया।

मनरोविया के ये मीठे दिन मुझे सदा याद रहेंगे। संसार में प्रेम और स्नेह ही पवित्र बन्धन है, जिनमें जबर्दस्त आकर्षण शक्ति है।

मध्याह्न बाद मैं मनरोविया से निकला और क्लेयरमौंट की तरफ चला। रास्ते में एक मेक्सीकन कोचवान ने मुझे अपनी फलों की गाड़ी पर चढ़ा लिया। उसे क्लेयरमौन्ट के पास एक बगीचे में जाना था, मैंने भी उसी बगीचे में रात काटने का निश्चय किया। मेरे सोने का सब प्रबन्ध ठीक कर दिया गया और मैंने यहाँ बड़े सुख से रात बिताई।

८ नवम्बर, मंगलवार। प्रभात होते ही शीतल समीर का आनन्द लेता हुआ मैं क्लेयरमौन्ट की तरफ चला। रास्ते में बगीचों की भरमार है। मीठी मुसुम्बियाँ दोनों तरफ वृक्षों को सुशोभित करती हैं और सड़क पर चलने वाले मुसाफिरों को प्रलोभन में डालती हैं। कैलेफोर्निया की यही मुसुम्बियाँ संसार भर में विख्यात हैं, जिनकी करोड़ों रुपये की आमदनी से कैलेफोर्निया के गृहस्थ अपनी जेबें भरते हैं। दिन भर चलने के बाद शाम को मैं रिनोजे पहुँचा। यहाँ पर वृक्षों के एक कुंज में मेक्सीकन मजदूरों की झोंपड़ी थी। उन बेचारों ने मुझे खाने के लिए तो काफी दिया पर सोने का अच्छा प्रबन्ध वे क्या कर सकते थे! किसी प्रकार रात बिताई।

९ नवम्बर, बुधवार। सवेरे फिर रेल की पटरी-पटरी सनबर्नाडीनो की तरफ चला। रास्ते में बगीचों के सिवाय कुछ दिखाई नहीं देता। दोनों तरफ बढ़िया बड़ी-बड़ी मुसुम्बियों के बगीचे हैं। सनबर्नाडीनो में मेरी एक सज्जन से भेंट हुई जिन्होंने मुझे अपने बगीचे के बीजरहित सन्तरे खाने को दिये। वे रैडलैण्ड्स जा रहे थे। मुझे भी अपने साथ बिजली की गाड़ी में बैठा कर ले गये।

पैसेफिक महासागर के किनारे रैडलैण्ड्स एक स्वर्गीय उद्यान है। इसके इर्द-गिर्द की भूमि अत्यन्त उपजाऊ है। विज्ञान-कला-विशारद अमरीकनों ने इस भूमि का बड़ा सदुपयोग किया है और इसे सचमुच बहिश्त

का बगीचा बना दिया है। खुश्क नीरोग जलवायु—न बहुत सर्द और न बहुत गर्म, प्राकृतिक सौन्दर्य्य से विभूषित यह कस्बा सचमुच अपने ढंग का निराला ही है। यंगमैन क्रिश्चियन एसोसियेशन का सुन्दर भवन यहाँ पर है। रेडलैण्ड्स का पुस्तकालय भी बड़ा अच्छा है। मिस्टर स्माइले तो यहाँ के राजा ही हैं, जिनके नाम का बड़ा रमणीक पार्क "स्माइले हाइट्स" है, जिस पर चढ़ कर चारों तरफ का मनोहर दृश्य दिखाई देता है। यहाँ के हाईस्कूल की इमारत भी खासी बड़ी है और उसके इर्द-गिर्द विद्यार्थियों के खेलने के लिए बड़ा चौड़ा अहाता है, जहाँ लड़के और लड़कियाँ निर्भय और निर्द्वन्द्व अपने स्वतन्त्र देश में देवताओं की तरह विचरते हैं।

मैं मिस्टर ननले के नाम एक पत्र लाया था, सो मैंने पेन्टीकास्टल गिरजे की तलाश की। ढूँढ़ते-ढूँढते पता मिल गया। एक छोटे से मकान में मैंने प्रवेश किया। सामने साढ़े छः फोट लम्बे एक आदमी को खड़ा देखा, जिसने मेरे हाथ से चिट्ठी लेकर पढ़ी और उसे पढ़ते ही उसने बड़े प्रेम से मेरे साथ हाथ मिलाया और मुझे अपनी भार्या सिस्टर ननले के पास बावर्चीखाने में ले गया। सिस्टर ननले बडी दयालु स्त्री निकली। उसने मेरे साथ भाइयों जैसा बर्ताव किया और स्नेहपूर्वक भोजन कराया। रात को मैं इन लोगों की सभा में गया। रात्रि में आराम से सोया।

१० नवम्बर, बृहस्पतिवार। आज भाई ननले ने मेरा परिचय अपने मित्रों से कराया। मिस्टर क्लार्क यहाँ पेन्टीकास्टल चर्च के पादरी थे। हम लोग उनके घर पर गयें। ये पादरी महाशय अच्छे व्याख्यानदाता थे। उनसे मिल कर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। डेढ़-दो घंटे तक इनसे धार्मिक विषयों की चर्चा होती रही। मुख्य विषय "गुनाहों की क्षमा" था। ईसाई और मुसलमान लोग पापों की क्षमा के सिद्धान्त को मानते हैं और समझते हैं कि सच्चे दिल से तोबा करने से अपराध क्षमा हो जाते हैं। मैंने इस सिद्धान्त का खण्डन किया और बतलाया कि किया हुआ कर्म

कभी नष्ट नहीं होता, उसका फल अवश्य मिलता है । एक हिन्दुस्तानी के मुख से धार्मिक विषयों की युक्तिसंगत चर्चा सुनकर मिस्टर क्लार्क बड़े विस्मित हुए, विस्मय के चिह्न मैंने उनके चेहरे पर देखे। उनका अधिक समय लेना उचित न समझ कर मैं भाई ननले के साथ घर पर लौटा और रात को वहीं सोया।

११ नवम्बर से २० नवम्बर तक। ये दस दिन मैंने रेडलैण्ड्स में बिताये। यहाँ के हाईस्कूल के प्रिंसिपल ने मेरा व्याख्यान अपने यहाँ करवाया। व्याख्यान के बड़े हाल में बारह सौ के करीब लड़के-लड़कियाँ उपस्थित थे। उनके सामने मैंने अपने देश की परिस्थिति का वर्णन किया और उन्हें बतलाया कि एक मेरा भी देश है जहाँ लाखों लड़के और लड़-कियाँ कीड़ों की तरह पैदा होते हैं और कीड़ों की तरह मर जाते हैं। उनके लिए किसी प्रकार की शिक्षा का प्रबन्ध नहीं, घोर अन्धकार का जीवन वे व्यतीत करते हैं । एक अमेरिका देश है जहां प्रत्येक लड़के और लड़की के लिए बराबर के अवसर उन्नति करने के लिए हैं और सब प्रकार के वैज्ञानिक कला-कौशल के कालिज उनके लाभार्थ मौजूद, हैं । मैंने हिन्दुस्तान और अमरीका का मुकाबिला करके उन्हें अंग्रेज़ी शासन के दोषों का फोटो खींच कर बतलाया, किसानों की दुर्दशा का रोमांचकारी चित्र भी दिखलाया, अंग्रेज़ी शासन से भारतवर्ष दिन-प्रति-दिन निर्धन होता चला जा रहा है, इसकी कथा सुनाई । उन नवयुवकों के हृदय मेरे व्याख्यान को सुनकर बड़े दुःखी हुए। व्याख्यान के बाद कई लड़के मुझ से मिलने आए और मेरे देश के प्रति उन्होंने अपनी सच्ची सहानुभूति दिखलाई।

इसी प्रकार मैंने तीन-चार व्याख्यान रेडलैण्ड्स की गलियों में दिये और नगर की जनता को अंग्रेज़ी शासन के अत्याचारों का हाल सुनाया। सनबर्नाडीनो में भी मैंने रात के समय खुले चौक में स्टूल पर खड़े होकर अपने देश के दुःखों की कथा वहाँ के लोगों को सुनाई । इन

व्याख्यानों की जनता में बड़ी चर्चा हुई। पेन्टीकास्टल गिरजे में भी वहाँ के सदस्यों के सामने मैंने लेक्चर दिया और भारतवर्ष के कष्टों की चर्चा की।

अन्य सब सम्प्रदाय के लोग तो मेरे व्याख्यानों से संतुष्ट हुए पर मेथोडिस्ट चर्च के पादरी महाशय मेरे विरुद्ध होगये, क्योंकि इस चर्च की ओर से बहुत से पादरी भारतवर्ष में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए जाते हैं, सो यहाँ के पादरी ने यह सोचा कि अंग्रेजी मिशन की बुराइयाँ बतलाने से शायद उनके मिशन को कोई हानि पहुंच जाय। जब मैं उस गिरजे के पादरी से मिलने के लिए गया और गिरजे में व्याख्यान देने की आज्ञा माँगी तो उस ईसा के भक्त ने मुझे साफ इन्कार कर दिया। पेन्टीकास्टल लोगों ने मुझे बतलाया कि मेथोडिस्ट चर्च वाले केवल दुकानदार हैं; उन्हें सच्चाई की कुछ परवाह नहीं और न वे गरीबों के साथ हमदर्दी ही रखते हैं। इनका सम्प्रदाय बड़ा धनाढ्य है।

१३ नवम्बर को रविवार था। पेन्टीकास्टल चर्च में आज संध्या के समय पादरी क्लार्क ने बड़ा प्रभावशाली भाषण दिया। भाषण का विषय था-"स्वतंत्रता ही मनुष्य को ईश्वर के निकट ले जाती है।" इस व्याख्यान ने मेरे ऊपर बड़ा प्रभाव डाला। पादरी क्लार्क ने बड़ी योग्यता से इस बात को सिद्ध किया कि गुलाम मनुष्य शैतान के जाल से नहीं निकल सकता, इसलिए पहिले साधना द्वारा स्वतंत्रता प्राप्त करनी चाहिए। जो स्वतन्त्र है वही ईश्वर के निकट जाने का अधिकारी बनता है। उन्होंने इतिहास से इस बात को सिद्ध किया कि गुलाम कौमें सदा तमोगुण में डूबी रहती हैं और वे आत्म-संयम के सात्विक सिद्धांत को जीवन में नहीं घटा सकतीं। उनके ऊपर विदेशियों का विषैला असर उन्हें बुराइयों से निकलने नहीं देता।

यहाँ मेरी मिस्टर फ्रेड मूअर नामी साम्यवादी से भेंट हुई। आपने

मुझे साम्यवाद के सिद्धांत खूब अच्छी तरह समझाए और मेरे सब प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर दिया। मिस्टर मूअर रेडलैण्ड्स में किसी निजी कार्यवश न्यूयार्क से आए थे। मेरे साथ इनका बड़ा स्नेह होगया। हम दोनों बाहर घूमने जाया करते थे और राजनीतिक विषयों की चर्चा बराबर होती रहती थी। एक दिन हम दोनों स्माइले हाइट्स देखने के लिए गए। यह स्थान रेडलैण्ड्स का भूषण है। स्थान-स्थान पर वृक्षों के कुंज हैं, जहाँ बेंचें रक्खी हुई हैं। आप ज्यों-ज्यों ऊपर पहाड़ी पर चढ़ें त्यों-त्यों इर्द-गिर्द के दृश्य दिखाई देते हैं।

मिस्टर स्काट ने मेरे पास एक चिट्ठी भेजी और मुझे अपने सम्बन्धी मिस्टर बकमास्टर से मिलने का अनुरोध किया। ये महाशय रेडलैण्ड्स के पास ही एक बगीचे में रहते थे। मैं उनसे भेंट करने के लिए गया। वहीं भोजन भी किया और रात को वहीं सोया भी। बकमास्टर ने मुझे अपना बगीचा दिखलाया और बतलाया कि एक एकड़ भूमि में मुसुम्बियों का बगीचा लगाने से बारह सौ डालर की आमदनी मजे से हो सकती है। जिसके पास ये मुसुम्बियों के बगीचे हैं वे ऐश्वर्य भोगते हैं।

यहाँ की थियासोफिकल सोसाइटी की मुखिया मिसेज वेड से भी मैं मिलने गया। पर यह स्त्री बड़ी संकुचित विचार वाली निकली। इसने मेरे साथ अच्छी तरह बात भी नहीं की। इसी प्रकार यहाँ के Y.M.C.A. के लोग भी बड़े तोतेचश्म निकले। इनके पास बातें तो बड़ी मीठी-मीठी थीं पर सहानुभूति कुछ नहीं। मेरे व्याख्यानों का इन्होंने कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया। सच बात यह है कि जो लोग सम्प्रदायों की दुकानें खोल लेते हैं, उनके विचार बड़े संकुचित हो जाते हैं। अपने छोटे से दायरे से बाहर उन्हें कुछ भी दिखाई नहीं देता। मुझे यहाँ की Y,M.C,A. वालों की दशा देखकर अधिक खेद हुआ, क्योंकि इनकी संस्था में अधिकांश सच्चरित्र पुरुष काम करते हैं। संप्रदाय वालों को प्रायः अपनी भेड़ें बढ़ाने की फिकर रहती है। यहाँ मेरी सबसे अधिक

सहायता भाई ननले और उनकी स्त्री ने की, जिनका अहसान मैं कभी नहीं भूल सकता।

२१ नवम्बर, सोमवार। आज मैंने चलने का निश्चय कर लिया। सब प्रेमियों से प्रसन्नतापूर्वक विदा ले, सवेरे ९ बजे के करीब मैं सन-बर्नाडीनो पहुंचा। वहाँ एशफोर्थ जाने के लिए कुली लोग नौकरी दिलाने वाली एजेन्सी में बैठे थे। मैं भी उन्हीं में शामिल होगया और दो डालर देकर एशफोर्थ जाने के लिए मजदूरी का टिकट ले लिया। रात के दस बजे हम लोग रेलगाड़ी में बैठ गए। रेल का कंडक्टर कुलियों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं करता था। इसलिए कुली लोग उत्तेजित हो उठे, लड़ाई होते-होते रह गई। गाड़ी बड़े रेगिस्तान से गुजर कर सवेरे नीडल्स नामी जंक्शन पर पहुंची।

२२ नवम्बर, मंगलवार। आज दिन भर नीडल्स में पड़े रहे। सेन्टाफी के बड़े रेगिस्तान में यह जंक्शन एक रम्य स्थान (Oasis) समझा जाता है। यहाँ मोहावक जिरगे के अमरीकन इंडियन रहते हैं। छोटे-छोटे तम्बू गाड़ कर ये लोग रहते हैं और टोकरियाँ बुनते हैं। मैं इनसे बातें करने के लिए गया। अपनी घर-गृहस्थी के साथ इन्हें मैंने टोकरियाँ बुनते देखा। ये लोग बिल्लौरी मनके भी बेच रहे थे। इनका रंग गहरा गंदमी, सिर पर बड़े-बड़े बाल, चेहरा सफाचट और शरीर के अंग बड़े सुदृढ़ होते हैं। यहाँ जापानी मजदूरों की भी कमी न थी। ये लोग यहाँ मजदूरी करते हैं। रेलवे कम्पनी की तरफ से रेलवे कर्म-चारियों के लिए एक दिल बहलाने का क्रीड़ालय बना हुआ है, जहाँ थके-माँदे कम्पनी के नौकर खेल-कूद कर अपनी थकान मिटाते हैं। यहाँ एक हाईस्कूल भी है जिसके प्रिन्सिपल मिस्टर कालिन्स से मैंने भेंट की। आप मुझे बड़े प्रेम से मिले।

यहाँ एक बड़ी भयंकर बात देखने में आई। बड़े-बड़े बाड़ों में बहुत से बैल बन्द थे, जो यहाँ से शिकागो के प्रसिद्ध बूचड़खाने में भेजे जाने

के लिए इकट्ठे किए गए थे। निर्दयी बूचड़ लोग हिंसक पशुओं की तरह इनके इर्द-गिर्द घूम रहे थे। इन निरपराध, बेकस जानवरों की आँखों में गहरी उदासी छाई हुई थी। इन्हें अपने जीवन के दुःखद परिणाम का ब्यौरा मालूम था और वे सभ्य मनुष्य के हाथों से किए गए अत्याचारों पर खून के आँसू बहा रहे थे। पशुओं के उस बाड़े के पास मैं बहुत देर तक चुपचाप खड़ा रहा। उन पशुओं के आर्तनाद से मेरा कलेजा काँप उठा। कैसे-कैसे विचार मेरे मन में उठे, उनका वर्णन करना लेखन-शक्ति से बाहर है।

२३ नवम्बर, बुधवार। एशफोर्थ जाने वाली गाड़ी में रात बीती। प्रभात पाँच बजे हम लोग एशफोर्थ पहुंचे। चुपचाप मैं गाड़ी से उतर कर स्टेशन के हाते के बाहर होगया और बाहर निकल कर टहलने लगा। जब गाड़ी चली गई तो मैं प्लेटफार्म के अन्दर आ गया। स्टेशन के बरामदे में बेंच पर बैठा रहा। फल और रोटी से पेटपूजा की। दो बजे के करीब फोनिक्स जाने वाली गाड़ी में सवार होगया। कैले-फोर्निया रियासत से मैं बाहर होगया था और अब अरीजोना रियासत में प्रवेश कर चुका था। सनवर्नाडीनो तक तो मैं कैलेफोर्निया रियासत के दक्षिण भाग तक आया; चूंकि मुझे न्यूयार्क की तरफ जाना था इसलिए मैं पूरब की तरफ घूमा और अरीजोना रियासत में घुसा। यहाँ पर मेरा दीर्घ कार्य कैलेफोर्निया रियासत का पैदल सफर खत्म होता है। इस रियासत में तो मुझे कई स्थानों पर भारतीय बन्धुओं से मिलने का मौका मिला और अपनी रुचि अनुकूल भोजन भी प्राप्त हुआ। अब आगे अपने देश-बन्धुओं से भेंट होने की कोई आशा न थी, अतएव मेरा पैदल सफर और भी अधिक कठिन था। चूंकि मेरा संकल्प अत्यन्त दृढ़ था इसलिए मन में यही सोचा कि चाहे कितना ही कष्ट क्यों न हो जब तक शरीर सहन कर सके तब तक जरूर "होबोपन" की जिन्दगी को निबाहना चाहिए और अरीजोना, अलपास्सो तथा न्यू मैक्सिको के विकट मार्गों का पर्य्यटन करना ही चाहिए। कैलेफोर्निया रियासत में तो रेल

के किनारे-किनारे फलदार घाटियों में खासी आबादी होगई है और मोयाबी रेगिस्तान जैसी भूमि बहुत कम है, इसी से यात्रा में बहुत अधिक कष्ट नहीं भोगना पड़ा। काम भी समय-समय पर मिलता रहा, पर अरीज़ोना और न्यू मैक्सिको तो अभी तक वन्य प्रदेश की तरह हैं। उनमें से पैदल गुजरने में कई बार मौत का सामना करना पड़ेगा, इन सब बातों पर खूब विचार कर मैंने कैलेफोर्निया रियासत की स्वर्णमयी भूमि को छोड़ते समय प्रणाम किया और ईश्वर पर विश्वास कर अरीजोना की तरफ मुंह किया। यदि मैं चाहता तो यहीं एक-आध महीना नौकरी कर न्यूयार्क तक का किराया पैदा कर लेता और रेल में बैठ कर चला जाता, किन्तु मेरे सिर पर तो होग्रोपन का भूत सवार था। कैलेफोर्निया रियासत में अमरीकन लोगों की बस्ती है, उनकी चाल-ढाल और ग्राम्य-जीवन खूब देख लिया। अरीज़ोना और न्यू मैक्सिको में अधिकतर मैक्सि-कन लोग तथा मिश्रित स्पेनिश वीर्य के लोग बसते हैं। उनकी भी दशा देखनी चाहिए और साथ ही अत्यन्त बीहड़ भूमि में अकेले मनुष्य की मानसिक अवस्था कैसी होती है, इसका भी अनुभव लेना चाहिए। मन को अत्यन्त दृढ़ कर मैं अपने कठोर रास्ते पर चला।

तीसवाँ अध्याय

रियासत अरीज़ोना के रेतीले मैदानों में

सनबर्नार्डीनो से मैं अरीज़ोना की तरफ रवाना हुआ। रास्ते में चारों ओर मरुभूमि ही दीख पड़ती है। चारों तरफ रेगिस्तान है। फीनिक्स में रात को दस बजे पहुंचा और अढ़ाई रुपये देकर होटल में विश्राम किया। मेरी जेब में अभी ५ डालर थे। रेडलैण्ड्स में मुझे कुछ पैसे मिल गए थे। रात को अच्छी तरह से नींद नहीं आई।

२४ नवम्बर, बृहस्पतिवार। सवेरे हाथ मुंह धोकर, शौचादि से निवृत्त हो, मैं होटल से निकला और लगा प्रेमियों की खोज करने। किसी ने सच कहा है—

"जिन ढूंढ्या तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।"

सो मुझे भी मिस्टर स्कल मिल गए। आप यहाँ के बड़े महाजन हैं। हजारों रुपये की मुसुम्बियां इनकी देश-देशान्तरों को जाती हैं। मुझे वे अपने बड़े गोदाम में ले गए जहां मुसुम्बियों के ढेर लगे थे। मजदूर लोग उन्हें कागजों में लपेट कर बक्सों में भरते जाते थे और लादने वाले फलों से भरे हुए बक्सों को रेल के डिब्बों में लाद रहे थे। बीजरहित, शहद की तरह मीठी मुसुम्बियाँ खा कर मेरा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। हैरान होकर मैंने मिस्टर स्कल से पूछा—

"ऐसे रेगिस्तान में आप यह अमृतफल कैसे पैदा करते हैं?"

मिस्टर स्कल खिलखिला कर हँस पड़े और बोले—

"विज्ञान क्या नहीं कर सकता? हमारी सरकार ने रेगिस्तान को हरा-भरा करने के लिए एक बड़ा तालाब बनवाया है जिसे रूज़वेल्ट रिज़र्वोयर कहते हैं। इसमें बहुत पानी जमा रहता है। नहरें निकाल कर

उस पानी का सदुपयोग किया गया है और जंगल में मंगल होगया है। अरीज़ोना रियासत में एक सौ बीस डिग्री तापमान के अनुसार गर्मी पड़ती है और यहाँ खजूर के पेड़ खूब फलते हैं। ऐसी रियासत को अमरीकन कौशल और विज्ञान की मदद से फलों का घर बना दिया गया है।"

मिस्टर स्कल की बातें सुन कर मैं अवाक् रह गया। "विज्ञान क्या नहीं कर सकता" यही शब्द मेरे कान में गूंज रहे थे। बर्फानी पहाड़ों से पानी लाकर पुरुषार्थी अमरीकनों ने इस रेगिस्तान को सर-सब्ज कर दिया है। अरीज़ोना के संतरे और मुसुम्बियां सारे अमरीका में प्रख्यात हैं। मिस्टर स्कल तो अपने काम में लग गये और मैं वहां खड़ा हुआ उन पीले फलों का लादना देखता रहा। एक घंटे के बाद मिस्टर स्कल मुझे अपने साथ लेकर हार्डबाखर के यहां गये और मेरे रहने का वहीं प्रबन्ध कर दिया।

हार्डबाखर जर्मन गृहस्थ थे। एक पीढ़ी से ही ये लोग यहां आकर बसे थे। बड़े अच्छे साधु स्वभाव के ये लोग थे। मुझे इनके यहाँ बड़ा आराम मिला। ईश्वराराधना और प्रार्थना इनके यहाँ बराबर होती थी। ईसाई धर्म की इन पर बड़ी अच्छी छाप पड़ी थी।

भोजनादि से निवृत्त होकर मैं यहाँ के इंडियन स्कूल को देखने के लिए गया। अरीजोना रियासत में अमरीका के पुराने बाशिंदे अभी तक बसते हैं। उनके बच्चों के लिए रियासत की तरफ से शिक्षा का प्रबन्ध है। उसी स्कूल में मैं गया। शिक्षा में कैसी अद्भुत शक्ति है! यह जंगली को सभ्य बना देती है। स्कूल में पढ़ने वाले लड़कों को देखकर कोई इन्हें पुराने निवासियों की संतान नहीं कह सकता, केवल रंग से भले ही इनकी पहचान हो सके। जब मैं वहाँ पहुंचा तो स्कूल के बाहर मैदान में इनका बैण्ड बज रहा था। आध घंटे तक मैं वहाँ रहा और मेरे चित्त में तरह-तरह के भाव उठने लगे। ईश्वरीय लीला का रहस्य कुछ कहा नहीं जाता। जातियों की जातियाँ मिट जाती हैं और उनका

स्थान सक्षम और बुद्धिमान् जातियाँ ले लेती हैं। पृथ्वी वीर पुरुषों के भोगने के लिए है। वीर आते हैं, ऐश्वर्य भोग कर निर्बल हो जाते हैं और चले जाते हैं। उनका स्थान दूसरी और जातियाँ ले लेती हैं। इसी प्रकार यह संसार-चक्र चलता रहता है।

यही सोचता हुआ मैं हार्डबाखर के यहाँ आया। भोजन के बाद चुपचाप सो गया।

२५ नवम्बर, शुक्रवार। आज मेरी भेंट एक भद्र नवयुवक से हुई। आपका नाम मिस्टर ए० ई० रासमन (रासमणि) था। इनकी इच्छा भारतवर्ष जाकर ईसाई धर्म के प्रचार करने की थी, इसलिए वे मुझसे मिलकर बड़े प्रसन्न हुए और मेरी उनके साथ खासी मित्रता होगई। उनके अत्यन्त आग्रह करने पर मैंने उन्हीं के साथ रहना स्वीकार कर लिया। भाई रासमन फोनिक्स के एक बैंक में टाइपिस्ट का काम करते थे और अपनी तनख्वाह धर्म-प्रचार में खर्च करते थे। इंडियाना रियासत की राजधानी इंडियानापोलिस में इनके पिता बड़े मालदार आदमी थे, पर इन्हें उनकी कुछ भी परवाह नहीं थी। बाप से जुदा होकर वे अपनी भुजाओं के बल से स्वतन्त्र कमा कर खाते थे और मस्त रहते थे।

इस नवयुवक रासमन की धार्मिक श्रद्धा-भक्ति को देख कर मैं तो इन पर मोहित होगया। हम लोग दोनों एक ही कमरे में भाइयों की तरह सोये।

२६ नवम्बर से २८ नवम्बर तक। यहाँ के पेन्टीकास्टल चर्च में बड़े उत्साही मेम्बर थे। रविवार को दिन भर इनकी सभायें हुईं। सबसे पहिले सब लोगों ने मिल कर प्रार्थना की, फिर इंजील से स्वाध्याय आरम्भ हुआ। दो घंटे तक यह स्वाध्याय होता रहा। इसके बाद संडे स्कूल में पढ़ने वाले बच्चे आने शुरू हुए। योग्य मेम्बरों ने अपनी-अपनी श्रेणी को पढ़ाया। भोजनोपरान्त फिर सभायें शुरू हुईं। अपने-अपने पापों का ब्योरा सबके सामने गुनाहगारों ने कहा। फिर भजन शुरू हुए और

बड़े उत्साह से सबने मिल कर भजन गाए। संध्या को गली में प्रचार करने के लिए निकले। फीनिक्स के बाज़ारों में चौड़ी सुभीते की जगह पाकर इन लोगों ने आम जनता को बाइबिल का संदेश सुनाना शुरू किया। मैंने भी आज गली में जनता के सामने अपने देश के दु:खों की कथा कही। पेन्टीकास्टल चर्च के लोगों के प्रचार का ढंग, उनका सच्चा प्रेम और उनकी जन-साधारण से सहानुभूति देखकर मैं उन पर मुग्ध होगया। यदि मुझे पहिले से अपने पवित्र धर्म के दृढ़ संस्कार न होते तो सम्भव था कि मैं इनमें शामिल होकर ईसाई धर्म का प्रचार करने लग जाता। आर्यसमाज के संस्कारों की ज़बर्दस्त छाप मेरे हृदय पर लगी हुई थी, इसी कारण मै अपने धर्म का इनके ईसाई मत के साथ मुकाबिला कर दोनों के गुण-दोष परख सका। मैंने देख लिया कि मेरा धर्म उदार, बुद्धिसंगत, और न्याययुक्त है, केवल सदियों की गुलामी की वजह से उस पर बहुत सी मिट्टी पड़ गई है। यदि हम अपने देश को स्वाधीन कर लें और अपनी सभ्यता पर पड़े हुए कूड़े-करकट को साफ़ कर डालें तो संसार भारत-वर्ष के बौद्धकाल की उच्च सभ्यता की महिमा जान सके। भगवान् बुद्ध ने जो सत्य उपदेश संसार को दिया था उसका गौरव भारतवर्ष की स्वाधीनता के बिना संसार को मालूम नहीं हो सकता।

२८ नवम्बर को सोमवार था। पेन्टीकास्टल चर्च के अत्यन्त अनुरागी भाई डिलर मुझे अपने घर ले गए। इनकी एक बहुत बड़ी शुतुर-मुर्गों की शाला थी। अरीज़ोना रियासत की ऋतु इतनी उष्ण है कि वहाँ पर अफ्रीका के जानवर शुतुरमुर्ग भी पाले जा सकते हैं। सर्दी तो यहाँ बिलकुल साधारण होती है, जैसी हमारे संयुक्त प्रान्त में। डिलर बन्धुओं ने मेरी बड़ी ख़ातिर की। इनके खेत में ३०–४० शुतरमुर्ग थे, जिनके परों को ऋतु के अनुसार नोंच कर ये लोग मंडी में बेचते थे। गोरी स्त्रियाँ अपनी टोपियों में शुतुरमुर्ग के पर लगाती हैं और उनसे अपनी सुन्दरता बढ़ाती हैं।

डिलर बन्धु जर्मनी से आए थे और अमरीका में आकर अमरीकन

बन गए थे। अभी तक इनके घर में इंजील जर्मन भाषा में पढ़ी जाती थी और ईश्वर-प्रार्थना तथा भजन भी उसी भाषा में होते थे। ये लोग बड़े सदाचारी और ईश्वरपरायण थे। इनसे मिल कर मेरा चित्त बड़ा गद्गद हुआ। यदि लोग अपने-अपने सम्प्रदायों के बन्धनों को छोड़ दें और धर्म के यथार्थ स्वरूप को ग्रहण कर लें तो मानव जाति के सब दुःख दूर हो जाँय। हम सम्प्रदायों की दीवारें खड़ी कर मानव जाति में भेद डाल रहे हैं, इसी कारण संसार में धर्म के नाम पर इतनी बुराइयाँ होती हैं।

रात को डिलर बन्धुओं के यहाँ सोया। रात बड़े आराम से बीती।

२९ नवम्बर से १ ली दिसम्बर तक। जल रेगिस्तान को स्वर्ग बना देता है। अरीज़ोना रियासत में अधिक उष्णता के कारण गोरे आदमी का बसना अत्यन्त कठिन था। प्रेजीडेंट रूजवेल्ट की आज्ञा से यहाँ पर आबपाशी का महकमा खोला गया और मरुभूमि को सींचने के लिए नहरें खोदी गईं। अब नहरों और नालियों के द्वारा फोनिक्स के इर्द-गिर्द बगीचों की भरमार है। मैं बगीचों में घूमने के लिए गया और वहाँ मैंने पेड़ों के नीचे शीतल पवन का आनन्द लिया। यहाँ बिच्छू और कनखजूरे खूब होते हैं। गर्मी के दिनों में इनसे बचकर रहना पड़ता है। झाड़ियों में सांपों की भी कमी नहीं। सारांश यह है कि अमरीका में अरीज़ोना रियासत उष्णप्रधान प्रदेश है, जहाँ गर्म देशों के सभी गुण-दोष मौजूद हैं। आमों के लगाने का भी प्रयत्न किया गया था पर अभी तक सफलता प्राप्त नहीं हुई। मेरा ख्याल है कि भविष्य में अरीज़ोना की आबोहवा में अधिक अनुभव के बाद आम भी खूब फल सकेंगे। अभी तक यहाँ के लोगों का मुसुम्बियों के बगीचों की ओर ही अधिक ध्यान है।

३० नवम्बर के दिन मैंने व्रत रक्खा और सारा दिन परमात्मा के ध्यान में बिताया। भाई रासमन के कमरे में आसन लगाकर ओ३म् का जाप करता रहा। शाम को ४ बजे के करीब मिस्टर स्कल के गोदाम में

गया। वहाँ मेरी भेंट भगिनी मिलसे से हुई। वह देवी मुझे अपने घर ले गई। वहीं भोजन कर हम दोनों रात की सभा में आए। वहाँ से मैं हार्डबाखर के साथ उसके घर चला गया। वहीं सोया।

मेरा चश्मा रात के समय कहीं गिर गया था इसलिए पढ़ने-लिखने में बड़ी दिक्कत हुई। नए चश्मे के लिए सिएटल चिट्ठी भेज दी। १ ली दिसम्बर का सारा दिन ध्यान में बिताया। संध्या को रासमन के साथ मिस्टर गैरिक से मिलने गया। ये महाशय अपने आप को पैगम्बर कहते थे। इनसे बहुत देर तक बातें होती रहीं। मूर्खों को ठगने के लिए, उनको अपनी मुट्ठी में लाने के लिए, जनसाधारण के मिथ्या विश्वासों का अनुचित लाभ उठाकर धूर्त आदमी प्रत्येक काल में पैगम्बरी का दावा करते रहे हैं। ऐसे ही पैगम्बर ये महाशय गैरिक थे। दुनिया में जब तक मजहबी जहालत मौजूद रहेगी तब तक ऐसे ढोंगियों की दुकानें सदा चलती रहेंगी। भाई रासमन को मैंने इस पैगम्बर के विरुद्ध बहुत समझाया। रात को बहुत देर तक हम दोनों की यही चर्चा होती रही।

२ दिसम्बर से ५ दिसम्बर तक। फीनिक्स अरीज़ोना रियासत की राजधानी होने के कारण एक मुख्य शहर है। रियासत का प्रधान विश्वविद्यालय यहीं पर है। इस नगर की आबादी १२,००० से अधिक है। अरीज़ोना से ३५ मील के फासले पर मेरीकुपा जंक्शन है, जहाँ से फीनिक्स का सम्बन्ध पूरब की ओर जानेवाली गाड़ियों से है। फीनिक्स अरीज़ोना रियासत की मेरीकुपा कौन्टी के अन्तर्गत है। यहाँ आटे की बड़ी-बड़ी मिलें हैं, बर्फ के कारखाने हैं, फलों की दुकानें हैं और छोटी-छोटी वस्तुओं के तैयार करने के कई कल-कारखाने हैं। यहाँ सब प्रकार का अनाज बहुतायत से पैदा होता है। ताँबा बड़ी मिकदार में खानों से निकाला जाता है। सोने और चाँदी की खानें भी शहर के इर्द-गिर्द हैं और मकानों के बनाने का पत्थर भी निकट की पहाड़ियों से

निकाला जाता है। यह नगर एक प्रकार का केन्द्र है, जहाँ से माल रियासत के बहुत बड़े भाग में तथा अन्य रियासतों में भेजा जाता है।

४ दिसम्बर को रविवार था। इसलिए आज मेरे सब प्रेमी फिर अपने धार्मिक प्रचार में लगे हुए थे। दिनभर प्रार्थना, भजन, ईश्वराराधना, इंजील का पाठ, सन्डे स्कूल और गलियों में प्रचार करने में बीता। आज एक विशेष बात यह हुई कि पेन्टीकास्टल चर्च के पादरी तथा अन्य प्रेमी, फीनिक्स जेल में, वहाँ के कैदियों को इंजील का संदेश सुनाने के लिए गए। आज एक मीटिंग जेल में सब कैदियों को इकट्ठा कर की गई। मैं वहाँ मौजूद था। समाज के अत्याचारों से पीड़ित ये बेचारे अपराधी पशुओं की तरह जेल में जीवन व्यतीत करते हैं। इनके साथ पेन्टीकास्टल गिरजे के लोगों का बन्धुत्व का व्यवहार देख मेरा चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। कैदी भी नए लोगों से मिल, उनकी प्रेम की बातें सुन तथा धार्मिक उपदेश को पाकर बड़े खुश हुए। वे बड़े ध्यान से उपदेशों को सुनते थे। यह काम मुझे बड़ा प्यारा लगा। हमारे देश में हिन्दुओं को तो इस प्रकार की सेवा का कुछ भी ध्यान नहीं, इसीलिए हिन्दू समाज में परस्पर सहानुभूति और संगठन की अत्यधिक कमी है। जिस समाज के नेता अपने निर्धन और दुःखी लोगों के सुधार की चेष्टा नहीं करते, उस समाज में सामूहिक बल पैदा नहीं हो सकता। हम अपना समय फजूल बातों में बिताते हैं, यदि हम उसी समय को अपने दूसरे निर्धन और दुःखी भाइयों के साथ सहानुभूति करने में बिताएं तो समाज का कितना बड़ा उपकार हो।

आज रात को गिरजे में मीटिंग हुई, पादरी ओपे का व्याख्यान हुआ। उस व्याख्यान में उन्होंने अज्ञानवश हिन्दू धर्म पर कटाक्ष कर दिए। व्याख्यान के बाद मैंने उठकर हिन्दू धर्म की व्याख्या की, इस पर कुछ लोग असंतुष्ट होगए, पर रासमन का हृदय बड़ा उदार निकला। रात को मैं रासमन के कमरे में सोया।

मैंने फीनिक्स छोड़ने का निश्चय कर लिया। भारत लौटने को

इच्छा प्रबल हो उठी। विचार यह हुआ कि अलपासो होकर सेन्ट लुई चलूं और वहाँ से वाशिंगटन होता हुआ न्यूयार्क पहुंचूं। बस यही प्रोग्राम बनाया।

६ दिसम्बर, मंगलवार। आज भाई रासमन मेरी तैयारी का प्रबंध करते रहे। अपने कई एक मित्रों के नाम इन्होंने मुझे परिचयदायक पत्र दिए और अपने पिता के नाम भी एक पत्र लिख दिया। फीनिक्स से अलपासो की तरफ खौफनाक रास्ता होने के कारण भाई रासमन मुझे पैदल जाने से मना करते थे, और चूंकि पूरब की तरफ दिन-प्रतिदिन जाड़ा बढ़ता ही जायगा और बर्फ पड़ने लगेगी, इसलिए पैदल चलना असंभव हो जायगा। इनकी इच्छा थी कि मैं फीनिक्स से न्यूयार्क का टिकट ले लूं और जाड़े के कठोर दुःख से छूट जाऊं, पर मेरे पाँव में तो चक्र था और सिर पर शनिचर सवार था। भला मुझे टिकट कहाँ से मिल जाता! मुझे तो अभी अरीज़ोना, टेकसास और न्यू मैक्सिको के बीहड़ मैदानों में घूमना था और बर्फ में रातें काटनी थीं। सच है, जहाँ का जलवायु लेना होता है, मनुष्य कर्मों के वेग से उसी ओर खिचा चला जाता है। दिसम्बर का महीना है, पैदल चलने में भयंकर कष्ट होंगे, पास कपड़ा नहीं, और हो भी तो उसे लाद कर पैदल कैसे घूमा जा सकता है। कुछ भी हो, सब कष्ट सह कर यह सफर करना होगा। ऐसा निश्चय कर मैंने चलने की ठान ली। सब प्रेमियों से मिल लिया और रात को रासमन जी के यहाँ शान्ति से सो गया।

७ दिसम्बर, बुधवार। आज सवेरे सवा नौ बजे मैं फीनिक्स से मेरीकुपा जाने वाली गाड़ी में सवार हुआ और साढ़े दस बजे वहाँ पहुंच गया। ११॥ बजे दिन के करीब एक मालगाड़ी अलपासो की तरफ जाती थी। मैं उसी पर चढ़ गया, पर गाड़ी ने मुझे १५ मील से अधिक न जाने दिया। तब मैं पैदल चला। मेरे इर्द-गिर्द बिलकुल रेगिस्तान था। कांटेदार झाड़ियों के सिवाय और कुछ नहीं था। ४॥ बजे के करीब मैं

कासाग्रान्डा में पहुंचा। यहाँ विचित्र तरह के जानवर देखने में आए। सब तरह के होबो यहाँ एकत्रित थे और मालगाड़ी का इन्तजार कर रहे थे। रात के नौ बजे मालगाड़ी आई। पन्द्रह होबो मेरे साथ अंधेरे में दौड़ कर उस पर चढ़ गए। बाहर की लोहे की सींखचों को पकड़ कर मैं खड़ा होगया। मालगाड़ी तेज़ी से जा रही थी। मेरी जान जोखिम में थी, मैंने दृढ़ता से लोहे के सींखचों को पकड़े रक्खा। रेडराक स्टेशन पर गाड़ी खड़ी होगई। मैं जल्दी से उतर पड़ा। अभी अंधेरा था, शायद रात के दो बजे होंगे। आग जला कर रात काटी।

८ दिसम्बर, बृहस्पतिवार। प्रभात के समय मालगाड़ी फिर पकड़ी और टुकसन से सोलह मील इस तरफ एक छोटे से स्टेशन पर पहुंचा। यहाँ मैंने हाथ-मुंह धोकर डबलरोटी खरीदी, जलपान किया और ताजा होकर टुकसन की तरफ चला। मैं रेगिस्तान के बीच जा रहा था। तीन होबो और मेरे साथ थे। शाम को साढ़े चार बजे हम लोग टुकसन पहुंचे।

टुकसन अरीज़ोना रियासत के दक्षिण भाग में पुराना नगर है। पहिले अरीज़ोना का यही प्रधान नगर था। इसकी आबादी बाईस हजार है। यहाँ गेहूं और जौ पैदा होते हैं। बैल, भेड़ तथा सुअर भी पाले जाते हैं। टुकसन के निकट सोने, चांदी और तांबे की खानें हैं। उत्तर-पूरब की तरफ सान्टाकैन्टेलीनस और रिकनस की सूखी पहाड़ियाँ हैं, और उत्तर-पश्चिम की तरफ टारयेलस की खुश्क पहाड़ियाँ हैं। यहाँ ढोरों के चरने के लिए एल्फाफा घास भी होता है। सेन्ट जेबियर मिशन के प्रचारकों का स्थान शहर से ९ मील के फासले पर है। सन् १६९० में इस मिशन की बुनियाद यहाँ डाली गई थी। उस समय अरीज़ोना के प्राचीन निवासियों को ईसाई बनाने के लिए रोमन कैथोलिक पादरियों ने यह मिशन स्थापित किया था। अरीज़ोना रियासत का विश्वविद्यालय यहीं पर है और अमरीकन इंडियनों की शिक्षा के लिए एक स्कूल भी यहाँ स्थापित है। यूनाइटेड

स्टट्स आफ् अमरीका के पुराने शहरों में से एक टुकसन भी है। सन् १५२२ में यहाँ पहले-पहल बस्ती आरम्भ हुई थी। यहाँ मैक्सिकन लोग खूब बसे हैं। इनके घर हमारे गाँव की तरह एक-दूसरे के साथ मिले हुए होते हैं; वेष-भूषा भी हमारे ग्रामीण घरों जैसी होती है।

रात को सेव और बिस्कुटों से पेट भरा और एक होटल में कमरा लेकर सो गया।

९ दिसम्बर, शुक्रवार। टुकसन में चीनियों की दुकानें देखनें में आईं। दुकानों के ऊपर मोटे-मोटे चीनी अक्षरों में नाम लिखें हुए थें। जिस प्रकार फिलीपाइन द्वीप के मनीला नगर में मैंनें चीनियों की दुकानें देखी थीं, इसी प्रकार यहाँ भी देखनें में आईं। सवेरे में टुकसन से अलपासो की तरफ चला। रास्ते में स्थान-स्थान पर घुमक्कड़ होबो लोगों के हाथों से खोदे हुए चिन्ह दिखलाई दिए। चाकू से लकड़ी में खोद कर नाम लिखें हुए थे। कहीं तीर का चिन्ह खुदा था, कहीं पेंन्सिल से नाम लिखे हुए थें; जो जगह जिसने पाई वहीं अपनें नाम की रट लगाई। यही देखता हुआ मैं बढ़ा चला गया। अमरीका का सबसे बड़ा होबो पैन्न हुआ है। उसने कई बार न्यूयार्क से कैलेफोर्निया और कैलेफ़ोर्निया से न्यूयार्क का सफर किया है। उसका नाम जगह-जगह दिखाई दिया। जिस तरफ वह गया उसने अपने नाम के आगे उसी दिशा का सूचक चिन्ह बना दिया और साथ ही महीना तथा तारीख भी लिख दी। माल-गाड़ियों पर चढ़ना, गार्ड को धोखा देना, उसके लिए साधारण बात थी। मैं सारा दिन पैदल चला। रात को कहीं आराम करने की जगह न मिली, इसलिए बढ़ता ही गया। सारी रात जूता चटखाते गुजरी।

यहाँ पर मुझे थोड़ा वर्णन उन खुफिया लोगों का कर देना चाहिए जिन्होंने सनबर्नाडीनो से मेरा पीछा करना आरम्भ किया। फ्रैड मूअर बड़ा जबर्दस्त साम्यवादी था और ब्रिटिश गवर्नमेंट साम्यवाद का प्रचार रोकने पर तुली हुई थी। सनबर्नाडीनो में जो व्याख्यान मैंने दिए और रैड-

लैंड्स में ब्रिटिश गवर्नमेंट के अत्याचारों का जो चित्र मैंने शिक्षित समुदाय को दिखलाया, उसकी खबर बराबर न्यूयार्क भेजी गई और वहाँ से हिदायतें आने पर मेरी देख-रेख रखने वाले गोइन्दे मुकर्रर कर दिए गए। षड्यन्त्र यह रचा गया कि इस पैदल यात्रा के अन्दर ही इस घुमक्कड़ का अन्त कर दिया जाए, जिससे यह भारत पहुंच ही न सके। मैं चूंकि माल-गाड़ियों में चढ़ बैठता था, इस कारण गार्ड लोग बड़ी आसानी से मुझे गाड़ी से गिरा सकते थे। नौकरशाही के टिकटिकियों ने उन्हीं के द्वारा काम निकालने का प्रयत्न किया और वैसी ही योजना बना डाली।

पाठक, मेरी इस आने वाली पैदल यात्रा में इस षड्यन्त्र के प्रमाण पायेंगे और इस बात को स्पष्ट रूप से अनुभव कर लेंगे कि मारने वाले से बचाने वाला बड़ा जबर्दस्त है और जिस पर भगवान् का रक्षा का हाथ रहता है उसका कोई बाल बांका नहीं कर सकता।

१० दिसम्बर, शनिवार। सवेरे पैदल जा रहा था। सारा दिन पैदल चला। संध्या के समय पेन्टानो पहुंचा। रात होगई थी। स्टेशन की रेल की पटरी पर एक मालगाड़ी का डिब्बा खड़ा था। मैं धीरे-धीरे उसके पास गया। उसमें लैम्प का प्रकाश हो रहा था। सात गोरे नौजवान बैठे हुए आपस में खूब हँस-हँस कर बातें कर रहे थे। मैं अंधेरे में खड़ा था इसलिए उन्होंने मुझे नहीं देखा, पर मैं उनके चेहरों को भली भांति देख सकता था। एक नवयुवक के सुन्दर दयालु चेहरे ने मुझे हिम्मत दिलाई और मैं आगे बढ़ा। मुझे देखते ही उस युवक ने स्वागत-पूर्वक "आइये" ऐसा कहा। मैं गाड़ी पर चढ़ गया और उनके पास जाकर खड़ा होगया। बात करने पर मालूम हुआ कि वे उस रेलवे लाइन का निरीक्षण करने के लिए भेजे गए हैं। जब मैंने अपनी गाथा सुनाई तो बड़े प्रेम से मुझे भोजन खिलाया। भारतवर्ष की राजनीतिक परिस्थिति पर रेडलैण्ड्स में मैंने एक व्याख्यान तय्यार किया था। वह मैंने इन लोगों को सुनाया। इसे सुनकर वे बड़े प्रसन्न हुए और मुझे

दो डालर दिए। यहाँ पर ठहरने के लिए कोई स्थान न देख मैंने आगे चलने की ठानी और एक मालगाड़ी के गार्ड को बारह आने देकर मैं गाड़ी में बैठ गया। २० मील पर बेनसन जंकशन था। गाड़ी रात के दो बजे वहाँ पहुची। मैं एक बन्द मालगाड़ी में, जिसका मुंह ऊपर की तरफ से खुलता था, बैठा था। दुर्भाग्यवश यहाँ गार्डों की बदली होती थी। जब गाड़ी चल पड़ी तो दूसरे गार्ड ने आकर मुझको फौरन उतर जाने को कहा। मैंने उससे बहुत कुछ प्रार्थना की पर उस हत्यारे ने मेरी एक न सुनी और गाड़ी से धक्का देने की धमकी दी। गाड़ी बेनसन से १३ मील अलपासो की तरफ आ चुकी थी। अंधेरे में मुझे कुछ दिखाई नहीं देता था। मालगाड़ी के नीचे एक पहाड़ी नाले का पुल होने के कारण पैर रखने को जगह नहीं थी। मुझे इसका कुछ भी ज्ञान न था, अतएव गाड़ी से उतरते ही मैं पुल के नीचे नाले में जा गिरा। उस गार्ड को पुल के विषय में मालूम था। इसीलिए उसने मेरे साथ ऐसी दुष्टता का व्यवहार किया, जिससे गिरने की चोट से मेरा अंग-भंग हो जाए या मेरा खात्मा ही।

११ दिसम्बर, रविवार। २० फुट नीचे गिरने के कारण मुझे चक्कर आ गया। ईश्वर की कृपा हुई कि मैं रेतीली भूमि पर गिरा, इसलिए बिलकुल चोट नहीं आई। जब मेरा सिर ठिकाने आया तो मैं वहाँ से उठा और नाले से निकल कर रेल की सड़क-सड़क चलने लगा। एक मील चल कर जब मैंने अपनी आँखों को छुआ तो चश्मा नदारद! उल्टे पाँव फिर लौटा और नाले में जाकर चश्मा तलाश करने लगा। चश्मा नहीं मिला, तब अत्यन्त दुःखी होकर मैंने हाथ जोड़ कर ईश्वर से सहायता माँगी। रात के ढाई बजे, उस अंधेरी रात में पहाड़ी नाले के बीच बैठा हुआ मैं उस दयालु प्रभु से सहायता माँग रहा था। ईश्वर ने मेरी प्रार्थना सुन ली और मेरा चश्मा मुझे मिल गया। चश्मे के मिल जाने से मुझे अपना पिछला दुःख बिलकुल भूल गया और मुझे विश्वास होगया कि प्रभु मेरी

रक्षा कर रहे हैं। मैं नए उत्साह से उस पहाड़ी नाले से निकला और रेल की पटरी पर हो लिया। ६ मील जाकर एक छोटा सा स्टेशन मिला, जिसकी पटरी पर कुछ मालगाड़ियाँ खड़ी थीं। इनमें मैक्सिकन मजदूर रहते थे जो अपने दरवाजे बन्द किए सो रहे थे। बड़ी कठिनाई से मैंने एक का दरवाजा खुलवा कर दियासलाई माँगी और गाड़ियों के पास हाते से बाहर आग जलाई। आग खूब तेज हो उठी। आग सेकते-सेकते दिन चढ़ गया। सवेरे आठ बजे के करीब एक मालगाड़ी आई। उस पर चढ़ने की कोशिश में मैं नीचे गिर गया। कुछ चोट लगी, फिर चढ़ने की कोशिश की, लेकिन कंडक्टर (Guard) ने चढ़ने नहीं दिया। दिन भर इसी सेक्सन हाउस में रहा। रात के समय मैंने फिर आग जलाई। मेरे साथ एक फ्रेन्च कैनेडियन भी था। हम दोनों जने धूनी के पास सो रहे।

१२ दिसम्बर, सोमवार। प्रातःकाल उठकर पैदल चला। रास्ते में किसी प्रकार की खेती देखने में नहीं आई। भूमि बिलकुल बियावान पड़ी है। कभी-कभी देखने वाले को इन रेगिस्तानों में जलाशय का भ्रम हो जाता है। भूमि समतल है पर है रेतीली। मैं बराबर पैदल चला गया। शाम को कोचीज पहुंचा। यहाँ मेरी भेंट गिरजे के पादरी मिस्टर चौक से हुई। आपने एक विश्रामगृह में मेरा ठहरने का प्रबन्ध कर दिया और एक पत्र अपने भाई के नाम लिख दिया, जो विलकाक्स में रहते थे।

१३ दिसम्बर, मंगलवार। सबेरे विलकाक्स का रास्ता लिया। रास्ते में भूमि बराबर समतल और रेतीली मिली, किसी किस्म की पैदावार दिखाई नहीं दी। ११ बजे के करीब विलकाक्स पहुंचा और भाई चौक से भेंट की, जिन्होंने मुझे बड़े प्रेम से अपने पास ठहराया। उनकी स्त्री भी बड़ी सुशीला थी। उस नेक औरत ने मुझे पेटभर भोजन कराया। मैंने यहाँ अपने कपड़े धोए और यात्रा की धूल-मिट्टी दूर की। इस छोटे से कस्बे में देखने लायक कोई बात नहीं थी। यहाँ केवल खानें

के लिए पशु पाले जाते हैं। रात को मिस्टर चीक के यहाँ आराम से सोया।

१४ दिसम्बर, बुधवार। विलकाक्स से सवेरे चला और मृगतृष्णा-वत् मैदानों में से गुजरता हुआ मध्याह्न बाद दो बजे बोई पहुंचा। बोई में एक छोटा सा स्कूल है, मैं उसे देखने के लिए गया। एक छोटे से हाल में ४० के करीब बच्चे अपनी-अपनी पोथी-पट्टी लेकर बैठे थे और उनके सामने दीवार पर स्वनामधन्य जार्ज वाशिंगटन की बड़ी तस्वीर थी। इस रेगिस्तान में भी बच्चों का स्कूल देखकर मेरा चित्त बड़ा खुश हुआ। पढ़ानेवाली अध्यापिका से मैंने अपने घूमने का हाल कहा। वहाँ से निपट कर मैं बोई स्टेशन पर आया और मुसाफिरघर में बेंच पर बैठ गया। शाम के समय एक हट्टा-कट्टा स्टेशन का कर्मचारी आया और उसने मुझसे पूछा—"क्या तुम्हारे पास रेल पर चढ़ने का टिकट है?" मेरा उत्तर "नहीं" में सुनकर उसने मुझे स्टेशन के हाते से बाहर कर दिया। अब मैं क्या करता? अत्यन्त लाचार होकर मैंने स्कूल के हाते के पास लकड़ी के छोटे-छोटे टुकड़े इकट्ठे कर आग जलाई पर उतनी आग से होता क्या था! असह्य शीत पड़ने लगा था। रात के १२ बजे मैं बोई से चला। मैक्सिकन लोगों के घरों के आस-पास से गुजरता हुआ मैं रेल की सड़क पर जा रहा था। रात चाँदनी थी। इर्द-गिर्द रेगिस्तान के सिवाय कुछ दिखाई नहीं देता था। ५-६ मील चलने के बाद मुझे आग दिखाई दी। उसके पास जाकर मैं क्या देखता हूं कि एक बुड्ढा आदमी चार स्लीपरों को आग लगा कर धूनी रमाए बैठा है। पूछने पर पता लगा कि वह इटालियन है। मैं भी उसके पास बैठकर आग सेकने लगा। कैसी सख्त सर्दी थी! जब छाती सेकता तो पीठ ठंड के मारे व्याकुल हो जाती और जब पीठ सेकता तो छाती सुन्न हो जाती। इस प्रकार आग सेक कर रात बिताई। आज बिलकुल नहीं सोया।

१५ दिसम्बर, बृहस्पतिवार। चारों तरफ रेगिस्तान है। भगवान्

सूर्य्यदेव अभी निकले नहीं थे, बिलकुल सन्नाटा था। बूढ़ा इटलियन और मैं दोनों धूनी के पास से उठ खड़े हुए और कपड़े झाड़ कर चलने के लिए तय्यार होगये। धूनी रमाकर जिन्दगी व्यतीत करने के दिन आ गये थे; सर्दी ने अपना ज़ोर बांधना शुरू कर दिया था। दोनों जने बातें करते हुए चले गये। तार के खम्भों के सिवाय और किसी की सूरत उस रेगिस्तान में दिखाई नहीं पड़ती; हां जगह-जगह धूनियों के चिन्ह होबो लोगों के उधर से गुज़रने की सूचना देते थे। करीब ११ बजे सीमन पहुंचे, मगर ठहरे नहीं, क्योंकि वहां खाने को कुछ नहीं मिला। सीमन में अरीज़ोना की रियासत खत्म होती है और आगे स्टाइन्स स्टेशन न्यू मेक्सिको की हद में है। हम दोनों जने स्टाबन की तरफ बढ़े।

रियासत अरीज़ोना के रेगिस्तानों से मैं निकल गया। इस रियासत में जो वर्णन करने योग्य बातें थीं उनका दिग्दर्शन मैंने करा दिया है। जो खास दो नगर हैं उनकी सैर भी हो चुकी है। अब आगे न्यू मैक्सिको के बीच में से होकर न्यूयार्क की तरफ जाना होगा। दिसम्बर का महीना सिर पर है। इस विकट शीत ऋतु में न्यू मैक्सिको के शीतप्रधान मैदानों में मुझ पर क्या बीती, इसका ब्यौरा अपने पाठकों को सुनाता हूँ।

इकत्तीसवां अध्याय

रियासत न्यू मैक्सिको की खूनी सर्दी के बीच

शाम के समय स्टाइन्स में पहुंचे। न्यू मैक्सिको की रियासत आरम्भ होगई। इस रियासत में मैक्सिकन लोग अधिक आबाद हैं, इसलिए इस रियासत का नाम उनकी जन्मभूमि मैक्सिको के नाते न्यू मैक्सिको पड़ गया है।

स्टाइन्स में मैक्सिकन मजदूर एक डालर रोज पर काम करते थे, भला यहाँ हमारी क्या पूछ थी, इसलिए यहाँ कोई मजदूरी नहीं मिली। रात को फिर धूनी रमाई और आग के पास बैठकर रात बिताई। नींद बिलकुल नहीं आई।

१६ दिसम्बर, शुक्रवार। सवेरे उठकर फिर कदम बढ़ाया। स्टाइन्स से लार्ड्सबर्ग १७ मील है। वहाँ मध्याह्न तक पहुंच गए। यहाँ एक जर्मन कारीगर से भेंट हुई जिसकी उम्र ३२ वर्ष की थी। उसके साथ बातें होने लगीं। हम लोग रेल के स्लीपरों पर बैठे थे। उस जर्मन ने अपनी मनोरंजक कथा इस प्रकार बतलाई:—

"मेरा जन्म जर्मनी की बेवेरिया रियासत में हुआ था। बचपन से ही मुझे घूमने का बड़ा शौक था। माता-पिता की आज्ञा के बिना ही मैं अकेला इर्द-गिर्द के मेलों में चला जाता था। माँ-बाप ने मेरी ऐसी प्रकृति देखकर मुझे बारह वर्ष की अवस्था में एक कारीगर की दुकान पर बैठा दिया। वहाँ मैं मशीनों का काम सीखने लगा। मेरी फुर्तीली आदत को देखकर मेरा उस्ताद बड़ा खुश हुआ और वह मुझे बहुत चाहने लगा। एक दिन डाक वाले ने उसके हाथ में एक चिट्ठी लाकर दी, जिस पर अमरीका के टिकट लगे हुए थे। उस चिट्ठी को देखकर

मेरे मन में बड़ा कौतूहल हुआ। जब उस्ताद चिट्ठी पढ़ चुके तो मैंने उनकी ओर देखा। वे हँसकर मुझसे कहने लगे—

"देखते क्या हो, मुझे तो अमरीका जाना पड़ेगा।"

मैं कूदकर खड़ा होगया और बड़े उत्साह से बोला—

"क्या मुझे भी ले चलोगे?"

उस्ताद ने हँसते हुए कहा—

"तुम्हारे माँ-बाप नहीं जाने देंगे।"

मैंने जोर से कहा—

"जाने क्यों नहीं देंगे! मैं अभी उनकी आज्ञा माँगने जाता हूं।"

"इतना कह कर मैं दुकान से घर की ओर भागा और घर आकर मां के गले से लिपट गया। वह बड़ी हैरान हुई। जब मैंने अपने दिल की बात कही तो वह रोने लगी। मैं उसका एकमात्र लड़का हूं। जब पिता जी घर आये तो घर में सलाह होने लगी। पिता जी ने मां को समझाया कि लड़का अमरीका जाने से बड़ा आदमी बन जायगा और खूब पैसा कमायेगा। यहां जर्मनी में क्या रखा है। अकेला तो जा नहीं रहा। इसके उस्ताद इसके साथ हैं। एक सप्ताह तक घर में माता जी का रोना-धोना होता रहा। आखिर बड़ी मुश्किल से माता जी ने मेरा जाना स्वीकार किया। मेरे हर्ष की सीमा न रही। मैं दिन भर अमरीका के विषय में सोचा करता और इस भूमि के मनमाने दृश्य बनाकर हवाई घोड़े दौड़ाया करता। मैं सोचता था कि अमरीका जाकर झट करोड़-पति बन जाऊंगा और अपने मां-बाप को अमरीका में बुलाकर खूब मोटरों में घुमाऊंगा।

"आखिर चलने का दिन आया। मेरे उस्ताद को अमरीका के पिट्सबर्ग नगर के कारखाने में नौकरी मिल गई थी, इसलिए इनके पास कारखाने वालों ने जहाज और रेल का टिकट आदि सब भेज दिया था। मेरे सफ़र का खर्च मेरे उस्ताद ने दिया और हम लोग खुशी से

हैमबर्ग पहुंचे। हैमबर्ग से जहाज में बैठकर न्यूयार्क आये और न्यूयार्क से रेल में बैठकर पिट्सबर्ग पहुंच गये। मेरे लिए यह यात्रा एक अद्भुत चीज थी। मैं आंखें फाड़-फाड़ कर सब नई वस्तुओं को देखता था। पिट्सबर्ग में आकर मैंने बड़ी मेहनत से काम सीखना शुरू किया और चार-पांच वर्षों में बड़ा अच्छा होशियार कारीगर बन गया। कारखाने वाले भी मुझे चाहने लगे। अपने माता-पिता के पास मैं बराबर पैसा भेजने लगा। इस प्रकार वहां काम करते हुए मेरे कई वर्ष बीत गये।

"एक रात मैं एक थियेटर देखने के लिए गया। वहां एक अत्यन्त रूपवती लड़की नाटक कर रही थी। मेरा मन उसके प्रेम में मग्न हो गया और घर लौट कर मुझे रात को नींद नहीं आई। चार-पांच दिन के बाद नाटक करने वाली कम्पनी पश्चिम की ओर चल दी। मैं भी नौकरी छोड़कर उसके पीछे-पीछे हो लिया। आज उस बात को बीते सात वर्ष होगये। तबसे उस लड़की के दर्शन मुझे नहीं हुए। मैंने उसकी खोज में सारा अमरीका छान लिया और खराब-खस्ता हाल होकर मारा-मारा फिरता हूं।"

वह बात कर ही रहा था कि इतने में एक पैसेन्जर गाड़ी लार्ड्सबर्ग के स्टेशन पर पहुंची। हम लोग उठ कर उसे देखने लगे। जब गाड़ी चल पड़ी तो वह जर्मन कारीगर दौड़कर इंजन के पास के डिब्बे में चढ़ गया। हम लोग देखते ही रह गये।

जब गाड़ी चली गई तो मैं और मेरा इटालियन साथी दोनों लार्ड्सबर्ग से चल पड़े और स्टेशन से चार मील आगे बढ़ कर रात काटने के लिए आग जलाने लगे। चार स्लीपरों को मिलाकर नीचे आग लगा दी। थोड़ी देर में आग भभक उठी और हम उसके इर्द-गिर्द बैठ गये। बूढ़े इटालियन ने मुझे अभी तक अपनी कोई बात नहीं बतलाई थी। वह चुपचाप रहता था और सड़क पर चलते समय

हमेशा ज़मीन की तरफ देखता रहता था। मुसाफ़िरगाड़ियों में जो रोटी के टुकड़े अथवा फलों के छिलके यात्री लोग फेंक देते थे, वह उन्हें उठाकर सारा रास्ता चरता जाता था। उसके इस व्यवहार से पहिले तो मुझे बड़ी हंसी आई और घृणा भी उत्पन्न हुई, पर बाद में मैं उसकी अवस्था पर दया करने लगा। आज रात को जब हम दोनों उस रेगिस्तान में आग के पास बैठ थे तो मैंने उससे उसकी जीवन-कथा पूछी। मेरा प्रश्न सुनते ही वह चौंक पड़ा और लगा इधर-उधर देखने। उसके इस प्रकार के व्यवहार से मैं थोड़ा भयभीत हुआ और मैंने सोचा कि यह बूढ़ा खुर्रांट कोई भारी गुनाह करके भागा हुआ है, जो मेरा प्रश्न सुनते ही इस प्रकार चौकन्ना होगया है। प्रायः होबो लोग एक-दूसरे की जीवन-कथा जानने की चेष्टा नहीं करते, क्योंकि इसमें जान का खतरा रहता है। हां, अत्यन्त परिचय होने पर एक-दूसरे की प्राइवेट बातें जानने में कोई हर्ज नहीं समझा जाता। मेरे उस प्रश्न को सुनकर वह इटालियन पहले चौकन्ना-सा हुआ, पर पीछे शान्ति से बोला--

"आप मेरे विषय में जानकर क्या करेंगे? मेरी आपकी बहुत थोड़ी मुलाकात है।"

मैं उसका जवाब सुन कर चुपका हो रहा और इटालियन भी अधिक नहीं बोला। सारी रात हम दोनों चुपचाप आग सेकते रहे। दोनों में से कोई भी नहीं सोया। मेरे प्रश्न ने उसकी भी नींद बिगाड़ दी।

१७ दिसम्बर, शनिवार। भोर होते ही वह इटालियन मुझे छोड़ कर चला गया और मैं अकेला आग के पास खड़ा उसे देखता रहा। धीरे-धीरे मैं भी चला। सिपार स्टेशन के पास मैं झपट कर एक माल-गाड़ी में चढ़ गया और डेमिंग पहुंचा। यहाँ मेरी एक दूसरे जर्मन नव-युवक से भेंट हुई। डेमिंग बहुत छोटा सा कस्बा है, यहाँ मेक्सिकन लोगों की आबादी है। १२ आने के पैसे देकर मैं एक होटल में सो गया। मेरे पास केवल ६५ सेन्ट अर्थात् दो रुपये रह गए।

१८ दिसम्बर, रविवार। सवेरे होटल से निकला और पच्चीस मील चलकर कैम्ब्रे पहुंचा। खुश्क पहाड़ियों के बीच में से आज सफर करना पड़ा। डेमिंग मेमब्रे घाटी में है। आगे यह खुश्क पहाड़ों का सिलसिला चला गया है। मैं कैम्ब्रे स्टेशन पर बैठा ही था, इतने में एक मालगाड़ी आ गई और वह जर्मन नवयुवक उसमें से उतर कर मेरे पास आया और पूछा--

"क्या आपके पास कुछ पैसे हैं ? मैं भूख से मर रहा हूं।"

मैंने उसे अढाई आने दिए। उसने एक रोटी खरीदी और मेरे पास बैठ कर खाने लगा। उसने दो दिन से कुछ नहीं खाया था। रोटी खाकर वह जरा चेतन हुआ। कैम्ब्रे से अलपासो ६१ मील है। इसकी इच्छा दूसरी मालगाड़ी में चढ़ कर जाने की थी। एक घंटे के बाद दूसरी मालगाड़ी आई और वह उस पर चढ़ कर चला गया। इस वक्त संध्या के सात बजे थे। मैं पैदल चला और बराबर सारी रात चलता रहा। आज बड़ा शीत था, मेरे हाथ ठिठुर गए थे; पर मरता क्या न करता ! मैं तेजी से बढ़ा चला गया। पहाड़ जले हुए से मालूम पड़ते थे। ४० मील चलकर मैं लैनार्क के करीब पहुंचा। यहाँ ठहरने के लिए कोई स्थान नहीं था। एक मेक्सिकन मजदूर अपने लिए रोटी बना रहा था। थका हारा, भूखा-प्यासा, मैं उसके पास जा बैठा। उसने बड़ी दया कर मुझे आठ चपातियाँ, जिन्हे वह अपनी भाषा में ततिया कहता था, खाने को दीं और साथ ही थोड़े से पके हुए मटर दिए। मैंने भोजन कर ठंडा पानी पिया और उसका हृदय से धन्यवाद कर आगे चला।

१९ दिसम्बर, सोमवार। पहाड़ों के ऊपर से बढ़ा चला जा रहा था। दिन निर्मल होने के कारण रात की सर्दी शरीर में से निकल गई। शुद्ध पवन फेफड़ों मे जा रही थी। रात के जागरण से सिर कुछ भारी था, पर मैंने हिम्मत नहीं हारी और बढ़ता ही गया। दो बजे के बाद ऊंची पहाड़ी पर खड़े होकर जो मैंने दृष्टि डाली तो सामने रायोग्रांडे

दिखाई दी। यह नदी न्यू मेक्सिको को टेक्साज रियासत से जुदा करती है और हमारी नर्मदा की भाँति चट्टानों के बीच में बहती है। इसके उस पार अलपासो प्रसिद्ध रेलवे जंक्शन है। दो मील चलकर मैं अलपासो पहुंचा।

अलपासो बड़ा शहर है। इसकी आबादी पचास हजार है, जिसमें मेक्सिकन लोगों की आबादी बहुत ज्यादा है। यह टेक्साज रियासत की पश्चिमी हद के किनारे रायोग्रांडे नदी पर बसा है। समुद्र की सतह से ३७०० फीट ऊंचाई पर होने के कारण जलवायु अधिक सर्द और नीरोग है। यहाँ अंगूर खूब होते हैं और सोने-चांदी की खानें भी इसके इर्द-गिर्द हैं। अलपासो आधुनिक वैज्ञानिक ढंग का नया शहर है। इसके चौड़े बाजार, विशाल भवन, बिजली की गाड़ियाँ सब इसकी उन्नति की सूचक हैं। आठ रेलवे कम्पनियों के जंक्शन यहाँ पर हैं और यहाँ से सब तरफ की गाड़ियाँ बड़ी आसानी से मिलती हैं। यहाँ Y. M. C. A. की इमारत भी खासी बड़ी है। शहर के इर्द-गिर्द कल-कारखानों की भी कमी नहीं। यहाँ पर अनाज और सब्जी-तरकारी भी खूब पैदा होती है। लोहा और जस्त भी खानों से निकाला जाता है।

शहर में घुसकर मैं Y. M. C. A. के दफ्तर में पहुंचा और डेढ़ रुपया देकर कमरा किराये पर ले लिया। हाथ-मुंह धो, कपड़े उतार, दरवाजा बन्द कर मैं बिछौने पर सो गया। मुझे दीन-दुनिया की होश न रही।

२० दिसम्बर, मंगलवार। आज दिन के ११ बजे मेरी आँख खुली। उठकर नित्य के शौचादि कर्म से निवृत्त हुआ और आदमी बना। अब काम की तलाश में बाहर निकला। लोग क्रिसमस त्यौहार की तय्यारियों में लगे थे। दुकानें सजाई जा रही थीं, सबको अपनी-अपनी पड़ी थी। मैं सारा दिन बाजारों में घूमता रहा। किसी ने सहारा नहीं दिया। गिरजों में गया, वहाँ भी किसी ने मेरी बात नहीं पूछी। गिरजे के पादरी क्रिस-

मस्त त्यौहार का तर माल उड़ाने की खुशी में मग्न थे, भला उन्हें मेरे जैसे भूखे-नंगे से क्या मतलब ! निराश होकर रात को Y. M. C. A. में लौटा और भूखा-प्यासा सो रहा।

२१ दिसम्बर, बुधवार। सवेरे उठ कर फिर नौकरी की तलाश में लगा। एक आदमी मुझे गली में मिला। उसको एक ऐसे मजदूर की जरूरत थी जो घर की भट्ठी में आग जलावे। आजकल शीत होने के कारण घरों के नीचे की भट्ठियों में आग जलाने की जरूरत पड़ती है, जिससे सारा मकान गर्म रहे। मैंने नौकरी स्वीकार कर ली और उसके घर के सबसे नीचे के कमरे में जाकर भट्टी झोंकने लगा। दिन भर काम किया रात को एक गिरजे में व्याख्यान सुनने की इच्छा से पहुंचा। वहाँ उपदेश कहाँ, खाली न्यौते उड़ाने की बातें हो रही थीं। मैं इन अमीर गिरजों के पेटू पादरियों की हीन दशा देख कर बड़ा दुःखी हुआ और सोचने लगा कि ऐसे ही लोगों के कारण स्वतन्त्र देशों में क्रान्तिकारी मनुष्यों का जन्म होता है। गरीब आदमी भूखे मरते हैं और ये धर्म के ठेकेदार मौज उड़ाते हैं। हिन्दुस्तान के दुःखी गरीब तो प्रारब्ध के गढ़े में गिरकर निराशावादी हो जाते हैं, लेकिन यूरोप और अमरीका के गरीब मजदूर पेट की ज्वाला से संतप्त होकर पैसेवालों के दुश्मन बन जाते हैं, तभी क्रांतिकारी संस्थाओं का जन्म होता है। धन और राज्य के मद में अंधे लोग कारणों को दूर करने का यत्न नहीं करते। वे क्रान्तिकारियों को गोलियों से मार देते हैं, फांसी पर चढ़ा देते हैं। परिणाम यह होता है कि जनता अत्याचारियों की अधिक विरोधी हो जाती है और समाज में अशान्ति बढ़ती जाती है।

यही सोचता हुआ मैं अपनी नौकरी पर लौटा और भट्टी के पास अखबार बिछाकर उन्हीं पर सो रहा।

२२ दिसम्बर, वृहस्पतिवार। भट्टी में आग झोंक रहा था। १० बजे तक आग झोंकी। घर के मालिक की स्त्री बड़ी खराब थी, इसलिए मैंने

नौकरी छोड़ दी । सात रुपये मजदूरी के लेकर मैं डाकखाने गया। न्यूयार्क से मेरी कई चिट्ठियाँ आई हुई थीं । उन्हें लेकर मैंने यहाँ से चलने का निश्चय किया । Y. M. C. A. वालों के पैसे चुका दिए और दो बजे के करीब मैं अलपासो से टुकुमकारी की ओर चला । बारह मील चलकर मैंने एक जगह दो आदमियों को रेल की सड़क से थोड़े फासले पर आग के पास बैठे देखा । मैं भी उन्हीं के पास चला गया और सारी रात इन होबो बन्धुओं के पास बैठकर गुजारी ।

२३ दिसम्बर, शुक्रवार । धूनी के पास बैठे-बैठे सुबह होगई । रात को धूनी के पास तीन जने और तीनों भिन्न-भिन्न महाद्वीपों के--मैं एशिया का, दूसरा यूरोप का और तीसरा अमरीका का । वाह रे होबो-जीवन ! तीन महाद्वीपों के तीन आदमी, सड़क पर जीवन व्यतीत करने वाले, इकट्ठे धूनी के पास बैठे रहे । कहाँ-कहाँ के पक्षी और कहाँ बसेरा ! दिन चढ़ गया और पक्षी फिर उड़ गए और फिर शायद वे कभी सारी आयु इस प्रकार एकत्रित न होंगे । वाह रे होबो-जीवन !

धूनी से चलकर चार घंटे में मैं न्यूमैन पहुंचा । यह टेक्साज और न्यू मेक्सिको की सीमा पर है । मैंने अलपासो पहुंच कर टेक्साज रियासत का खाली एक जरा सा कोना काटा और फिर दुबारा न्यू मेक्सिको में प्रवेश किया । अब मैं उत्तर-पूरब की तरफ रवाना हुआ--उत्तर अधिक और पूरब कम, इसलिए सर्दी गजब की पड़ने लगी । एक तो दिसम्बर का महीना, दूसरे अमरीका के उत्तर की ओर का प्रस्थान । जाड़े ने सड़क पर जीवन व्यतीत करने वाले होबो लोगों पर धावा बोल दिया । न्यूमैन में पहुंच कर मैंने काम तलाश किया । एक गृहस्थ को लकड़ियाँ चीरने वाले मजदूर की जरूरत थी । बस, मेरा काम बन गया । मैंने फौरन कुल्हाड़ा लेकर दो घंटे में उसकी लकड़ियाँ फाड़ डालीं और छोटे-छोटे चैले बनाकर ढेर लगा दिया । उस गृहस्थ ने मुझे पेट भर भोजन कराया । क्योंकि सर्दी अधिक पड़ने लग गई थी, इस कारण मैंने मालगाड़ी पकड़ने

का विचार किया। एक मालगाड़ी आई पर मैं उसमें चढ़ नहीं सका। रात को एक टूटे हुए मकान में आग जला कर वहीं रात बिताई।

२४ दिसम्बर, शनिवार। न्यूमैन से सुबह होते ही चल पड़ा। मेरे इर्द-गिर्द रेगिस्तान था। सारा दिन उस बियाबान में रेल की पटरी-पटरी मैं अकेला जा रहा था, ठंडी हवा कानों को सुन्न करती थी। सारा दिन बराबर चलता रहा। उस रेगिस्तान में एक मकान दिखाई पड़ा। मैं उसके दरवाजे पर पहुंचा और घर की मालकिन एक स्पेनिश लेडी से कुछ काम माँगा। मुझे देखकर वह हँस पड़ी और बोली--

"इस बियाबान में तुम्हारे लिए क्या काम निकालूं? तुम्हें खाना चाहिए सो मैं खाना ला देती हूं।"

ऐसा कह वह अन्दर गई और खाना ले आई। मैंने ईश्वर को धन्यवाद कर वहीं पेट-पूजा की। इससे निश्चिन्त होकर आगे चला और संध्या को सात बजे ओरेग्रान्डी पहुंचा। यहां मेक्सिकन लोगों ने मुझे भोजन कराया। कोयले के ढेर के ऊपर आग जलाई गई। एक स्पेन निवासी मेरे साथ था। रात के १२ बजे हम दोनों एक मालगाड़ी में चढ़ गये। सबेरे पांच बजे करोजा पहुंचे।

२५ दिसम्बर, रविवार। आज क्रिसमस का त्योहार था। ईसाई देशों में इस त्योहार की बड़ी महिमा है। जैसे हमारे यहाँ दीपावली के राष्ट्रीय त्योहार में ग़रीब-से-ग़रीब आदमी भी हिस्सा लेता है इसी प्रकार ईसाई देशों में क्रिसमस का दिन मनाया जाता है। पर मेरे जैसे होबो के लिए क्रिसमस कैसी, यहां तो खाने-बैठने का भी ठिकाना न था। एक स्पेनिश गृहस्थ ने मुझे थोड़ा सा खाने को दिया, मैंने उसी को अमृत मान कर अपनी ज्वाला बुझाई। इसके बाद फिर पैदल चला। सारा दिन चलता रहा। पांव में छाले पड़ गये, जूते में छेद होगये, पर लाचारी थी। कायोटा के पास शाम को पहुंचा। वहां धूनी रमाई। सारी रात धूनी के पास बैठा रहा।

२६ दिसम्बर, सोमवार। सवेरे उठकर फिर चला। पैरों से चलना मुश्किल था। इर्द-गिर्द रेगिस्तान! आंको पहुंच कर एक मालगाड़ी पकड़ी पर कण्डक्टर ने गाड़ी से उतार दिया, इसलिए पैदल चला। एक खुश्क पहाड़ी पर जा रहा था। शाम के समय रेल की पटरी के पास स्लीपरों का ढेर देखा। उसी के पास बैठकर आग जलाने लगा। अभी आग जला ही रहा था कि बड़ी आंधी आई और अंधकार होगया। मैं दो घंटे तक स्लीपरों के पास अन्धकार में बैठा रहा। जब अन्धड़ का वेग कम हुआ तो वहां से उठा और धीरे-धीरे रास्ता टटोलता हुआ आगे बढ़ा। एक इंजन के चलने की आवाज कानों में आ रही थी, उसी की तरफ बढ़ा और इंजनघर के दरवाजे के पास पहुंच कर दरवाजा खटखटाया। इंजन चलाने वाले महाशय ने दरवाजा खोल दिया। मैंने अन्दर जाकर उसे अपनी कहानी सुनाई। वह बड़ा भलामानस आदमी था। उसने मुझे इंजन के पास सोने की इजाज़त दे दी। अखबार ज़मीन पर बिछाकर मैं सो गया। सारी रात आराम से काटी।

२७ दिसम्बर, मंगलवार। दूसरे दिन प्रातःकाल उठा। इंजनघर के इंजिनियर ने मुझ से भारतवर्ष का हालचाल पूछा। जब मैंने अपने देश की राजनीतिक परिस्थिति का वर्णन उससे किया तो उसकी सहानुभूति मेरे साथ बहुत बढ़ गई। वह इंजिनियर अमरीका की दक्षिणी रियासत विरजीनिया का रहने वाला था। जब मैंने खिड़की से झांका तो बाहर बिल्कुल सफेदी दिखलाई दी, पता लगा कि रात का अन्धड़ बर्फ आने का सूचक था और रात भर बर्फ गिरी थी। जब मैंने चलने का विचार किया तो उस इंजिनियर ने मुझे जल-पान करने का आग्रह किया। अत्यन्त आग्रह की कोई आवश्यकता न थी; उसके भोजनालय में जाकर मैंने बिस्कुट, रोटी, मक्खन और दूध से अपनी क्षुधा निवृत्ति की। उस इंजन से ऊंचे तालाब में पानी चढ़ाते थे जिससे इर्द-गिर्द के कस्बों में रहने वाले लोगों को आसानी से पानी मिल सके।

इंजिनियर महाशय से विदा लेकर मैंने अपना रास्ता लिया। चारों

तरफ बर्फ ही बर्फ दिखलाई देती थी। मेरे जूते में छेद हो जाने के कारण पैर सुन्न हो रहे थे, पर क्या करता ! बढ़ा चला गया। रात की सर्दी से इर्द-गिर्द के पोखरों का पानी जम गया था। संध्या के समय मैं एक छोटे से स्टेशन के पास पहुंचा और रात एक मेक्सिकन गृहस्थ के यहां काटी, जिसने मुझे खाने के लिए भोजन दिया।

२८ दिसम्बर, बुधवार। सवेरे उठकर फिर सड़क का रास्ता लिया। रात को खूब बर्फ पड़ी थी, इसलिए पेड़ सफेद हो रहे थे। घरों की छतों से बर्फ की कलमें बिल्लौर जैसी चमकती थीं। सन्ध्या के समय टेरान्स पहुंचा और मेक्सिकन लोगों के दरवाजे पर जाकर पेट-पूजा की। इसके बाद एक छोटी सी कुटिया में जाकर बैठ गया। सर्दी से हाथ-पैरों का खून जमने लगा था। मैंने हिम्मत कर लकड़ियां तलाश कीं, आग जलाई और सारी रात धूनी रमा कर बैठा रहा।

२९ दिसम्बर, बृहस्पतिवार। सवेरे उठकर फिर चला। पैरों से चला नहीं जाता था, पर क्या किया जाय ! २० मील लंगड़ाता चला गया। आखिर डूरान पहुंचा। थक कर चूर था। ईश्वर सहायता करे, अब आगे चलने की हिम्मत नहीं ! एक मेक्सिकन लड़का मुझे मिला और बड़ी दया कर मुझे अपने घर ले गया, वहीं रात बिताई और सर्दी से बचा।

३० दिसम्बर, शुक्रवार। पैरों में चलने की हिम्मत नहीं और रात के जागरण ने शरीर का नाश कर दिया था, इसलिए दिन के ३ बजे तक सोया रहा। डूरान मेक्सिकन कस्बा है और इन लोगों की आदतें अधिकांश हमारे देश के लोगों की तरह हैं। दयावान् भी वैसे ही हैं। भूखे को भोजन देने में इन्हें बड़ी प्रसन्नता होती है। सीधे, सरल परन्तु क्रोधी ये मेक्सिकन लोग होते हैं। रात भर यहीं डूरान में मेक्सिकन लड़के के घर पड़ा रहा। उस बेचारे ने मुझे खूब खाने को दिया।

३१ दिसम्बर, शनिवार। प्रभात में उठकर फिर पैदल चला। गजब की सर्दी पड़ रही थी और हवा भी तेज चलती थी। बार-बार कानों को हाथ से मलता था क्योंकि वे सुन्न हुए जाते थे। बारह बजे के करीब एक छोटे स्टेशन पर पहुंचा, जहां एक मेक्सिकन औरत ने मुझे खाने को दिया। खाने के बाद फिर चला। आज दिन बड़ा खराब था। सर्दी चेहरे को काट रही थी। शाम को ल्योनातो के पास पहुंचा। मेक्सिकन मजदूर काम से लौट रहे थे। काम से लौट कर वे अपनी-अपनी कोठरियों में घुस गये। मैं सर्दी में बाहर खड़ा था। चांद की रोशनी बड़ी धुंधली थी, सर्दी के मारे वह भी परेशान मालूम होता था। कहां जाऊं? इस सर्दी में रात कैसे कटेगी? दुःख ने मुझे कायर बना दिया; बेइख्तियार मेरी आंखों से आंसू गिरने लगे। मैंने घुटने टेक कर बर्फ के ऊपर परमदयालु प्रभु के सामने सिर झुकाया और सहायता मांगी। प्रार्थना के बाद मेरे में नया उत्साह आ गया और मैंने उठ कर एक मजदूर की कोठरी का दरवाजा खटखटाया। मेक्सिकन मजदूर ने दरवाजा खोल दिया और मुझ से पूछा--

"तुम को क्या चाहिए?"

मैंने बड़ी नम्रता से उत्तर दिया--

"जनाब, मैं भूख से व्याकुल हूं।"

उसने सारा दरवाजा खोल दिया और मुझे अन्दर ले गया। चूल्हे पर तवा रक्खा हुआ था, उसकी औरत बैठी रोटी बना रही थी। उस धर्मात्मा देवी ने एक तश्तरी में बारह फुलके रख दिये और एक बर्तन में मोटे-मोटे काले मटर डाल दिये। मैंने जब प्याली में पड़े हुए मटरों की ओर देखा तो उसमें मटरों के अतिरिक्त किसी दूसरी चीज के बड़े-बड़े टुकड़े देखे। पूछने पर पता लगा कि वे सूअर के मांस के टुकड़े हैं। मैंने मटर खाने से इन्कार कर दिया। वह स्त्री बड़ी हैरान हुई। उसके पति ने सूअर के मांस के टुकड़ों को निकाल कर अलग एक तश्तरी में रख दिया और मुझे मटर खाने के लिए अनुरोध किया। बड़ी कठिनाई

से मैंने उसे यह कह कर--"मी पादरी कारनी नोईट।" समझाया। वह फौरन समझ गया और उसने मुझे रोटी के साथ चाय का प्याला दे दिया। मैंने पेट की ज्वाला बुझाई।

जब वे स्त्री और पुरुष खा चुके तो मेरे सोने का प्रश्न उपस्थित हुआ। उस मेक्सिकन ने मुझे चले जाने के लिए कहा, क्योंकि उस छोटे से कमरे में एक ही खटिया थी जिस पर वे स्त्री और पुरुष सोते थे। भला वे मुझे उस कमरे में कैसे रख सकते थे! जब मैंने उस मेक्सिकन से यह कहा कि मैं खटिया के नीचे पड़ रहूंगा, तो वह खिलखिला कर हँस पड़ा और मेरा हाथ पकड़ कर मुझे दरवाजे के बाहर कर अन्दर की जंजीर लगा ली।

३१ दिसम्बर, शनिवार रात को १० बजे के करीब भयंकर सर्दी में मैं बाहर खड़ा हुआ आकाश की ओर देख रहा था। ऐसी खूनी सर्दी में मैं कहां जाऊं?

दस मिनट तक मैं चुपचाप उसी सर्दी में खड़ा रहा। हवा तेज चल रही थी। मैंने हिम्मत कर आखीर की कोठरी का दरवाजा खटखटाया। दरवाजा खुल गया और मैंने अन्दर प्रवेश किया। आठ मेक्सिकन मजदूर उस छोटे से कमरे में एक अंगीठी के इर्द-गिर्द बैठे थे। लोहे की अंगीठी लाल हो रही थी और कमरा भी खूब गर्म हो रहा था। वे सब स्पेनिश समझते थे और मैं स्पेनिश बोल नहीं सकता था, इसलिए उनमें गूंगा बन कर बैठा रहा। रात के १ बजे मैं टांगों को सिकोड़, घुटने छाती पर रख कर अंगीठी के पास सो गया और रात काट दी।

१ जनवरी, रविवार। आज ईसाई साल का नया दिन था। सवेरे ही मैं उस कोठरी से निकला और उस खूनी सर्दी में सड़क पर हो लिया। सड़क पर जा रहा था और सर्दी मेरी टांगों और शरीर के दूसरे हिस्सों पर हमला कर रही थी। मैं बहुत तेजी से चला जिससे शरीर में गर्मी आ जाय। मध्याह्न के करीब पेस्टीना पहुंचा। यहां पर एक

कोठरी की दीवार पर मोटे अक्षरों में "Hobo's den" ऐसा लिखा हुआ था। होबो लोगों की इस मांद में मैं घुस गया। यहां दो और होबो मिल गये और तीनों जने बैठकर गप्प करने लगे। यह होबो पूर्व से आये थे और पश्चिम की हल्की सर्दी में जा रहे थे। जब मेरी न्यूयार्क जाने की इच्छा इन्हें मालूम हुई तो ये लोग बड़े हैरान हुए और मुझे पूर्व जाने से मना किया। भला मैं इनका कहा कैसे मान सकता था! मैं तो अपनी जन्मभूमि भारत को जा रहा था। परन्तु मैंने इनसे कुछ नहीं कहा। दो बजे के करीब जब मालगाड़ी आई तो ये दोनों उस पर सवार होकर अलपासो चल दिए और मैं वहीं होबो की मांद में बैठे का बैठा रह गया। सच है, अकेला पुरुष भी किसी काम का नहीं होता। इन दो होबो के मिलने से मैं बड़ा खुश हुआ था, लेकिन वे भी चले गये। अब मैं उस मकान को देखने लगा। यह मकान चौकोना लकड़ी के तख्तों का बना हुआ था, छत भी लकड़ी के तख्तों की ही थी। इसके अन्दर घास-फूस पड़ा था, जिसे होबो लोग आवश्यकता पड़ने पर काम में लाते थे।

मेरे पेट में चूहे दौड़ रहे थे, अतएव क्षुधा निवृत्ति की चिन्ता में मैं बाहर निकला। इधर-उधर गलियों में टहलते-टहलते मैंने एक नौ वर्ष के अमरीकन लड़के को ट्रक पर आटे का बोरा ले जाते हुए देखा। बोरा भारी था इसलिए उस लड़के से वह ट्रक चलता नहीं था। उसके पास पहुंच कर मैंने ट्रक अपने हाथ में ले लिया और लड़के से कहा, "चलो, कहां चलना है?" लड़का बड़ा खुश हुआ, उसकी कठिन समस्या सहज में हल होगई। वह आगे-आगे चला, मैं पीछे-पीछे। उस लड़के का नाम मेरियन था। घर के पास पहुंच कर मेरियन अन्दर दौड़ा गया और अपनी मां को बुला लाया। उस महिला ने मेरा बड़ा धन्यवाद किया और मैंने उसके आदेशानुसार उस बोरे को उचित स्थान पर रख दिया। जब मैं चलने लगा तो मेरियन ने अपनी मां को चिल्लाकर कहा, "O Mama,

give him some thing to eat ! अर्थात् माता जी इसे कुछ खाने को दीजिये।" उसकी माता ने मुझे रोक लिया और अन्दर ले जाकर भोजन कराया। मैं भोजन कर रहा था और वह लड़का मेरे सामने कुर्सी पर बैठा हुआ मेरे मुंह की ओर ताक रहा था। उसका चेहरा मुझे खाते देख अत्यन्त प्रसन्न था। भोजन करने के बाद मैंने बड़े प्रेम से उस लड़के का मुंह चूमा और उसकी माता से विदा लेकर होबो की मांद में आया और वहीं रात बिताई।

२ जनवरी, सोमवार। आज दिन भर यहीं रहा। अपनी थकान को दूर किया। दिन भर सोता रहा और रात को भी आग जलाकर यहीं रहा।

३ जनवरी, मंगलवार। भोर होते ही चल पड़ा। बर्फ के दृश्य देखता हुआ चला ही गया। जमीन पहाड़ी है। कहीं-कहीं छोटे-छोटे पोखरों में पानी जमकर पत्थर की तरह सख्त होगया था। मैं ३० मील इसी प्रकार सर्दी के साथ युद्ध करता हुआ चला गया। रास्ते में मेक्सिकन लोगों ने मुझे खाने को दिया। सेन्टारोजा छोटा सा कस्बा है, वहां मैं नहीं ठहरा। बढ़ा चला गया। रात को साढ़े सात बजे लासटानोस पहुंचा। सर्दी ! भयानक सर्दी थी। अंधेरे में एक मकान का दरवाजा खटखटाया। लालटेन लेकर एक आदमी ने दरवाजा खोला। यह अमरीकन था। जब मैंने अपनी कथा उससे कही तो उसने मुझे अच्छी तरह से भोजन कराया, लेकिन अपने मकान के अन्दर सुलाने में उसे संकोच होता था। यह ठीक भी था, भला किसी अनजान आदमी को कोई कैसे अपने मकान में रात के समय रख सकता है! वह भद्र पुरुष लालटेन लेकर मेरे साथ बाहर आया और बोला—

"यह मेरी गाड़ी का ओढ़ना है। यदि आपका काम इससे चल सकें तो आप इसे ओढ़ कर रात काट लें।"

मैंने स्वीकार कर लिया। उसके घर के पास एक कोठरी खाली

थी, गाड़ी पर से ओढ़ना उतार कर मैं कोठरी में चला गया और दरवाजा बन्द कर भूमि पर लेट गया। भला ऐसी भयंकर सर्दी में उस गाड़ी के ओढ़ने से क्या काम चल सकता था ! सारी रात मैं सर्दी से व्याकुल रहा।

४ जनवरी, बुधवार। सबेरे ४ बजे के करीब मैंने उसी कमरे में आग जलाई और सर्दी को कम किया। दो घंटे के लिए मेरी आंख लग गई, इसके बाद मैंने उठकर चलने की तैयारी की। सवेरे ८ बजे मैंने सड़क का रास्ता लिया। मेरा जूता बिलकुल छलनी होगया था, उसकी मेखें मेरे पांव में चुभती थीं। पांव जख्मी होगये, तो भी चला जा रहा था। रास्ते में एक छोटा सा गांव पड़ा, पर मैं वहां भी नहीं ठहरा, क्योंकि यहां के लोग बड़े बेरहम मालूम हुए। आगे बढ़ा चला गया और रात को थका-हारा एक स्टेशन पर पहुंचा। यहां मैं मालगाड़ी की इन्तजार में ठहर गया, क्योंकि मुझ में पैदल चलने का बिलकुल दम नहीं रहा था, पैर उठते ही नहीं थे। दो घंटे के बाद एक मालगाड़ी आई। मैं उसके खुले मुंह के डिब्बे के अन्दर बैठ गया। गाड़ी चल पड़ी और ठंडी हवा मेरे चेहरे को काटने लगी। टुकुमकारी के पास पहुंचकर गाड़ी स्टेशन से बाहर खड़ी होगई और मैं झट मालगाड़ी से उतर कर पटरी-पटरी चलने लगा। चांद की धुंधली रोशनी में मैं कुशलपूर्वक स्टेशन के हाते से निकल कर शहर में पहुंचा। इस समय रात के दस बजे थे, इस कारण मैंने होटल में जाकर एक कमरा किराये पर ले लिया और कपड़े उतार आनन्द से सो गया।

टुकुमकारी न्यू मेक्सिको का प्रसिद्ध रेलवे जंक्शन है। इसकी आबादी चार हजार है। शिकागो रेलवे लाइन, राक आइलैण्ड और अलपासो रेलवे लाइन के जंक्शन यहां पर हैं। इसके इर्द-गिर्द की भूमि खेती के लिए बड़ी अच्छी है; पशु पालने के लिए भी यहां की भूमि बड़ी उपयुक्त है। यहां से डासन की कोयले की खानों को रेल की सड़क जाती है। टुकुमकारी का इलाका धन-धान्य से पूरित है।

इसी टुकुमकारी में सन् १९११ की ५ जनवरी, बृहस्पतिवार के दिन मैं अपना पैदल भ्रमण पूरा कर पूरब को जाने वाली मुसाफिर गाड़ी का इन्तजार कर रहा था। भाई रासमन ने मेरे पास रुपया भेज दिया था और वह आज मुझे टुकुमकारी के डाकखाने से मिला था। गाड़ी संध्या के साढ़े सात बजे कनसाज सिटी को जाती थी। मैं उसका इन्तजार करता रहा। जब मैं बाजारों में घूमने गया तो लोग मुझे हैरान होकर देखते थे, क्योंकि एक तो मैं दूसरे देश का आदमी, फिर मेरे कपड़े होबो जैसे और तीसरे मेरा टूटा हुआ जूता--वे विस्मित होकर सोचते थे कि यह अजीब जन्तु कहां का है। मुझे भूख लगी थी इसलिए मैं रोटी वाली दूकान के भीतर गया। ऐसी दूकान को इधर "बेकरी" कहते हैं। उस बकरी का मालिक एक यहूदी जर्मन था, जिसके राजनीतिक विचार साम्यवादियों जैसे थे। उसके साथ मैं बहुत देर तक बैठा बातें करता रहा। यहां मेरी दो अमरीकन सज्जनों से भेंट हुई--एक का नाम था मिस्टर डाडसन और दूसरे का मिस्टर श्यपर्ड। ये दोनों सज्जन बेकरी में आये थे और वहीं मेरा इनसे परिचय होगया। भारतवर्ष के हालात जानने को वे लोग बड़े उत्सुक थे और खास कर एक हिन्दुस्तानी के मुंह से सच्ची-सच्ची बातें सुनने का अवसर इन लोगों को कहां मिलता था! वे मेरी बातें सुनकर बड़े संतुष्ट हुए और उन्होंने मेरे देश के प्रति बड़ी सहानुभूति प्रकट की। शाम को साढ़े सात बजे मैं टुकुमकारी से कनसाज सिटी की तरफ रवाना हुआ। यहां से मुझे पैंतालीस रुपये किराया देना पड़ा। मेरी होबोपन की जिन्दगी आज खत्म होगई और मैंने सभ्य समाज में नये सिरे से प्रवेश किया। नई दुनिया के प्रसिद्ध शहर बोस्टन में मैं मई में पहुंचा। ६ जनवरी से लेकर मई तक रेल के सफर का ब्यौरा मैं तिथि अनुसार नहीं दूंगा। केवल मुख्य-मुख्य और मनोरंजक बातों का वर्णन सिलसिलेवार करूंगा। अमरीका की पांच पश्चिमी रियासतों में मैंने पैदल सफर किया है, इसलिए उस पैदल यात्रा का वर्णन त ।खवार किया है। रेल की

यात्रा का वर्णन आरम्भ करने से पहले ६ जून, सन् १९१० से लेकर ६ जनवरी, सन् १९११ तक सात महीने के होबो जीवन का सिंहावलोकन करना आवश्यक है, जिससे पाठकों को मेरी पैदल यात्रा के अनुभवों का निचोड़ मिल सके और मैंने जो २३०० मील की पैदल यात्रा की उसका निष्कर्ष मालूम हो जाय। अतएव अब मैं पिछले सात महीने की यात्रा का सिंहावलोकन करता हूं।

बत्तीसवाँ अध्याय

होबो जीवन का सिंहावलोकन

साधारणतया लोग स्कूल और कालिज की शिक्षा को उच्च-शिक्षा मानते हैं, पर मेरे अनुभव ने मुझे यह बतलाया है कि स्वयं निरीक्षण रखने की शक्ति वाला पुरुष यदि भ्रमण करे तो उससे बढ़कर शिक्षा कोई दूसरी नहीं हो सकती। संसार में जितने मौलिक लेखक हुए हैं, उन्होंने अपने निरीक्षण से ही समाज के ज्ञान की वृद्धि की है और उनके अनुभवों ने लाखों मनुष्यों को मार्ग दिखलाया। उनका ज्ञान, उनकी वाकफ़ियत दूसरों के द्वारा प्राप्त न होने के कारण सीधी और अधिकांश सच्ची होती है। यही वजह है कि ऐसे लेखकों की लेखनी से लिखे गये अनुभव बड़े मनोरंजक और हृदयग्राही होते हैं। उनमें बनावट का अभाव रहता है। उनका ज्ञान बिलकुल स्वाभाविक होता है। यूरोप की जातियां इस अनुभव की सत्यता को भली प्रकार समझती हैं, इसीलिए गोरी जातियों के हज़ारों विद्यार्थी अपने स्कूल और कालिज छोड़कर पैदल अथवा बाइसिकल पर हज़ारों मील की यात्रा कर प्राकृतिक ज्ञान की प्राप्ति करते हैं और उनके देशवासी उन्हें हर प्रकार से उत्साहित कर उनकी बराबर सहायता करते हैं। ऐसे घुमक्कड़ों की खबरें दुनिया के समाचारपत्रों में बराबर छपती ही रहती हैं और उनके अदम्य उत्साह की गाथाएं भावी सन्तान के लिए पथ-प्रदर्शक बनती हैं।

सचमुच भारतवर्ष में बसने वाले प्राचीनकाल के आर्य भी ऐसे सीधे और स्वाभाविक ज्ञान की कीमत खूब जानते थे। इसी कारण वे प्राकृतिक सौन्दर्य के अनन्य भक्त थे। हमारे दुर्गम पर्वतों और जंगलों में बने हुए मन्दिर तथा विश्रांतियां इस बात की सूचक हैं। इसी कारण

हमारे जनसाधारण को देश के चारों ओर बने हुए तीर्थों की यात्रा करने का पुण्य समझाया गया है। खेद है कि हमारे लोगों को निरीक्षण करने की शिक्षा नहीं दी जाती, इसी कारण हमारी यात्राएं हमें लाभदायक सिद्ध नहीं होतीं। निरीक्षण करने की शक्ति प्राप्त किए बिना किसी प्रकार की यात्रा करना केवल समय खोना है। इसकी शिक्षा सबसे पहले हमारे बच्चों को मिलनी चाहिए। हम अपनी इन्द्रियों का यथार्थ उपयोग करना सीखें। जहां जाएं, जहां घूमें, जहां बैठें, वहां अपने इर्द-गिर्द की सब वस्तुओं को भली प्रकार अपनी दृष्टि में ले लें, उनको भली प्रकार भांप लें और खास-खास असर डालने वाली बातों को नोट कर लें। स्पष्ट सोचने, ठीक-ठीक जानने और सच्चा वर्णन करने की शक्ति मनुष्य में तभी आ सकती है यदि उसे यथार्थ निरीक्षण करना आता हो। मेरा तो बड़ा दुर्भाग्य रहा कि मेरी आंखें बचपन से ही कमजोर थीं, इसलिए मैं दूर की चीजें देखने में सदा असमर्थ रहता था।

इस शारीरिक कमी ने मुझे बड़ी हानि पहुंचाई, नहीं तो न जाने मैं क्या कर डालता! जब मैंने सियेटल से २३०० मील लम्बे कठिन भ्रमण का इरादा किया था, तो मेरे पास केवल १॥) था। उस थोड़ी सी पूंजी के साथ मैंने ऐसी भयंकर यात्रा कर डाली, और आज न्यू मैक्सिको के टुकुमकारी नगर में फटे-पुराने कपड़े पहने हुए बैठा हुआ पिछले सात महीने की पैदल यात्रा पर सिंहावलोकन कर रहा था। जिस उद्देश्य को सामने रख कर मैंने इस भ्रमण का संकल्प किया था, क्या वह पूरा हो गया?

निस्सन्देह इस प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक है। मैं समझता हूं कि मुझे इस भ्रमण से बड़ा लाभ पहुंचा और जो खास-खास फायदे मुझे इस पैदल भ्रमण में हुए उनका वर्णन मैं यहां ब्यौरेवार करता हूं।

(१) मुझ में आत्मविश्वास की अत्यन्त वृद्धि हुई । यों तो पन्द्रह रुपये लेकर अमरीका के लिए चल देना ही काफी आत्मविश्वास की बात थी, पर बिना किसी प्रकार के साधनों के एवं शारीरिक आवश्यकताओं की चीज़ों के पास न होते हुए भी इस प्रकार सैंकड़ों मील का सफ़र कर लेना मेरे लिए बड़ा बलवर्द्धक हुआ और मैंने समझ लिया कि दुनिया में मेरे लिए कोई बात कठिन नहीं है । मैंने अपने सामर्थ्य का अन्दाज़ा कर लिया।

(२) दूसरी अमूल्य बात जो मुझे इस भ्रमण में मिली, वह है ईश्वर पर अतुल विश्वास। कैसी ही कठिनाई क्यों न आ जाए, कितनी ही मुश्किल का सामना क्यों न करना पड़े, भयंकर कष्टों में मनुष्य क्यों न पड़ जाए, यदि वह सच्चाई से अपने लक्ष्य पर कायम रहता है तो भगवान् सदा उसकी रक्षा करते हैं और उसे पथ दिखलाते हैं। जब मुझे कठोर निराशाएं घेर लेती थीं तो मैं नीचे लिखी पंक्तियों को बार-बार कहता हुआ अपने रास्ते पर चला जाता था :—

"Courage Brother ! do not stumble,
Though thy path be dark as night;
There is star to guide the humble,
Trust in God and do the right."

अर्थात्—उत्साहित हो भाई ! अपने पथ से भ्रष्ट मत हो। यद्यपि तुम्हारा मार्ग अन्धेरी रात की तरह अन्धकार से घिरा हुआ है, पर स्मरण रख कि विनयी आत्मा को पथ दिखलाने वाला ज्योतिर्मय मौजूद है। अतएव सर्वशक्तिमान् प्रभु पर विश्वास रख और नेकी के रास्ते चला जा ।

ईश्वर जानता है कि इन पंक्तियों में क्या जादू भरा है जो इनके उच्चारण करने से मुझ में अद्भुत स्फूर्ति आ जाती थी। न जाने कितनी बार, कैसे-कैसे बीहड़ मरुस्थलों में, कैसे दुर्गम जंगलों के बीच, मेरे मुंह से

उच्चारण किए गये इन शब्दों ने गहरी निराशा में डूबते हुए मेरा उद्धार किया। इस भ्रमण में मुझे कई बार मौत की शक्ल देखने का अवसर मिला था। मैं बिलकुल मरते-मरते बचा, ईश्वर ने मेरे ऊपर दया कर मुझे जीवन दान दिया, इससे मेरे हृदय पर यह प्रभाव पड़ा कि मेरी ज़िन्दगी का कोई न कोई उद्देश्य है और प्रभु ने मुझे किसी काम के लिए पैदा किया है।

(३) तीसरी बात है, अमरीकन जाति का अदम्य उत्साह। इंगलिस्तान से मुट्ठी भर आदमी अपनी धार्मिक स्वतन्त्रता की रक्षा के हेतु नई दुनिया में बसने के लिए आए थे। वे पूर्व की ओर बस्तियां बनाकर बस गए। उन्हीं के वंशजों ने विकट पहाड़ों, नदियों और जंगलों को लांघ कर दूरस्थित पैसिफिक महासागर की रियासतों में प्रवेश किया और यहां के जंगलों में मंगल कर दिया। किसी प्रकार की कठिनाई उनको डराती ही नहीं। असम्भव शब्द को ये अमरीकन लोग जानते ही नहीं। सचमुच इनका उत्साह आश्चर्य में डालने वाला है। जहां अरबों फीट लकड़ी के जंगल खड़े थे, वहां थोड़े ही वर्षों में रमणीक उद्यान बन गये और सुन्दर नगर बस गये। सभ्यता-अभिमानी ये अमरीकन निस्सन्देह प्रकृति को आत्मा का दास समझते हैं, तभी तो वे प्राकृतिक शक्तियों पर विजय प्राप्त करने के लिए अपनी जान पर खेल जाते हैं। न्यूयार्क से सनफ्रांसिस्को ३४०० मील दूर है, अर्थात् भारतवर्ष से इसकी चौड़ाई दूनी के करीब समझिये, तिस पर भी थोड़े वर्षों के अन्दर यहां रेल की सड़कों के जाल बिछ गये हैं और प्रकृति की मनोहारिणी छवि का आनन्द धनवान् और निर्धन सहज ही में ले सकते हैं।

(४) इस भ्रमण में मैंने जो चौथी बात बड़ी अनोखी सीखी, वह है विश्वबन्धुता। हमारी इस पृथ्वी के देश आज एक दूसरे के बहुत निकट हो रहे हैं और मानव जाति में विश्वबन्धुता की लहर चलने लगी

है। भला मेरा उन यूनानी मजदूरों के साथ क्या सम्बन्ध था जिन्होंने मेरे साथ सहोदर की तरह वर्ताव किया ? फ़्लूम के पास बसने वाला मिस्टर ह्वाइट भला मेरा क्या लगता था ? मनरोविया में उस वृद्धा स्त्री ने मुझ से माता की तरह व्यवहार किया और बेचारे गरीब मैक्सिकनों ने मुझे कई बार प्रेमपूर्वक भोजन कराया। मैं किस-किस का नाम गिनाऊं, यह मेरी राम-कहानी ऐसे ही भावुक उदाहरणों से भरी हुई है। शिक्षा मनुष्य को एक-दूसरे के निकट ला रही है और बीच की पक्षपातपूर्ण दीवार को गिराकर उन्हें आपस में मिला रही है। समाचार-पत्र हजारों मील की दूरी को मिटाकर एक देश का संदेश हवा की तरह दूसरे देशों में फैला देते हैं और मनुष्यों के दृष्टि-बिन्दु को उदार बनाते हैं।

(५) पांचवीं बात। इस पैदल भ्रमण में मैंने पुरुषार्थ की महिमा भी खूब देखी। जहां मरुस्थल थे, जहां देखने को वृक्ष नहीं था, वहां आज नहरें चल रही हैं और मीठी मुसुम्बियों के बाग मीलों दिखाई देते हैं। जहां पानी की कोई आशा नहीं कर सकता था, वहां ठंडे जल की नहरें चल रही हैं। बेशक अरीज़ोना की मरुभूमि में आबपाशी द्वारा हरे-भरे खेत पैदा कर देना पुरुषार्थ का एक अद्भुत चमत्कार है। "उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी ?" इस कथन की सत्यता इस भ्रमण में मैंने देख ली। आरेगन की रियासत में लाखों बोरियां गेहूं जब लद कर बाहर भेजा जाता है उस समय का दृश्य देखने लायक होता है। कितना रुपया दूसरे देशों से खिच-खिच कर अमरीका आता है! यह संसार पुरुषार्थी लोगों के वास्ते है और लक्ष्मी तो पुरुषार्थ की दासी है। जो जाति बुद्धि को काम में लाकर, शरीर की पूरी सामर्थ्य आजमा कर काम करती है, उसके बच्चे कभी भूखे नहीं मर सकते। इस मेरे भ्रमण में मैंने छोटे से लेकर बड़े तक सभी को पुरुषार्थ करते पाया। मुझे ऐसा जान पड़ा जैसे पुरुषार्थ ने स्वयं अवतार धारण कर नई सभ्यता को उत्पन्न करने पर कमर बांधी हो।

(६) छठी बात मैंने बड़ी उत्साहवर्धक देखी और वह यह कि शिक्षित और सभ्य अमरीकनों में भारतवर्ष के प्रति सहानुभूति बढ़ रही है। यदि ईसाई मिशनरियों द्वारा बहुत सी भ्रममूलक बातें अमरीका में न फैलाई जातीं, यदि ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की विदेशी-नीति के कारण ख़ास तौर पर हिन्दुस्तानियों की कमज़ोरियों की डुग्गी बाहर न पीटी जाती, तो अमरीकन जनता शीघ्र ही भारतवर्ष को अपनाने लगती। थियोसोफिकल सोसायटी और वेदान्त प्रचारिणी सभाओं ने अमरीका में भारतीय संस्कृति को लोकप्रिय बनाने में बड़ा उत्तम काम किया है। समय आवेगा जब इन सोसाइटियों के उद्योग का सुन्दर परिणाम हिन्दू जनता देखेगी।

(७) सातवीं बात है देश-काल के भेद को समझ कर कर्तव्य को निश्चित करना। हमारे भारतीय मजदूरों ने इस तत्व को न समझने के कारण ही अमरीका में इतना दुःख उठाया। वे हज़ारों मील घर से दूर भी गये पर रहे वैसे ही भौंदू, वही उनकी गन्दगी, वही उनकी पगड़ी, वही उनके सिर के बाल और वैसा ही उनका रहन-सहन। अमरीका में आकर वे अमरीकन न बन सके। इसी वजह से उनकी गणना भी मंगोलियन लोगों के साथ होगई है और अमरीकन लोगों ने उनके साथ वैसा ही बुरा बर्ताव किया है। उन्नत जाति वह है जो देश-काल और समय के भेद से धर्म को निश्चित करती है और अपने आप को वैसा ही बना लेती है। लकीर के फकीरों को बलवानों की लातें खानी पड़ती हैं। हिन्दुस्तान के निवासियों को अपने संकुचित विचारों को छोड़ कर वर्तमान युग के धर्म का पालन करना चाहिए, तभी वे अपने आपको उन्नति के पथ पर चला सकेंगे। अमरीकन लोगों में यह बड़ी खूबी है। वे हानिकारक पुरानी चीजों को फौरन छोड़ देते हैं और नई बात पकड़ने के लिए सदा तत्पर रहते हैं। इसीलिए वे आविष्कारों के करने में सब जातियों के आगे हैं।

(८) प्रजातन्त्र राज्य के फल कैसे मीठे हैं, यह आठवीं बात भी मैंने इस भ्रमण में भली प्रकार देख ली। जिस देश की जैसी गवर्नमेन्ट होती है, वैसी ही वहां की प्रजा बन जाती है। यदि गवर्नमेन्ट की व्यवस्था में अन्याय व अत्याचार की अधिक मात्रा रहती है तो वहां की प्रजा भी पाशविक दोषों से भर जाती है। मक्कारी, कमीनापन, बुजदिली आदि जितने दुर्गुण अन्याय और अत्याचार से उत्पन्न हो सकते हैं वे सब उस समाज को पकड़ लेते हैं। अमरीका में प्रजातन्त्र राज्य है। वहां की हर एक रियासत अपने भीतरी प्रबन्ध में स्वतन्त्र है। पैसिफिक महासागर के किनारे की इन रियासतों में घूमने से मैंने यह देख लिया कि यहां के लोग अपने आप स्वामी हैं। इसीलिए उनमें सद्गुणों की वृद्धि होती चली जा रही है, कोई किसी पर अत्याचार नहीं कर सकता। अत्याचार करने वाले को दंड फौरन मिलता है। भारतवर्ष में तो गरीब को कोई नहीं पूछता, अदालतों में लम्बी थैली वाला ही जीतता है और वह ही अत्याचार का बदला ले सकता है, बाकी चारों तरफ गुण्डे लोग गरीबों को बेखटके सताते हैं, उनको कोई दंड नहीं दे सकता, क्योंकि देश का समाज अदालतों की भूल-भूलैया से भय खाता है। अमरीका में अगर किसी की लड़की या लड़के को कोई गुण्डा उड़ा ले जाय तो उस बस्ती का प्रत्येक नौजवान गुण्डे को दंड देने के लिए निकल पड़ता है। समाज में प्रजातन्त्र के कारण आत्म-सम्मान का स्वराज्य है, कोई भी अपमान को सहन नहीं कर सकता। अपमान करने वाले की जान सदा खतरे में पड़ जाती है। प्रजातन्त्र शासन ने अमरीकन समाज का खुला जीवन कर दिया है, वहां के छोटे-छोटे बच्चे अपने घर से बाहर जहां चाहें घूम सकते हैं। यदि भारतवर्ष में सच्चे रूप में प्रजातन्त्र शासन हो जाय तो भला हिन्दू समाज क्या इस प्रकार गुण्डों से त्रस्त हो सकता है? कदापि नहीं। भारतवर्ष में गुण्डे निर्भय होकर घूमते हैं। वे पुलिस को अपने साथ मिलाकर मनमाना अत्याचार करते हैं। वे भले लोगों की जान को आफत में डाल देते हैं। पर शोक है कि प्रजा में शस्त्रों का अभाव और

संगठन की कमी के कारण ऐसी बातें चुपचाप सहन कर ली जाती हैं। अपने इस भ्रमण में मैंने अमरीकन स्त्रियों और पुरुषों को अत्यन्त निर्भय पाया। रिवाल्वर और तमंचे सभी किसानों के घरों में मौजूद पाये। बस्ती से बाहर बसने वाले लोग भी बिलकुल बेपरवाह देखे। सभी मस्त थे, किसी को किसी से डर नहीं, क्योंकि सब एक-दूसरे की मदद करते हैं और सब के पास हथियार हैं।

थोड़े में मेरा कहना यह है कि प्रजातन्त्र राज्य एक बड़ी बरकत है। प्रजा अपने बदमाश अधिकारियों को जब चाहे तब निकाल सकती है। वह नये कानून बना सकती है, पुराने रद्दी दकियानूसी कानूनों को हटा सकती है और अपनी इच्छा के अनुसार गुण्डों को दंड दे सकती है। ऐसे शासन में प्रजा की सब शक्तियों का स्वाभाविक विकास होता है और वहां की प्रत्येक स्त्री और पुरुष, शासन रूपी इमारत का मजबूत खम्भा बनता है। अमरीका के लोग बहुत सुखी हैं, बलशाली हैं, उनमें संगठन है और वे दिन प्रतिदिन अपने आप को सभ्य जातियों के आगे रखने की चेष्टा कर रहे हैं। यह सब प्रजातन्त्र शासन के मीठे फल हैं।

(९) नवीं बात है पदार्थ विज्ञान के चमत्कार की। विज्ञान क्या नहीं कर सकता! ये शब्द इस भ्रमण में मेरे मुंह से कई बार निकले। पदार्थ विज्ञान की शिक्षा यहां के विश्वविद्यालयों में जनसाधारण को दी जाती है। यहां के विद्वान् प्रोफेसर नए-नए आविष्कार कर जीवन की समस्याओं को हल कर रहे हैं। यहां की गवर्नमेंट खेती और बागों को नुकसान पहुंचाने वाली जितनी बातें हैं उन सबको दूर करने की चेष्टा कर रही है। विज्ञान ने इस देश को निस्सन्देह स्वर्ग बना दिया है। कूड़े-कचरे को ठीक जगह पर ले जाने का प्रबन्ध, निर्मल और मीठे जल के नल सब ग्रामों में और सब कस्बों में, बिजली की रेल-गाड़ियां, छोटी-छोटी बस्तियों में टेलीफून और बिजली का सुख सब घरों

में पाया जाता है। विज्ञान एक जादू है जिसको अमरीकन लोगों ने अपने वश में कर लिया है। उसी की बदौलत वे अपनी सब कठिनाइयों को सहज में ही दूर कर लेते हैं। वहां प्रारब्ध के दास और आलसी लोगों के लिए कोई जगह नहीं; वहां चेतन, पुरुषार्थी और फुर्तीले नर-नारियों के लिए स्थान है। सियेटल से लेकर टुकुमकारी तक इस २३०० मील के सफर में मैंने कहीं चरसों से पानी निकालते हुए अथवा पुराने ढंगों को बर्तते हुए लोगों को नहीं देखा। आधुनिक कला-कौशल का सर्वत्र राज्य है। खेत में मशीनों से सब काम होते हैं, पवन-चक्कियों से बहुत सी जगहों से पानी निकाला जाता है, घरों के बनाने में सब नये तरीके इस्तेमाल किये जाते हैं। प्रत्येक संभव उपाय से कठिन समस्याओं को हल करने में विज्ञान की सहायता ली जाती है। विज्ञान के इस अद्भुत चमत्कार में संसार की कोई जाति अमरीका का मुकाबिला नहीं कर सकती। संसार को पूरी तरह भोगने में भी अमरीकन लोग दूसरी जातियों से आगे हैं।

(१०) आखिरी बात जिसने मेरे मस्तिष्क में चकाचौंध सी पैदा कर दी, उसे भी मैं बिना लिखे नहीं रह सकता। इस भ्रमण में मुझे ऐसा जान पड़ा कि मानो अमरीका में नये नमूने की मनुष्य जाति उत्पन्न हो रही है। पहले तो समाज में रक्त-सम्बन्ध से विभाग था। कई सदियों तक बड़े-बड़े भूमिपतियों का अलग वर्ग रहा। भारतवर्ष में जन्म के सिद्धान्त पर समाज में भेद कायम है, आधुनिक युग में भिन्न-भिन्न देशों में बसने वालों की अलग-अलग जातियां बनी हुई हैं। संसार के इतिहास में ऐसा कभी नहीं हुआ था कि जब मानव जाति के करोड़ों मनुष्य एक समाज बनाकर आपस में शादी-विवाह करते रहे हों। सचमुच अमरीका में नई सृष्टि की रचना होने लगी है। पृथ्वी के प्रायः सभी स्थलों के लोग अमरीका में जाकर बसे हैं और उन्होंने आपस में शादी-विवाह कर नई पेवन्द लगाई है। परिणाम यह हुआ कि अमरीका में

नये नमूने के लोग पैदा हो रहे हैं, जिनमें और जातियों की अपेक्षा नवीन शक्तियों का प्रादुर्भाव होने लगा है। अमरीका ही एक ऐसा देश है जहां भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का आदर करने वाले लोग अधिक पाये जाते हैं। इसलिए मैं अपने देश के गुणवान्, धीमान् और सच्चरित्र लोगों से अपील करता हूं कि वे अपने देश की श्रेष्ठतम सभ्यता को अमरीका में जाकर फैलावें, जिससे हमारे बुजुर्गों की अमूल्य वस्तु उसके अधिकारियों के पास पहुंच जाय और जिस विश्वबन्धुता का दिव्य स्वप्न हमारी सभ्यता के जन्मदाताओं ने देखा था उसका यथार्थ स्वरूप संसार के सामने आ सके। हमें अपने सर्वश्रेष्ठ मनुष्यों को वहां भेजना चाहिए और उनके द्वारा नई मनुष्य जाति में अपनी संस्कृति के बीजों को बो देना उचित है जिससे भारतीय संस्कृति मानव जाति के इतिहास में अपना योग्य स्थान पा सके।

हां, एक बात मैं बतलाना भूल गया। वह है होबो लोगों के निजू जीवन के सम्बन्ध में। भारतवर्ष में भिखमंगों की कमी नहीं, परन्तु इन भिखमंगों और अमरीका के होबो लोगों में बड़ा फ़र्क है। हमारे भिखमंगे पैसा-पैसा मांग कर जमा करते हैं और उन्हें रुपया जमा करने की बीमारी होती है। पर अमरीका का होबो पैसा जमा नहीं करता। वह खूब मौज-बहार से रहता है। युनाइटेड स्टेट्स आफ अमरीका में ऐसे हजारों होबो हैं जो कि सड़क पर अपना जीवन व्यतीत करते हैं, वे जाड़े के दिनों में पश्चिम की ओर आ जाते हैं और गर्मी में पूर्व की रियासतों में घूमते हैं। वे एक स्थान पर अधिक दिन नहीं ठहरते, उनके पैर में शनिचर सवार रहता है। बोलने-चालने में वे सभ्यता का व्यवहार करते हैं और मित्रता होने पर पूरे मित्र बन जाते हैं। साथी के पास खाने को न हो तो अपनी आधी रोटी उसे जरूर दे देंगे। वे बड़ी चोरियाँ नहीं करते। चोरी उनका धन्धा नहीं, लेकिन हाँ भूख से आतुर होने पर खाने लायक चीजें ले लेते हैं। यदि उन्हें मजबूरी

मिल जाय तो आवश्यकता पड़ने पर ४-५ रोज़ के लिए उसे भी कर लेते हैं। होबो-संसार में स्त्रियों का अभाव रहता है, इसलिए वे काम-चेष्टा होने पर आपस में उसकी तृप्ति कर लेते हैं। प्रायः पुराने होबो के साथ कोई लड़का रहता है जो स्त्री का काम देता है। जब वह बड़ा हो जाता है तो अपनी भुजाओं के बल से स्वतन्त्र हो जाता है और उसका स्थान कोई दूसरा लड़का ले लेता है। काम-चेष्टा तृप्ति करने का अर्थ यह नहीं कि हर समय अस्वाभाविक सम्बन्ध ही किया जाय, आपस में आलिंगन करने से अथवा एक दूसरे का हस्त-मैथुन करने से भी काम की तृप्ति हो जाती है। होबो लोगों से पूछने पर मुझे पता लगा कि इस प्रकार की आदतें अधिकतर स्त्रियों के अभाव के कारण पड़ जाती हैं। नगर के निकट यदि उन्हें आसानी से स्त्री मिल सके तो वे स्वाभाविक तरीके को अधिक पसन्द करते हैं। इसलिए मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूं कि मनुष्य-समाज में अस्वाभाविक जीवन आ जाने पर लोगों में अस्वाभाविक आदतें पड़ जाती हैं, जिनकी ज़िम्मेदारी ज्यादातर समाज की प्रचलित दुर्व्यवस्था पर है। अमरीका के ये होबो ज्यादातर वे लोग हैं जो कि योरुप से किसी कानून के तोड़ने पर भागकर आए हुए हैं अथवा घर से दुःखी होकर भागे हैं। ऐसे भी होबो बहुत मिले जो कि अच्छे पढ़े-लिखे और कालिज के विद्यार्थी थे, लेकिन ख़तरे की ज़िन्दगी का मज़ा चखने के लिए उन्होंने होबो बनना स्वीकार किया। ऐसे भी सैकड़ों होबो हैं जो केवल २-३ वर्ष के लिए अपना देश देखने की खातिर इस प्रकार की ज़िन्दगी बना लेते हैं। इस प्रकार के होबो योरुप के सभी देशों में पाये जाते हैं। मुझे पता लगा है कि शीतप्रधान देशों में भी सड़क पर जीवन व्यतीत करने वाले होबो लोगों की कमी नहीं। अस्थिरचित्त, चंचल मन वाले, समाज की ज़िम्मेवारियों से घृणा करने वाले और शासन के बन्धनों को तोड़ने वाले मानव-समाज के ये बच्चे जब तक सृष्टि रहेगी तब तक बने रहेंगे। हमें सदा इस प्रकार की सामाजिक व्यवस्था बनानी चाहिए कि जिससे हम इनको भी

समाज के लिए उपयोगी बना सकें।

बस, इतना सिंहावलोकन करने के बाद अब मैं अपने होबो-जीवन की समाप्ति करता हूं और आज रात को रेल में बैठ कर पूरब की ओर रवाना होता हूं। पाठक! आइये, अब मैं आपको अपने रेल द्वारा भ्रमण की कुछ मनोरंजक बातें सुनाऊं और यह भी बतलाऊं कि मैंने भारत लौटने के लिए पैसा कैसे कमाया।

तेंतीसवां अध्याय

टुकुमकारी से बोस्टन (१)

सन् १९११ को ५ जनवरी, बृहस्पतिवार के दिन संध्या समय ७½ बजे की गाड़ी से मैं टुकुमकारी से पूर्व की ओर रवाना हुआ। बहुत दिनों के बाद आज आनन्द की सवारी मिली। रेल में बैठे हुए मुसाफिर मेरे फटे-पुराने होबो के कपड़े देखकर हैरान होते थे। टुकुमकारी से मजूरे के प्रसिद्ध शहर सेन्ट लुई की तरफ जा रहा था। रेल का किराया मुझे पैंतालीस रुपये देना पड़ा। रास्ते में न्यू मेक्सिको, ओकलहामा, कैन्साज़ और मजूरे की रियासतों को देखता हुआ जा रहा था। बर्फ खूब पड़ी थी। शीत में किसानों के घरों पर बर्फ की कलमें लटक रही थीं। कैन्साज रियासत का पश्चिमी भाग अभी अधिक आबाद नहीं; हाँ, पूर्वी भाग में आबादी खूब है। कैन्साज और मजूरे रियासतों में खुले मैदान अधिक हैं, इसलिए ये किसानों की रियासतें कहलाती हैं। मेरी सारी रात और सारा दिन गाड़ी में गुजरे। रास्ते में मजूरे नदी देखने में आई। यह नदी हमारी यमुना जी की तरह बड़ी नदी है। जब गाड़ी मजूरे नदी के पुल को पार कर रही थी तो मुझे प्रयाग का यमुना जी का पुल याद आ गया। जैसे बाढ़ के दिनों में यमुना जी में पानी तेज बहता है, ऐसे ही मजूरे का जल बढ़ा हुआ था। उसमें बर्फ के टुकड़े तेजी से बहे जा रहे थे। हमारी नदियाँ तो नहरें निकल जाने के कारण जाड़े के दिनों में बहुत दुबली हो जाती हैं पर अमरीका की यह नदी जाड़े में भी अपने यौवन पर रहती है। संध्या को मैं मजूरे रियासत के प्रसिद्ध नगर कैन्साज सिटी में पहुँचा। नदी के इस पार कैन्साज रियासत का प्रधान नगर कैन्साज सिटी बसता है, जहाँ शराब का नामोनिशान नहीं, और नदी के उस पार

उसी नाम के शहर में शराब बेचने वालों की खूब भरमार है। मजूरे रियासत में शराब के बरखिलाफ इस समय कोई कानून नहीं था। इसके विपरीत कैन्साज की रियासत में वहाँ के बसने वाले किसानों ने अपनी रियासत को बहुत पहिले से ही शराब से रहित बना रक्खा था। कौन जानता था कि तेरह-चौवह वर्षों के बाद सारा अमरीका शराब के भूत को दूर भगा देगा।

आज यहाँ से मेरे भ्रमण का एक नया पर्दा आरम्भ होता है। कैलेफोर्निया के मनरोविया नगर में मेरी मुलाकात पैन्टीकोस्टल गिरजे के लोगों से हुई थी, रेडलैण्ड्स में भी मैं उसी सम्प्रदाय के लोगों के पास ठहरा था, परन्तु इतना अधिक सम्पर्क मेरा वहाँ के लोगों से नहीं हुआ जितना कि कैन्साज सिटी से आरम्भ हुआ। कैन्साज रियासत के कैन्साज सिटी नगर में पैन्टीकोस्टल गिरजे का बड़ा पादरी मिस्टर डब्लू० डब्लू० जेस्सी रहता था। उसका घर No. 5th Street में था। उसी के यहाँ मैं ३-४ दिन रहा। एक दूसरे प्रेमी विलियम एडगर हाल से भी मेरी यहाँ भेंट हुई जो कैन्साज सिटी के नवें स्टेशन में रहते थे। कैन्साज सिटी में चार दिन रहने के बाद मैं सेन्ट लुई चला गया और वहाँ मेरा संपर्क पैन्टीकोस्टल सम्प्रदाय के लोगों से अधिक हुआ। माता मोई नाम की एक स्त्री यहाँ के पैन्टीकोस्टल सम्प्रदाय की अधिष्ठात्री थी। बड़े सुन्दर मकान में इनका आश्रम था, जहाँ चार अमरीकन औरतें और एक मर्द माता मोई के साथ रहते थे। जब मैं वहाँ जाकर पहुँचा तो माता मोई मुझे देखकर बड़ी प्रसन्न हुई, क्योंकि उनके यहाँ रहने वाली चार अमरीकन औरतों ने भारतवर्ष में जाकर ईसाई धर्म प्रचार की प्रतिज्ञा ली थी। मुझे पाकर उन्होंने यह समझा कि ईश्वर ने उनके दिल की इच्छा पूरी कर दी और उन्हें घर बैठे ही एक काफिर हिन्दू आत्मा को बचाने का पुण्य प्राप्त होगया। बस, वह मेरी बड़ी खातिर करने लगी और एक अलग कमरा मुझे रहने के लिए दे दिया। रात को इस आश्रम के लोग धर्म-प्रचार के लिए बाजार

में जाया करते थे, जहाँ इन्होंने एक बड़ा हाल किराये पर ले रक्खा था। उस वक्त में भी उनके साथ उनके धर्म-प्रचार का तरीका देखने के लिए गया। एक अच्छे बड़े कमरे में ढाई सौ के करीब स्त्री और पुरुष एकत्रित थे। आश्रम के पादरी ने सबसे पहिले ईसाई धर्म की महिमा बताई। इसके बाद पाप-प्रकाशन करने का कार्य प्रारम्भ हुआ। तीन अधेड़ उम्र के आदमियों ने अपने पिछले पापों की गाथा सुनाई और बतलाया कि वे शराब, व्यभिचार और तम्बाकू के नाशकारी दुर्व्यसनों में डूबे हुए थे। जब उन्होंने भगवान् ईसा मसीह पर विश्वास किया और उस पर ईमान लाए, उसे मुक्तिदाता मान लिया, तो उनके सब दुर्व्यसन दूर हो गए और अब वे शुद्ध जीवन व्यतीत करते हैं। इसी प्रकार दो औरतों ने भी अपनी पाप-कथाएं कहीं। उस पादरी ने पाप-कथन की समाप्ति के बाद मुझे अपने निकट बुला कर पूछा—

पादरी—"क्या आपके दिल पर कुछ असर हुआ?"

मैंने विस्मित होकर कहा—"किस बात का?"

पादरी—"इन लोगों ने हजरत ईसा मसीह पर विश्वास किया, इसी लिए इनके सब पाप दूर होगए। इसी प्रकार यदि आप भी हज़रत ईसा मसीह को अपना मुक्तिदाता मान लेंगे तो आपका भी उद्धार हो जायगा।"

मैंने कुछ मुस्करा कर कहा—"मेरे प्यारे भाई, मैंने कभी अपनी सारी उम्र में एक बूँद शराब नहीं पी, और न कभी आज तक स्त्री-संग किया है, तम्बाकू के निकट नहीं जाता, फिर भला मेरे ऊपर इन लोगों का क्या प्रभाव पड़ सकता था?"

वह पादरी हक्का-बक्का रह गया। उसने हैरान होकर मुझसे पूछा—"क्या आपके धर्म्म ने आपको आरम्भ से ही इन गुनाहों से बचा दिया?"

मैंने गंभीरता से कहा—"पादरी साहेब, मेरी बचपन की धर्म-शिक्षा ने मुझे बुरी संगत से दूर रक्खा है।"

पादरी चुप होगया, और मैं अपनी जगह पर आकर बैठ गया।

दूसरे दिन वे चारों अमरीकन औरतें मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ गईं। माता मोई ने उनसे कहा—"तुम तो हिन्दुस्तान जाकर काफिर हिन्दुस्तानियों को ईसाई बनाना चाहती हो, अगर तुम इस हिन्दू को ईसाई बनाकर दिखलाओ तो मैं तुमको जानूं।"

उन चारों देवियों ने मुझे इंजील पढ़ने का अनुरोध किया। भला इसमें मेरा क्या बिगड़ता था, मैंने उनसे इंजील पढ़नी शुरू कर दी। जब-जब मैं इंजील की असम्भव बातों पर तर्क करता तो वे घबड़ा उठतीं और मुझसे नम्रतापूर्वक कहतीं—"आप केवल इन बातों पर विश्वास कर लीजिए।" मैं बड़ी नम्रता से उनसे निवेदन करता—"धर्म अन्ध-विश्वास की चीज नहीं, वह समझने और ग्रहण करने की चीज है।"

एक दिन झुंझला कर उनमें से एक ने मुझसे कहा—"क्या आप के देश में आप जैसे ही आदमी बसते हैं?" मैं उसका मतलब समझ कर हँस पड़ा और उत्तर दिया—"वहाँ तो मुझसे भी अच्छे लोग हैं।"

वे आपस में कहने लगीं कि यदि हिन्दुस्तान में ऐसे ही लोग बसते हैं तो हमारा वहाँ जाना फिजूल है। माता मोई ने मुझे ईसाई बनाने की एक दूसरी तरकीब निकाली।

एक अत्यन्त धनवान् स्त्री उस आश्रम की संरक्षिका थी। माता मोई ने उसे बुलाया और मेरी बाबत सब बातें कह सुनाईं। वह स्त्री मुझे अलग एक कमरे में ले जाकर समझाने लगी और बोली—"यदि आप ईसाई हो जायें तो मैं आपकी बड़ी आर्थिक सहायता करूंगी।"

मैंने कहा—"आप क्या मदद करेंगी ?"

वह रमणी बोली—"आपको भारतवर्ष लौटने के लिए काफी रुपया दिया जायगा और जब आप अपने देश में ईसाई धर्म का प्रचार करेंगे तो आपको खूब धन मिलेगा।"

उसकी ये बातें सुन कर मुझे बड़ी ग्लानि हुई और मैंने धीरे से कहा—

"धर्म क्या बेचने की चीज है जो आप मुझे उसका मूल्य देना चाहती हैं ?"

वह स्त्री मेरा उत्तर सुन कर दंग रह गई और बोली—"क्षमा कीजिए भाई, मेरा मतलब आपको धन के लोभ में फँसाना नहीं था। मैंने समझा कि शायद आपको धन की अत्यन्त आवश्यकता है।"

कुछ देर तक हम दोनों चुप रहे। इसके बाद वह स्त्री मुझे माता मोई के कमरे में ले गई। प्रार्थना का समय होगया था, इस लिए उस कमरे में आश्रमवासी तथा दो-तीन और महाशय एकत्रित थे। प्रार्थना आरम्भ होने से पहिले उस धनवान् स्त्री ने मुझ से कहा—

"मैं आज आपके लिए ईश्वर से प्रार्थना करूंगी। क्या मैं आपके सिर पर हाथ रख कर प्रार्थना कर सकती हूँ जिससे मुझे मेरे नेक काम में पवित्र आत्मा की मदद मिल जाए ?"

मेरा इसमें क्या हर्ज था ! मैंने उसकी बात मान ली। उस रमणी ने मेरे सिर पर हाथ रक्खा, और वह अपने साथियों के साथ लगी ईश्वर से प्रार्थना करने। मैंने भी धीरे-धीरे वेद-मन्त्र पढ़ने शुरू कर दिये, क्योंकि म जानता था कि मेरे वेद-मन्त्रों में कम से कम पवित्रात्मा के

प्रभाव को भगाने की काफी शक्ति मौजूद है। प्रार्थना के बाद वह देवी मुझ से पूछने लगी——

"आप पर कुछ असर हुआ ?"

मैंने उत्तर दिया——"आपके प्रेम के लिए मैं बड़ा कृतज्ञ हूं। सच-मुच आपने मेरे लिए बड़ा कष्ट किया।"

वह स्त्री समझ गई। उस समय से फिर माता मोई तथा दूसरी स्त्रियों ने मुझ से ईसाई धर्म की चर्चा करना बन्द कर दिया। और मैंने भी इसके बाद वहाँ ठहरना उचित नहीं समझा।

३१ जनवरी सन् १९११ को मैं सेन्ट लुई से चला। पेन्टीकोस्टल गिरजे के लोगों के धार्मिक उत्साह का मुझ पर बड़ा असर पड़ा। मैंने इल्लोनॉए रियासत की राजधानी इन्डियानापोलिस का टिकट लिया था। यह रियासत भी कैन्साज और मजूरे रियासतों को तरह कृषि-प्रधान है और इसकी आबादी बड़ी सघन है। इसी रियासत में संसार का अत्यन्त प्रसिद्ध शहर शिकागो है। रेल में बैठा हुआ मैं छोटे-छोटे ग्रामों और कस्बों को देखता हुआ जा रहा था। रेलवे कम्पनियों ने इधर रेलों का जाल बिछा दिया है। किसान लोग बड़ी सुविधा से अपना माल मण्डियों में ले जाते हैं; रेल वाले उन्हें सब प्रकार के सुभीते देते हैं। इन्डियानापोलिस में मैं अपने प्रिय मित्र राशमनी के घर में ठहरा। जब मैं फिनिक्स (अरीजोना) से चला था तो भाई राशमनी जी ने अपने पिता के नाम एक परिचयदायक पत्र मुझे दिया था। राशमनी जी के पिता ईरान्ड गली के १७ नम्बर के मकान में रहते थे। जब मैं उनके घर पहुंचा तो सन्ध्या होगई थी। राशमनी जी की माता ने मेरा बड़ा आतिथ्य-सत्कार किया। अपने प्यारे पुत्र का संदेश लाने वाले मुझ यात्री से मिल कर वे बड़ी प्रसन्न हुईं, क्योंकि भाई राशमनी अपनी माता-पिता की इच्छा के विरुद्ध पश्चिम की ओर चले गये थे। ईश्वर की कृपा से उनके पिता के पास काफी रुपया था। उनके पिता चाहते थे

कि राशमनी कोई व्यापार करे, पर साधु राशमनी केवल धर्म का सच्चा व्यापार करना चाहते थे, इसीलिए वे घर त्याग कर फिनिक्स चले गये। वृद्ध राशमनी जी के यहाँ में दो दिन रहा। यहाँ व्याख्यान भी दिये और शहर को देखा-भाला भी। स्त्रियों की सभा में मैंने भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता पर व्याख्यान दिया। माता राशमनी जी का यहाँ स्त्रियों में खासा प्रभाव था, इसीलिये मुझे बड़ी सहायता मिल गई और मने अपने लिए कुछ गर्म कपड़े भी ले लिए। माता राशमनी जी ने मुझे एक बड़ा सुन्दर ओवरकोट दिया, क्योंकि इन दिनों जाड़ा अपने यौवन पर था।

इन्डियानापोलिस से में ओहायो रियासत के सुन्दर शहर डेटन में गया। वहाँ मैं मिस्टर सैप्प (Sapp) के यहाँ ठहरा। मिस्टर सैप्प बड़े मिष्टभाषी खबसूरत नवयुवक थे। उनकी माता तो साक्षात् लक्ष्मी थी। उस धर्मात्मा स्त्री ने मेरे साथ अपने पुत्र जैसा वर्ताव किया। उसकी बहन का नाम डोना था। १७ वर्ष की यह हृष्ट-पुष्ट अमरीकन लड़की दिन भर अपनी माता की आज्ञानुसार घर का सब काम किया करती थी। हाई स्कूल की शिक्षा खत्म करने के बाद अब इसका विचार ओहायो रियासत की यूनिर्वासिटी में विद्याध्ययन करने का था। कार्ल सैप्प और डोना सैप्प दोनों भाई-बहिन युगल मूर्तियाँ थीं, जिनको देखने से आरोग्यता देवी के साक्षात् दर्शन होते थे। एक धर्मात्मा विदुषी स्त्री की भला ऐसी सन्तान क्यों न होती? भाई सैप्प के साथ मैं कई जगह घूमने के लिए गया और शहर की शोभा देखी।

एक दिन मैं भाई सैप्प के साथ यहाँ के "कैश रजिस्टर" के प्रसिद्ध कारखाने को देखने के लिए गया। इस तरफ रजिस्टरों का इतना बड़ा कारखाना किसी भी नगर में नहीं है। अमरीकन लोगों में यह खास बात है कि जिस काम को पकड़ते हैं उसमें विशेषत्व प्राप्त करने की सदा कोशिश करते हैं। एक छोटे से काम को उठा कर

य लोग उसे धीरे-धीरे बहुत बड़ा बनाने की चेष्टा करते हैं। सब आमदनी उसी में खर्च कर वर्षों ये लोग उसी काम की उन्नति करने में लगे रहते हैं। एक दिन ऐसा आ जाता है कि उस खास चीज़ के पैदा करने में वह कारखाना अद्वितीय हो जाता है। अमरीकन कला-कौशल की वृद्धि का यही रहस्य है। डेटन का प्रसिद्ध रजिस्टर का कारखाना इस प्रकार के अध्यवसाय का बड़ा अद्भुत नमूना है। इस कारखाने को देखकर मैं बड़ा प्रसन्न हुआ।

माता सैम्प ने बड़ी मुश्किल से मुझे जाने दिया। उनसे प्रेमपूर्वक विदा होकर मैं कोलम्बस गया और यहाँ के विश्वविद्यालय को देखा। यहाँ पर इस समय दो भारतीय विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे, जो अपने उद्योग से व्याख्यानादि देकर अपना खर्च चलाते थे। यहाँ मैं चार दिन ठहरा। वाई० एम० सी० ए० के प्रेमी लोगों के सामने मैंने एक व्याख्यान दिया और दूसरा व्याख्यान यहाँ के गिरजे में दिया। यहाँ पर मेरी कई भद्र अमरीकनों से भेंट हुई, जिनके साथ वार्तालाप करने से मालूम हुआ कि ओहायो रियासत के लोग सचमुच बड़े उदार स्वभाव के हैं। यहाँ मैं सब प्रकार के समाजों से मिला और लोगों के शील-स्वभाव को बड़ा अच्छा पाया।

कोलम्बस से मैं पिट्सबर्ग गया और वहां पर हेश बाबू के यहां ठहरा। यह बंगाली महाशय चित्रकला के अच्छे पण्डित थे। इन्होंने एक फ्रांसीसी स्त्री से विवाह किया था, जिससे इनके कई पुत्र थे। हेश बाबू इटली में चित्रकला सीखने के लिए गये थे। वहीं से निपुण होकर वे अमरीका में लौट आये और यहां पिट्सबर्ग में बस गये थे।

यहां की वेदान्त सोसाइटी में इस समय स्वामी बोधानन्द जी अधिष्ठाता थे। सरल स्वभाव से इन्होंने मुझे वश में कर लिया। मैं बराबर इनकी वेदान्त सोसाइटी में जाया करता था। लिबर्टी एवेन्यू (Liberty Avenue) गली के ९१९ नं० के मकान में रहने वाले

मि० हिल से मेरी भेंट यहीं पर हुई। इस दयालु मि० हिल के सहवास से मेरा परिचय पिट्सबर्ग की विख्यात विदुषी स्त्री मिस पारकर से हुआ। बालक बालिकाओं के एक स्कूल में आप पढ़ाने का काम करती थीं। मैं इनका स्कूल देखने के लिए गया।

आज बादल घिरे हुए थे। शीत की अधिकता न थी। मिस पारकर से मैंने पिछली रात उनका 'किण्डरगारटन' स्कूल देखने का वायदा किया था, मगर अन्य बातों में फँसे रहने के कारण मैं अपना वायदा भूल गया। कमरे में बैठा एक पुस्तक 'India and her People' पढ़ रहा था कि स्वामी बोधानन्द जी ने आकर मुझ से कहा—

"क्यों, 'किण्डरगारटन' स्कूल देखने नहीं जाओगे ?"

"सचमुच ! मैं तो वहां जाना ही भूल गया था। कहिये, क्या वक्त है ?"

"दस के ऊपर हो चुके हैं।

क्योंकि वायदा नौ बजे जाने का था, इसलिए मैं झटपट कपड़े पहिन मिस पारकर का स्कूल देखने चला।

मिस पारकर एक बहुत ही सुशिक्षिता देवी थीं। आयु आपकी कोई छत्तीस वर्ष की होगी—अच्छा लम्बा क़द, चेहरा देखने से फ़ौरन ही मालूम हो जाता है कि देवी अधिक विद्यारसिक हैं। अधिक विद्याभ्यास से शरीर में कृशता आ गई है, मगर बुद्धि के जौहर वार्तालाप से ही खुलते हैं। भारत के प्राचीन धर्म पर आपकी बड़ी श्रद्धा है, और जब-जब कोई भारतीय सज्जन नगर में पधारते हैं आप अवश्य ही उनसे परिचय कर धार्मिक विषयों की बातें पूछती हैं।

इसी धार्मिक लगन के कारण आपका परिचय मुझसे हुआ और मुझसे आपने अपना स्कूल देखने की इच्छा प्रकट की, जिसको मैंने सहर्ष स्वीकार किया। आज उसी स्कूल को देखने चला था।

स्कूल द्वार पर पहुंच मैंने बटन दबाया और अन्दर वालों को आगन्तुक की खबर लग गई। एक युवा रमणी ने द्वार खोला। मैंने अपना परिचय दिया और देवी ने सप्रेम मुझे अन्दर ले जा कुर्सी दी और आप मिस पारकर को बुलाने गईं।

"अच्छा, आप आ गये!" मिस पारकर ने मुस्करा कर अगवानी की।

"देर से आने की क्षमा मांगता हूं।" मैंने कुछ लज्जित होकर उत्तर दिया।

"इसकी कोई बात नहीं, पर आप अधिक देख न सकेंगे, क्योंकि दिलचस्प विषयों के घण्टे पूरे हो चुके हैं। अच्छा आइये, कुछ तो देखिये।"

मैं अधिष्ठात्री मिस पारकर के साथ-साथ हो लिया।

साथ के कमरे में जाकर हम और मिस पारकर एक ओर कुर्सियों पर बैठ गये। एक अध्यापिका छोटे स्टूल पर बैठी हुई थी और बीस के क़रीब बालक-बालिकाएँ उसके सामने ज़मीन पर घेरा बांधे बैठी हुई थीं। कमरे का फ़र्श लकड़ी का था जिस पर गर्द-मट्टी का नाम नहीं था। अध्यापिका इन नन्हे-नन्हे बालक-बालिकाओं को क्या पढ़ा रही थी? धैय कीजिये पाठक, मैं आपको बताये देता हूं।

इन किन्डरगारटन के विद्यार्थियों के सामने की दीवार पर एक बड़ा रंगीला सा चित्र टंगा था। यह चित्र एक देशहितैषी नवयुवक सिपाही का था, जो घोड़े पर सवार हाथ में अमरीका (यूनाइटेड स्टेट्ज़) का झण्डा लिये अपने प्राणप्यारे देश के लिए स्वाहा होने को युद्ध-भूमि में जा रहा था। देश की नारियाँ—मातायें—रूमाल हिला उसका उत्साह बढ़ा रही थीं।

उस चित्र को देख मेरा अश्रुपात होने लगा। राजपूताने की पवित्र भूमि के दृश्य एक-एक कर के मेरी आंखों के सामने फिर गये। भारत संतान की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली का गौरव मेरे सामने आ गया। फिर आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का नज़ारा मेरे सामने आया। दिल नदी की भाँति उमड़ा, पर मैंने अपने आपको थामा। रूमाल से आँखें पूंछ डालीं। मेरे चश्मे ने मुझे सहायता दी, और दिल के भाव दिल ही में लीन होगये।

यह सामने की दीवार पर किसका चित्र है ?" अध्यापिका ने एक बालक से पूछा।

"यह सवार की तस्वीर है।"

अध्यापिका—(दूसरे बालक से) "सवार के हाथ में क्या है ?"

बालक—"झंडा है।"

अध्यापिका—(एक बालिका से) "किसका झंडा है ?"

बालिका—"हमारे देश का।"

अध्यापिका—"वह सवार कौन है ?"

बालिका कुछ देर चुप रही। झट एक दूसरा बालक बोल उठा—

"यह सिपाही है, जो युद्ध के हेतु जा रहा है।"

अध्यापिका—(दूसरी बालिका से) "चित्र में क्या कुछ और भी है ?"

बालिका—"बहुत से आदमी-औरतें हैं।"

अध्यापिका—"वे क्या करते हैं ?"

बालिका—"रूमाल हिला रहे हैं।"

अध्यापिका—(अन्य बालक से) "क्यों रूमाल हिलाते हैं ?"

बालक चुप रहा। अध्यापिका ने फिर सब बालकों से पूछा—

"कोई बतलावे, क्यों ये नर-नारी रूमाल हिला रहे हैं ?"

उस अध्यापिका ने जब अपने नन्हे विद्यार्थियों को चुप देखा तो उनको एक देशहित भरा उपदेश दिया—

"प्यारे बच्चो ! यह सिपाही देशहितैषी नवयुवक है जो अपनी मातृ-भूमि को सब से श्रेष्ठ समझता है । उसके लिए यह सब कुछ देने को उद्यत है । मातृ-भूमि की रक्षा के हेतु अपने देश के शत्रुओं से युद्ध करने के लिए रणभूमि में जाने को तैयार है । इसके हाथ में अपने देश का परमपूज्य झंडा है—यह झंडा सारी अमरीकन जाति का कीर्तिस्तम्भ है । जब तक यह खड़ा लहराता है, अमरीकन जाति आज़ाद है । इसके गिरने से देश का पतन है । इसलिए इस झंडे की रक्षा देश के प्रत्येक सच्चे पुत्र पर लाज़मी है । इस नवयुवक सिपाही ने प्राण-पर्य्यन्त इस झंडे की रक्षा करने की शपथ खाई है । देश की रमणियां, मातायें, भगिनियां इसको आशीर्वाद देती हैं, और रूमाल हिला उसका उत्साह बढ़ा रही हैं ।

उन बालक-बालिकाओं ने अपनी अध्यापिका के उपदेश को बड़े ध्यान से सुना । कुछ देर सभी चुप रहे । तब अध्यापिका ने विद्यार्थियों को सम्बोधित कर कहा—

"आओ, सब लोग युद्ध-नाटक रचें ।"

यह एक देखने योग्य दृश्य था । टाड लिखित राजस्थान के इतिहास में जिन दृश्यों के वर्णन पढ़ स्वप्न देखा करता था, आज वह सामने दिखाई दिये ।

सब बालक-बालिकायें एक घेरे में खड़े थे । एक बालक उनका अग्रसर अफ़सर चुना गया । वह घेरे के मध्य में खड़ा था । उसके हाथ में बहुत सी झण्डियां थीं । अपनी इच्छानुसार वह घेरे में से एक बालक व बालिका को बुलाता था । आने वाला पहिले बालक अफ़सर को प्रणाम करता और बाद में अफ़सर उसको एक झण्डी दे अपनी रेजिमेण्ट का सिपाही चुनता था । इस प्रकार रेजिमेण्ट बनी, जिसमें इस सिपाही थे

और ग्यारहवां अफ़सर। बाकी सब विद्यार्थी दर्शकों के तौर पर उनको घेर कर खड़े होगये। अब रेजिमेण्ट युद्ध-हेतु चली।

दर्शक लोग अध्यापिका के साथ रूमाल हिलाते हुए यह गीत गाने लगे—

प्रश्न

Soldier boy ! Soldier boy !
Where are you going ?
Bearing so proudly,
The red, white and blue.

हिन्दी (कविता)

कहां चले, ओ ! सुभट बालगण वीर-हृदय गरबीले ।
झण्डे लिये हाथ में अपने, श्वेत लाल औ नीले ॥*

उत्तर

I go where my country,
My duty is calling;
If you would be a soldier boy,
You may come too.

हिन्दी (कविता)

हम जाते हैं युद्ध स्थल को,
देश काज हित भाई;
चल सकते हो तुम सब भी,
यदि बनना चाहो सिपाही ।

आहा ! क्या ही सुन्दर दृश्य था !

---

* यूनाइटेड-स्टेट्ज़ अमरीका के राष्ट्रीय झण्डे का रंग लाल, श्वे॰, और बैंगनी है।

थोड़ी देर बाद खेल पूरा होगया। मिस पारकर से छुट्टी ले मैं अपने स्थान पर चला आया।

यूनाइटेड स्टेट्स आफ अमरीका में पिट्सबर्ग नगर अपना एक खास स्थान रखता है। जगद्-विख्यात धनकुबेर कारनेगी ने यहीं पर अपना लोहे का व्यवसाय प्रारम्भ किया था और अपने अनथक परिश्रम से उस को एक बड़ा जबरदस्त कारखाना बना दिया। लोहे की जितनी चीजें सभ्य मनुष्य काम में लाता है वे सब यहाँ कल-कारखानों में ढाली जाती हैं और संसार के सभी देशों में प्रायः यहाँ की बनी हुई लोहे की चीजें बिकने जाती हैं। कारनेगी के उस बड़े कारखाने को मैं देखने के लिए गया। रेल का सभी सामान और मकान बनाने की लोहे की सभी चीजें यहाँ फुर्ती से ढलती हुई मैंने देखीं। हजारों मजदूर भिन्न-भिन्न विभागों में काम करते हुए पाये। जलते हुए लोहे की सुनहरी ज्वाला आंखों में चौंध पैदा करती थी। दमकते हुए लोहे के भीमकाय टुकड़े मशीनों द्वारा इधर से उधर जा रहे थे। कारीगर लोग उनसे मनमानी चीजें तैयार कर रहे थे। कारखाना क्या है, मानो एक खासा नगर बसा है, जहाँ लोग मधु-मक्खियों की तरह जुटे रहते हैं। मजदूरों के बच्चों की शिक्षा का सब प्रबन्ध है। यहाँ का विश्वविद्यालय भी एक खास विशेषता रखता है। कला-कौशल सीखने के लिए, इलेक्ट्रिकल और मिकेनिकल इंजिनीयर बनने के लिए यहाँ के विश्वविद्यालय में सब साधन एक साथ मिलते हैं। लड़कियों के लिए भी एक अत्यन्त उपयोगी कालेज यहाँ पर है जिसमें गृहस्थी की सभी उपयोगी बातें लड़कियों को सिखाई जाती हैं। दूर-दूर देशों से विद्यार्थी यहाँ पढ़ने आते हैं और रोटी कमाने के साधन में शीघ्र ही निपुण हो जाते हैं। यदि किसी को कल-पुर्जों का उस्ताद बनना हो तो पिट्सबर्ग से बढ़ कर उसे कोई दूसरी जगह नहीं मिल सकती।

ऐसे कला-कौशलपूर्ण कारनेगी शिल्प-विद्यालय का सविस्तर ब्योरा

भारतवर्ष के छात्रों के लिए अत्यन्त लाभकारी होगा, इसी कारण उसे हम पाठकों के ज्ञानार्थ यहाँ लिखते हैं।

हां, धनकुबेर कारनेगी महोदय फरमाते हैं:—It is really astonishing how many of the world's foremost men have begun as manual labourers. The greatest of all, Shakespeare, was a wool-carder; Burns a ploughman, Columbus a sailor; Hannibal a blacksmith; Lincoln a railslitter; Grant a tanner. I know of no better foundation which to ascend than manual labour in youth.

अर्थात् "सचमुच यह बड़े अचम्भे की बात है कि संसार के महापुरुषों में से कितने अधिक मजदूरी की महत्ता द्वारा ऊँची सीढ़ी पर चढ़ने के योग्य बने हैं। सब से बड़ा कवि शेक्सपीयर धुनिया था। बर्न्स था एक हलवाहा। कोलम्बस एक केवट था; प्रसिद्ध सेनापति हेनीबाल लोहार का धन्धा करता था; अब्राहम लिंकन ने रेल की सड़क पर मजदूरी की; सेनापति ग्रांट ने चमड़ा रंगने का काम किया। मैं नवयुवक के उत्कर्ष के लिए मजदूरी के अतिरिक्त कोई दूसरा श्रेष्ठतम साधन बताने में असमर्थ हूँ।"

भारतवर्ष के शिक्षित समाज को शिल्प-विद्यालय की आवश्यकता और उसकी महिमा का अनुभव होने लगा है, यह बड़े सौभाग्य की बात है। देश के युवकों को आत्मावलम्बन का सबक सिखाने का एक यही उपाय है। हिन्दू जाति में जो ऊँच-नीच का भेद-भाव है, हाथ से काम करने वालों के प्रति जो घृणा है, उसको दूर करने का यही सरल तरीका है। देश की सम्पदा बढ़ाने, देश की भावी सन्तति को रोजगार में लगाने, उनको जाति के हित-साधन के योग्य बनाने का सबसे अच्छा ढंग यही है कि उनको कला-कौशल और यंत्र-विद्या की शिक्षा दी जाय। भारत धन-धान्यपूरित देश है। यहाँ किसी वस्तु की कमी नहीं, सभी आनन्द-

पूर्वक रह सकते हैं यदि हम अपनी संतान को आधुनिक जीवन-युद्ध के शस्त्रों से सुसज्जित करें।

हमें प्राकृतिक दुनिया से मुकाबिला करना है। सस्ती चीजें बना कर उन्हें भारत में बेचने वाले योरप तथा अमरीका से हमारा सामना है। इसमें जीत उसी की होगी जो अपने प्रतिद्वंद्वियों के समान बुद्धिमान् और कार्य्यपटु होगा। सुस्त, काहिल, अशिक्षित, साम, दाम, दण्ड और भेद को न जानने वाली जाति से यह काम न होगा। जिनका हमें मुकाबिला करना है उनके गुण-दोषों की पहचान करनी चाहिए, उनकी कार्य्य-पटुता सीखनी चाहिए, उनके सदृश दलबद्ध होना चाहिए, उनकी भांति अपने यहां शिल्प-विद्यालय खोलने चाहिएँ और सबसे बढ़ कर हाथ से काम करने वालों का आदर करना चाहिए क्योंकि ये ही लोग देश की दौलत बढ़ाते हैं। इन्हीं के सिर पर स्वजाति का भार है। ये ही सब को टुकड़ा देते हैं। ऐसा करने से देश में आलसियों और बड़ी तोंद वालों की कदर कम हो जायगी और जो लोग दूसरों की कमाई पर चैन उड़ाते हैं उनका ह्रास हो जायगा।

आइए, पाठक ! हम आपको अमरीका के प्रसिद्ध कारनेगी-शिल्प-विद्यालय का वृत्तान्त सुनावें। हमने उसे अपनी आंखों देखा है। इस वृत्तान्त से अमरीका की उन्नति के कारण थोड़े में आपकी समझ में आ जायंगे।

अमरीका की प्रसिद्ध रियासत पेन्सलवेनिया में पिट्सबर्ग नामी एक बड़ा भारी शहर है। यहीं पर जगद्-विख्यात धनी कारनेगी साहब का स्थापित किया हुआ शिल्प-विद्यालय देश के संख्यातीत युवकों को कला-कौशल और यंत्र-विद्या आदि की शिक्षा देता है। कारनेगी के विशाल पुतली-घर भी यहीं पर हैं। उनमें लोहे का काम होता है। यही इस 'लोह नरेश' (Steel King) की राजधानी है। अपनी इस राजधानी में, जहां श्रीमान् कारनेगी को करोड़ों रुपए की आमदनी है, ऐसे विद्या-

लय का खोलना बहुत ही उचित हुआ। इस विद्यालय के लिए आपने ७० लाख डालर दे दिए। उस समय एक डालर तीन रुपए दो आने का था। इस हिसाब से आपने दो करोड़ दस लाख से अधिक रुपए खर्च करके यह शिल्प-विद्यालय खोला ।

क्या भारत का कोई सपूत ऐसा विद्यालय खोल कर भारत-माता की शोभा बढ़ावेगा ?

कारनेगी-शिल्प-विद्यालय तीन भागों में विभक्त है---ललित-कला, अजायबघर और कला-भवन। छः एकड़ भूमि में इनकी इमारतें हैं। विद्यार्थियों की जरूरतों को पूरा करने का सब सामान है।

इमारतों का हाल सुनिये।

पहले कारनेगी-पुस्तकालय को लीजिए। पुस्तकालय क्या है, शाही महल है। इस इमारत को देखकर हम दंग रह गए। व्यसन हो तो ऐसा हो! इस संगमरमर के विशाल भवन में विद्याप्रेमियों के लिए चुन-चुन कर पुस्तकें रक्खी गई हैं, जिनकी संख्या तीन लाख पचास हजार के क़रीब है। इनमें से ३५०० पुस्तकें वैज्ञानिक और यंत्र-विद्या सम्बन्धी हैं, जो एक से एक बढ़ कर हैं। तीन सौ के करीब पत्रिकाएं वहाँ आती हैं जिनको पढ़ कर विद्याव्यसनी जनता अलौकिक आनन्द प्राप्त करती है। इतने ही अख़बार और साप्ताहिक पत्र भी इस पुस्तकालय की शोभा बढ़ाते है। पुस्तकालय का यह विभाग विद्वान् वैज्ञानिक लोगों की संरक्षा में हैं जिनसे हर प्रकार की सूचनाएं मुफ्त मिलती हैं ।

और खूबी देखिए। इस पुस्तकालय की एक सौ बीस शाखायें पिट्सबर्ग नगर में हैं। नगर के हाईस्कूलों के छात्र, कन्याओं के समाज, तथा मजदूरों की सोसाइटियाँ इन शाखाओं के द्वारा इस बृहत् पुस्तकालय से पूरा-पूरा लाभ उठा सकती हैं। जो किताब जिसको चाहिए वह अपने शाखा-विभाग के पुस्तकाध्यक्ष से कह देता है। वह उसकी खबर

बड़े पुस्तकालय में कर देता है। दूसरे दिन किताब वहाँ पहुँच जाती है। यह सब मुफ़्त, मुफ़्त, मुफ़्त !

देखा आपने, ऐसे तरीकों से विद्या-प्रचार हुआ करता है। बातों से काम नहीं निकला करते। हम लोग लाखों रुपया काशी आदि क्षेत्रों में व्यर्थ लुटा रहे हैं--निखट्टुओं की संख्या बढ़ा रहे हैं, पर काशी और गया में पुस्तकालय कितने खोले हैं? शिक्षित समाज से इतना नहीं हो सकता कि इस 'दान' का उचित प्रबन्ध करे और इससे विद्यालय, पुस्तकालय आदि खोल कर देश के बच्चों को विद्या-दान दे।

अब अजायबघर की बात सुनिए। यह अजायबघर अमरीका के चार बड़े-बड़े अजायबघरों में से एक है। इसमें पन्द्रह लाख छोटी-बड़ी दर्शनीय चीजें रक्खी हैं। यह संग्रह बहुत सा धन खर्च करके बड़े परिश्रम से किया गया है। इसमें खनिज, जड़ी-बूटी और कीट-विद्या सम्बन्धी नमूने बड़े काम के हैं। पुरातत्व और नृ-वंश विद्या सम्बन्धी संग्रह भी इसमें अपने ढंग का एक ही है।

ललित-कला वाला विभाग और भी बढ़िया है। धनिक कारनेगी ने चुन-चुन कर कुशल चित्रकारों के तैल चित्र यहाँ रक्खे हैं। अमरीका तथा योरुप के चित्रकारों का सर्वोत्तम कौशल यहाँ देखने में आता है। जो विद्यार्थी इस कला में प्रवीण होने के लिए विद्यालय में भरती होते हैं वे घंटों इन चित्रों के सामने बैठ कर अभ्यास करते रहते हैं।

इस विभाग की ओर से सार्वभौमिक (भारत को छोड़ कर) प्रदर्शनियाँ होती हैं जिनमें सबसे अधिक कुशल-चित्रकार को इनाम दिया जाता है। इससे चित्रकारों का उत्साह बढ़ता है। वे दिन-दूनी रात-चौगुनी मेहनत करके अपने अभ्यास को बढ़ाते हैं।

साथ ही संगतराशी और भवन-निर्माण विषयक कमरे भी इसमें हैं, जहाँ इन कलाओं के उस्तादों की कारीगरी के नमूने रक्खे हुए हैं। विद्यार्थी लोग यहाँ भी आकर अभ्यास करते हैं। बड़ी-बड़ी इमारतों के

नमूने यहाँ हैं। उनको देख कर विद्यार्थी वैसा ही, या उससे बढ़ कर, काम बनाने का उद्योग करते हैं।

इसके अतिरिक्त इस विभाग मे संगीत का भी प्रबन्ध है। एक बड़ा कमरा इसके लिए है। शनि और रविवार को यहाँ गायनाचार्यों की धूम रहती है। व्याख्यानादि भी यहीं होते हैं।

कला-भवन सम्बन्धी चार स्कूल हैं, जिनमें दिन को और रात को भी पढ़ाई होती है। जो दिन में आ सकते हैं वे दिन में पढ़ते हैं, जो रात में आ सकते हैं उनके लिए रात का प्रबन्ध है। विद्यार्थी जो कुछ सीखना चाहता है, उसके समय के अनुसार तदर्थ सब प्रबन्ध कर दिया जाता है।

पहले स्कूल में विद्युत्, रसायन, वाणिज्य, धातु, यन्त्र, खनिज पदार्थ तथा आरोग्य सम्बन्धी विद्याएं सिखाई जाती हैं।

दूसरे स्कूल में सब काम हाथ से करना सिखाया जाता है, जिसमें विद्यार्थी कल-पुर्ज़ों को खोल सकें, यदि कुछ टूट जाय तो उसको फ़ौरन बना सकें, कलों की भीतरी और बाहिरी सब बातें समझ जायं, पुर्ज़ों को जोड़ देने में कुशल हो जायं। यहाँ पर ऐसे लोग भी भरती किए जाते हैं जो वाणिज्य-विद्यालयों में अध्यापकों का काम करना चाहते हों।

तीसरे स्कूल में मकान बनाने और उनको सजाने आदि का काम सिखाया जाता है। इस स्कूल के लिए एक बड़ी भारी इमारत तैयार हो रही है। उसके बन जाने पर और बहुत बातों का सुभीता हो जायगा।

चौथे स्कूल में स्त्रियों की शिक्षा का प्रबन्ध है। उनको गृहसम्बन्धी कार्य्यों की शिक्षा यहाँ दी जाती है। सीना, पिरोना, भोजन बनाना, गाना, मकान सजाना तथा साहित्य, विज्ञान आदि सभी आवश्यक बातें यहाँ सिखाई जाती हैं। यह चौथा स्कूल विद्या-प्रेमी कारनेगी ने अपनी माता की यादगार में खोला है। अपनी माता से किसको स्नेह नहीं होता?

परन्तु बहुत थोड़े ऐसे हैं जो उस स्नेह को अमर करने के लिए कोई चिरस्थायी यादगार बनाते हों।

हमने बहुत संक्षेप में इस शिल्प-विद्यालय का वर्णन किया है। हमने अपनी आँखों से इन स्कूलों में विद्यार्थियों को जाकर देखा है, उनको सब काम अपने हाथ से करते देख चित्त बहुत प्रसन्न हुआ। जिन्हें इस विद्यालय के विषय में अधिक जानना हो वे नीचे लिखे पते पर पत्र-व्यवहार करें—

The Registrar,
Carnegie Technical Institute,
Pittsburg, Pa., U. S. A.

यहाँ से विद्यालय का विवरण-पत्र भी मँगा सकते हैं। इस स्कूल में दाखिल होने वाले की उम्र कम से कम सोलह वर्ष की होनी चाहिए। जो रात को आकर पढ़ना चाहें, उनकी उम्र अठारह वर्ष से कम न हो। फीस साठ रुपये सालाना दिन के विद्यार्थियों से और १५ रुपये सालाना रात के छात्रों से उस समय ली जाती थी। यह फीस पिट्सबर्ग के रहने वाले विद्यार्थियों के लिए है। दूसरे छात्रों से नब्बे रुपये सालाना दिन वाले और इक्कीस रुपये रात वाले विद्यार्थियों से ली जाती थी।

भारतवर्ष के स्कूलों में एण्ट्रेंस पास विद्यार्थी सहज में ही यहाँ भरती हो सकते हैं। जो विद्यार्थी एक साल का खर्च एक हजार रुपया वहाँ लेकर पहुँचे, वह सहज में ही बाकी साल काम करके पढ़ सकता है, पर विद्यार्थी चतुर, तीक्ष्ण-बुद्धि और मधुरभाषी हो तो। पिट्सबर्ग में एक वेदान्त सोसाइटी भी है जो हिन्दू छात्रों की सहायता करने में हर प्रकार उद्यत रहती है।

ईश्वर करे, भारतवर्ष में भी एक ऐसा विद्यालय खुले जिसमें ऊँच-नीच सभी वर्गों के बालक पढ़ें, हानिकारक बन्धनों की गाठें कटें और देश के बच्चे कला-कौशल में कुशल होकर भारत की निर्धनता दूर करें!

इस प्रकार कारनेगी की अमर कीर्ति की स्थापना करने वाले इस नगर की मैंने खूब सैर की। मेरी इच्छा यहाँ से अमरीका की प्रसिद्ध राजधानी वाशिंगटन नगरी की ओर जाने की थी। वहाँ भी एक वेदान्त का केन्द्र खुला हुआ है। स्वामी बोधानन्द जी तथा अपने मित्र मिस्टर हिल से विदा लेकर मैंने यात्रा की तय्यारी की। सियेटल से चलते समय यह प्रोग्राम बना लिया गया था। अमरीका-भ्रमण के अपने प्रेमी पाठकों के लाभार्थ मैं इस विश्व-विख्यात अमरीकन शहर का मनोरंजक ब्योरा यहां पर देता हूँ।

चौंतीसवां अध्याय

टुकुमकारी से बोस्टन (२)

विश्व-विख्यात अमरीकन देशभक्त जार्ज वाशिंगटन के नाम को अमर करने के लिए अमरीकनों ने अपनी राजधानी का नाम वाशिंगटन रखा है और उसे अलग स्वतन्त्र करने के लिए उसके नाम के आगे D.C. अर्थात् जिला कोलम्बिया भी लगा दिया है। इस लिए इसे वाशिंगटन D. C. कहते हैं। आज हमें यहाँ की सैर करनी है। यह राजधानी कहाँ है? न्यूयार्क शहर से २२८ मील दक्षिण-पश्चिम की ओर यह स्थित है। पहले फिलेडलफिया, फिर बालटीमोर, फिर आपको वाशिंगटन दिखाई पड़ेगा। यही यूनाइटेड स्टट्स आफ अमरीका की प्रसिद्ध राजधानी है। यहीं पर इनका प्रेसीडेंट रहता है। अमरीकन जाति के प्रतिनिधिसत्ताक राज्य का गढ़ यहीं पर है। आओ पहले इसके नाम तथा इतिहास की कथा जानें, फिर सैर करने में अधिक आनन्द आवेगा।

१७७६ में नई दुनिया की तेरह बस्तियों का इंग्लिस्तान के साथ झगड़ा आरम्भ हुआ। इस झगड़ के मुख्य कारण इंग्लैंड निवासी थे। इन तेरह बस्तियों के लीडरों ने पहिले अरजी-परचे, सभा-कांग्रेसों द्वारा इंग्लिस्तान वालों से अपने अधिकार लेने की बहुत कोशिश की, आखिर "तंग आयद बजंग आयद" वाली कहावत चरितार्थ हुई। उन तेरह बस्तियों का अंग्रेजों से घमासन युद्ध आरम्भ हुआ। यह युद्ध पाँच वर्ष तक रहा और अंत में—"All governments derive their just powers from the consent of the governed" अर्थात् "राज्य-शासकों को शासन के अधिकार प्रजा की स्वीकृति से मिलते हैं।" इस सत्य सिद्धान्त को

अक्षरशः जय हुई। तेरह बस्तियाँ आज़ाद होगईं। तब से यूनाइटेड स्टेट्स आफ़ अमरीका का नाम संसार की जातियों की लिस्ट में लिखा गया। इस नए स्वतन्त्र देश की राजधानी कहाँ होनी चाहिए? यह प्रश्न जाति के लिए बड़े महत्व का था। सभी कोई अपनी-अपनी रियासत में राजधानी चुनने की सलाह देते थे। आखिर इस झगड़े का फ़ैसला देशभक्त श्रीमान् जार्ज वाशिंगटन पर छोड़ा गया। इस वीर ने अपनी मातृभूमि की निष्काम सेवा की थी; अपना तन, मन, धन अपने प्यारे देश की आज़ादी के लिए कुरबान किया था; अपने रणकौशल से शत्रुओं के दाँत खट्टे किए थे और सबसे बढ़ कर अपने निष्कलंक चरित्र तथा देश-प्रेम के कारण अपने देशवासियों से अपने देश का राष्ट्रपिता (Father of his country) की पूज्य उपाधि प्राप्त की थी। ऐसे सर्वप्रिय पुरुष का फ़ैसला सबको मान्य था, और होता भी क्यों न!

अपने देश-बन्धुओं की आज्ञा पाकर देशभक्त जार्ज वाशिंगटन ने पोटोमक नदी के उत्तर-पूर्वीय भूमि को इस कार्य्य के लिए चुना। मेरीलैण्ड तथा वरजिनिया रियासतों ने अपनी कुछ भूमि राजकार्य्य हेतु गवर्नमेंट को प्रदान की और इस ६९$\frac{1}{4}$ वर्गमील भूमि का नाम District of Columbia रक्खा गया। इसका राज्य-शासन कांग्रेस के हाथ में आया। कोलम्बिया के इस जिले में राजधानी 'वाशिंगटन शहर' की नींव डाली गई, और यह अमरीका वालों की वीर-पूजा (Hero Worship) का जीवित प्रमाण है। अपनी राजधानी का ऐसा नाम रख कर अमरीका वालों ने अपने परमपूज्य देशहितैषी वाशिंगटन को अमर बना दिया। आज उसी वाशिंगटन-कीर्ति-स्तम्भ राजधानी की सैर करने हम लोग चलते हैं, और देखते हैं वहाँ क्या हो रहा है।

न्यूयार्क से घंटे-घंटे बाद रेलगाड़ी वाशिंगटन शहर की ओर छूटती है। साधारणतया कई एक कम्पनियों की गाड़ियाँ जाती हैं, पर पेनसिलवेनिया कम्पनी का प्रबन्ध जगद्-विख्यात है, उसका किराया भी औरों से

अधिक है। आज मध्याह्न एक बजे की गाड़ी में सवार होकर चलते हैं। पाँच घंटे आनन्द से बीत गए। संध्या को गाड़ी वाशिंगटन शहर पहुँच गई। लीजिए, हम थोड़े में ही आपको यहाँ ले आए।

यूनियन रेलवे स्टेशन की इमारत को देखकर आप विस्मित क्यों होते हैं? भारत में भी तो कलकत्ता, बम्बई और देहली के सुन्दर स्टेशन हैं, लेकिन उन स्टेशनों पर यहाँ जैसा सुप्रबन्ध दिखाई नहीं देता। यहाँ सब काम व्यवस्थित ढंग से होते हैं। धक्कम-धक्का नहीं, आपस की गाली-गलौज नहीं, मुसाफ़िरों का कुलियों के साथ दुर्व्यवहार नहीं। सब काम शान्ति से प्रेमपूर्वक होते हुए दिखाई देते हैं। आइये, इस रास्ते से बाहर चलें।

यह बिजली की गाड़ी हम लोगों को शहर की ओर ले चलेगी और आयोवा सेन्टर (Iowa Centre) के निकट पहुँचा देगी। इसी में बैठ कर चलना ठीक होगा।

आप लोग अन्दर चल कर गाड़ी में बैठें, हम सब का भाड़ा चुकाए देते हैं।

ढाई आना फी आदमी!

जी हाँ, पर किराया आपको बहुत इसलिए मालूम होता है कि आप भारतवासी हैं, जहाँ हर आदमी की आमदनी प्रायः तीन पैसे रोज़ है।

अब आप अमरीका में आ गये हैं। यहाँ का रंग-ढंग देखिये।

कैसी चौड़ी गलियाँ इस शहर की हैं!

हाँ, हाँ, आपने समझा क्या? यहाँ काशी थोड़े ही है जो कुंज गलियों से गुज़ारा चल जावेगा! मालूम है आपको? यहाँ की गलियों की चौड़ाई ८० फीट से १६० फ़ीट तक है।

अहा ! कैसी सफ़ाई है !

क्यों न हो, यह कलकत्ता तो नहीं है जो ज़रा सी वृष्टि होने पर फिसलन हो जाय। श्रीमन्, यह वाशिंगटन शहर है। यह अमरीका की राजधानी है, भारत की राजधानी दिल्ली नहीं।

देखिये महाशय, यह प्रकाश ! मानो दिन चढ़ा है।

बेशक, क्यों न हो ? अंधकार का नाश करना ही मनुष्य का परम धर्म है। यह प्रकाश हमको बहुत कुछ शिक्षा देता है। जहाँ जितना अन्धकार है वहाँ उतना अधिक अन्याय है। अन्याय को दूर करने का सादा उपाय प्रकाश का फैलाना है। भला, क्या इन विद्युत्-प्रकाशित गलियों में चोर निर्भय घूम सकते हैं ?

हमारे शहरों और इस शहर में ऐसा भेद क्यों ?

क्या इसका उत्तर भी हमीं दें ? कुछ तो बुद्धि आप लोग भी खर्च करिए। आइये, हम लोगों को यहाँ उतरना है।

यह फ़र्श asphalt* का है, और यह सीमेंट का—उस पर गाड़ी, घोड़े चलते हैं और यहाँ पर आदमी। ऐसा प्रबन्ध सभी शहरों में है। यह आयोवा सेन्टर है। यहाँ वेदान्त सोसायटी की अधिष्ठात्री वेदमाता नाम्नी अमरीकन लेडी रहती है। रात को इसी बिल्डिंग में कमरा लेकर सो रहते है, भोर होते ही राजधानी की सैर को चलेंगे। ढाई रुपये के करीब एक रात का किराया फ़ी आदमी लगेगा, और भोजन पका पकाया अपने पास है ही; बस छुट्टी हुई।

उठिये महाशय, शीघ्रता कीजिये। सन्ध्या-वन्दन से निपटिए। आज हमें बहुत कुछ देखना है। सुस्ती से काम नहीं चलेगा। घड़ी में पौने सात बजे हैं और हम लोगों को साढ़े आठ बजे यहाँ से जरूर चलना चाहिए। सबसे पहले वाशिंगटन कीर्ति-स्तम्भ (Washington Monument) देखने चलेंगे। उसका द्वार नौ बजे से खुलता है।

* एक प्रकार का पत्थर।

तो क्या वह वाशिंगटन कीर्ति-स्तम्भ है ? जी हाँ, वही सबसे ऊँचा मीनार उस महान् पुरुष की कीर्ति का परिचय संसार को दे रहा है। वह कह रहा है--

"संसार में उसका जीवन धन्य है जिसने अपनी आयु का सर्वश्रेष्ठ समय अपने देश, अपनी जाति की सेवा में लगाया हो। वह कौन है जो मरेगा नहीं ? मृत्यु सबके लिए है, पर वह जन्म सार्थक है जो जाति के दुःख दूर करने में व्यतीत हो। दुनिया के विषयों से ऊपर उठिये, लोभ-लालच को लात मारिये, सम अधिकारों की दुन्दुभि बजाइए और मनुष्य जाति को न्याय की शिक्षा दीजिए। स्मरण रखिये, अन्त को सत्य की जय होगी। यदि इस व्रत के पालन में कष्ट आवे तो मत घबराइए। परमात्मा पर दृढ़ विश्वास रखिये। वह उनकी सहायता करता है जो न्याय के पथ पर चलते हैं। अमरीकन जाति ने १७७६ में न्याय-हेतु युद्ध किया था, परमात्मा ने उनकी सहायता की। यदि अमरीकन लोग न्याय से विमुख हो जावेंगे तो परमात्मा उनको वैसा ही दण्ड देगा।"

बेशक, आपका कथन ठीक है। यह कीर्ति-स्तम्भ उसी सत्य सिद्धांत की शिक्षा देता है।

अब तो हम लोग बहुत निकट आ गए। देखिये, दरवाजे के बाहर और भी दर्शक लोग खड़े हैं, जो स्तम्भ के ऊपर जाना चाहते हैं।

आहा ! यहाँ भी खटोला है। यह बहुत अच्छा हुआ, नहीं तो लम्बी चढ़ाई चढ़नी पड़ती। यह अमरीका है, श्रीमन् ! यहाँ लोग व्यर्थ दुःख नहीं उठाते। कोई न कोई तरकीब सोच ही लेते हैं। अपने देश के लोगों की भांति किस्मत के भरोसे नहीं बैठे रहते।

चलिये खटोले के अन्दर।

सर-र-र-र-र-र-र करता हुआ खटोला ऊपर को उठा और थोड़ी देर में हम लोग झट ऊपर पहुँच गये।

आपके खयाल में इसकी ऊँचाई कितनी होगी ? आइये, इस आदमी से पूछें। यह यहाँ का नौकर जान पड़ता है।

वह कहता है ५५५ फ़ीट ६ इंच इस मीनार की ऊँचाई है और संसार के सब मीनारों से यह ऊँचा है। बाहर की इमारत मेरीलैंड के संगमरमर से बनाई गई है, और अन्य भाग न्यू इंगलैंड के ग्रेनाइट (granite) पत्थर से। इस कीर्ति-स्तम्भ पर ३९ लाख रुपये से अधिक खर्च हुआ है।

वह यह भी कहता है कि यदि प्रत्येक छत के प्लेटफ़ार्म पर उतर-उतर कर देखिये तो बहुत ही अमूल्य उद्धरण और पत्थर दिखाई पड़ेंगे। यह भिन्न-भिन्न देशों से लाकर यहाँ दीवारों में जड़े गये हैं। चीन, श्याम, जापान आदि के तो चिह्न यहाँ हैं पर भारत का कोई भी नहीं है। उसके पास देशहितैषी जार्ज वाशिंगटन की भेंट के लिए कोई वस्तु नहीं थी ! यह हो ही कैसे सकती थी ! भारत गुलाम जो था।

आइये, इन खिड़कियों से नगर की शोभा देखें।

यह देखिए, दो-दो खिड़कियाँ प्रत्येक भाग में हैं और सब मिलाकर आठ खिड़कियाँ हैं।

इधर दृष्टि डालिए। वह सामने उत्तर की ओर जो श्वेत भवन दीख पड़ता है, वही श्रीमान् प्रेसीडेंट महोदय का विशाल गृह है। आजकल इसमें प्रेसीडेंट टाफ्ट विराजमान हैं।

वह पूर्व की ओर जो गुम्मदनुमा छतरीवाला वृहद् भवन दिखाई देता है वही राजधानी की प्रधान इमारत है। इसको चल कर देखेंगे।

इन दो भवनों के बीच में दूर तक निगाह दौड़ाइये---कैसा अपूर्व दृश्य है! उद्यानों की छटा कैसी मनोहर है! और जरा अधिक दृष्टि दौड़ाने से उन सुन्दर पहाड़ियों का नजारा भी देखिए। इधर नजर डालिए, पोटोमक नदी कैसा चक्कर काटती हुई जाती है। मीलों इसकी धारा की शोभा देखिए।

जरा इस पश्चिम का रंग भी लूटिए। वह दूर वरजिनिया के नीले पर्वतों कीश्रेणियाँ क्या रंग दिखा रही हैं! प्रकृति की शोभा क्या कहिए! अहा! प्रभु की लीला अपरम्पार है!

सत्य है, संसार के विषयों से ऊपर उठकर, उनको नीचे छोड़, बन्धन काट देने से ही, सच्चा आनन्द मिल सकता है। ऊपर उठने से हमारी दृष्टि का फैलाव (scope) बढ़ता है, तंगदिली दूर होती है, 'कूपमंडूक' के क्षुद्र विचार नष्ट हो जाते हैं।

महात्माओं के कीर्ति-स्तम्भ इसीलिए बनाए जाते हैं। जार्ज वाशिंगटन की महान् आत्मा यही शिक्षा देती है। उसके कीर्ति-स्तम्भ पर चढ़ने से उस महान् पुरुष के कारनामों का अनुभव होता है।

देखिये, दस तो यहीं बज गये। चलिये जल्दी, अभी बहुत कुछ देखना है।

अच्छा, आइये अमेरिका के प्रेसीडेंट का घर श्वेत-भवन (White House) देखने चलें। रास्ते में स्मिथसोनियन शाला (Institution) है, उसकी भी झांकी लगाते चलेंगे। जातीय अजायबघर भी पास ही है, उसका दर्शन भी हो जावेगा।

शायद आप स्मिथसोनियन-शाला का ब्योरा जानने को उत्सुक होंगे, लीजिए, हम पहिले यही बताते हैं।

स्मिथसन नामी एक भद्र अंगरेज वैज्ञानिक विद्या प्रचार का बड़ा प्रेमी

था। उसने अपनी सारी जायदाद, जो पन्द्रह लाख रुपये के क़रीब मिल-कियत की थी, अमेरिकन गवर्नमेंट के नाम वसीयत कर दी ताकि उससे वाशिंगटन नगर में एक वैज्ञानिक शाला खोली जावे। उस शाला द्वारा विज्ञान सम्बन्धी बातों का प्रचार सर्वसाधारण तक करने का उद्देश्य इस उदार अंगरेज़ का था। यह बात १८२९ की है। अमरीकन गवर्नमेंट ने इस रकम में और मिला कर १८४६ में इस वैज्ञानिक शाला की बुनियाद डाली और इसका नाम दानी के नाम पर 'स्मिथसोनियन शाला' रखा।

यह तो इस शाला का इतिहास हुआ। बाकी अन्दर चल कर देखते हैं।

यह देखिये, अमरीका के असली बाशिन्दों के नामोनिशान! यह सारा कमरा ऐसी ही प्राचीन वस्तुओं से भरा हुआ है। अमरीका के रेड इण्डियनों के घरों के नमूने देखिए पाँच-चार लकड़ियाँ खड़ी करके उसे वे कपड़े से ढक लेते थे—बस होगया घर! इनके तीर कमान, इनके देवी-देवता, इनके पूजने के स्थान, सभी बालकपन के खिलवाड़ समान हैं। सभ्यता की यह आरम्भावस्था है। बस, ऐसी ही पुरानी चीज़ें यहाँ दिखलाई गई हैं।

जातीय अजायबघर भी वैसा ही समझिये जैसा कि अजायबघर होता है। भांति-भांति के परिन्दों, जानवरों, पशुओं, कीड़ों आदि के नमूने दिखाये गए हैं।

आइये, ज़रूरी और असली बातें देखने चलें।

यही सफ़ेद खम्भों वाला भवन (White House) कहलाता है। अमरीकन जाति के प्रेसीडेंट श्रीमान टाफ्ट यहीं विराजते हैं। यह प्रेसीडेंटों के रहने की जगह है। प्रत्येक चार वर्ष उपरान्त अमेरिकन लोग अपने प्रधान का चुनाव करते हैं। यही प्रधान इनका प्रेसीडेंट, राजा,

महाराजा, सभी कुछ है। चार साल बाद फिर चुनाव होता है और सर्व-प्रिय पुरुष प्रेसीडेंट बनाया जाता है।

इस 'श्वेत भवन' की नींव अक्तूबर १७९२ में पूज्यवर जार्ज वाशिंगटन ने रखी थी। १७९९ में यह भवन बन कर तैयार होगया था। यह इमारत वरजिनिया पत्थर की है। इसकी लम्बाई १७० फ़ीट है और चौड़ाई ८६ फ़ीट है।

अच्छा चलिए, ज़रा अन्दर चल कर देखें।

दरबान से आज्ञा लेनी आवश्यक है। ये पौधे क्या सुन्दर दीख पड़ते हैं! गर्मियों में यहाँ कैसी बहार होती होगी। इस दूसरे दरबान से पूछ कर अन्दर चलते हैं।

यहाँ प्रेसीडेंट भवन के चीनी के बर्तन हैं। ये बहुत कीमती हैं। समय-समय पर इनको इस्तेमाल करते होंगे। दीवारों पर इन देवियों के जीते-जागते चित्र देखिए। यह तैलचित्र हैं। कारीगरों के हस्तकौशल के नमूने हैं। यह चित्र देवी टायलर का है और यह श्रीमती रूज़वेल्ट का।

जब कभी कोई रंगरलियाँ होती हैं तो इस भवन के ऊपर के हाल में प्रेसीडेंट अपने मित्रों का स्वागत किया करते हैं।

इस हाल की सजावट अपूर्व है। इन मेज़ों पर सुनहला काम देखिए। वे सामने की दीवारों पर जो शीशे टंगे हैं उनकी कीमत बहुत अधिक जान पड़ती है। खिड़कियों के पर्दों की शोभा निराली है। छत में सोने का काम भी सराहनीय है।

घड़ी में इस समय एक बज गया है। नाश्ता करके फिर राजधानी का बृहद् भवन देखने चलेंगे।

राजधानी के इस बृहद् भवन की शोभा सचमुच दर्शनीय है। इस इमारत की बनावट में महानता है। इसका बड़ा गुम्बद क्या कहता है? उस गुम्बद की लालटेन—और उस लालटेन के ऊपर! अहा! साक्षात् स्वतन्त्रता देवी की मूर्ति! यही देवी सर्वसिद्धिदायिनी है। यही मोक्षदात्री भगवती है। देवी के दाहिने हाथ में तलवार है और बायें हाथ में फूलों की माला। इस मूर्ति को देखने से मन में क्या पवित्र और उच्च भाव उठते हैं! लेखनी में वर्णन करने की शक्ति कहाँ!

देवी के सिर पर अमेरिकन झंडे की चद्दर है। ख़ैर, यह तो अपनी-अपनी श्रद्धा है। सूर्यवंशियों ने सूर्य-चित्रित चद्दर भेंट की, चन्द्रवंशियों ने चन्द्र-चित्रित, और जिनके पास भेंट करने को कुछ नहीं है उन्होंने अपनी आहों से देवी के पैर चूमे।

देवी को नमस्कार करके अन्दर चलते हैं।

इस दरबान के साथ चलकर देखना ठीक होगा, क्योंकि इसके साथ चलने से कई नई बातों का पता लग जावेगा। मध्य के चक्कर से आरम्भ करते हैं।

गुम्बदनुमा इस बड़े चक्कर को राजधानी के बृहद् भवन का केन्द्र समझिये, बाकी सब कमरे इसके इर्द-गिर्द हैं। इस गोलघर के गुम्बद पर 'अमरीका देवी' की मूर्ति है। यह क्या जता रही है? ग़ौर से देखिये। इसके पाँओं पर गिद्ध अपने पंख फैलाए है, इस मूर्ति की ढाल 'यूनाइटेड स्टेट्स' इस नाम से अंकित है और यह ढाल एक वेदी पर आश्रित है। उस वेदी पर क्या खुदा है?

"July 4, 1776"

१७७६ सन् की चौथी जुलाई। उस दिन अमरीका (युनाइटेड स्टेट्स) का जन्म हुआ था। उस दिन अमेरिका के वीर पुत्रों ने स्वतन्त्रता की घोषणा (Declaration of Independence) कर दी

थी। यह दिन अमरीका का पवित्र दिन है और प्रत्येक वर्ष इस दिन बड़ा उत्सव मनाया जाता है।

अमरीका-देवी का ध्यान किस ओर है? देवी आशा-पूर्ण ध्यान से न्यायाश्रित सात सेप्टेम्बर, १७८७ के नियमबद्ध व्यवस्थापत्र (Constitution) को सुन रही है।

यह मूर्ति बड़े पवित्र भाव उत्पन्न करती है। क्या हम उनका उल्लेख यहाँ पर कर सकते हैं?

इसका उत्तर हम नहीं देते। चलिए आगे बढ़ें, घड़ी में तो तीन से ऊपर होगए हैं।

गोलघर की दीवारों पर के चित्रों पर दृष्टि डालिए। यह भी तैल-चित्र हैं। पहिला चित्र भूगोलवेत्ता कोलम्बस के आगमन का है, जब आप अक्तूबर १२, सन् १४९२ को सेनसालवेडोर में उतरे थे। दूसरे-तीसरे चित्र न जाने किसके हैं। चौथा देखिये। यह यात्रियों (Pilgrims) का है जो इंगलिस्तान के अन्याय से भाग कर अमरीका आ बसे थे। पाँचवां चित्र 'घोषणापत्र' सम्बन्धी है, जब अमरीकन बस्तियों के नेताओं ने इंगलिस्तान से पृथकता ग्रहण कर अपने आपको स्वतन्त्र किया था। छठा चित्र जनरल बरगायनी की आधीनता (हार मानने) का है। इस युद्ध में अंगरेज़ी अफ़सर ने परास्त हो अपने हथियार अमरीकनों को सौंपे थे। सातवाँ चित्र कार्नवालिस की पराजय का है। जनरल कार्नवालिस अंग्रेज़ी फ़ौजों के मुखिया थे। इनकी हार पर अमरीकन युद्ध का अन्त हुआ था। आठवाँ चित्र उस समय का है जब जनरल वाशिंगटन ने मातृ-भूमि की सेवा कर, उसके बन्धन-काट, उसे स्वतन्त्र कर, बाद में अपने आपको माता का एक साधारण पुत्र बनाया था। यह चित्र बड़े महत्व का है। "आत्म-समर्पण" का सच्चा उदाहरण है। फ़ौजों की सारी शक्ति जनरल वाशिंगटन के हाथ में थी। वे चाहते तो नेपालियन की भांति देश

को अपने काबू में कर लेते। मगर नहीं, उस वीर का माता के प्रति सच्चा प्रेम था।

आज कांग्रेस का इजलास हो रहा है। चलिए ज़रा उसकी ओर भी निगाह डालते चलें। यहाँ तो इतनी भीड़ है। बारी-बारी अन्दर गेलरियों में जाने देते हैं। अपनी बारी पर हम लोग भी घुस चलेंगे।

हूं! यह क्या? नीचे हाल में तो थोड़े ही मेम्बर हैं। कुर्सियाँ खाली हैं। एक सीनेटर व्याख्यान भी दे रहा है। सुनने वाले चार दस ही हैं। हाँ, गेलरियों में स्त्री-पुरुष भरे हैं। यह क्यों? इसका रहस्य बाद में मालूम होगा। यहाँ का वृत्तान्त किसी से पूछेंगे।

सीनेट का यह हाल ख़ासा बड़ा है। इसकी दीवारों की सजावट में सोने का काम बहुत है और चित्र-विचित्रता का तो कहना क्या! छत, दीवार, शीशा आदि सभी कला-कौशल के नमूने हैं। देश के महान् पुरुषों को सभी जगह स्थान दिया गया है, उनकी प्रतिष्ठा की गई है। हाल में कुर्सियाँ अर्द्धचन्द्राकार चुनी हुई हैं। प्रत्येक कुर्सी के आगे एक डेस्क है। प्रेसीडेण्ट का डेस्क बीच में प्लेटफार्म पर है।

अब अधिक क्या देखना है, चलते हैं। सारा दिन घूमते-फिरते थक गए। बाकी फिर कभी सही। आज इतनी ही सैर समझिये। यदि फिर किसी दिन छुट्टी हुई तो बाकी भाग की भी सैर करवाएँगे। इससे अधिक यदि देखें भी तो मज़ा नहीं आवेगा, क्योंकि दिमाग़ थक गया है, अधिक ग्रहण नहीं करता।

आख़िर वाशिंगटन से चल कर, फिलेडेल्फिया होता हुआ, फरवरी के अंतिम सप्ताह में मैं अपने निर्दिष्ट स्थान न्यूयार्क में पहुँचा। मुझे ९ महीने के पैदल और रेल भ्रमण के बाद इस संसार-प्रसिद्ध नगर के दर्शन हुए। सियेटल से जब मैंने न्यूयार्क की ओर चलने का दृढ़ संकल्प किया था तो उस समय मेरी मानसिक अवस्था क्या थी? ९ महीने के विकट

अनुभव के बाद जब मैं न्यूयार्क पहुँचा तो सचमुच मुझ में एक अद्भुत परिवर्तन होगया था। मैं जीवन की कठिनाइयों को बिलकुल तुच्छ समझने लगा। भारतवर्ष लौटने के लिए मेरे पास किराया नहीं था। जो पार्सल मैंने सरस्वती सम्पादक पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी से मंगाया था वह आखिर मेरे पास पहुँच गया। वेल्ज एन्ड फारगो कम्पनी के लोग बड़े भलेमानस निकले। इन्हीं की मार्फत यह पार्सल आया था। क्योंकि पार्सल मुझ तक पहुँचाने में इन्होंने देर कर दी, इसलिए कम्पनी वालों ने मुझसे किराये का पैसा नहीं लिया और इस प्रकार मेरी हानि को पूरा कर दिया। व्यापार के उन्नत साधनों को ये लोग खूब समझते हैं। मुख्य सिद्धांत व्यापार की सफलता का यह है कि ग्राहक प्रसन्न रहे और वह उस दूकान को अपनी दूकान समझे। जो दूकानदार ग्राहकों को नाराज़ कर अपना उल्लू सीधा करते हैं, वे अपने पाँव पर स्वयं कुल्हाड़ी मारते हैं। भारतवर्ष में दूकानदारों को इन बातों की कुछ भी शिक्षा नहीं दी जाती और न वे स्वयं नए उन्नत साधनों को पकड़ने की चेष्टा करते हैं। परिणाम यह है कि हम व्यापार में दूसरी जातियों से बहुत पिछड़ गये हैं।

जब वेल्ज एन्ड फारगो का एजेन्ट मेरे पास मेरा हिन्दुस्तानी पार्सल लाया तो मैं बड़ा प्रसन्न हुआ और उसी दिन से लगा अपना माल बेचने। सरस्वती पत्रिका में जो लेख मैंने अमरीका से लिखे थे उनका डेढ़ सौ रुपया इण्डियन प्रेस वालों से लेकर द्विवेदी जी ने यह बनारसी माल मेरे पास भेजा था। उस डेढ़ सौ रुपये के माल से मैंने साढ़े सात सौ रुपया पैदा किया। बनारस के रेशमी रूमाल और पीतल के बर्तन मेरे ग्राहकों को बहुत अच्छे लगे और उन्होंने मुझे मुंह-माँगा दाम दिया। डेढ़ महीने तक मैं न्यूयार्क में रहा और अपना माल खपाने में व्यस्त रहा। फुरसत मिलने पर मैं बराबर घूमने जाता और वहाँ के विशाल म्यूज़ियम में जाकर अपना दिल बहलाता। यहाँ का चिड़ियाघर भी देखने योग्य है। उसमें भी मैं कभी-कभी जाता था। एक दिन मैं अपने निवास-स्थान

के पास लब्धप्रतिष्ठ योद्धा ग्रान्ट की समाधि को भी देखने के लिए गया।

न्यूयार्क नगरी का अपना एक अद्भुत चमत्कार है, जो दुनिया के और किसी नगर में नहीं पाया जाता। वह है आकाशचुम्बी भवनों की कतारें। संसार के किसी नगर में ऐसे ऊंचे घर आज तक नहीं बने। जब से मनुष्य समाज का जन्म हुआ है तब से आज तक मनुष्य ने कभी भी इस प्रकार की कारीगरी के ऊंचे भवन निर्माण नहीं किये। चालीस, पचास और पचपन मंजिले मकान केवल अमरीकन लोगों ने ही बना कर दिख-लाए हैं और गृह-निर्माण कला का अद्भुत चातुर्य अमरीकन जाति के मस्तिष्क में ही है। ये घर मामूली लकड़ी के नहीं, बल्कि सुदृढ़ सीमेंट के बने हुए हैं। बोझल वैज्ञानिक साधनों से सुसज्जित ये भवन आधुनिक सुखों के केन्द्र हैं, जहाँ प्रत्येक निवासी को अपने ही कमरे में सब वस्तु अनायास ही मिल जाती हैं। न्यूयार्क की ब्राड वे गली के किसी कोने पर खड़े होकर जब दर्शक अपना सिर उठा कर इधर-उधर दृष्टि डालता है तो अलिफ-लैला के भीमकाय दैत्यों की तरह खड़े हुए बड़े-बड़े मकान अपने सामने पाता है। एक के बाद दूसरा, दूसरे के बाद तीसरा, इस प्रकार भीमकाय मकानों की कतार दर्शक के हृदय को आश्चर्य से भर देती है। यदि रात का समय हो तो फिर कहना ही क्या! आकाशचुम्बी इन भवनों की हजारों खिड़कियों में से बिजली की रोशनी अपना विचित्र सौन्दर्य दिखलाती है।

यों तो यदि न्यूयार्क का वर्णन लिखने बैठें तो पोथे के पोथे काले किए जा सकते हैं। यह कार्य तो मैं यहां कर सकता नहीं, मेरा अभिप्राय तो अपने अमरीका-भ्रमण की कथा बताना है। न्यूयार्क की तरफ आकर मैं निश्चिन्त सा होगया। भारत लौटने के लिए मैंने किराया भी बना लिया। यूरोप घूमने लायक रुपया मैंने यहाँ से पैरिस के बैंक को भेज दिया। अपने कपड़े-लत्ते भी अमरीकन एक्सप्रेस कम्पनी द्वारा पेरिस भिजवा दिए।

सारांश यह कि सब चिन्ताओं से मुक्त होकर मैं भारत लौटने के लिए तैयार होगया।

न्यूयार्क में एक दिन मैं अपने मित्र मि० फ्रीमैन से मिलने के लिए गया। ये महाशय आयरिश देशभक्तों की ओर से निकलने वाले प्रसिद्ध समाचारपत्र "गेलिक अमेरिकन" के सम्पादक थे। बिजली की गाड़ी में मैं बैठा था। उसमें एक गोरा खुफिया पुलिस का भूत भी था। वह मेरे साथ मि० फ्रीमैन के घर तक गया और उसने बराबर मेरा पीछा किया। वहाँ मुझे यह पता लगा कि जिस अपने सूटकेस को मैं सियेटल की वाई० एम० सी० ए० के मंत्री मि० स्वान के पास रख आया था, उसे भी भारत सरकार की खुफिया पुलिस के भूतों ने गुम कर दिया। ईश्वर जाने यह बात कहाँ तक सच है, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरा वह जापानी हेंडबैग ज़रूर गुम होगया। अपने देश की स्वतन्त्रता चाहने वाले पुरुष का जीवन सदा खतरे में रहता है, किन्तु मैंने कभी भी ऐसे खतरों पर विशेष ध्यान नहीं दिया। भारत लौटने पर मुझे क्या काम करना है, इस बात का फैसला मैंने यहीं कर लिया था। अतएव निर्भय और निर्द्वन्द्व होकर मैंने अमरीका छोड़ने की ठानी। विचार किया कि बोस्टन जाकर स्टीमर पकड़ा जाये।

यही निश्चय कर मैंनें अमरीका के संस्कृति-केन्द्र बोस्टन नगर में प्रवेश किया। यह नगर ऐतिहासिक स्मृतियों से ओत-प्रोत है। अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में आजादी के दीवाने इसी नगर में एकत्रित हुए थे। इसी नगर के पास कैम्ब्रिज में हारवर्ड यूनिवर्सिटी है, जिसकी विद्वत्ता की धाक सारे संसार में फैली हुई है। इसी कैम्ब्रिज में मुझे शर्मन फिर मिला, जिसे भारतीय नौकरशाही ने मेरा पीछा करने के लिए यहाँ ठहरा रक्खा था। आजकल विद्वत्प्रवर स्वर्गीय ला० हरदयाल जी एम० ए० यहीं एक कोठरी किराए लेकर ठहरे हुए थे।

प्रातःकाल का समय था। मैं ला० हरदयाल जी की खोज में अपने

स्थान से निकला। इस लब्धप्रतिष्ठ कोविद ने भारतीय शिक्षित समाज में बड़ा नाम पैदा कर लिया था। कलकत्ता के प्रसिद्ध अंग्रेजी मासिक पत्र 'मौडर्न रिव्यू' में जब इनके लेख छपते तो कालेजों के विद्यार्थी उन पर मोहित होकर उन्हें बार-बार पढ़ते। जब मैं उनके कमरे में पहुँचा तो उनकी सादगी को देख कर दंग रह गया, लेकिन उनका जीवन था अव्यवस्थित। उनकी कोई वस्तु करीने से रक्खी हुई न थी; कोई चीज कहीं पड़ी थी, कोई कहीं। मेज पर कागज फैले हुए थे। सब कपड़े अव्यवस्थित ढंग से बिखरे हुए थे। यह सब देखकर मैं सन्न सा रह गया। इतना बड़ा प्रज्ञावान् व्यक्ति, जिसकी विद्वत्ता की छाप दूर तक पड़ चुकी हो, जो अपने विद्यार्थी काल में अपनी योग्यता के कारण प्रोफेसरों को अचम्भे में डालता रहा, जो एक बार किसी ग्रंथ को पढ़े तो बिलकुल कंठाग्र कर ले, जिसे अंग्रेजी, जर्मन, फ्रेन्च संस्कृत और फारसी आदि भाषाओं का अद्भुत ज्ञान हो, जो लातीनी और यूनानी भाषाओं का भी खूब ज्ञाता हो, ऐसा ज्ञानपटु व्यक्ति इस प्रकार अव्यवस्थित जीवन क्यों रखता है? यह सवाल मेरे अन्दर रह-रह कर उठने लगा। इसी व्यक्ति से ब्रिटिश सरकार बुरी तरह भय खाती थी और इसी की वजह से खुफिया विभाग का एक विशेष दल इनकी देख-रेख के लिए नियत था। इससे कौन मिलता है और क्या बातचीत करता है, इसका मर्म जानने के लिए नौकरशाही व्याकुल रहती थी। यह व्यक्ति क्रान्ति का जीता-जागता अवतार माना जाता था, क्योंकि इसके लेखों ने भारत के शिक्षित समुदाय में खलबली मचा दी थी।

मैंने अमरीका-भ्रमण के पहिले दो संस्करणों में इस महापुरुष का वर्णन क्यों नहीं किया? निःसन्देह यह बात मेरे पाठक अवश्य जानना चाहते होंगे। असल में कारण यह था कि यदि मैं लाला हरदयाल जी का वर्णन, उनसे अपनी भेंट का जिक्र, अमरीका-भ्रमण में कर देता तो उस पुस्तक का छपाना असम्भव हो जाता। प्रेस वालों पर सख्तियाँ होने के कारण वे सब प्रकार से भयभीत थे। अब जब भारत के वे बन्धन कट चुके हैं

तो मुझे भ्रमणसम्बन्धी सभी घटनाओं का वर्णन पाठकों के सामने रखना चाहिए और ला० हरदयाल जी तो खास तौर से जन-साधारण के बड़े प्यारे रहे हैं, इसी कारण मैं अपनी इसी आत्म-कथा में उनसे अपनी मुलाकात का हाल दे रहा हूँ।

हाँ, मैं यह बतला रहा था कि भारतवर्ष का वह महान् क्रांतिकारी जिसने गवर्नमेंट की सैकड़ों रुपयों की छात्रवृत्ति अपने विचार-स्वातंत्र्य के कारण छोड़ दी, जिसे देशभक्ति के नशे के कारण अपनी प्यारी जन्म-भूमि छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा, वह लाला हरदयाल औक्सफोर्ड का अपना विद्यार्थी जीवन त्याग कर संयुक्त राज्य अमरीका में आजादी की हवा लेने आया था। पाली भाषा के उद्‌भट विद्वान् पं० धर्मानन्द कौशाम्बी इन दिनों में हारवर्ड यूनिवर्सिटी में पाली भाषा पढ़ाते थे और प्रोफेसर लैनमन (अमरीकन) के साथ बौद्ध साहित्य की खोज कर रहे थे। धर्म की मूर्ति कौशाम्बी जी की सच्चरित्रता का मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा और उन्होंने ही मुझे लाला जी का पता बतलाया। जिस कमरे में हरदयाल जी रहते थे वह बहुत बड़ा नहीं था। उसमें पुस्तकें काफी थीं और लिखने का सामान था। पहिनने के कपड़े भी थोड़े से थे और शायद एक-दो सूटकेस रहे होंगे। लेकिन किसी प्रकार की व्यवस्था कमरे में न थी। मैंने चूंकि व्यवस्थित जीवन रखने की शिक्षा पाई है, इसलिए मुझ पर स्वाभाविक ही पहला संस्कार यह पड़ा कि लाला जी बड़े बेपरवाह और आलसी व्यक्ति हैं, पर जब मैंने उनसे वार्तालाप किया, उनके हृदय को टटोला, तो मुझे पता लगा कि उनकी सारी शक्तियां ज्ञानोपार्जन में केन्द्रीभूत हो चुकी हैं और बाकी किसी वस्तु की रुचि उनमें नहीं रही। वे जब किसी विषय पर लिखने के लिए कलम उठाते हैं तो अपने ज्ञान-सूर्य के प्रकाश से कठिन से कठिन विषय की तह में पहुंच जाते हैं और उसकी व्याख्या अपने प्रकांड पांडित्य द्वारा ऐसी सुन्दर भाषा में करते हैं कि पढ़ने वाले उन पर लट्टू हो जाते हैं। इस व्यक्ति को न खाने का शौक है और न पहिनने का, इसके पास तो

कोई ऐसा पट्ट शिष्य, कोई अनन्य गुरुभक्त रहना चाहिए था जो इनके जीवन की शेष आवश्यकताओं की देख-रेख करता, क्योंकि ये महा पुरुष तो स्थूल शरीर की आवश्यकताओं से ऊपर उठ कर आत्मिक जगत् में आ चुके थे। किन्तु जब तक शरीर आत्मा का साधन बना हुआ है तब तक इसकी आवश्यकताओं के प्रति उदासीन रहना बड़ा भारी अपराध हो जाता है और बहुत-से अमूल्य जीवन तो इसी लिए जाते रहे कि उन्हें कोई ऐसा सेवक न मिला जैसा भगवान् बुद्ध को आनन्द और गुरु नानक देव जी को भाई मर्दाना। भारतवर्ष बड़ा अभागा देश है। जनता की सेवा करने वाले कर्मवीरों को ऐसे विश्वास-पात्र सेवक नहीं मिलते।

खैर, मैं लाला जी से मिला। हमारी आपस में खूब बातें हुईं। उन्होंने मुझे समझाया कि मैं भारतवर्ष लौट कर बम्बबाजों के साथ सह-योग न करूं, बल्कि उनसे दूर रहूं। उन्होंने मुझे सलाह दी कि जिस देश की प्रजा अशिक्षित होती है, जो अपने ही हितैषियों को स्वार्थवश पुलिस के हवाले कर देती है, जो निःस्वार्थी और कुर्बानी करने वाले सेवकों को पहिचान नहीं सकती, ऐसी प्रजा में कभी बम्बबाजों के क्रान्तिकारी तरीके सफल नहीं हो सकते। अतएव सत्परामर्श दिया कि मैं व्याख्यानों और पुस्तकों द्वारा देश में स्वाधीनता के विचारों का प्रचार करूं और कभी भूल कर भी क्रान्तिकारी सोसाइटियां बनाकर नवयुवकों को खतरे में न डालूं। कई घंटे तक हम दोनों इसी विषय पर बातचीत करते रहे। जब मेरी पूरी तसल्ली होगई तो मैंने उनकी सलाह को गाँठ बांध लिया।

लाला हरदयाल जी योरुप के क्रान्तिकारियों से ऊब कर अमरीका चले आये थे और उनकी इच्छा यह थी कि कैलेफोर्निया में बसे हुए भारतीय बन्धुओं में देशभक्ति के सच्चे विचार फैलाये जायें और उनका सुन्दर संगठन किया जाये। ब्रिटिश सरकार उनसे भयभीत थी, इस कारण उनकी हलचलों की सब सूचनायें खुफिया विभाग को पहुँचाई जाती थीं।

मैं भी उस लपेट में आ गया और मेरी भेंट की सूचना भी भारत

सरकार को दी गई। नौकरशाही तो पहिले से ही मेरे विरुद्ध थी, लाला जी से भेंट करने के कारण वह अत्यन्त क्रुद्ध हो उठी और उसने शर्मन को मेरा पीछा करने के लिए पहिले से ही योरुप रवाना कर दिया। मुझे बैलों के जहाज पर बोस्टन से मानचेस्टर जाना था और फिर मानचेस्टर से लंडन की ओर पैदल यात्रा करनी थी, इसलिए शर्मन का मेरे साथ जाना व्यर्थ था। वह मुझे जहाज पर चढ़ा गया और शेष सब प्रबन्ध कर गया, जिससे उसे मेरे प्रोग्राम का पूरा पता रहे। सच्ची बात तो यह है कि उस समय तक मुझे उस पर कुछ भी सन्देह नहीं था। मुझे तो वह सत्रह-अठारह वर्ष का अलबेला लड़का प्रतीत होता था। उस समय मुझे यह मालूम न था कि यह गोरा बंगाली लड़का इस छोटी सी उम्र में ही खुफिया विभाग का क्रीतदास बन चुका है। मैंने लाला हरदयाल जी से बिदा ली और कौशाम्बी जी से भी प्रेमालिंगन किया। कौशाम्बी जी ने भेंटस्वरूप मुझे कुछ बौद्ध साहित्य दिया और प्रोफेसर लैनमन से भेंट कराई।

सन् १९११ के मई महीने की १३ तारीख को मैं बोस्टन नगर में खड़ा हुआ नई दुनिया अमरीका छोड़ने की तैयारी कर रहा था। सन् १९०५ की पहली जनवरी को केवल १५) रु० लेकर जिस स्वतंत्र देश में बसने के लिए मने अपना घर-बार छोड़ा था, जिस आजाद देश में पहुँचने के लिए मैंने सिंगापुर और फिलीपाइन द्वीप में अत्यन्त कष्ट सहन किये थे, आज उस स्वाधीन देश को छोड़कर फिर अपने गुलाम देश को जाने की सोच रहा था। पांच वर्ष तक निरन्तर मैं युनाइटेड स्टेट्स आफ अमरीका की स्वतन्त्र जलवायु में रहा, इसकी सुविख्यात शिकागो यूनिवर्सिटी में शिक्षा पाई, पैसेफिक महासागर के किनारे औरेगन और वाशिंगटन रियासतों के विश्वविद्यालयों में विद्वान् प्रोफेसरों के सत्संग से स्वतन्त्रता देवी के दर्शन किये और मजबूत फेफड़ों को स्वाधीन वातावरण से भर लिया। यह सब कुछ करने के बाद आज १३ मई को बोस्टन नगर में खड़ा मैं इस स्वाधीन देश को छोड़कर भारतवर्ष जाने की धुन में लगा हुआ था।

मैं भारतवर्ष से अमरीका में बसने के लिए आया था। मेरी इच्छा थी कि मैं अमरीका जैसे आजाद देश में जाकर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करूं, क्योंकि मेरे सिद्धान्तानुसार गुलाम सन्तान उत्पन्न करना घोर पाप है। अमरीका आकर मेरा प्रोग्राम बदल गया और मैंने सोचा कि मेरा कर्तव्य अपने दुःखी देश में जाकर उसको स्वतन्त्र कराना है। जिस समय मैं काशी के हिन्दू कालिज में पढ़ता था, उस समय मेरी मानसिक अवस्था क्या थी! और आज छः वर्षों की विदेश यात्रा के अनुभव के बाद मुझमें कितना जबरदस्त परिवर्तन होगया। साम्प्रदायिकता के संकुचित विचार मेरे अन्दर से निकल गये, बुद्धिवाद ने मेरे हृदय पर पूरा अधिकार पाया, राष्ट्र धर्म को मैंने देख लिया और यूरोप की जातीयता के दोषों को भी समझ लिया। ज्ञान स्वतंत्र निरीक्षण से भी प्राप्त होता है और उसी से मनुष्य के व्यक्तित्व का विकास होता है, इस सत्य सिद्धान्त को समझकर मैंने गुरुडम को सदा के लिए तिलाञ्जलि दे दी। बड़े से बड़ा महापुरुष भी भूल से खाली नहीं हो सकता, इस बात को भी मैंने जान लिया। प्रकृति का ज्ञान असीम और अनन्त है, उसको कोई सम्पूर्ण नहीं जान सकता, इस सचाई को धारण कर मैंने इल्हाम (Revelation) के मायाजाल का हमेशा के लिए त्याग कर दिया। स्वावलम्बन ही विकास की सीढ़ी है, इस अटल नियम पर मेरा दृढ़ विश्वास होगया और मैंने इसी को अपना मुख्य आदर्श मान लिया।

इस प्रकार बोस्टन के कैम्ब्रिज क़स्बे के एक बाग में बैठा हुआ मैं अपने मस्तिष्क की परीक्षा कर रहा था। अमरीका की पाँच वर्षों की शिक्षा न सचमुच मेरा बड़ा उपकार किया है। जैसे गुरुकुल का ब्रह्मचारी अपना ब्रह्मचर्य्याश्रम समाप्त कर गुरुकुल से विदा होते हुए अपने प्यारे "कुल" को बड़ी श्रद्धा और प्रेम से नमस्कार करता है, ठीक यही दशा मेरे अन्तः-करण की अमरीका छोड़ते समय थी। केवल अन्तर यह था कि अभी मेरा मन अमरीकन विश्वविद्यालयों से पूर्णतया तृप्त नहीं हुआ था। मेरी हार्दिक इच्छा थी कि मैं एक बार फिर भारत से लौट कर इस स्वाधीन

देश में आऊं और न्यूयार्क की प्रसिद्ध यूनीवर्सिटी कोलम्बिया में पांच-चार वर्ष और विद्याध्ययन करूं । अमरीकन विश्वविद्यालयों में सचमुच ज्ञान की धारायें बहती हैं, जिनमें गोता लगाने का मजा विद्यार्थी कभी नहीं भूल सकता । छः वर्ष की विदेश यात्रा ने सचमुच मेरी आंखें खोल दीं और मुझे सत्यासत्य के निर्णय करने के योग्य बना दिया । अमरीका के अहसान को मैं कभी नहीं भूल सकता । अमरीका के मेरे पांच वर्ष मेरे जीवन में सदा ऊंचा स्थान पायेंगे और उनकी सुखद स्मृति मुझे सदा नवीन स्फूर्ति देती रहेगी ।

पैंतीसवां अध्याय

अन्तिम शब्द

परिव्राजक की आत्म-कथा का यह पहला भाग समाप्ति पर आ पहुँचा है। सन् १९०६ के जून मास से लेकर मई सन् १९११ तक पूरे पांच वर्ष होते हैं और यही समय मेरे अमरीका में विद्याध्ययन का है। इन पांच वर्षों की मनोरंजक और शिक्षाप्रद कथा मैंनें आने वाली सन्तान के लिए लिख दी है, जिससे इस देश के बच्चे इसका रसास्वादन कर सकें। अमरीका-भ्रमण का यह अन्तिम खण्ड है। इसमें संयुक्त राज्य अमरीका के शिक्षित समुदाय की भारतवर्ष के प्रति क्या भावना थी और यह महान् राष्ट्र आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक दृष्टि से किधर जा रहा था, इन सब बातों के सम्बन्ध में कुछ लिख देना अनुचित न होगा।

मेरे पाठक इस बात को भली प्रकार देख चुके हैं कि मेरा रुझान गुण-ग्राहकता की ओर है और मैं दोषों की ओर बहुत कम ध्यान देता हूं। मैं आया था अमरीका में स्वाधीनता की शिक्षा प्राप्ति के हेतु और उसी के लिए मैंने सब प्रकार के कष्ट सहे हैं---पैदल यात्रायें भी कीं और विद्वानों का सत्संग भी किया। स्वतन्त्रता की खोज करने के लिए मैंने अपना घर-बार त्यागा था। भारतवर्ष को स्वाधीन कराने की मेरी बड़ी प्रबल इच्छा थी। अमरीका में विद्याध्ययन कर मैंने उन साधनों को तलाश कर लिया जिनकी सहायता से मेरा देश स्वतन्त्र हो सकता था। इसलिए अब सन् १९११ के मई मास में मैं भारतीय दासता के विरुद्ध युद्ध करने के लिए सब प्रकार से सन्नद्ध हो चुका था।

लेकिन, सन् १९११ में संयुक्त राज्य अमरीका की क्या अवस्था थी, इस पर प्रकाश डालना भी अत्यावश्यक है। करीब चार हजार मील लम्बे-चौड़े इस महान् राष्ट्र में संसार की सब जातियों के लोग आकर इकट्ठे

हुए थे। एक महासागर की तरह अमरीकन राष्ट्र हिलोरें ले रहा था। खाने-पीने की कोई कमी न थी। देश धन-धान्य से पूरित था। आबादी अभी बहुत कम थी और लाखों एकड़ भूमि निर्धन लोगों को अपनी ओर बुला रही थी। मजदूरों में किसी प्रकार की आर्थिक अशान्ति नहीं थी। हां, रंग-पक्षपात बड़े जोरों पर था। अमरीकन राष्ट्रीयता का अजीब नशा यहाँ के लोगों पर चढ़ा हुआ था। योरुप के अत्याचारी शासकों से पीड़ित प्रजा भिन्न-भिन्न कारणों से अपनी जन्मभूमि को त्याग कर स्वर्ग-समान देश में आकर बस रही थी। इसलिए यहाँ दो प्रकार के निकास के लोग पाये जाते थे—एक तो वे थे जो धार्मिक असहनशीलता के कारण पूर्वी रियासतों में बसे थे। ये लोग बड़े उदार, सुसंस्कृत, ज्ञानमार्गी और विद्याव्यसनी थे। न्यूयार्क के इर्द-गिर्द की रियासतों में बसने वाले ये अमरीकन संयुक्त राज्य अमरीका की आबादी का मक्खन समझे जाते थे और इधर से ही ज्ञान की धारायें निकल-निकल कर दक्षिण-पश्चिम की ओर बहने लगी थीं। इन्हीं रियासतों के बच्चे इस विशाल देश के जिस भाग में भी गये, अपने पूर्वजों की सांस्कृतिक सम्पत्ति को साथ लेते गये। प्रकाश धीरे-धीरे सारे अमरीकन राष्ट्र में फैलने लगा।

ये लोग कौन थे ? ये वे लोग थे जो सत्रहवीं शताब्दी के आरंभ काल में धार्मिक स्वतन्त्रता हेतु अपने देश इंगलैंड से हिजरत कर नई दुनिया में आकर बस गये थे। विचारों की स्वतन्त्रता इन्हें प्राणों से प्यारी थी और वे मानवता के पुजारी थे। जब जर्मनी में धार्मिक और राजनीतिक झगड़े उठे तो वहां के लाखों सद्गृहस्थ मध्यवर्ती अमरीका में आकर बस्तियाँ बनाने लगे और उन्होंने अपने उद्योग से बीच की रियासतों को उपजाऊ बना दिया। इसी प्रकार इंगलैंड द्वारा सताये गये हजारों आयरिश इस शस्यवा भूमि में आकर सुखी होगये। अमरीका के इन नागरिकों ने इस देश की उन्नति में अपना दत्तांश खूब दिया। लेकिन इनके अतिरिक्त, जो डाकू, बटमार, बदचलन, पैसे के पीर थे, वे रेलवे कम्पनियों द्वारा

लालच दिये जाने पर अमरीका में आकर पश्चिमी रियासतों में बसे। उन्होंने अपनी तंगदिली के कारण अमरीका को बदनाम कर दिया। वे दूसरे किसी को सुखी देखना नहीं चाहते थे, इस कारण उन्होंने देश-भक्ति के नाम पर चीनी, जापानी और भारतीय मजदूरों के विरुद्ध घृणा के भाव फैला दिये। इन्हीं लोगों के कारण कैलेफोर्निया, ओरेगन और वाशिंगटन रियासतों में एशियावासियों के विरुद्ध झगड़े हुए।

अमरीकन लोगों में सत्य की खोज करने का मादा उत्पन्न हो चुका था। ख्यातनामा स्वामी विवेकानन्द जी के शिष्यों द्वारा चलाई हुई वेदान्त सोसायटियाँ बड़ी शीघ्रता से अमरीका में फैल रही थीं और स्वामी राम-तीर्थ का पुरुषार्थ भी कैलेफोर्निया में रंग लाया था। परन्तु सबसे बड़ी बात, जिसका मैं जिक्र करना चाहता हूँ, योग सम्बन्धी है। भारतीय साहित्य में यों तो बड़े-बड़े उच्च कोटि के ग्रन्थ पाये जाते हैं और संस्कृत साहित्य प्रतिभावान् कवियों की कृतियों से बड़ी ख्याति पा चुका है, किन्तु सबसे बड़ा दत्तांश विश्व ज्ञान भण्डार में भारतवर्ष की ओर से जो दिया गया है वह है महर्षि पतञ्जलि का "योग दर्शन"।

यहूदी संस्कृति से सम्बन्ध रखने वाले जितने भी मजहब हैं, उन्होंने ईश्वर को माना तो है, परन्तु उसकी प्राप्ति का कोई वैज्ञानिक तरीका संसार के सामने नहीं रखा और न ही ईश्वरसम्बन्धी खोज करने की कोई विधि उन्होंने बतलाई है। महर्षि पतञ्जलि विश्व-साहित्य में पहले बुद्धिमान् व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने इस अत्यन्त दुरूह सूक्ष्मातिसूक्ष्म और बुद्धि से बाहर के विषय का वैज्ञानिक ढंग से अपने सूत्रों द्वारा ऐसा वैज्ञानिक वर्णन किया है कि उसे पढ़कर जिज्ञासु अवाक् रह जाता है। योग के उस व्यापक प्रभाव की अमरीकन साहित्य पर कैसी गहरी छाप पड़ी है, यह बात निःसन्देह जानने की है। अमरीकन लेखकों ने न्यू थौट (New Thought) नामी विचारधारा का आविष्कार इन्हीं योग-सूत्रों से किया है और इन्हीं की बदौलत अनन्त की खोज का मार्ग उन्होंने ढूंढ निकाला है।

थियोसौफिकल सोसायटी की नेत्री देवी ऐनी बेसेन्ट ने भारतीय विचारधारा के फैलाने में कोई कम काम नहीं किया। उनकी पीयूषवाहिनी ज्ञानधारा के प्रवाह ने लाखों अमरीकन श्रोताओं को अपने समय में मुग्ध किया था। धार्मिक स्वतन्त्रता के प्रेमी अमरीकन स्त्री-पुरुषों में धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति के बीज वपन होते रहे और उन्होंने यह समझ लिया कि सब चमत्कारों का करने वाला मन ही एक ऐसा साधन है जो जीवन-ज्योति के दर्शन करा सकता है। पहिली बार उन्होंने यह सीखा कि मानसिक तृप्तियाँ ही वे बीज हैं जो सुख-दुःख के फलों को उत्पन्न करते हैं; तृप्तियों के निरोध न होने के कारण ही आत्मा शरीर का गुलाम बन प्राकृतिक दुःखों की रचना करता है। मानसिक विज्ञान का युग अमरीका में आरम्भ हो चुका था और इसके क्षेत्र में नये-नये आविष्कार होने लग गये थे।

जब सन् १९०७ के शरद् ऋतु में मुझे धन की आवश्यकता हुई तो मैंने व्याख्यान देने की ठानी। उस समय मुझे पता लगा कि मरी हुई आत्माओं को नये सिरे से आह्वान करने वाली सोसायटियों का जन्म अमरीका में हो चुका है। भारत से मेरे पास ऐसे पत्र आया करते थे जिनमें लोग अपने बाप-दादाओं की आत्माओं को बुलाकर उनका सन्देश लेना चाहते थे और उनके चित्र भी प्राप्त करने के इच्छुक थे। हो सकता है कि इसमें व्यापार युग की बातें भी हों और चालाक लोग भोले-भाले लोगों को चकमा देकर उनका धन अपहरण भी करते हों, किन्तु थियोसौफिकल सोसायटी की बदौलत प्रेतात्माओं के सम्बन्ध में यहां चर्चा खूब होने लगी थी।

कहने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि अमरीका में ईसाई धर्म के मानने वाले लोग रहते हैं, किन्तु उनके समाज में स्त्री-पुरुषों का एक ऐसा दल संगठित हो चुका है जो ईसाई मत की सीमा से बाहर जाकर सत्य ज्ञान की प्राप्ति के लिए बराबर प्रयत्नशील है। ये लोग बड़े उदार, धार्मिक विचारों में बड़े सहिष्णु, मानवता के प्यारे, सब प्रकार के राष्ट्रीय तथा

जातीय बन्धनों से मुक्त, केवल ज्ञान के प्यासे–गसत्य की खोज कर रहे थे। योग-दर्शन की चर्चा इनमें होने लगी थी और उसके भिन्न-भिन्न अनुवाद जिज्ञासुओं द्वारा होने लगे थे। बाजार में ऐसी पुस्तकों की माँग बढ़ने लगी थी और उनके खरीदार दिन-प्रतिदिन नई से नई बातें जानने को उत्सुक हो रहे थे। देश में खाने के लिए काफी था। हर किसी को धन कमाने के अवसर प्राप्त थे, पेट की चिन्ता थी नहीं। अमरीका का ऐसा ही समाज इस समय हिन्दू धर्म के यौगिक रहस्यों को जानने के लिए व्यग्र हो रहा था। विश्वविद्यालयों में मनोविज्ञान (Psychology) का एक पृथक् विषय निश्चित हो चुका था और बड़े-बड़े प्रतिभावान् विद्वान् इस क्षेत्र में अपनी बुद्धि लड़ाने लग गए थे। संयुक्त राज्य अमरीका ही एक ऐसा देश था जिसमें अनन्त ज्ञान की अविरल धारा बहने लग गई थी और मुमुक्षु लोग उसमें स्नान करने के लिए लालायित दिखाई देते थे। यद्यपि धनाढ्य देश इंगलैण्ड में भी इस प्रकार के लोग पाये जाते थे और उसकी बस्तियों—आस्ट्रेलिया, कनाडा, न्यूजीलैण्ड—में सत्य ज्ञान के जिज्ञासु अपने-अपने केन्द्र स्थापित करने लग गए थे किन्तु इंगलैण्ड की साम्राज्यवाद की व्याधि ने उसके स्वाभाविक विकास में बड़ी बाधा उपस्थित कर दी थी। अंग्रेज कुदरती तौर पर होने वाले अपने विकास को साम्राज्यवाद के कारण अवरुद्ध कर चुका था, इसलिए मानवता की वह पवित्र धारा जो निःस्वार्थ आत्माओं में ही बहने लगती है, इंगलैण्ड में पनप न सकी। अंग्रेज जाति के दो भिन्न प्रकार के जीवन होगए थे—एक था उसका साम्राज्यवादी जीवन, दूसरा था उसका स्वाभाविक विकसित राष्ट्रीय चरित्र। यही कारण हुआ कि इंगलैण्ड राष्ट्र का स्वाभाविक विकास रुक गया, उसकी सांस्कृतिक उन्नति खटाई में पड़ गई। यदि इंगलैंड साम्राज्यवादी न होता तो निस्सन्देह इस छोटे से द्वीप में बसने वाले आर्य संसार की सभ्य जातियों में अध्यात्मवाद का ज्ञान फैलाने में अग्रणी बन जाते, क्योंकि इन्हीं की सन्तान तो संयुक्त राज्य अमरीका में जाकर बसी थी, जिनके वंशज इस समय संयुक्त राज्य अमरीका

में सत्य ज्ञान की खोज को आगे बढ़ाने का भगीरथ प्रयत्न कर रहे थे।

यह अवस्था थी अमरीका की सन १९११ में। धन की प्रचुरता, सांसारिक चिन्ताओं से मुक्ति, सब प्रकार के रक्तमिश्रित जातियों के लोग—एक नवीन वंश के लोग यहाँ पैदा हो रहे थे। ऐसे समय में मैंने नई दुनिया को छोड़कर भारतवर्ष लौटने का निश्चय किया। कितना अच्छा अवसर था मेरे लिए अमरीका में बस जाने का! भरी जवानी में मैं उस समय जीवन की बाधाओं को जीतने वाला सैनिक यदि चाहता तो स्वर्णमयी कैलेफोर्निया में जाकर अथवा औरेगन के उपवनों में निश्चिन्त होकर बस जाता, किन्तु भगवान् ने मेरे लिए एक दूसरा ही प्रोग्राम बना रक्खा था। मनुष्य कर्म की रस्सी से बंधा हुआ खिंचता चला जाता है। किधर? इसे वह नहीं जानता।

मनुष्य अपना प्रोग्राम बनाता है, किन्तु उसका सारथि भगवान् है। प्रकृति के अपने अटल नियम हैं, जिन्हें मनुष्य नहीं जानता, परन्तु बंधा हुआ है वह उस प्रकृति के साथ, इस लिए जब अपना प्रोग्राम बनाता है तो उसे भविष्य का ज्ञान तो होता नहीं, वह आने वाली बाधाओं को देखता नहीं, इस कारण उसके प्रोग्राम की सिद्धि उसके अपने हाथों से हट कर उस महान् शक्ति के करकमलों में चली जाती है जिसकी इच्छा के अनुसार यह ब्रह्म-चक्र चल रहा है। अतएव जब तक मनुष्य द्रष्टा (Seer) न बन जाये तब तक वह अपने भविष्य का स्वामी नहीं हो सकता।

प्रिय पाठक! अमरीका सम्बन्धी अपने जीवन की सारी कथा मैंने आपको सुना दी। कैसे मैं वहाँ पहुँचा, किस प्रकार मैंने विद्याध्ययन समाप्त करने के बाद २३०० मील का पैदल भ्रमण किया और किस प्रकार मैंने भारतवर्ष लौटने के लिए किराया पैदा किया—ये सब बातें आपको मैंने बतला दी हैं। अमरीका सम्बन्धी अपनी पुस्तकों में मैंने केवल आप-बीती और आप-देखी बातों का वर्णन किया है। मनुष्य-जीवन बड़ा छोटा है;

जो कुछ सेवा इसमें मनुष्य समाज की हो सके, सदा करते रहना चाहियें। मैं चाहता हूं कि इस भ्रमण की कथा को पढ़ कर मेरे देश के नवयुवक स्वावलम्बन की शिक्षा प्राप्त करें, उन्हें अपने जीवन का मिशन मालूम हो जाये और वे निर्भय होकर संसार-पर्यटन के लिए निकलें। साधनों के साथ, जेब में काफी पैसा लेकर घूमनेवाले दुनिया में लाखों हो गये, पर उनका कोई नाम भी नहीं जानता। साधनरहित, स्वावलम्बी, दृढ़व्रती और ईश्वर को अपना सच्चा पथ-प्रदर्शक मान कर जो व्यक्ति किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए घर-बार त्याग कर विदेश जायगा, उसे मैं अन्तःकरण से आशीर्वाद दूंगा और मैं उसे कहूंगा कि अपनी शक्ति से साधनों को पैदा करना और कठिनाइयों का मुकाबला कर उनपर विजय पाना, बस यही ज़िन्दगी का रहस्य है। इस प्रकार के नवयुवकों को जो जाति पैदा कर सकती है वही सौभाग्यवती और पुत्रवती कहलाती है। उसी में जीवन-रस (vitality) मौजूद है। ऐसे नवयुवक तथा नवयुवतियां उस राष्ट्र के भविष्य को बनाने वाले होते हैं और उन्हीं में उस जाति का प्रारब्ध रहता है। यदि मेरे इस भ्रमण-वृत्तान्त को पढ़ कर देश के तरुण सब प्रकार के खतरों का सामना करने के लिए तैयार हो जायेंगे और वें अपनी विश्वविद्यालय की परीक्षाओं को पास करने के बाद जीवन-संग्राम की इस परीक्षा की तैयारी करेंगे तो मैं अपन इस प्रयास को सफल समझूंगा। हमारा देश बहुत बड़ा है और हमारी समस्यायें गम्भीर हैं। पहले हमें घूम कर अपन देश को देखना चाहिये, फिर विदेशों में जाकर वहां की अच्छी-अच्छी बातें सीखनी चाहियें। प्रभु से मेरी करबद्ध प्रार्थना है कि मेरी आत्म-कथा का यह पहला भाग देश के लोगों को सदा प्रोत्साहन देता रहे और हमारी सन्तानें अपने प्यारे देश का ज्ञान-भंडार भरने के लिए मौत का सामना करना सीख जायें!

अच्छा, प्यारे पाठक, भारत लौटने की अपनी कथा मैं आपको आत्म-कथा के अगले भाग में सुनाऊँगा। बोस्टन से मैं कैसे मानचेस्टर पहुँचा और वहाँ से किस प्रकार इंग्लिश चेनल को लांघ कर फ्रांसीसियों की प्यारी

राजधानी पैरिस में गया, वहाँ से चल कर मैं इटली के बन्दरगाह जिनोआ से जर्मन स्टीमर में बैठकर कैसे कोलम्बो पहुँचा और भारतमाता के चरणों में नमस्कार कर साम्राज्यवादी अंग्रेजी शासन के विरुद्ध प्रचार करने की मैंने कैसे योजना बनाई, इन सब बातों को ब्योरेवार अगले भाग में दिया जाएगा। आशा है, मेरे प्रेमी पाठक दत्तचित्त होकर मेरे उस संघर्षमय जीवन की कथा को देश की स्वाधीनता के इतिहास के प्रकाश में बड़ी उत्सुकता से पढ़ेंगे और अपनी सन्तान को जीवन की सफलता के साधनों की शिक्षा देंगे। जीवनियाँ इसीलिए लिखी जाती हैं कि हम अपने पीछे आने वाले यात्रियों के लिए उनकी समस्याओं को सहल बना दें और बाधाओं को हटाने का मार्ग दिखला दें।